श्रीमन्नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवविरचित

वृहद्द्रव्यसंग्रहः

तथा

लघुद्रव्यसंग्रहः

श्रीब्रह्मदेवविरचित संस्कृतवृत्तिसहितः

एव

हिन्दीभाषानुवादसमुपेतः

*

प्रकाशक :—

ब्र० लाडमल जैन,

अधिष्ठाता

श्री शान्तिवीर दिगम्बर जैन संस्थान,

श्री शांतिवीर नगर, श्री महावीरजी

प्रति १०००] मूल्य ४ रु.
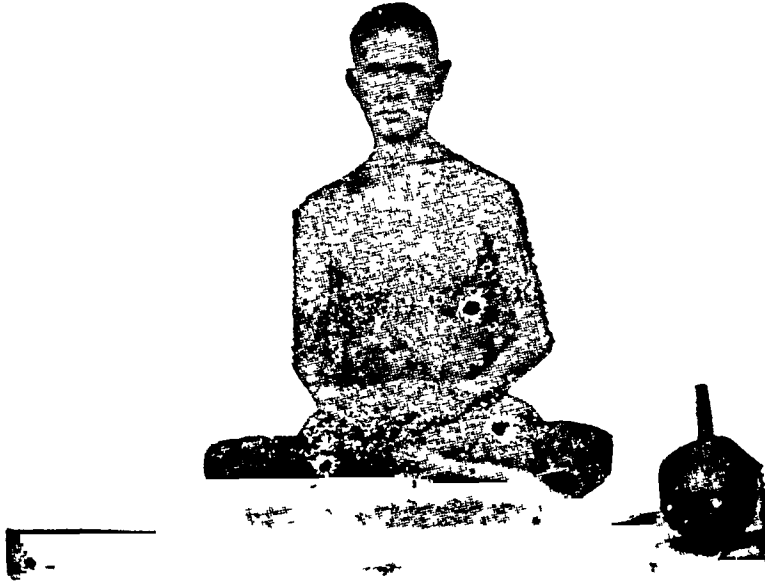
श्री १०८ परम पूज्य आचार्य शिवसागरजी महाराज

दो शब्द

श्री शान्तिवीर दि० जैन संस्थान शातिवीर नगर के प्रकाशन विभाग की तरफ से श्रीमन्नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव विरचित वृहद्द्रव्य सग्रह श्री ब्रह्मदेव विरचित सस्कृतवृत्ति व हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित होकर समाज के सामने आ रहा है यह प्रसन्नता की बात है । इसका प्रकाशन पहले भी श्री रायचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई, तथा श्री गणेशवर्णी ग्रन्थमाला खरखरी से हुआ है, किन्तु इस समय समाज मे इसकी कमी हो जाने से इसके प्रकाशन की आवश्यकता को देखते हुए सस्थान ने इसका अब फिर से प्रकाशन किया है, आशा है समाज को इससे लाभ होगा—व जिनवानी का इससे प्रचार बढेगा।

प्रस्तुत ग्र थ समाजकी अमूल्य निधि है—इसके रचियिता और संस्कृत वृत्तिकार आचार्य द्वय का परिचय ग्र थ की प्रस्तावना के लेखक विद्वान ने दिया ही है अत. इस सम्बन्ध मे कुछ लिखने की आवश्यकता नही है । ग्र थ के प्रकाशन मे श्रीमती मोहनीबाई ध० प० श्रीमान् सेठ लादूलालजी बाकलीवाल सुजानगढ निवासी हाल मुकाम गोलाघाट (आसाम) ने सहायता प्रदान कर जिनवानी के प्रचार व प्रसार मे अपना योग दान दिया है उसके लिये हम सस्थान की तरफ से उनका आभार मानते है । तथा ग्र थ का अवलोकन, सशोधन, विषयसूची, पद्यानुक्रमणिका तथा गाथा सूची आदि बनाने मे श्रीमान् सि० भू० ब्र० रतनचन्द्र जी मुख्तार सहारनपुर ने एव ग्र थ की विद्वत्ता पूर्ण प्रस्तावना लिखने मे श्रीमान् प० पन्नालालजी जन साहित्याचार्य सागर ने महान् सहयोग प्रदान किया है इसके अतिरिक्त प्रूफ सशोधन सस्थान के प्रेस मेनेजर श्री अशोकजी बडजात्या एव श्री प महेन्द्रकुमारजी "महेश" शास्त्री ने किया है सस्थान की तरफ से उक्त सभी महानुभावो का हम आभार मानते है ।

प्रस्तावना मे ग्र थ संशोधन मे श्री अशोकजी बडजात्या का नाम छप गया है सो उन्हे ग्र थ संशोधन के स्थान पर प्रूफ सशोधन करने वाले समझा जाय । प्रूफ मे यद्यपि बहुत सावधानी रक्खी गई है पुनरपि कही त्रुटिया रह गई होतो विद्वान्गण सशोधन कर इसकी सूचना देने का कष्ट करे ।

ब्र० लाडमल जैन

अधिष्ठाता

श्री शांति वीर दि० जैन सस्थान शातिवीरनगर राजस्थान

प्रस्तावना

द्रव्य तत्व और पदार्थ

द्रव्य शब्द का उल्लेख जैन दर्शन और वैशेषिक दर्शन में स्पष्ट रूप से मिलता है। जैन दर्शन में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल को द्रव्य कहा है तथा वैशेषिक दर्शन मे पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आत्मा, आकाश, दिशा, काल और मन इन नौ को द्रव्य कहा है। वैशेषिक दर्शन संमत पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और मन, शरीर की अपेक्षा जैन संमत पुद्गल द्रव्य मे गर्भित हो जाते है और आत्मा की अपेक्षा जीव मे गर्भित रहते है। आकाश और काल ये दो द्रव्य दोनों दर्शनो मे स्वतन्त्र रूप से माने गये है। वैशेषिक दर्शनाभिमत दिशा नाम का द्रव्य आकाश का ही विशिष्ट रूप होने से उसमे गर्भित है। इस तरह वैशेषिक संमत समस्त द्रव्य के जीव, पुद्गल, आकाश और काल मे गर्भित हो जाते है। धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य की कल्पना वैशेषिक दर्शन मे नही है। ये दोनो द्रव्य जैन दर्शन में ही निरूपित है।

इन छह द्रव्यो मे जीव द्रव्य चेतन है और शेष पांच द्रव्य अचेतन है। अथवा पुद्गल द्रव्य अमूर्तिक दृश्यमान है और शेष पाच द्रव्य अमूर्तिक है। पुद्गल द्रव्य दृश्यमान होने से सब के अनुभव मे आ रहा है। रूप रस गन्ध और स्पर्श जिसमे पाया जाता है वह पुद्गल द्रव्य है अतः जो भी वस्तु रूपादि से सहित होने के कारण दृश्यमान है वह सब पुद्गल द्रव्य है। जीव के साथ अनादि से लगे हुए कर्म और नोकर्म स्पष्ट रूप से पुद्गल द्रव्य है। जीव द्रव्य अमूर्तिक होने से यद्यपि दिखाई नही देता तथा स्वानुभव के द्वारा उसका बोध होता है। जो सुख दुख का अनुभव करता है, जिसे स्मृति तथा प्रत्यभिज्ञान आदि होते हैं वह जीव द्रव्य है। ज्ञान दर्शन इसके लक्षण है। जीवन और मृत मनुष्य के शरीर की चेष्टा को देखकर जीव का अनुमान अनायास हो जाता है। पुद्गल मे हम भिन्न भिन्न प्रकार के परिणमन देखते हैं, मनुष्य बालक से युवा और युवा से वृद्ध होता है। यह सब परिणमन काल द्रव्य की सहायता से होते है इसलिये पुद्गल की परिणति से काल द्रव्य का आस्तित्व अनुभव मे आता है। हम देखते है कि जीव और पुद्गल मे गति होती है वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर आते जाते दिखाई देते है इस का क्या कारण है? जब इसके कारण की ओर दृष्टि जाती है तब धर्म द्रव्य का अस्तित्व अनुभव मे आने लगता है। जीव और पुद्गल चलते चलते रुक जाते है, एक स्थान पर ठहर जाते है इसका कारण क्या है? जब इस पर विचार करते है तब अधर्म द्रव्य का अस्तित्व अनुभव मे आये बिना नहीं रहता। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये द्रव्य कहा रहते है? बिना आधार के किसी भी पदार्थ का अस्तित्व बुद्धि में नही आता, जब इस प्रकार का विचार उठता है तब आकाश का अस्तित्व अनुभव मे आये बिना नही रहता। इस तरह वह द्रव्यमय लोक है। लोक के अन्दर ऐसा एक भी प्रदेश नही जहा जीव पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश और काल के छह द्रव्य अपना अस्तित्व नही रखते हे। हा, लोक के बाहर अनन्त प्रदेशो वाला अलोक है जहां आकाश के सिवाय किसी अन्य द्रव्य का अस्तित्व नहीं है। जीव द्रव्य अनन्त

है, पुद्गल उनकी अपेक्षा बहुत अधिक अर्थात् अनन्तानन्त है, धर्म और अधर्म द्रव्य एक एक है आका भी एक है और काल असख्यात है । लोकाकाश के एक एक प्रदेश पर एक एक काल द्रव्य विद्यमा रहता है वह स्वय मे परिपूर्ण रहता है न कि किसी द्रव्य का अङ्ग अवयव या प्रदेश रूप हो । य कोई यह प्रश्न कर सकता है कि धर्म और अधर्म द्रव्य का कार्य आकाश मे होता है—अत जीव अ पुद्गल की गति और स्थिति दोनो ही आकाश मे होती है अतएव धर्म और अधर्म द्रव्य की कल्प निरर्थक है । इस प्रश्न का उत्तर यह है कि उनकी कल्पना निरर्थक नही सार्थक है । यदि आकाश ही गति और स्थिति का काम निर्भर करते है तो लोक और अलोक का विभाग नही बन सकेगा क्यों वह अलोकाकाश मे भी विद्यमान है उसके रहते जीव और पुद्गल की गति तथा स्थिति अलोकाकाश भी होने लगेगी तब लोक और अलोक का विभाग कहा हो सकेगा ।

जीवादि छह द्रव्यो मे अस्तिकाय और अनस्तिकाय की अपेक्षा भी भेद होता है जिसमे अस्ति के साथ बहुप्रदेश पाये जाते है उन्हे अस्तिकाय कहते है और जिसमे एक ही प्रदेश होता है उसे अ स्तिकाय कहते है । जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये पाच द्रव्य बहुप्रदेशी होने से अस्ति काय कहलाते है जब कि काल द्रव्य एक प्रदेशी होने के कारण अस्तिकाय रूप नही है । पुद्गल द्रव्य क एक भेद परमाणु भी यद्यपि द्वितीयादिक प्रदेशो से रहित है, तो भी उसे स्कन्ध रूप बनने की शक्ति सहित होने के कारण अस्तिकाय ही कहते है ।

द्रव्य का लक्षण शास्त्रो मे 'सद् द्रव्यम्' 'उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत्' और गुण पर्याय व द्रव्यम्. कहा है अर्थात् जो सत्ता रूप हो वह द्रव्य है, सत्ता उत्पाद व्यय और ध्रौव्य होती है अथवा ज गुण और पर्यायो से सहित हो वह द्रव्य है । पुद्गल द्रव्य के उत्पाद व्यय ध्रौव्य हमारी दृष्टि मे स्प रूप से आते है और पुद्गल के माध्यम मे जीव द्रव्य के उत्पाद व्यय ध्रौव्य भी अनुभव मे आते है । शे अरूपी द्रव्यो के उत्पाद व्यय ध्रौव्य को हम आगम प्रमाण से जानते है । जो द्रव्य के आश्रय रहता हु स्वयं दूसरे गुण से रहित हो वह गुण कहलाता है । यह गुण सामान्य और विशेष की अपेक्षा दो प्रक का होता है अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व आदि सामान्य गुण है यथा चेतनत्व, रूपादिय आदि विशेष गुण है । द्रव्य की परिणति को पर्याय कहते है । इसके व्यञ्जन पर्याय तथा अर्थ पर्याय इ प्रकार दो भेद है । प्रदेशत्व गुण की अपेक्षा किसी आकार को लिये हुए द्रव्य की जो परिणति है उ व्यञ्जन पर्याय कहते है और अन्य गुणो की अपेक्षा षड् गुणी हानि रूप जो परिणति है वह अर्थ पर्या है । इन दोनो पर्यायो के स्वभाव और विभाव की अपेक्षा दो भेद होते है स्वनिमित्तक पर्याय स्वभा पर्याय है और परनिमित्तक पर्याय विभाव पर्याय है जीव और पुद्गल को छोडकर शेष चार द्रव्यो क परिणमन स्वनिमित्तक होता है अत उनमे सदा स्वभाव पर्याय रहती है जीव और तथा पुद्गल की ज पर निमित्तक पर्याय है वह विभाव पर्याय कहलाती है और पर कानिमित्त दूर हो जाने पर जो पर्या होती है वह स्वभाव पर्याय कही जाती है । ससार का प्रत्येक पदार्थ द्रव्य गुण और पर्याय से तन्मय भाव को प्राप्त हो रहा है । क्षण भर के लिये भी द्रव्य पर्याय मे विमुक्त और पर्याय द्रव्य से विमुक्त नही रह सकता । यद्यपि पर्याय क्रमवर्ती है तथापि सामान्य रूप से कोई न कोई पर्याय द्रव्य की प्रत्ये समय रहती ही है । इसी द्रव्य पर्यायात्मक पदार्थ का दर्शन शास्त्र मे सामान्य विशेषात्म कहा है ।

द्रव्य के बाद जैन शास्त्रो मे जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्व

का वर्णन आता है। वस्तुतः ससार के अन्दर जिस प्रकार जीव और अजीव ये दो ही द्रव्य है उसी प्रकार जीव और अजीव ये दो ही तत्त्व है। जीव के साथ अनादि काल से कर्म और नो कर्म (शरीर) रूप अजीव का सम्बन्ध लग रहा है और उसी सम्बन्ध के कारण जीव की अशुद्ध परिणति हो रही है। जीव और अजीव का परस्पर सम्बन्ध होने का जो कारण है वह आस्रव कहलाता है। दोनो का परस्पर सम्बन्ध होने से जो एक क्षेत्रावगाह रूप परिणमन होता है उसे बन्ध कहते है। आस्रव के रुक जाने को सवर कहते है। पहले के सत्ता मे स्थित परमाणुओ का एक देश दूर होना निर्जरा है और सदा के लिये आत्मा का कर्म तथा नो कर्म से सम्बन्ध छूट जाना मोक्ष है। 'तस्य भाव स्तत्वम्' जीवादि द्रव्यो का जो भाव है। वह तत्व कहलाता है। मोक्षमार्ग के प्रकरण ये सात तत्व अपना बहुत महत्व रखते है। इनका यथार्थ निर्णय हुये बिना मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नही है।

कुन्दकुन्द स्वामी ने इन्ही सात तत्त्वो के साथ पुण्य और पाप को मिलाकर नौ पदार्थो का निरूपण किया है। जिस प्रकार घट शब्द का वाच्य कम्बुग्रीवादिमान् पदार्थ विशेष होता है उसी प्रकार जीवादि शब्दो के वाच्य चेतना लक्षण जीव, कर्म नौ कर्मादि रूप अजीब, कर्मागमन रूप आस्रव, एक क्षेत्रावगाह रूप बन्धन, कर्मा गमन निरोध रूप संवर, सत्तास्थित कर्मो का एकदेश दूर होते रूप निर्जरा, समस्त नौ कर्मो का आत्म प्रदेशो से पृथक् होते रूप मोक्ष, शुभ अभिप्राय से निर्मित शुभ प्रवृत्ति रूप पुण्य और अशुभ अभिप्राय से निर्मित अशुभ प्रवृत्ति रूप पाप होते है इसलिये शब्दार्थ प्रधान दृष्टि से ये पदार्थ कहलाते है। शब्द ब्रह्म और अर्थ ब्रह्म की अपेक्षा मन दो प्रकार का है ससार के अन्दर जितने पदार्थ है वे किसी न किसी शब्द के वाच्य अवश्य है यहा नौ पदो शब्दो के द्वारा प्रयोजन भूत अर्थो का ग्रह किया है इसलिये संसार के सब पदार्थ इन नौ ही पदार्थो मे गर्भित हो जाते है। कुन्दकुन्द स्वामी के बाद तत्वार्थ सूत्रकार उमास्वामी हुए उन्होने पुण्य और पाप को आस्रव तथा बन्ध मे गर्भित कर जीव अजीव आस्रव बन्ध सवर निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वो का ही उल्लेख किया है।

ग्रन्थ परिचय

प्रस्तुत बृहद् द्रव्य सग्रह ग्रन्थ मे इन्ही छह द्रव्यो और सात तत्त्वो का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्ति देव ने सर्व प्रथम २५ गाथाओ का एक लघु द्रव्य सग्रह रचा था। यह लघु द्रव्य सग्रह ग्रन्थ अनेकान्त वर्ष १२ किरण ५ मे प्रकाशित हुआ था। उसकी अन्तिम गाथा–

'सोमच्छलेण रइया पयत्थ लक्खणकराउ गाहाओ।
भव्बुयारणिमित्तं गणिणा सिरिणेमिचंदेण ॥'

मे स्पष्ट किया गया है कि गणी श्री नेमिचन्द्र ने सोम के छल से अर्थात् सोम नामक राज श्रेष्ठी की प्रेरणा से भव्य जीवों के उपकारार्थ पदार्थो के लक्षण करने वाली गाथाएं रची है।

संस्कृत टीकाकार श्री ब्रह्मदेव सूरि ने इस ग्रन्थ के उपोद्घात मे इस सोम श्रेष्ठी का परिचय देते हुए लिखा है कि मालव देश मे धारा नगरी के अधिपति कलिकाल चक्रवर्ती राजा भोजदेव से सम्बद्ध श्रीपाल मण्डलेश्वर के आश्रम नामक नगर के मुनिसुव्रत तीर्थङ्कर के चैत्यालय में शुद्धात्म द्रव्य के सम्यग्ज्ञान से समुत्पन्न सुख रूप अमृतरस के आस्वाद से विपरीत नरकादि के दुःखो से जो भयभीत था,

परमात्मा की भावना उत्पन्न सुख रूपी सुधारस का जो पिपासु था, भेदा भेद रत्नत्रय की भावना जिसे प्रिय थी जो श्रेष्ठ भव्य था तथा भाण्डागारी कोषाध्यक्ष आदि अनेक कार्यो का अधिकारी था ऐसे सोम राज श्रेष्ठी के निमित्त श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्ति देव ने पहले २६ गाथाओ द्वारा लघु द्रव्य सग्रह ग्रन्थ की रचना की थी। पीछे विशेष तत्त्व ज्ञान के लिये इस विशिष्ट बृहद् द्रव्य सग्रह ग्रन्थ की रचना की। अनेकान्त वर्ष १२ किरण ५ मे २५ गाथाए लघु द्रव्य सग्रह के नाम से प्रकाशित है पर सस्कृत टीकाकार ने २६ गाथाओ का उल्लेख किया है सम्भव है एक गाथा त्रुटित हो गई हो। यह त्रुटित गाथा स्व० प जुगलकिशोर जी मुख्तार की सम्भावना के अनुसार १०–११ गाथा के बीच की वह गाथा होनी चाहिये जो बृहद् द्रव्य संग्रह मे बीसवे नम्बर की गाथा है।

बृहद् द्रव्य सग्रह के अन्दर ३ अधिकार और ५८ गाथाए है। प्रथम अधिकार मे २७ गाथाओ द्वारा छह द्रव्यो और पाच आस्तिकाओ का द्वितीय अधिकार मे ११ गाथाओ द्वारा सात तत्त्व और नव पदार्थो का तथा तृतीय अधिकार मे बीस गाथाओ द्वारा मोक्ष मार्ग का वर्णन किया गया है।

जिनागम मे कही निश्चय नय से और कही व्यवहार नय से कथन हैं। निश्चय नय के कथन मे व्यवहार नय गौण रहता है। और व्यवहार नय के कथन मे निश्चय नय, गौण रहता है। नयो का यह गौण मुख्य भाव वक्ता की इच्छा पर निर्भर होता है। इस गौण मुख्य भाव की विवक्षा को न समझने से अल्पज्ञ श्रोता भ्रम मे पड जाते है परन्तु इस ग्रन्थ मे ग्रन्थ कर्ता ने निश्चय और व्यवहार दोनो नयो के द्वारा पदार्थ का स्वरूप बताते हुए उस शैली को अङ्गीकृत किया है कि जिससे कही किसी भी श्रोता को भ्रम नही हो सकता। जैसे जीव का स्वरूप बताते हुए कहा —

तिक्काले चदुपाणा इंदिय बल माउ आणपाणो य।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स ॥३॥

अर्थ—तीन काल मे इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छ्वास इन चार प्राणो को जो जीव धारण करता है वह व्यवहार नय से जीव है और निश्चय नय से जिसके चेतना है वह जीव है।

पुग्गलकम्मादीण कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदण कम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाण ॥८॥

अर्थ—आत्मा व्यवहार नय से पुद्गल कर्म आदि का कर्ता है और निश्चय नय से चेतन कर्म का कर्ता है तथा शुद्ध नय से शुद्ध भावो का कर्ता है।

यहा निश्चय नय से शुद्ध नय का पृथक् कथन किया है इससे सिद्ध होता है कि ग्रन्थ कर्ता को निश्चय नय के अशुद्ध निश्चय नय और शुद्ध निश्चय नय ये दो भेद स्पष्ट है। अशुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा आत्मा रागादिक विकारी भावो का कर्ता है और शुद्ध निश्चय नय से अपने ज्ञानादि गुणो का कर्ता है। रागादिक यद्यपि आत्मा के ही परिणाम है परन्तु पर निमित्त से होने वाले है अत आत्मा के स्वभाव न होकर विभाव कहलाते है और ज्ञानादिक, आत्मा मे स्वयं विद्यमान है इसलिये वे स्वभाव कहलाते है।

ववहारा सुह दुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि ।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥९॥

अर्थ—व्यवहार नय से आत्मा सुख दुःख रूप पुद्गल कर्मों के फल को भोगता है और निश्चय नय से अपने चेतन भाव को भोगता है।

मग्गणगुण ठाणेहि स चउदसहि हवंति तह असुद्धणया ।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥१३॥

अर्थ—ससारी जीव अशुद्ध नय की दृष्टि से चौदह मार्गणा तथा चौदह गुण स्थानो के भेद से चौदह चौदह प्रकार के होते है परन्तु शुद्ध नय से सभी ससारी जीव शुद्ध है—मार्गणा तथा गुण स्थानो के विकल्प से रहित है। सम्यक् चारित्र का वर्णन भी व्यवहार नय और निश्चय की अपेक्षा साथ साथ किया है :—

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाणचारित्तं ।
वदसमिदिगुत्तिरूव ववहारणया दु जिणभणियं ॥४५॥

अर्थ—अशुभ से निवृत्ति और शुभ मे प्रवृत्ति को व्यवहार नय से चारित्र जानो। यह व्यवहार चारित्र व्रत, समिति तथा गुप्ति रूप होता है।

वहिरब्भतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं ।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं ॥४६॥

अर्थ—ससार के कारणो को नष्ट करने के लिये ज्ञानी जीव को जो बाह्य और अन्तरंग क्रियाओ का निरोध है। उमे जिनेन्द्र भगवान् ने उत्कृष्ट सम्यग् चारित्र कहा है। सम्यक् चारित्र ही क्यो समस्त मौक्षमार्ग का व्यवहार और निश्चय नय के द्वारा एक साथ कथन किया है :—

सम्मदंसणणाणं चरणं मोक्खस्स करणं जाणे ।
ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥३९॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र (इन तीनो के समुदाय) को व्यवहार नय से मोक्ष का कारण जानो और निश्चय नय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र समनिज आत्मा का मोक्ष का कारण जानो।

इस तरह हम देखते है कि ग्रन्थकार श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्ति देव अनेकान्त शैली से वस्तु स्वरूप के निरूपण में कितने जागरूक है। जिस प्रकार मूल ग्रन्थकर्ता इस विषय मे सावधान है उसी प्रकार संस्कृत टीकाकार श्री वह्मदेवसूरि भी अत्यन्त सावधान है। उन्होने निश्चय नय के शुद्ध निश्चय नय तथा अशुद्ध निश्चय इस प्रकार दो विकल्प किये है इसी तरह व्यवहार नय के भी सद्भूत व्यवहार नय, असद्भूत व्यवहार नय, उपचरित्र सद्भूत व्यवहार नय तथा अनुपचरित्र सद्भूत व्यवहार नय भेद किये हैं और विभिन्न नय विवक्षा को स्पष्ट करते हुए पदार्थ का सुन्दर वर्णन किया है।

ग्रन्थकर्त्ता नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव

वृहद् द्रव्य सग्रह के कर्ता श्री नेमिचन्द्र सिद्धन्ति देव है। यह नेमिचन्द्र सिद्धान्ति देव गोम्मटसार के कर्ता नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती से भिन्न है या अभिन्न यह विचारणीय है। सस्कृत टीकाकार के उपोद्धात सम्बन्धी उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ की रचना धारा नगरी के अधिपति प्रसिद्ध राजा भोजदेव के सम्बन्ध महा मण्डलेश्वर श्रीपाल के राज्य काल मे आश्रम नगर मे मुनिसुव्रत नामक चैत्यालय मे जब कि गोम्मटसार के कर्ता नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती दक्षिण भारत के निवासी थे। गोम्मटसारादि के कर्ता नेमिचन्द्राचार्य ने गौम्मटसार कर्म-काण्ड मे भावास्रव के भेद निम्न प्रकार गिनाये है।

मिच्छत्त अविरमण कसाय जोगार्य आसवा होति।
पण वारस पणवीसं पण्णसा होति तब्भेया ॥७८६

अर्थ—५ मिथ्यात्व १२ अविरति २५ कषाय और १५ योग ५७ भेद भावास्रव के है।
परन्तु द्रव्य संग्रह मे सिर्फ ३२ भेद गिनाये गये।

मिच्छत्ताविरदिपमाद जोग कोहादओथ विण्णेया।
पणपणपणदह तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥

अर्थ—५ मिथ्यात्व, ५ अविरति, १५ प्रमाद, ३ योग और क्रोधादि ४ कषाय ये ३२ भेद भावास्रव के है। नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती राजा भोज मे पूववर्त्ती है और नेमिचन्द्र सिद्धान्ति देव राजाभोज के सम कालीन है। अत समय भेद होने से दोनो भिन्न ही प्रतीत होते है। इतिहासज्ञ विद्वान् स्व० जुगलकिशोर जी मुख्यतार ने 'पुरातन वाक्य सूची' की प्रस्तवना मे दोनो नेमिचन्द्रो को भिन्न-भिन्न विद्वान नतलाया है। स्व० पं० अजितकुमार जी शास्त्री तथा प० दरवारीलाल जी कोठिया ने भी अपने द्वारा सम्पादित बृहद् द्रव्य सग्रह के सस्करणो मे यही अभिप्राय प्रकट किया है। इतना अवश्य है कि लघु द्रव्य सग्रह की जो २५ गाथाए परिशिष्ट मे दी गई है उनमे से ७ वी गाथा 'जिणवरेहि' के स्थान मे जिणदेहि' मात्र इतने पाठ भेद के साथ गोम्मटसार जीवकाण्ड१ की ६०१ वी गाथा है और १२ वी गाथा 'असख दव्वाणि' के स्थान पर 'गुणेव्यव्वा' मात्र इतने पाठ भेद को लिये हुए गोम्मटसार जीव काण्ड की ४८८ वी गाथा है। ५ वी गाथा १०। ४६ की गाथा है। सम्भव है द्रव्य सग्रह के कर्ता ने इन पूर्व प्रसिद्ध गाथाओ को ज्यो का त्यो या कुछ हेर फेर के अथवा उनके द्वारा इसी तरह की रची गई के साथ अपने ग्रन्थ का अङ्ग बना लिया हो।

रायसेन ग्रन्थमाला के द्वितीय सस्करण के आधार पर

नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने अपने गुरु के रूप में कई जगह वीरनन्दी, अभयनन्दी, तथा इन्द्रनन्दी आचार्य का स्मरण किया है१ जब कि नेमिचन्द सिद्धान्ति देव ने लघु और बृहद् द्रव्य संग्रह मे किसी भी गुरु का स्मरण न कर अपने को अल्प सूत्र धारी मुनि कहा है। यद्यपि नेमिचन्द्र सिद्धान्ति देव ने अपने किसी गुरु का उल्लेख नही किया है तो भी वसुनन्दि सिद्धान्ति देव ने अपने गुरु रूप से नेमिचन्द का स्मरण किया है और उन्हे श्रीनन्दि का प्रशिष्य तथा नयनन्दि का शिष्य बतलाया है। नयनन्दि का एक 'सुदंसणचरिउ' है जिसकी रचना उन्होने धारा मे रहते हुए भोजदेव के काल मे (वि० स० ११००) पूर्ण की है। इस तरह नेमिचन्द सिद्धान्तिदेव के गुरु का नाम नयनन्दि जान पडता है। जब कि नयनन्दि का काल 'सुजंमणचरिउ'२ के उल्लेख से वि० स० ११०० है। तब नेमिचन्द का काल भी निकट ११२५ वि० स० अर्थात् बारहवी शताब्दी का प्रारम्भ सिद्ध होता है। वसुनन्दि सिद्धान्तिदेव नाम से प्रसिद्ध है और नेमिचन्द भी सिद्धान्तिदेव से प्रसिद्ध है इससे जान पड़ता है यह उपाधि या उपनाम उस गुरु परम्परा मे प्रचलित रहा होगा। सस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेव ने प्रथमाधिकार के बाद चूलिका रूप से वसुनन्दि श्रावकाचार की दो गाथाए (न० २३-२४) उद्धत कर उनकी मूल ग्रन्थ की तरह व्याख्या की है तथा चूलिका का अर्थ लिखा है:—चूलिका शब्दार्थः कथ्यते।

—चूलिका विशेष व्याख्यान, अथवा उक्तानुक्त व्याख्यानम्। उक्तानुक्त संकीर्ण व्याख्यानं चेति

यद्यपि ब्रह्मदेव ने संस्कृत टीका मे बीसो ग्रन्थकारो के उल्लेख उद्धत किये है परन्तु उक्त च या त दुक्तं शब्द के द्वारा ही किये है उन पर कोई वृत्ति नही लिखी है पर वसुनन्दि श्रावकाचार के दो गाथाओं पर उन्होने मूल ग्रन्थ की तरह वृत्ति लिखी है इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मदेव भी वसुनन्दि को नेमिचन्द्र का निकटवर्ती मानते थे।

१—'जस्स य पायपसाएणाणंत ससारजलहिमुत्तिण्णो।
कीरिदयदिवच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरू ॥४३६॥'
'णमिऊण अभयणंदिं सुदसागर पारगिदणंदि गुरू।
वर वरिणंदिणाहं पयडोणं पच्चय बोच्छं' ॥७८५॥
'णनह गुणरयण भूषण सिद्धंतामिय महब्धि भवभावं।
वरवीरणंविचंदं णिम्मलगुणमिदणदि गुरू' ॥८९६॥ कर्मकाण्ड
'दव्व संगह मिंम मुणिणाहा दोससंचय शुदासुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिघन्दमुणिणा भणिय ज ॥५८॥ बृहद् द्रव्य संग्रह
'सोमच्छलेण रइय। पयत्थलक्खणकराउ गहाओ।
भव्वुनयारणिमित्तं गणिणा सिरिणेमिचन्देण ॥२५॥ लघु द्रव्य संग्रह

२णिवविक्कमकालहो ववगएसु एयारहसवच्छरमएसु। तहि केवलिचरिउ अभयच्छरेण णयणंदी विरयउ वित्थरेण। सुदंसण चरिउ अन्तिम प्रशस्ति

लघु और वृहद् द्रव्य संग्रह

यद्यपि संस्कृत टीकाकार के प्रारम्भिक उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि नेमचन्द्र सिद्धान्ति देव ने पहले २६ गाथाओ मे लघु द्रव्य सग्रह रचा अनन्तर उसका विस्तार कर वृहद् द्रव्य सग्रह रचा है तथापि दोनो रचनाओ के अनुसंधान से सिद्ध है कि लघु द्रव्यसंग्रह की सब गाथाए वृहद् द्रव्यसग्रह मे नही आती है। धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य के लक्षण बताने वाली ८, ६, १० वी गाथाएं, काल द्रव्य का लक्षण बताने वाली ११ वी गाथा का पूर्वार्ध और १२ तथा १४ वी गाथाए जो कि वृहद् द्रव्य सग्रह मे क्रमश १७, १८, १६, २१ (पूर्वार्ध २२ और २७ वे नम्बर पर पाई जाती है, को छोडकर शेष सब १६।। गाथाए बृहद् द्रव्य सग्रह मे नही है। इससे सिद्ध होता है कि लघु द्रव्य सग्रह को विस्तृत कर बृहद् द्रव्य संग्रह की रचना नही की गई है किन्तु दोनो की रचना स्वतन्त्र रूप से हुई है दोनो मगल पद्य और उपसहारात्मक अन्तिम पद्य पृथक् पृथक् है। वास्तव मे जिसे सस्कृत टीकाकार ने 'लघु द्रव्य संग्रह' कहा है उसे ग्रन्थ कर्ता ने 'पयत्थ लक्खणकराओ गाहाओ' पदार्थो का लक्षण करने वाली गाथाएं कहा है। और जिस ५८ गाथा की रचना को 'बृहद् द्रव्य संग्रह' कहा है उसे ग्रन्थ कर्ता ने 'दव्वसंगहमिण' पद के द्वारा द्रव्य संग्रह ही कहा है ये लघु और बृहद् सज्ञाए टीकाकार की ही हुई जान पडती है।

ग्रन्थ निर्माण का स्थान

संस्कृत टीकाकार के उल्लेखानुसार वृहद् द्रव्य सग्रह की रचना आश्रम नगर के मुनिसुव्रत तीर्थ-ङ्कर के चैत्यालय मे हुई है। यह आश्रम नगर उस समय मालवा के अन्तर्गत था और मालवा के सम्राट धारा नगरी के अधिपति परमारवशी भोजदेव के प्रान्तीय प्रशासक परमार वशीय श्रीपाल के द्वारा प्रशासित था। 'सोम' नामक राज श्रेष्ठी उसका अधिकारी था उसी के अनुरोध पर नेमिचन्द्र सिद्धान्ति देव ने लघु और बृहद् द्रव्य सग्रह ग्रन्थो की रचना की थी यह आश्रम नगर कौन है तथा वर्तमान मे इसकी क्या स्थिति है। यह जिज्ञासा प्रत्येक जिज्ञासु के हृदय मे उठती है। वीरवाणी (स्मारिका) वर्ष १८ अङ्क २३ मे प्रकाशित पं० दीपचन्द्र जी पाड्या केकड़ी का 'क्या पाटण केशोराय ही प्रचीन आश्रम नगर है' शीर्षक लेख तथा अनेकान्त (छोटेलाल स्मृति अङ्क, वर्ष १२ वि० १–२ मे प्रकाशित डा० दशरथ शर्मा का 'आश्रम पत्तन ही केशोराय पट्टन है' शीर्षक निबन्ध देखने मे विदित होता है कि यह 'आश्रम' नगर जिसे साहित्यकारो ने आश्रम, आशारम्य पट्टण, आश्रम पत्तन, पट्टन और पुटभेदन नाम से उल्लिखित किया है, वर्तमान राजस्थान के कोटा से उत्तर पूर्व को ओर लगभग ६ मील की दूरी पर चम्बल नदी पर अवस्थित 'केशोराय पाटण' अथवा 'पाटण केशोराय' ही है। प्रचीन काल मे यह राजा भोज देव के द्वारा शासित मालवा मे रहा है। यह स्थान प्राकृतिक शोभा से सम्पन्न निसर्गरमणीय हैं। यहा बहुत विशाल लगभग ४० फुट ऊंचा जैन मन्दिर है श्री मुनिसुव्रत नाथ की दिगम्बरीय प्रतिमा मन्दिर के ऊपरी भाग मे भूर्गर्भ (भोयरा) मे विराजमान है। यह हिन्दुओ का तीर्थ स्थान है नेमिचन्द्र सिद्धान्ति देव ने इस प्रकृति रम्य स्थान मे ग्रन्थ रचना की हो इसमे आश्चर्य की कोई बात नही है।

—:※:—

संस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेव

बृहद् द्रव्य संग्रह के सस्कृत टीकाकार श्री ब्रह्मदेव सूरि है। इन्होंने अपनी सुरम्य–सुललित भाषा के द्वारा मात्र ५८ गाथाओ के लघु ग्रन्थ को एक विशाल रूप दिया है। यह कहने मे अत्युक्ति नही है कि बृहद् द्रव्य संग्रह का महत्व ब्रह्मदेव की सस्कृत टीका के द्वारा ही वृद्धिगत हुआ है। प्रकृत प्रमेय को समर्थित करने के लिये इन्होने बीसो ग्रन्थो के उद्धरण दिये है तथा अनेक दृष्टान्त देकर गहन विषय को बुद्धि गम्य बनाया है। प्रथम तो इन्होने खण्डान्वय के द्वारा गाथा का मूल अर्थ स्पष्ट किया है तदनन्तर विशेष विवेचन के द्वारा ग्रन्थ को विस्तृत किया है। ये अनेकान्त के तलस्पर्शी विद्वान् थे और किस नय से कहा कैसा विवेचन है यह अच्छी तरह समझते थे। इन्होंने प्रकरण पाकर बारह भावनाओ, दशधर्मो ध्यान तथा तीन लोको के अन्तर्गत नरक, मध्यमलोक और ऊर्ध्वलोक का विस्तृत वर्णन किया है। मोक्ष मार्ग के प्रकरण मे चारध्यानो का भी बहुत सुन्दर वर्णन किया है। आपकी कुतूहल पूर्ण भाषा का एक नमूना देखिये :—

अत्राह शिष्य:—रागद्वेषादय: किं कर्मजनिता: कि जीव जनिता इति ? तत्रोत्तरम्—स्त्री पुरुष संयोगोत्पन्न पुत्र इव, सुधाहरिद्रा संयोगोत्पन्न वर्णविशेष इवोभय सयोगजनिता इति। पश्चान्नय विवक्षावशेन विवक्षितैक देश शुद्ध निश्चयेन कर्मजनिता भण्यन्ते। तथैवा शुद्ध निश्चयेन जीवजनिता इति। स चाशुद्धनिश्चय: शुद्धनिश्चया पेक्षया व्यवहार एव। अथ मतम्—साक्षाच्छुद्धनिश्चयेन कस्येतिपृच्छामो वयम्। तत्रोत्तरम् साक्षाच्छुद्धनिश्चयेन स्त्री पुरुषसंयोगरहित पुत्रस्मेव, सुधाहरिद्रासंयोगरहितरङ्गविशेषस्येव तेषामुत्पत्तिरेव नास्ति कथमुत्तर प्रयच्छाम: इति (पृष्ठ १७७--१७८)

अर्थ–शिष्य पूछता है–राग-द्वेष आदि कर्मो से उत्पन्न हुए है या जीव से ? इसका उत्तर–स्त्री और पुरुष इन दोनो के सयोग से उत्पन्न हुए पुत्र के समान चूना तथा हल्दी इन दोनो के मेल से उत्पन्न हुए लाल रग की तरह राग द्वेप आदि, जीव और कर्म इन दोनो के वियोग से उत्पन्न हुए है। नयकी विवक्षा के अनुसार, विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चय से तो राग द्वेष कर्म जनित कहलाते है। अशुद्ध निश्चय नय से जीव जनित कहलाते है। यह अशुद्ध निश्चयनय, शुद्ध निश्चय की अपेक्षा से व्यवहार नय ही है। शङ्का—साक्षात् शुद्ध निश्चय नय से ये राग द्वेष किसके है, ऐसा हम पूछते है ? समाधान—स्त्री और पुरुप के संयोग विना पुत्र की अनुत्पत्ति की भांति, और चूना व हल्दी के सयोग विना लाल रंग की अनुत्पत्ति के समान, साक्षात् शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा से इन राग द्वेष की उत्पत्ति ही नही होती इसलिये हम तुम्हारे प्रश्न का उत्तर ही कैसे देवे।

किस गुणस्थान मे कौन उपयोग होता है ? पुण्य उपादेय है या हेय ? कार्य की सिद्धि मे निमित्त और उपादान की आवश्यकता क्या है ? तेरहवे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की पूर्णता हो जाने पर भी तत्काल मोक्ष क्यो नही होता है आदि विवाद ग्रस्त विषयो पर भी अच्छा प्रकाश डाला है।

बृहद् द्रव्य संग्रह के समान योगीन्द्रदेव के परमात्म प्रकाश पर भी आपकी सुन्दर वृत्ति है। यद्यपि परमात्म प्रकाश, निश्चय नय प्रधान रचना है तो भी आपने नय विवक्षा के अनुसार दोनो नयों की संगति बैठाते हुए विवेचन किया है।

ब्रह्मदेव वसुनन्दि [वि० सं११५०] से उत्तरवर्ती और समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय की तात्पर्यवृत्ति के रचयिता जयसेन [वि० १२१७] तथा प० आशाधर जी [वि० स० १२९६] से पूर्ववर्ती अर्थात् वि० स० ११५० मे वि० स० १२०० तक के विद्वान प्रतीत होते है।

हिन्दी टीकाएं

द्रव्य संग्रह पर छात्रोपयोगी टीकाओ के अतिरिक्त श्री पण्डित प्रवर जयचन्द्र जी छावडा कृत देश वचनिका टीका भी है जिसका प्रकाशन वर्णी ग्रन्थ माला वाराणसी से हुआ है और सम्पादन समाज के मान्य विद्वान् डा० दरवारीलाल जी कोठिया वाराणसी के द्वारा।

पूर्व संस्करण

द्रव्य सग्रह का प्रकाशन सर्व प्रथम प० जवाहरलालजी कृत हिन्दी टीका के साथ रायसेन ग्रन्थमाला बम्बई से हुआ था। इसके वहा से दो सस्करण प्रकाशित हो चुके है। पश्चात् गरोशवर्णी ग्रन्थमाला खरखरी से ब्र० रतनचन्द जी मुख्तार द्वारा और दिल्ली से प० अजितकुमार जी शास्त्री द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशन हुआ। ग्रन्थ की सरलता स्वाध्याय प्रेमी जनता को सदा से आकर्षित करती आ रही है इसलिये इतने प्रकाशन होने पर भी स्वाध्याय प्रेमियो के लिये ग्रन्थ दुष्प्राप्य था अत श्री शान्तिसागर दिगम्बर जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था शान्तिवीर नगर महावीर जी की ओर से इसका पुन प्रकाशन किया जा रहा है ग्रन्थ का सशोधन श्री अशोक बडजात्या शान्तिवीर नगर ने किया है इसलिये ये सब धन्यवाद के पात्र है।

ग्रन्थ का प्रकाशन स्व० आचार्य शिवसागर जी महाराज की सम्मत्यनुसार शुरू हुआ था परन्तु खेद है कि प्रकाशन की पूर्णता उनकी समाधि के पश्चात् हो रही है। अन्त मे दिवगत आचार्य वर्य के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हुआ प्रस्तावना लेख समाप्त करता हूँ। प्रस्तावना लेख मे पूर्व सस्करणो के प्रस्तावना लेखो से पर्याप्त सहायता प्राप्त हुयी है अत उन सब के प्रति आभारी हूँ। त्रुटियो के लिये क्षमा प्रार्थी हूँ।

विनीत :—
पन्नालाल साहित्याचार्य

सागर
महावीर जयन्ती
२४९५ वीर निर्वाण सवत्

वृहद् द्रव्य संग्रह

विषय सूची

प्रथम अधिकार

(गाथा १ से २७ तक तथा पृष्ठ सं० १ से ६४ तक)

गा० नं०	विषय	पृ० संख्या
	टीकाकार का मगलाचरण	१
	ग्रन्थ की भूमिका	१
	विपय विभाजन	२
१—	ग्रन्थकार का मगलाचरण	४
	'वन्दे' शब्द का निश्चय व व्यवहार से अर्थ	४
	सौ इन्द्रों के नाम	४
	असयत सम्यग्दृष्टि एक देश जिन	५
	अर्हन्त के से प्रसाद मोक्षमार्ग की सिद्धि	५
	इष्ट अधिकृत व अभिमत देवता	५
	नय विवक्षा से ग्रन्थ का प्रयोजन	६
२—	जीव के उपयोग आदि नौ अधिकार	७
	कर्मोदय वश जीव का छह दिशा मे गमन	८
३—	प्राणो के कथन द्वारा जीव का लक्षण	९
	नौ दृष्टान्त द्वारा जीव की सिद्धि	१०
	नयो का लक्षण	१०
	जहा मुख्यता से कथन हो वहा अन्य विपय गौण है	११
४—	दर्शनोपयोग तथा उसके भेद	११
	जीव का स्वभाव केवल दर्शन है किन्तु कर्माधीन से चक्षु दर्शनी हो रहा है	१२
	चक्षु दर्शन संव्यवहार प्रत्यक्ष है किन्तु निश्चय से परोक्ष है	१२
५—	ज्ञानोपयोग तथा उसके भेदो का लक्षण	१३
	मिथ्यात्वोदय से ज्ञान भी अज्ञान हो जाता है	१३
	सव्यवहार का लक्षण	१४
	श्रुतज्ञान कंथचित् प्रत्यक्ष	१४

गाथा नं०	विषय	पृ० संख्या
६	—नय विभाग से जीव का लक्षण	१६
	सामान्य का लक्षण	१६
	उपयोग का लक्षण	१६
७	—जीव कथचित् मूर्त कथंचित् अमूर्त	१७
	वन्ध की अपेक्षा जीव पुद्गल के एकत्व है स्वभाव की अपेक्षा जीव पुद्गल भिन्न है	१८
८	—जीव पुद्गल कर्मादि का कर्ता है	१८
	अशुद्ध निश्चय नय का लक्षण	१९
९	—जीव कर्मफल आदि का भोक्ता है	२०
१०	–जीव देह प्रमाण है	२१
	सात समुद्घातो का लक्षण	२२
११	–जीव की स्थावर तथा त्रस पर्यायो का कथन	२४
१२	–चौदह जीव समास का कथन	२६
	जीव समासो मे प्राणो का कथन	३०
१३	–चौदह मार्गणा व चौदह गुणस्थानो का कथन	२८
	प्रत्येक गुणस्थान का लक्षण	२८
	वैनयिक व सशय मिथ्यादृष्टियो का सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से अन्तर	२९
	अविरत सम्यदृष्टि निश्चय व्यवहार को साध्य-साधक मानने वाला तथा आत्मा निन्दा सहित इन्द्रिय सुख का अनुभव करने वाला	२९
	देश विरति स्वभाविक सुख का अनुभव करने वाला	३०
	केवलज्ञान के अनन्तर ही मोक्ष क्यो नही हो जाता	३२
	चौदह मार्गणाओ का स्वरूप	३२
	शुद्ध-अशुद्ध पारिणामिक भाव	३४
१४	–सिद्धो का स्वरूप तथा ऊर्ध्वगमन स्वभाव	३६
	सिद्धो के आठ गुण तथा अन्य गुणो का कथन	३६
	सयोगि गुणस्थान के अन्त समय मे शरीर ऊनता	३८
	मुक्त जीव के प्रदेश समस्त लोक मे क्यो नही फैलते	३८
	सकोच विस्तार करना जीव स्वभाव नही है	३८
	मुक्त होने के स्थान पर सिद्ध नही रहते	३९
	सिद्धो मे तीन प्रकार से उत्पाद व्यय	३९
	वहिरात्मा का लक्षण	३९
	अन्तरात्मा का लक्षण	३९
	परमात्मा का लक्षण	३९

गाथा नं०	विषय	पृ० संख्या
	चित्त दोष व आत्मा का लक्षण	४०
	वहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा इनमें से प्रत्येक मे तीनो प्रकार की आत्मा शक्ति व्यक्ति रूप मे से किस प्रकार है	४१
	गुणस्थानो मे वहिरात्मा, अन्तरात्मा व परमात्मा	४२
	हेय उपादेय आत्माओ का कथन	४२
१५	अजीव द्रव्यों का कथन तथा मूर्त अमूर्त का विभाग	४३
	शुद्धोपयोग और अशुद्धोपयोग का कथन	४३
	कर्म चेतना कर्मफल चेतना ज्ञान चेतना	४३
	अनन्त चतुष्ट सर्व जीवों मे साधारण है	४४
	वन्ध अवस्था मे गुणो की अशुद्धता	४४
१६	पुद्गल द्रव्य की विभाव व्यञ्जन पर्याय	४४
	भाषात्मक शब्द अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक के भेद से दो प्रकार	४५
	अभाषात्मक शब्द दो प्रकार प्रायोगिक व वैश्रषिक	४५
	व्यवहार नय की अपेक्षा जीव का शब्द	४५
	द्रव्य वन्ध व भाव वन्ध	४५
	महास्कन्ध	४५
	मनुष्य नरकादि जीव की विभाव व्यञ्ज पर्याय, सिद्ध स्वभाव व्यञ्ज पर्याय	४६
१७	धर्म द्रव्य गति मे सहकारी कारण है।	४७
	सिद्धगति के लिये सिद्ध भगवान सहकारी कारण है	४७
१८	अधर्म द्रव्य स्थिति मे सहकारी कारण है।	४८
	स्वरूप मे स्थित होने के लिये सिद्ध भगवान सहकारी कारण है।	४८
१९	आकाश द्रव्य अवकाश देने मे सहकारी कारण है	४८
	कर्म नाश स्थान पर ही मोक्ष होता है	४९
	निश्चयनय से सर्व द्रव्य अपने प्रदेशो मे रहते है उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से लोकाकाश मे रहते है।	४९
२०	लोकाकाश तथा अलोकाकाश का स्वरूप	५०
	असंख्यात प्रदेशी लोक मे अनन्त द्रव्य कैसे रहते है	५०
	शुद्ध निश्चय अर्थात् शक्ति रूप मे सब जीव शुद्ध है व्यवहारनय अर्थात् व्यक्ति रूप से शुद्ध नही है।	५०-५१
२१	निश्चय व व्यवहार काल का स्वरूप	५१
	पर्याय की स्थिति काल है	५१
	उपादान कारण के समान कार्य होता है	५३
२२	काल द्रव्य की संख्या व अवस्थान क्षेत्र	५४

गाथा नं०	विषय	पृ० संख्या
	कारण समयसार का नाश तथा कार्य समयसार का उत्पाद	५५
	काल द्रव्य की सिद्धि	५५
	अलोकाकाश के परिणमन मे काल द्रव्य कारण	५५
	काल द्रव्य के परिणमन मे कौन कारण ? इसका समाधान	५५
	अन्य द्रव्य स्व परिणमन मे कारण क्यो नही है	५५
	चौदह रज्जु गमन मे समय भेद क्यो नही है	५६
	अपध्यान का लक्षण	५७
	वीतराग चारित्र का अविनाभूत वीतराग समयक्त्व निश्चय सम्यक्त्व है	५७
	परमागम के अविरोध से विचार करना चाहिये	५७
	सर्वज्ञ वचन मे विवाद नही करना	५७
२३–	पंचास्तिकाय का कथन	५८
२४–	आस्ति व काय का लक्षण	५८
	पचास्तिकाय का गुण व पर्याय से सज्ञादि की अपेक्षा भेद और प्रदेश की अपेक्षा अभेद	५६
	सिद्ध शुद्ध द्रव्य व्यजन पर्याय है	५६
	कार्य समयसार का उत्पाद कारण समयसार का व्यय	५६
२५–	छहो द्रव्यो की प्रदेश सख्या	६०
	काल द्रव्य के एक प्रदेशी होने मे युक्ति	६१
	द्रव्य पर्याय प्रमाण है	६१
	परमाणु गमन मे काल द्रव्य सहकारी कारण	६१
२६–	परमाणु उपचार से काय है	६२
	जीव शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध है	६२
	मनुष्यादि पर्याये व्यवहार नय से है	६२
	कालाणु उपचार से भी काम नही	६३
	'अणु' पुद्गल की सज्ञा है कालाणु कैसे ?	६३
	परमाणु का लक्षण	६३
२७–	प्रदेश का लक्षण	६३
	एक निगोद शरीर में सिद्धो से अनन्तगुणे जीव	६४
	लोक सूक्ष्म वादर पुद्गलो से भरपूर है	६४
	अमूर्तिक आकाश की विभाव कल्पना	६४

प्रथमाधिकार समाप्त.

चूलिका

गाथा नं० | विषय | पृष्ठ सं०

जीव पुद्गल द्रव्य परिणामी है शेष द्रव्य अपरिणामी है — ६५
पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है शेष द्रव्य अमूर्तिक है — ६५
क्षेत्रवान एक आकाश द्रव्य है — ६५
जीव सक्रिय है और शेष अक्रिय है — ६५
जीव के शरीर मन वचन का कर्त्ता पुद्गल है। गति का कर्त्ता धर्म द्रव्य है — ६६
पाच द्रव्य जीव का उपकार करते है — ६६
जीव परस्पर मे उपकार करते है किन्तु अन्य पाच द्रव्यो का उपकार नही करता इसलिये अकारण है — ६६
जीव शुद्ध निश्चयनय से द्रव्य व भाव पुण्य पाप का कर्त्ता नही है, अशुद्ध निश्चयनय से कर्त्ता है — ६७
पुद्गल आदि अपने परिणामों के कर्त्ता है — ६७
छहो द्रव्य सर्वगत है — ६७
कौन जीव उपादेय है — ६८
शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव का अर्थ — ६८
चूलिका का अर्थ — ६८

दूसराधिकार

जीव अजीव के परिणमन से आस्रव आदि — ६९
जीव के पर द्रव्य जनित उपाधि ग्रहण — ७०
जीव के पर पर्याय रूप परिणमन — ७०
निश्चय से जीव निज स्वभाव नही छोड़ता — ७०
परस्पर अपेक्षा सहित होना यही 'कथचित् परिणामित्व' शब्द का अर्थ — ७०
हेय व उपादेय तत्त्वो का कथन — ७०
निश्चय रत्नत्रय का साधक व्यवहार रत्नत्रय है — ७०
कौन जीव किस तत्त्व का कर्त्ता है — ७१
सम्यग्दृष्टि दुर्ध्यान से वचने के लिये व ससार स्थिति का नाश करने के लिये पुण्य बन्ध का कर्त्ता है — ७१
किस नय से कौन जीव किस तत्त्व का कर्त्ता है — ७१
परम शुद्ध निश्चय नय से न जन्म है, न मरण है, न वन्ध है, न मोक्ष है — ७२
भव्य का लक्षण — ७२
एक देश शुद्ध निश्चय नय का लक्षण — ७२

गाथा नं०	विषय	पृष्ठ सं०
	शुद्ध पारिणामिक भाव ध्येय है, ध्यान नही	७२
	जीव पुद्गल के सयोग से आवस्र आदि	७२
	जीव पुद्गल सयोग विनाश से संवर आदि	७२
२८	आस्रव आदि सात पदार्थ जीव-अजीव की पर्याये है	७३
	आस्रव आदि सात पदार्थो का लक्षण	७३
२९	भाव आस्रव और द्रव्यास्रव का स्वरूप	७४
३०	भाव आस्रव का भेद	७५
	मिथ्यात्व आदि भाव आस्रवो के लक्षण	७५
	वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशय से योग होता है	७५
३१	द्रव्यास्रव	७७
	ज्ञान को आवरण करने वाला ज्ञानावरण कर्म है	७७
३२	द्रव्य वन्ध व भाव वन्ध	७८
३३	प्रकृति प्रदेश, स्थिती, अनुभाग वन्ध	७९
	आठो कर्मो का स्वभाव	७९
	बन्ध के कारण	८०
	आस्रव व बन्ध का अन्तर	८०
३४	भाव सवर व द्रव्य सवर	८१
	परमात्मा का लक्षण	८२
	अशुद्ध निश्चय नय पहिले से वारहवे गुणस्थान तक	८२
	गुणस्थान अपेक्षा शुभ अशुभ व शुद्धपयोग का कथन	८२
	शुभोपयोग शुद्धोपयोग का साधक है	८२
	पाचवे गुणस्थान वाले की श्रावक सज्ञा	८२
	एक देश शुद्ध निश्चय नय से सातवें से वारहवे गुणस्थान तक शुद्धोपयोग	८२
	गुणस्थानो मे प्रकृतियो का सवर	८३
	मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों मे तीनो उपयोग	८३
	केवल ज्ञान का कारण सावरण ज्ञान	८३
	निगोदिया का ज्ञान क्षयोपशमिक ज्ञान है	८४
	क्षायोपशमिक ज्ञान केवल ज्ञान का अश नही	८४
	क्षयोपशम का लक्षण	८४
३५	संवर के कारण या भाव सवर के भेद	८६
	निश्चय व व्यवहार व्रत समिति गुप्ति आदि	८६
	दस धर्मो का विशेप कथन	८७–८९
	भावशुद्धि आदि ८ शुद्धि	८८
	अध्रुव अनुप्रेक्षा	९०

गाथा नं०	विषय	पृष्ठ सं०
	अशरण अनुप्रेक्षा	९०
	निश्चय रत्नत्रय का कारण पंचपरमेष्ठि आराधना है	९०
	संसार अनुप्रेक्षा व पचपरावर्तन	९१
	स्वर्ग से चय कर मोक्ष जाने वाले जीव	९२
	नित्य निगोदिया त्रस नही होगे	९४
	एकत्व अनुप्रेक्षा	९४
	शरीर शब्द का अर्थ व स्वरूप	९४
	निज शुद्धात्म भाव से चरम शरीरी को मोक्ष	
	अचरम शरीरी को स्वर्ग परम्परा मोक्ष	९५
	अन्यत्व अनुप्रेक्षा	९५
	अशुचि अनुप्रेक्षा	९६
	ब्रह्मचारी सदा पवित्र	९६
	जन्म से शूद्र क्रिय से द्विज	९६
	सयम रूप जल से भरी नदी में स्नान से पवित्र होता है	९७
	आस्रवानुप्रेक्षा	९७
	सवर अनुप्रेक्षा	९८
	निर्जरा अनुप्रेक्षा	९८
	सवेग व वैराग्य का लक्षण	९९
	लोकानुप्रेक्षा	९९-१२५
	लोक का आकार व विस्तार	९९
	अधोलक, सातो पृथ्विया, नरक, भवनवासी व्यतर देवो का कथन	९९-१०४
	कौन जीव किस नरक तक उत्पन्न होता है	१०३
	प्रत्येक नरक मे उत्पन्न होने के बाद	१०३
	तिर्यग लोक मे द्वीप समुद्रों तथा मनुष्य व तिर्यचो की आयु, दान का फल तथा भोग भूमिया के सुख व अकृत्रिम चैत्यालय	१०४-११७
	ज्योतिर्लोक, सूर्य, चन्द्रमादि की ऊंचाई, चार क्षेत्र, दिवस मे हानि वृद्धि	११७-१११
	सूर्य चन्द्रमा के निमित्त से रात दिन होते है	११८
	चक्रवर्ती सूर्य मे जिनबिम्ब के दर्शन करता है	१२०
	ऊर्ध्व लोक मे स्वर्ग तथा मोक्ष शिला का कथन	११७-१२५
	निश्चय लोक	१२५
	पाप का लक्षण	१२५
	वोधि दुर्लभ भावना	१२६
	मनुष्य आदि की उत्तरो दुर्लभता, विषय कषाय की वहुलता	१२६
	वोधि व समाधि का लक्षण	१२६

गाथा नं०	विषय	पृष्ठ स०
	धर्म अनुप्रेक्षा धर्म का लक्षण	१२७
	८४ लाख योनि	१२७
	धर्म से अभ्युदय सुख	१२७
	परिषह जय	१२८
	चारित्र का लक्षण स्वरूपे चरणं अवस्थानं चरित्रम्	१२८
	चारित्र के भेद तथा लक्षण	१२८
	कौन चारित्र किस गुणस्थान मे	१३०
	निश्चय रत्नत्रय का साधक व्यवहार रत्नत्रय रूप शुभोपयोग से पाप का सवर	१३०
	शुद्धोपयोग लक्षण निश्चय रत्नत्रय से पुण्य पाप दोनो का संवर	१३०
	योग कषाय से बन्ध, अकषाय जीव अबन्धक	१३०
	द्रव्य व भाव निर्जरा तथा सविपाक अविपाक निर्जरा	१३१
	समस्त पर द्रव्य इच्छा निरोध अभ्यन्तर तप है	१३२
	अनशन आदि १२ प्रकार का तप साधक है अभ्यन्तर तप साध्य है	१३२
	सवर पूर्वक निर्जरा मोक्ष की कारण	१३३
	अज्ञानियो का निर्जरा गज स्नान व्रत निष्फल है	१३३
	सराग सम्यग्दृष्टि की निर्जरा से अशुभ कर्म का नाश, ससार स्थिति का छेद तथा परम्परा मोक्ष	१३३
	वीतराग सम्यग्दृष्टि की निर्जरा तद्भव मोक्ष का कारण	१३३
	सराग सम्यग्दृष्टि का भेद विज्ञान निरर्थक है	१३४
	प्रदीप सहित या स्वाखा पुरुष कुए मे गिरता है तो उसका दीपक व आख निष्फल है	१३३-१३४
३७–	द्रव्य व भाव मोक्ष	१३४
	परमात्मा का सुख	१३५
	निर्विकल्प समाधि मे अतीन्द्रिय सुख	१३५
	निरन्तर कर्म बन्ध व उदय मोक्ष कैसे	१३६
	आत्मा सम्बन्धी नौ दृष्टान्त	१३६
	निरन्तर मोक्ष किन्तु ससार जीवो से शून्य नही है	१३७
३८–	शुभ व अशुभ तथा पुण्य भाव तथा पुण्य व पाप	१३७
	शुभोपयोग का लक्षण	१३८
	पुण्य प्रकृतियो के नाम	१३८
	षोडश भावना के नाम	१३८
	पोटश भावना मे सम्यग्दर्शन की मुख्यता	१३९
	सम्यक्त्व के तीन मूढता आदि २५ दोष	१३९
	आगम भाषा तथा अध्यात्म भाषा से सम्यग्दर्शन का लक्षण	१३९

सम्यग्दृष्टि का पुण्य १३९
मिथ्यादृष्टि का पुण्य १४०

तृतीय अधिकार

३९–व्यवहार व निश्चय मोक्षमार्ग १४१
निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग मे साध्य साधक भाव १४२
४०–निश्चय मोक्षमार्ग अर्थात् रत्नत्रयमयी आत्मा ही मोक्ष का कारण है १४२
निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का स्वरूप १४३
४१–व्यवहार सम्यग्दर्शन व ज्ञान १४३
गौतमगणधर अग्निभूत, वायुभूत की कथा १४४
अभव्यसेन मुनि की कथा ०४५
सम्यक्त्व विना तप आदि वृथा है १४५
देवमूढता, लोकमूढता, समय मूढता १४६
निश्चय तीन अमूढता स्वरूप १४६
आठ मद १४७
अहंकार व ममकार का लक्षण १०७
अनायतन का अर्थ तथा छह अनायतन का स्वरूप १४७
निःशाकित गुण व व्यवहार निशाकित १४८
जिनेन्द्र-भगवान मे असत्यता के कारणों का अभाव १४८
विभीषण, देवकी वसुदेव की कथा १४८
निश्चय निशाकित गुण सप्तभय रहित १४९
व्यवहार नि.शाकित निश्चय निशाकित को कारण है १४९
निकाक्षित व व्यवहार निष्काक्षित १४९
सीता की कथा १४९
निश्चय निष्काक्षित को व्यवहार कारण है १५०
निर्विचिकत्स व व्यवहार निर्बिचिकत्सा १५०
द्रव्य निर्विचिकत्सा व भाव निर्विचिकत्सा १५०
निश्चय निर्विचिकत्मा को व्यवहार कारण है । १५१
अमूढदृष्टि व व्यवहार अमूढदृष्टि १५१
निश्चय अमूढदृष्टि को व्यवहारकारण है १५१
संकल्प विकल्प का लक्षण १५१
निश्चय व व्यवहार उपगूहन १५२
निश्चय व व्यवहार स्थितिकरण १५२
दर्शनमोह व चारित्रमोह उदय से मिथ्यात्व व रागादि होते है १५३

गाथा नं०	विषय	पृष्ठ सं०
	व्यवहार व निश्चय वात्सल्यगुण	१५३
	अकम्पनाचार्य व विष्णुकुमार की कथा	१५३
	वज्रकरण की कथा	१५४
	मुनि भेदाभेद रत्नत्रय के आराधक तथा श्रावक भेदाभेद रत्नत्रय के प्रेमी	१५३-१५४
	प्रभावना गुण व व्यवहार प्रभावना	१५४
	उरविला महदेवी की कथा	१५४
	हरिषेण दसवे चक्रवर्ती की कथा	१५४
	निश्चय प्रभावना	१५५
	व्यवहार सम्यक्त्व	१५५
	व्यवहार सम्यक्त्व से साध्य वीतराग चारित्र का अविनाभूत निश्चय सम्यक्त्व	१५५
	सम्यग्दृष्टि कहा उत्पन्न नही होता	१५५-१५६
	सम्यग्दृष्टि कहा उत्पन्न होता है	१५६
	किस गति मे कौन सा सम्यक्त्व होता है	१५६
४२	सम्यग्ज्ञान, निश्चय व व्यवहार सम्यग्ज्ञान	१५७
	सशय, विभ्रय विमोह का अर्थ	१५७
	'सकार' शब्द का अर्थ	१५७
	द्वादशाङ्ग व अग वाह्य	१५८
	चार अनुयोग व अनुयोग का स्वरूप	१५९
	व्यवहार सम्यग्ज्ञान से साध्य निश्चय सम्यग्ज्ञान	१५९
	माया मिथ्या निदान शल्यो का स्वरूप	१६०
	ज्ञान सविकल्प-निर्विकल्प व स्व पर प्रकाशक	१६१
४३	सामान्य ग्रहण तथा सत्तावलोकन को दर्शन कहते है	१६२
	सम्यग्दर्शन सविकल्प और दर्शन निर्विकल्प	१६२
४४	छद्मस्थो के दर्शन पूर्वक ज्ञान होता है केवलियो दोनो युगपत होते हैं	१६२
	दर्शन का लक्षण सन्निकर्ष है	१६३
	लिगज व शब्दज दो प्रकार का श्रुतज्ञान	१६३
	श्रुतज्ञान व मन पर्यय ज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है	१६४
	मतिज्ञान उपचार से दर्शन है	१६४
	छद्मस्थ का अर्थ	१६४
	तक व सिद्धान्त अनुसार दर्शन का लक्षण	१६४
	दर्शन स्वप्रकाशक है और ज्ञान पर प्रकाशक है	१६४
	वस्तु सामान्य विशेषात्मक है	१६५
	यदि दर्शन सामान्य ग्राहक है तो ज्ञान अप्रमाण हो जाता है	१६५
	आत्मा के जानने से दर्शन 'ज्ञान' को भी जानता है	१६६
	'सामान्य' क्या आत्मा है	१६६

गाथा नं०	विषय	पृ० संख्या
	तर्क व सिद्धान्त का समन्वय	१६६
	सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान मे अन्तर	१६७
	अभेद से ज्ञान की अवस्था विशेष सम्यक्त्व है	१६७
	सम्यक्त्व व ज्ञान के घातक कर्म दो है	१६७
	शुद्धोपयोग ही वीतराग चारित्र और उसका साधक सराग चारित्र है	१६८
४५	सराग चारित्र अथवा व्यवहार चारित्र का स्वरूप	१६८
	व्रतरहित सम्यग्दृष्टि 'दार्शनिक कहलाता है	१६८
	पञ्चम गुणस्थान वाला 'श्रावक' कहलाता है	१६८
	११ प्रतिमाओ का स्वरूप	१६९
	अशुभोपयोग से निवृत्ति शुभ मे प्रवृत्ति चारित्र है	१६९
	अशुभोपयोग का लक्षण	१७०
४६	निश्चय चारित्र उत्कृष्ट चारित्र है जो शुद्धोपयोग का अविनाभूत है	१७०-१७१
४७	द्विविध मोक्षमार्ग का साधक ध्यान है	१७२
	ध्यान का कथन	१७३
४८	ध्याता का लक्षण	१७३
	ध्यान की सिद्धि का उपाय	१७३
	आर्तध्यान के भेद व स्वामी	१७४
	रौद्रध्यान के भेद व स्वामी	१७४
	धर्मध्यान के भेद तथा स्वामी	१७५
	धर्मध्यान मे पुण्य बन्ध तथा परम्परा मोक्ष	१७५
	चारो धर्मध्यान के लक्षण	१७५
	शुक्लध्यान के चार भेद	१७५
	पृथक्त्ववितर्क का लक्षण तथा स्वामी	१७६
	एकत्व वितर्क का लक्षण तथा स्वामी	१७६
	सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति का लक्षण व स्वामी	१७६
	व्युपरत क्रिया निवृत्ति का लक्षण व स्वामी	१७७
	अध्यात्म भाषा से अन्तरग व बहिरग धर्म व शुक्ल ध्यान	१७७
	पिण्डस्थ आदि चार ध्यान	१७७
	राग द्वेष मोह का लक्षण	१७७
	राग द्वेष जीव व कर्म दोनों के संयोग से होते है	१७८
	परम शुद्ध निश्चय नय की दृष्टि मे रागद्वेष का अस्तित्व नही है	१७८
	शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चय नय व्यवहार है	१७८
४९	पदस्थ ध्यान के लिये पंचपरमेष्ठियों के वाचक मन्त्र	१७८

गाथा नं०	विषय	पृ० संख्या
	३५, १६, ६, ५, ४, २, १ अक्षरो के मन्त्र	१७६
	'ओम्' पद की सिद्धि	१७६
	ध्याना ध्येय, ध्यान, ध्यान का फल	१८०
	निश्चय ध्यान का कारण शुभोपयोग रूप व्यवहार ध्यान	१८०
५०	अरिहन्त का स्वरूप	१८१
	अरिहन्त निश्चयनय से अशरीर है	१८१
	परमौदारिक शरीर सात धातु से रहित है	१८१
	१८ दोपो के नाम	१८१
	'अरिहन्त' शब्द की सिद्धि व अर्थ	१८२
	सर्वज्ञ शब्द की सिद्धि	१८२
	द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, अन्तरित पदार्थ	१८४
	अनुमान द्वारा सर्वज्ञ सिद्धि	१८४
	हेतु के दोप	१८५
	बुद्धि हीन को शास्त्र अनुपकारी है	१८६
	णमो सिद्धाण का ध्यान निश्चय ध्यान का कारण	१८६
५१	सिद्धो का स्वरूप	१८६
	सिद्ध निश्चय से निराकार व्यवहार से पूर्व शरीर से कुछ कम पुरुषाकार	१८७
	शुद्धात्मभावनानुभूत्यविनाभूत निश्चय पचाचार	१८७
५२	आचार्य का स्वरूप	१८८
	निश्चय पचाचार	१८८
	वारह प्रकार का तप निश्चय तप को कारण है	१८९
	निश्चय स्वाध्याय	१८९
५३	उपाध्याय का स्वरूप	१८९
५४	साधु का स्वरूप	१९१
	वाह्य-आभ्यन्तर मोक्षमार्ग के साधक साधु	१९१
	व्यवहार व निश्चय आराधना	१९१
	निज आत्मा ही पचपरमेष्ठी रूप है	१९२
५५	ध्येय, ध्याता व ध्यान का लक्षण	१९२
	पंचपरमेष्ठी ध्येय है	१९३
	निष्पन्न अवस्था मे निज आत्मा ध्येय है	१९३
	चौवीस परिग्रह	१९३
	व्यवहार रत्नत्रय के अनुकूल निश्चय रत्नत्रय	१९३
	शुद्धोपयोग लक्षण विविक्षत एक देश निश्चय	१९४
५६	परमध्यान का स्वरूप	१९४
	निश्चय मोक्षमार्ग	१९५

गाथा नं०	विषय	पृष्ठ सं०
	परमध्यान के नामान्तर	१६५
५७-	तप श्रुत व्रत धारी ही ध्याता होता है	१६७
	तप श्रुत व्रत का लक्षण व भेद	१६७
	तप श्रुत व्रत ही ध्यान की सामग्री है	१६८
	व्रत से पुण्य तो ध्यान का कारण कैसे	१६८
	महाव्रत भी एक देश व्रत	१६६
	त्याग का अर्थ	१६६
	'महाव्रत के त्याग' का अर्थ	१६६
	निश्चय व्रत	१६६
	भरतचक्री ने भी व्रत धारे	१६६
	पंचमकाल में ध्यान	२००
	उत्सर्ग व अपवाद से ध्यान का कथन	२००
	उत्तम सहनन व १४ पूर्व के ज्ञान के अभाव मे ध्यान	२००
	द्रव्यश्रुत ज्ञानाभाव मे भी अष्ट प्रवचन मात्र भाव श्रुत से केवल ज्ञान	२००
	शिवभूति मुनि के द्रव्यश्रुत ज्ञान का अभाव	२०१
	१२ वे गुणस्थान मे जघन्य श्रुतज्ञान	२०१
	पंचमकाल मे परम्परा मोक्ष	२०१
	भेदाभेद रत्नत्रय की भावना ससार स्थिति स्तोक हो जाती है	२०१
	सब को उसी भव से मोक्ष हो जाता हो ऐसा नियम नही	२०१
	अल्प श्रुतज्ञान से ध्यान हो सकता है	२०२
	दुर्ध्यान का लक्षण	२०२
	मोक्ष विषय मे नय विचार	२०३
	बन्ध पूर्वक मोक्ष	२०३
	शुद्ध निश्चय नय से बन्ध न मोक्ष	२०३
	द्रव्य भाव मोक्ष जीव स्वभाव नही है	२०३
	द्रव्य भाव मोक्ष का फलभूत अनन्तज्ञान आदि जीव स्वभाव है	२०३
	पर्याय मोक्ष शुद्ध निश्चयनय से नही है एक देश शुद्ध निश्चयनय से है	२०३
	निश्चय मोक्ष ध्येय है ध्यान नही है	२०३
	शुद्ध द्रव्य की शक्ति रूप शुद्ध परिणामिक भाव निश्चय मोक्ष जीव मे पहले से विद्यमान है	२०३
	शुद्ध पारिणामिक भाव से न बन्ध है न मोक्ष	२०४
	आत्मा शब्द का अर्थ	२०४
	'अद्वैत जीव वाद' का खण्डन	२०४
	अध्यात्म शब्द का अर्थ	२०४
५७-	ग्रन्थकार की अन्तिम भावना	२०६

द्रव्यसंग्रह–संस्कृत टीकायामुक्तानां पद्यादीनां वर्णानुक्रमसूची

पृष्ठ	उक्त पद्य	अन्य ग्रन्थ
	अ	
१०४	अच्छिणिमीलणमेत्त	त्रि० सा० २०७
२००	अज्जविातिरयण	मो० प्र० ७७
६४	अत्थि अणता जीवा	ष० ख० १।२७१
		,, ,, ४।४४७
		गो० जी० १९६
		मूला० १२।१६२
२००	अत्रेदानी निषेधन्ति	त० अ० ८३
१९८	अपुण्यमव्रतै पुण्यं	समा० ८३
१९८	अव्रतानि परित्यज्य	समा० ८४
१७९	अरिहन्ता असरीरा	भा० स० ६२७ टी०
१९२	अरुहासिद्धा इरया	का० अ० १२
		मो० पा० १०४
१२६	अशुभ-परिणाम वहुलत्व	
१३१	अह्यिदिसद किरियाणं	गो० क० ८७६
९७	अत्मानदि संयमतोय	हि० उ० पृ० १२८
	आ	
१३५	आत्मोपदान सिद्ध'	सि० भ० ७
२०२	आदा खु मज्झ	भा० पा ५८
		नि० सा० १००
		स० सा० १५ क्षेपक [३]
२७	आहार सरीरिदिय	गो० जी० ११८
		ष० ख० २।४१७
	इ	
१२३	इगत्तीस सत्त चत्तारि	ष० ख० ७।१३१
		ति० प० ८।१५९
१२६	इव्यति दुर्लभरूपा	प० प्र० ९ टी०
२७	इ दिय काया ऊणिय	गो० जी० १३१
११९	इन्दुरवीदो रिक्खा	त्रि० सा ४०४

पृष्ठ	उक्त पद्य	अन्य
	उ	
१९१	उद्योतनमुद्योगो	भ० आ० २
१३८	उद्वम मिथ्यात्वविषं	
२८	उवसेत खीणमोहो	गो० जी०
	ए	
६४	एगणिगोद सरीरे	ष० ख० १।२७०,
		,, ,, ४।४७८
		गो० जी १९५
		मूला० १२।१६३
२०२	एगो मे सस्दो	भा० पा० ५९
		नि० सा० १०२
		मूला० २।४८
		ष० ख० ६।१९
		ष० ख० ७।९८
७६	एयतबुद्ध दरसी	गो० जी० १६
	ओ	
६४	ओगाढगाढ णिचिदो	पचा० १६४
१५५	ओजस्तेजो विद्या	र० श्रा० ३६
	क	
२०२	करिवद कसुसिद	मूला० २।८१
५७	कि पल्लविएण	वा० आ० ९०
	ख	
१३६	खय उवसमियविसोही	गो० जी० ६५०
		प० ख० ६।१३९, २
		ल० सा० ३
		भ० अ० २०७६

ृष्ठ	उक्त पद्य	अन्य ग्रन्थ

ग

	गइ इन्दियेमु काये	गो० जी १४१
	गुण जीवपज्जत्ती	गो१ जी० २
०	गुप्तेन्द्रियमनाध्याता	त० अ० ३८

च

८	चक्खुस्सदेसणस्स	भ० आ० १२

छ

.६	छत्तीसगुण समगो	भा० सं ३७७

ज

६	जन्मना जायते शूद्रा	
३३	जं अण्णाणी कम्म	प्र० सा० २३८
		प० ख० १३।२८१
		भ० आ० ११०
६	जीवो वाह्य जीवह्मि	भ० आ० ८७१
३१	गोगा पयडिपदेसा	गो० क० २५७
५६	ज्योतिर्भावन भौमषु	सु० र० ८२६
		पे० से० १।२६८

ण

१८	णउदुत्तार सत्तसया	त्रि० सा० ३३२
२	ण वि उप्पज्जई	प० प्र० १।६–
३९	णिच्चदग्धाउसत्ताय	गो० जी० ८६
६३	णिरयादोणिस्सरिदो	त्रि० सा० २०३

त

४५	तत वीणादिक	पंचा० ता० ७६६
१२६	तीसं वासो जम्मे	गो० जी० ४७२

पृष्ठ	उक्त पद्य	अन्य ग्रन्थ

द

२०	देसाण वय सामाइय	ष० ख० १।७३
		प० ख० ६।२०६
		गो० जी० ४७६
२७	दस सण्णीण पाणा	गो० जी १३२
६५	दुण्णिय एय एय	वसु० २४
२०६	दौर्विध्यदाधमनसो	य० च० २।१३४

ध

१२७	धन्या ये प्रति बुद्धाधर्मे	
६६	धम्मे य धम्म फलह्मि	

न

६	नास्तिकत्व परिहारः	पचा० ता० १ टी०

प

१३८	पञ्चमहाव्रत रक्षा	
१६६	पञ्चमुष्टिभिरुत्पट्य	
७६	पडपडिहारसिमज्ज	गो० क० २१
७७	पणणव दु अट्ठवीसा	सि० भ० ८
१७७	पदस्थ मंत्र वाक्यस्थ	प० प्र० पृ० १ टी०
		प० प्रा० पृ० २३६
११४	पुव्वस्स हु परिमाण	प० ख० १३।३००
		जं० प० १३।१६

ब

	वन्धे पडि एयत्त	स०० सि० १।७ टी०

भ

२००	भरेहु दुस्समकाले	मो० पा० ७७
४	भवणालय चालीसा	आ० सा० १ टीका

पृष्ठ	उक्त पद्य	अन्य ग्रन्थ
	म	
६	मगलाग्गिमित्ता ह्टेड	प० ख० १७
		पचा० ता० १ टीका
		ति० प० १।७
२२६	मर्मात्त पदिवज्जामि	भा० पा० ५७
		नि० सा० ६६
		मूला २।३५
२८	मिच्छो सासग्ग	गो० जी० ६
२०३	मुक्तश्चेत् प्राक्भवेद	प० ० ५६ टी०
१३६	मूढत्रयमदाश्चष्टौ	य० च० पृ० ३१४
		ज्ञान० पृ० ६३
		ष० प्रा० पृ० ३२
		प० प्र० पृ० १४३
२२	मूलसरीमछडिय	गो० जी० ६६७
	य	
२००	यस्पुनर्वज्रकायस्य	त० अ० ८४
१८६	यस्यनास्तिस्वयंप्रता	हि० उ० पृ० १०५
		※मूला १०।४२
	र	
१३६	रयणदीवदिणयर	पो० सा० ५७
	व	
१०	वच्छारक्खभव	पंचा० ता० २७ टी०
२०२	वधवन्धच्छेदादे·	र० श्रा० ७८
७६	विकहा तहा कसाया	प० ख० १।१७८
१८२	विस्ममो जननं निद्रा	आ० स्वरूप १६१७
		पु० उ० ५७६
		य० च० पृ० १३४
१७०	विसयकासा ओगाढो	प्र० सा० १४८
२२	वेयण कषाय वेउव्विया	गो० जी० ६६६

पृष्ठ	उक्त पद्य	अन्य ग्रन्थ
		प० ख० ४।२६
१६८	वैराग्य तत्त्वविज्ञान	प० प्र० २।१६२ टी०
	श	
४१	किव परमकल्याण	प० प्र० १।२० टी०
१६६	शेषेपु देव्यिक्षु	प० स० १। ०१
६	श्रयोमार्गस्यससिद्धि	आ० परीत २
	स	
६२	सव्वो सहाग	मूला० १२।१४२
६५	सागं तवेग सव्वी	मो० पा० २१
१२५	सण्णाओ य तिलेस्गा	पंचा० १४०
११६	सदभिस भरणी	त्रि० सा० ३६६
२०२	सकल्प कल्पतरु	य० च० २।१३२
१६१	समत्त सण्णाग	वा० अ० १३
३६	सम्मत्तणाण दसग्ग	भा० स ६४
		वसु० ५३७
१५५	सम्यग्दर्शन शुद्धा	र० श्रा० ३५
४८	सिद्धोऽहं सुद्धोहं	त० सा० २८
१७५	सूक्ष्म जिनोदित्त	आ० प० ५
८३	सोलस पण वीस	गो० क० ६४
१५६	सौधर्मादिष्यसख्या	※प० स० १।३००
	ह	
	हेठ्ठिमगच्छप्पुढवीणं	गो० जी० १२७
	क्ष	
१८१	क्षुधातृपामयं	अ० स्व० १५
		पू० उ० ४

※इन पद्यो का रूपान्तर होने पर भी भावार्थ वही है

श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवविरचित

बृहद्द्रव्यसंग्रहः ।

[संस्कृत टीकया हिन्दीटीकया च समेत]

श्रीब्रह्मदेवकृत—संस्कृतटीका ।

प्रणम्य परमात्मानं सिद्धं त्रैलोक्यवन्दितम् ।
स्वाभाविकचिदानन्दस्वरूपं निर्मलाव्ययम् ॥१॥
शुद्धजीवादिद्रव्याणां[1] देशकं च जिनेश्वरम् ।
द्रव्यसंग्रहसूत्राणां वृत्तिं वक्ष्ये समासतः ॥२॥ युग्मम् ।

अथ मालवदेशे धारानामनगराधिपतिराजभोजदेवाभिधानकलिकालचक्रवर्तिसम्बन्धिनः श्रीपालमहामण्डलेश्वरस्य सम्बन्धिन्याश्रमनामनगरे श्रीमुनिसुव्रततीर्थंकरचैत्यालये शुद्धात्मद्रव्यसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरसास्वादविपरीतनारकादिदुःखभयभीतस्य परमात्मभावनोत्पन्नसुखसुधारसपिपासितस्य भेदाभेदरत्नत्रयभावनाप्रियस्य भव्यवरपुण्डरीकस्य भाण्डागाराद्य-

---

निःसीमज्ञानादिकशक्तियुक्त जो शुद्ध प्रबुद्ध वसुकर्मसमुक्त है ।
प्रणाम करता हूं जिनेन्द्रदेव को त्रिलोक-वंद्य जो युक्तियुक्त है ॥

भावार्थ—त्रिलोक से वंदनीय, स्वाभाविक चैतन्य (ज्ञान) व आनन्द (सुख) मयी, कर्मरूपी मल से रहित तथा अविनश्वर, ऐसे सिद्ध परमात्मा को और शुद्ध जीव आदि छह द्रव्यों का उपदेश देने वाले श्री जिनेन्द्र [अरिहन्त] भगवान को नमस्कार करके मैं [ब्रह्मदेव] द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ के सूत्रों की वृत्ति [टीका] को संक्षेप से कहूंगा ॥ १-२ ॥

वृत्त्यर्थ—मालवा देश में धारा नगरी के शासक कलिकालचक्रवर्ती 'भोजदेव' राजा का सम्बन्धी 'श्रीपाल' महामण्डलेश्वर [राज्य के कुछ अंश का शासक] था । उस श्रीपाल के 'आश्रम' नगर में श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थङ्कर के मन्दिर में 'सोम' सेठ के लिये 'श्रीनेमिचन्द्र' सिद्धान्त चक्रवर्ती ने पहु

१—'तत्त्वानाम्' इति पाठान्तरम् ।

नेकनियोगाधिकारिसोमाभिधानराजश्रेष्ठिनो निमित्त श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तदेवै पूर्व षड्विंशतिगाथाभिर्लघुद्रव्यसग्रह कृत्वा पश्चाद्विशेषतत्त्वपरिज्ञानार्थं विरचितस्य वृहद्द्रव्यसग्रहस्याधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन व्याख्या वृत्ति प्रारभ्यते। तत्रादौ "जीवमजीव दव्व इत्यादि सप्तविंशतिगाथापर्यन्त षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकनामा प्रथमोऽधिकार । तदनन्तर "आसवबधण" इत्याद्येकादशगाथापर्यन्त सप्ततत्त्वनवपदार्थप्रतिपादनमुख्यतया द्वितीयो महाधिकार । तत पर "सम्मद्दसणणाण" इत्यादिविंशतिगाथापर्यन्त मोक्षमार्गकथनमुख्यत्वेन' तृतीयोऽधिकारश्च । इत्यष्टाधिकपञ्चाशद्गाथाभिरधिकारत्रय ज्ञातव्यम् । तत्राप्यादौ प्रथमाधिकारे चतुर्दशगाथापर्यन्त जीवद्रव्यव्याख्यानम् । तत पर "अज्जीवो पुग्ग लोओ" इत्यादि गाथाष्टकपर्यन्तमजीवद्रव्यकथनम् । तत पर "एव छब्भेयमिद" एव

द्रव्यसंग्रह का पहले २६ गाथाओ मे निर्माण किया था वह सोम सेठ शुद्ध आतम-द्रव्य के सवेदन से उत्पन्न होने वाले सुखामृत रस के आस्वाद से विपरीत नरकादि के दुख से भयभीत था और परमात्मा की भावना से प्रगट होने वाले सुखरूपी अमृत रस का प्यासा था, भेद-अभेद रूप रत्नत्रय [निश्चय व्यवहार रूप रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र] भावना का बहुत प्रेमी था, भव्य जनो मे श्रेष्ठ था तथा राजकोप (राज-खजाने) का कोषाध्यक्ष (खजानची) आदि अनेक राज-कार्यो का अधिकारी था। फिर श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने उस लघु द्रव्यसंग्रह को विशेष तत्त्वज्ञान कराने के लिये बढाकर ५८ गाथाओ मे रचा, उस वडे द्रव्यसग्रह के अधिकारो का विभाजन करते हुये मैं [ब्रह्मदेव] वृत्ति आरम्भ करता हू ।

उस वृहद्द्रव्यसग्रह नामक शास्त्र मे पहले "जीवमजीव दव्व" इस गाथासे लेकर "जीवदिय आयास" इस सत्ताईसवी गाथा तक जीव १, पुद्गल २, धर्म ३, अधर्म ४, आकाश ५ और काल ६ इन छः द्रव्यो का तथा जीव १, पुद्गल २, धर्म ३, अधर्म ४ और आकाश ५ इन पाचो अस्तिकायो का वर्णन करने वाला षड्द्रव्य पञ्चास्तिकायप्रतिपादक नामक पहला अधिकार है। इसके बाद "आसवबधणसवर" इस गाथा से लेकर "सुहअसुहभावजुत्ता" इस अडतीसवी गाथा तक जीव १, अजीव २, आस्रव ३, वध ४, सवर ५, निर्ज्जरा ६ और मोक्ष ७ इन सातो तत्वो का और जीव १,अजीव २,आस्रव ३, बंध ४, सवर ५, निर्ज्जरा ६, मोक्ष ७, पुण्य ८ और पाप ९ इन नव पदार्थो का मुख्यता से प्रतिपादन करने वाला "सप्ततत्वनवपदार्थप्रतिपादक" नामक दूसरा महाअधिकार है । तदनन्तर "सम्मद्दसणंणाण" इस गाथा से लेकर अगली वीस गाथाओ तक मुख्यता से मोक्षमार्ग का वर्णन करने वाला तीसरा अधिकार है। इस प्रकार अट्ठावन गाथाओ द्वारा तीन अधिकार जानने चाहिये ।

उन तीनो अधिकारो मे भी आदि का जो पहला अधिकार है उस मे १४ गाथा द्वारा "णिक्कम्मा अट्ठगुणा" इस गाथा तक जीवद्रव्य का व्याख्यान है । उसके आगे "अज्जीवो पुग्गलोओ"

१—'मुख्यतया' इति पाठान्तरम् ।

सूत्रपञ्चकपर्यन्तं पञ्चास्तिकायविवरणम् । इति प्रथमाधिकारमध्येऽन्तराधिकारत्रयमवबोद्धव्यम् । तत्रापि चतुर्दशगाथासु मध्ये नमस्कारमुख्यत्वेन प्रथमगाथा । जीवादिनवाधिकारसूचनरूपेण "जीवो उवओगमओ" इत्यादि द्वितीयसूत्रगाथा । तदनन्तरं नवाधिकारविवरणरूपेण द्वादशसूत्राणि भवन्ति । तत्राप्यादौ जीवसिद्ध्यर्थं "तिक्काले चदुपाणा" इतिप्रभृतिसूत्रमेकम् । तदनन्तरं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयकथनार्थं "उवओगो दुवियप्पो" इत्यादिगाथात्रयम्, ततः परममूर्त्तत्वकथनेन "वण्णरसपच" इत्यादिसूत्रमेकम्, ततोऽपि कर्मकर्तृत्वप्रतिपादनरूपेण "पुग्गलकम्मादीण" इतिप्रभृतिसूत्रमेकम्, तदनन्तरं भोक्तृत्वनिरूपणार्थं "ववहारा सुहदुक्ख" इत्यादिसूत्रमेकम्, ततः परं स्वदेहप्रमितिसिद्ध्यर्थं "अणुगुरुदेहपमाणो" इतिप्रभृतिसूत्रमेकम्, ततोऽपि संसारिजीवस्वरूपकथनेन "पुढविजलतेउवाऊ" इत्यादिगाथात्रयम्, तदनन्तरं "णिक्कम्मा अट्ठगुणा" इति प्रभृतिगाथापूर्वार्धेन सिद्धस्वरूपकथनम्, उत्तरार्धेन पुनरूर्ध्वगतिस्वभावः । इति नमस्कारादिचतुर्दशगाथामेलापकेन प्रथमाधिकारे समुदायपातनिका ।

अथेदानीं गाथापूर्वार्धेन सम्बन्धाऽभिधेयप्रयोजनानि कथयाम्युत्तरार्धेन च मङ्गलार्थमिष्टदेवतानमस्कारं करोमीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा भगवान् सूत्रमिदं प्रतिपादयति,—

इस गाथा से लेकर "लोयायासपदेसे" गाथा तक की आठ गाथाओ मे अजीवद्रव्य का वर्णन है । तदनन्तर "एव छब्भेयमिदं" इस गाथा से लेकर पाच गाथाओ मे "जावदिय आयास" इस गाथा तक पाच अस्तिकायो का वर्णन करने वाला तीसरा अन्तराधिककार है । इस तरह प्रथम अधिकार मे तीन अन्तराधिकार समझने चाहिये । प्रथम अधिकार के पहले अन्तराधिकार मे जो चौदह गाथाए है उनमे नमस्कार की मुख्यता से पहली गाथा है । जीव आदि नव ९ अधिकारो के सूचना रूप से "जीवो उवओगमओ" दूसरी सूत्र गाथा है । इसके पश्चात् नौ अधिकारो का विशेष वर्णन करने रूप बारह गाथाए है । उन १२ सूत्रो मे भी प्रथम ही जीव की सिद्धि के लिये "तिक्काले चदुपाणा" इत्यादि एक गाथा है । इसके बाद ज्ञान और दर्शन इन दोनो उपयोगो को कहने के लिये "उवओगो दुवियप्पो" इत्यादि तीन गाथा सूत्र है । तदनन्तर जीव की अमूर्त्तता का कथन रूप "वण्णरसपंचगधा" एक गाथासूत्र है । तत्पश्चात् जीव के कर्मकर्तृता का प्रतिपादन करने रूप "पुग्गलकम्मादीण" एक गाथा सूत्र है । इसके पीछे जीव के कर्मफलो के भोक्तापने का कथन करने के लिये "ववहारा सुहदुक्ख" इत्यादिक एक गाथा है । उसके पीछे जीव को अपने देह-प्रमाण सिद्ध करने के लिये "अणुगुरुदेहपमाणो" एक गाथासूत्र है । इसके बाद संसारी जीव के स्वरूप का कथन करने रूप "पुढविजल तेउवाऊ" आदि तीन गाथासूत्र हैं । इसके अनन्तर "णिक्कम्मा अट्ठगुणा" गाथा के पूर्वार्ध मे जीव के सिद्ध स्वरूप का कथन किया है और उत्तरार्ध मे जीव के ऊर्ध्वगमन स्वभाव का वर्णन किया है । इस प्रकार नमस्कार गाथा से लेकर जो चौदह गाथासूत्र है, उनका मेल करने से प्रथम अधिकार मे समुदाय रूप से पातनिका का कथन है ।

जीवमजीव दव्व जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठ ।
देविंदविंदवद वदे त सव्वदा सिरसा ॥ १ ॥

जीवमजीव द्रव्य जिनवरवृषभेण येन निर्दिष्टम् ।
देवेन्द्रवृन्दवद्य वन्दे त सर्वदा शिरसा ॥ १ ॥

व्याख्या—'वदे' इत्यादिक्रियाकारकसम्बन्धेन पदखण्डनारूपेण व्याख्यान क्रियते । 'वदे' एकदेशशुद्धनिश्चयनयेन स्वशुद्धात्माराधनालक्षणभावस्तवनेन तथा च असद्भूतव्यवहारनयेन तत्प्रतिपादकवचनरूपद्रव्यस्तवनेन च 'वदे' नमस्करोमि । परमशुद्धनिश्चयनयेन पुनर्वंद्यवन्दकभावो नास्ति । स क कर्ता ? अह नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेव । कथ वन्दे ? "सव्वदा" सर्वकालम् । केन ? "सिरसा" उत्तमाङ्गेन । "त" कर्म्मतापन्न । त क ? वीतरागसर्वज्ञम् । कि विशिष्टम् ? 'देविदविदवद' मोक्षपदाभिलाषिदवेन्द्रादिवन्द्यम्, "भवणालयचालीसा वितरदेवाण होंति बत्तीसा । कप्पामरचउवीसा चदो सूरो णरो तिरिओ" ॥ १ ॥" इति गाथाकथितलक्षणेन्द्राणा शतेन वन्दित देवेन्द्रवृन्दवन्द्यम् । "जेण" येन भगवता । कि कृत ? 'णिद्दिट्ठ" निर्दिष्ट कथित प्रतिपादितम् । कि ? "जीवमजीव दव्व"

अब गाथा के पूर्वार्ध द्वारा सम्बन्ध, अभिधेय तथा प्रयोजन कहता हू, और गाथा के उत्तरार्ध से मङ्गल के लिये इष्ट देवता को नमस्कार करता हू, इस अभिप्राय को मन मे रखकर भगवान् "श्रीनेमिचन्द्र आचार्य" प्रथम सूत्र कहते है —

गाथार्थ—मै [नेमिचन्द्र आचार्य] जिस जिनवरोमे प्रधानने जीव और अजीव द्रव्यका वर्णन किया, उस देवेन्द्रादिको के समूहसे वदित तीर्थङ्कर परमदेव को सदा मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हू ॥१॥

वृत्यर्थ—'वदे' इत्यादि पदो का क्रियाकारकभावसबन्ध से पदखंडना रीतिद्वारा व्याख्यान किया जाता है । "वदे" एक देश शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा से निज-शुद्ध आत्मा का आराधन करने रूप भावस्तवन से और असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा उस निज-शुद्ध आत्मा का प्रतिपादन करने वाले वचनरूप द्रव्यस्तवन से नमस्कार करता हू । तथा परमशुद्ध निश्चयनय से वन्द्यवन्दक भाव नही है । [अर्थात् एक देश शुद्धनिश्चयनय और असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा से जिनेन्द्रदेव वन्दनीय है और मै वन्दना करने वाला हूँ किन्तु परमशुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा वन्द्यवन्दक भाव नही है, क्योंकि जिनेन्द्र भगवान् और मेरी आत्मा समान है ।] वह नमस्कार करने वाला कौन है ? मै द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ का निर्माता श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तदेव हू । कैसे नमस्कार करता हू ? "सव्वदा" सदा' "शिरसा" शिर झुका करके नमस्कार करता हू । "त" वन्दना क्रिया के कर्मपने को प्राप्त । किसको नमस्कार करता हू ? उस वीतरागसर्वज्ञ को । वह वीतरागसर्वज्ञ देव कैसा है ? "देविदविद वंद" मोक्ष पद के अभिलाषी देवेन्द्रादि से वन्दनीक है । 'भवनवासी देवो के ४० इन्द्र, व्यन्तर देवो के ३२ इन्द्र, कल्पवासी देवो के २४ इन्द्र, ज्योतिष्क देवो के चन्द्र और सूर्य ये २ इन्द्र, मनुष्यो का १ इन्द्र—चक्रवर्ती तथा तिर्यञ्चो का १ इन्द्र सिंह ऐसे सब मिल कर १०० इन्द्र है ॥ १ ॥ इस गाथा मे कहे १०० इन्द्रो से वदनीय है । जिस भगवान् ने क्या किया है ? 'णिद्दिट्ठ" कहा है । क्या कहा है ? जीवमजीवं दव्वं" जीव और अजीव

जीवाजीवद्रव्यद्वयम् । तद्यथा,—सहजशुद्धचैतन्यादिलक्षणं जीवद्रव्यं, तद्विलक्षणं पुद्गलादिपञ्चभेदमजीवद्रव्यं च, तथैव चिच्चमत्कारलक्षणशुद्धजीवास्तिकायादिपञ्चास्तिकायानां, परमचिज्ज्योतिस्वरूपशुद्धजीवादिसप्ततत्त्वानां निर्दोषपरमात्मादिनवपदार्थाना च स्वरूपमुपदिष्टम् । पुनरपि कथम्भूतेन भगवता ? "जिणवरवसहेण" जितमिथ्यात्वरागादित्वेन एकदेशजिना: असंयतसम्यग्दृष्ट्यादयस्तेषा वरा गणधरदेवास्तेषा जिनवराणा वृषभः प्रधानो जिनवरवृषभस्तीर्थकरपरमदेवस्तेन जिनवरवृषभेणेति । अत्राध्यात्मशास्त्रे यद्यपि सिद्धपरमेष्ठिनमस्कार उचितस्तथापि व्यवहारनयमाश्रित्य प्रत्युपकारस्मरणार्थमर्हत्परमेष्ठिनमस्कार एव कृत । तथा चोक्तं—"श्रेयोमार्गस्य ससिद्धि प्रसादात्परमेष्ठिन । इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्र शास्त्रादौ मुनिपुङ्गवा. ॥ १ ॥" अत्र गाथापरार्द्धेन—"नास्तिकत्वपरिहार शिष्टाचारप्रपालनम् । पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्न शास्त्रादौ तेन संस्तुति ॥२॥" इति श्लोककथितफलचतुष्टय समीक्षमाणा ग्रन्थकारा शास्त्रादौ त्रिधा देवतायै त्रिधा नमस्कार कुर्वन्ति । त्रिधा देवताकथ्यते । केन प्रकारेण ? इष्टाधिकृताभिमतभेदेन । इष्ट स्वकीयपूज्य. (१) । अधिकृत —ग्रन्थस्यादौ प्रकरणस्य वा नमस्करणीयत्वेन विवक्षित (२) । अभिमत—सर्वेषा लोकाना विवादं विना सम्मत (३) । इत्यादिमङ्गलव्याख्यान सूचितम् । मङ्गलमित्युपलक्षणम् ।

दो द्रव्य कहे हैं । जैसे कि स्वाभाविक शुद्ध चेतन्य आदि लक्षणवाला जीव द्रव्य है, और इससे विलक्षण गुणी यानी—अचेतन १ पुद्गल, २ धर्म, ३ अधर्म, ४ आकाश और ५ काल, इन पांच भेदो वाला अजीव द्रव्य है । तथा चित्चमत्काररूप लक्षणवाला शुद्ध जीव—अस्तिकाय, एवं पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये पाच अस्तिकाय है । परमज्ञान—ज्योति-स्वरूप शुद्ध जीव तथा अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व है और दोषरहित परमात्मा जीव आदि नौ पदार्थ हैं; उन सबका स्वरूप कहा है । पुन वे भगवान् कैसे है ? "जिणवरवसहेण" मिथ्यात्व तथा राग आदि को जीतने के कारण असयतसम्यग्दृष्टि आदि एकदेशी जिन है, उनमे जो वर—श्रेष्ठ है वे जिनवर यानी गणधरदेव हैं, उन जिनवरो—गणधरों मे भी जो प्रधान है, वह जिनवरवृषभ अर्थात् तीर्थंकर परम देव है । उन जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे गये है, इति ।

आध्यात्मिक शास्त्र मे यद्यपि सिद्ध परमेष्ठियो को नमस्कार करना उचित है तो भी व्यवहारनय का अवलम्बन लेकर जिनेन्द्र के उपकार—स्मरण करने के लिये अर्हत्परमेष्ठी को ही नमस्कार किया है । ऐसा कहा भी है कि "अर्हन्तपरमेष्ठी के प्रसाद से मोक्ष-मार्ग की सिद्धि होती है । इसलिये प्रधान मुनियों ने शास्त्र के प्रारम्भ मे अर्हन्तपरमेष्ठी के गुणों की स्तुति की है ॥ १ ॥" यहां गाथा के उत्तरार्ध से "१ नास्तिकता का त्याग, २ सभ्य पुरुषों के आचरण का पालन, ३ पुण्य की प्राप्ति और ४ विघ्न विनाश, इन चार लाभो के लिये शास्त्र के आरम्भ मे इष्टदेवकी स्तुति की जाती है ॥ १ ॥" इस तरह

१—'बद्धत्वात्' इति पाठान्तरम् । २—'कथम्भूतेन ? तेन भगवता जिणवरवसहेण' इति पाठान्तरम् ।

उक्तं च—मङ्गलणिमित्तहेउ परिमाण णाम तह य कत्तारं। वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमायरिओ ॥ १ ॥" "वक्खाणउ" व्याख्यातु। स कः ? "आयरिओ" आचार्य। क ? "सत्थ" शास्त्र। "पच्छा" पश्चात्। किं कृत्वा पूर्व ? "वागरिय" व्याकृत्य व्याख्याय। कान् ? "छप्पि" षडप्यधिकारान्। कथभूतान् ? "मङ्गलणिमित्तहेउ परिमाण णाम तह य कत्तार" मङ्गल निमित्त हेतु परिमाण नाम कर्तृसज्ञामिति। इति गाथाकथितक्रमेण मङ्गलाद्यधिकारषट्कमपि ज्ञातव्यम्। गाथापूर्वार्धेन तु सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि सूचितानि। कथमिति चेत् ?—विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मस्वरूपादिविवरणरूपो वृत्तिग्रन्थो व्याख्यानम्। व्याख्येय तु तत्प्रतिपादकसूत्रम्। इति व्याख्यानव्याख्येयसम्बन्धो विज्ञेय। यदेव व्याख्येयमूत्रमुक्त तदेवाभिधान वाचक प्रतिपादक भण्यते, अनन्तज्ञानाद्यनन्तगुणाधारपरमात्मादिस्वभावोऽभिधेयो वाच्य प्रतिपाद्य। इत्यभिधानाभिधेयस्वरूप बोधव्यम्। प्रयोजन तु व्यवहारेण षड्द्रव्यादिपरिज्ञानम्, निश्चयेन निजनिरञ्जनशुद्धात्मसवित्तिसमुत्पन्ननिर्विकारपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादरूप स्वसवेदनज्ञानम्। परमनिश्चयेन पुनस्तत् फलरूपा केवलज्ञानाद्यनन्तगुणाविनाभूता निजात्मोपादानसिद्धानन्तसुखावाप्तिरिति। एव नमस्कारगाथा व्याख्याता।

श्लोक मे कहे हुए चार फलो को देखते हुए शास्त्रकार तीन प्रकार के देवता के लिये मन, वचन और काय द्वारा नमस्कार करते है। तीन प्रकार के देवता कहे जाते है। किस प्रकार ? इष्ट, अधिकृत और अभिमत ये तीन भेद है। 'इष्ट'—अपने द्वारा पूज्य वह इष्ट है [१]। 'अधिकृत'—ग्रन्थ अथवा प्रकरण के आदि मे नमस्कार करने के लिये जिसकी विवक्षा की जाती है वह अधिकृत है [२]। 'अभिमत' विवाद बिना सब लोगो को सम्मत्त हो, वह अभिमत है [३]। इस तरह मङ्गल का व्याख्यान किया।

यहा मङ्गल यह उपलक्षण पद है। कहा भी है कि "आचार्य १ मङ्गलाचरण, २ शास्त्र बनाने का निमित्त—कारण, ३ शास्त्र का प्रयोजन, ४ शास्त्र का परिमाण यानी श्लोकसख्या, ५ शास्त्र का नाम और शास्त्र का कर्ता, इन छः अधिकारो को बतला करके शास्त्र का व्याख्यान करे ॥ १ ॥" इस गाथा मे कहे हुए मङ्गल आदि ६ अधिकार भी जानने चाहिये। गाथा के पूर्वार्ध से सम्बन्ध, अभिधेय तथा प्रयोजन सूचित किया है। कैसे सूचित किया है ? इसका उत्तर यह है कि निर्मल ज्ञान दर्शनरूप स्वभाव-धारक जो परमात्मा है, उसके स्वरूप को विस्तार से कहने वाली जो वृत्ति है, वह तो व्याख्यान है और उसके प्रतिपादन करने वाले जो गाथा सूत्ररूप है वह व्याख्येय (व्याख्या करने योग्य) है। इस प्रकार व्याख्यानव्याख्येयरूप "सम्बन्ध' जानना चाहिये। और जो व्याख्यान करने योग्य सूत्र है वही अभिधान अर्थात् वाचक कहलाता है। तथा अनन्त ज्ञानादि अनन्त गुणो का आधार जो परमात्मा आदि का स्वभाव है वह अभिधेय है अर्थात् कथन करने योग्य विषय है। इस प्रकार "अभिधान--अभिधेय का" स्वरूप जानना चाहिये। व्यवहारनय की अपेक्षा से 'षटद्रव्य आदि का जानना' इस ग्रन्थ का प्रयोजन है। और निश्चयनय से अपने निर्लेप शुद्ध आत्मा के ज्ञानसे प्रगट हुआ जो विकार रहित परम आनन्दरूपी

अथ नमस्कारगाथाया प्रथमं यदुक्तं जीवद्रव्य तत्सम्बन्धे नवाधिकारान् संक्षेपेण सूचयामीति अभिप्राय मनसि सम्प्रधार्य कथनसूत्रमिति निरूपयति ——

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।
भोत्ता ससारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ २ ॥

जीवः उपयोगमयः अमूर्त्तिः कर्ता स्वदेहपरिमाणः ।
भोक्ता ससारस्थः सिद्धः सः विस्रसा ऊर्ध्वगतिः ॥ २ ॥

व्याख्या——"जीवो" शुद्धनिश्चयनयेनादिमध्यान्तवर्जितस्वपरप्रकाशकाविनश्वरनिरुपाधिशुद्धचैतन्यलक्षणनिश्चयप्राणेन यद्यपि जीवति, तथाप्यशुद्धनयेनानादिकर्मबन्धवशादशुद्धद्रव्यभावप्राणैर्जीवतीति जीव । "उवओगमओ" शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन यद्यपि सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनोपयोगमयस्तथाप्यशुद्धनयेन क्षायोपशमिकज्ञानदर्शननिवृत्तत्वात् ज्ञानदर्शनोपयोगमयो भवति । "अमुत्ति" यद्यपि व्यवहारेण मूर्तकम्मधीनत्वेन स्पर्शरसगन्धवर्णवत्या मूर्त्या सहितत्वान्मूर्त्तस्तथापि परमार्थेनामूर्त्तातीन्द्रियशुद्धवुद्धैकस्वभावत्वादमूर्त्त. । "कत्ता" यद्यपि भूतार्थनयेन निष्क्रियटङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावोऽय जीव तथाप्यभूतार्थनयेन मनो-

---

रूपी अमृत रस का आस्वादन करने रूप जो स्वसंवेदन ज्ञान है, वह इस ग्रन्थ का प्रयोजन है । परम निश्चयनय से उस आत्मज्ञान के फलरूप--केवलज्ञान आदि अनन्त गुणो के विना न होने वाली और निज आत्मारूप उपादान कारण से सिद्ध होने वाली ऐसी जो अनन्त सुख की प्राप्ति है, वह इस ग्रन्थ का प्रयोजन है । इस तरह पहली नमस्कार--गाथा का व्याख्यान किया है ।

अव 'नमस्कार गाथा मे जो प्रथम ही जीवद्रव्य कहा गया है, उस जीवद्रव्य के सम्बन्ध में नौ अधिकारो को मै संक्षेप से सूचित करता हू ।' इस अभिप्राय को मन मे धारण करके श्रीनेमिचन्द्र आचार्य जीव आदि नौ अधिकारो को कहने वाले सूत्र का निरूपण करते हैं —

गाथार्थ—जो जीता है, उपयोगमय है, अमूर्तिक है, कर्ता है, अपने शरीर के वरावर है, भोक्ता है; संसार मे स्थित है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है, वह जीव है ॥ २ ॥

वृत्त्यर्थ —"जीवो" यह जीव यद्यपि शुद्धनिश्चयनय से आदि, मध्य और अन्त से रहित, निज तथा अन्य का प्रकाशक, अविनाशी उपाधिरहित और शुद्ध चैतन्य लक्षणवाले निश्चय प्राणसे जीता है, तथापि अशुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा अनादिकर्मवन्धन के वश अशुद्ध द्रव्यप्राण और भावप्राण से जीता है, इसलिये जीव है । "उवओगमओ" यद्यपि शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से पूर्ण निर्मल, केवल ज्ञान व दर्शन दो उपयोगमय जीव है; तो भी अशुद्धनय से क्षायोपशमिक-ज्ञान और दर्शन से वना हुआ है; इस कारण ज्ञानदर्शनोपयोगमय है । "अमुत्ति" यद्यपि जीव व्यवहारनयसे मूर्तिककर्मो के अधीन होने से स्पर्श, रस, गंध और वर्णवाली मूर्त्तिसे सहित होनेके कारण मूर्त्तिक है, तो भी निश्चयनय से अमूर्त्तिक, इन्द्रियों के अगोचर,

बचनकायव्यापारोत्पादककर्मसहितत्वेन शुभाशुभकर्म्मकर्तृत्वात् कर्त्ता । "सदेहपरिमाणो" यद्यपि निश्चयेन सहजशुद्धलोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशस्तथापि व्यवहारेणानादिकर्म्मबन्धाधीनत्वेन शरीरनामकर्मोदयजनितोपसंहारबिस्ताराधीनत्वात् घटादिभाजनस्थप्रदीपवत् स्वदेहपरिमाणः । "भोत्ता" यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वात्मोत्थसुखामृतभोक्ता, तथाप्यशुद्धनयेन तथाविधसुखामृतभोजनाभावाच्छुभाशुभकर्मजनितसुखदुःखभोक्तृत्वाद्भोक्ता । "संसारत्थो" यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन निःसंसारनित्यानन्दैकस्वभावस्तथाप्यशुद्धनयेन द्रव्यक्षेत्रकालभवभावपञ्चप्रकारसंसारे तिष्ठतीति संसारस्थः । 'सिद्धो' व्यवहारेण स्वात्मोपलब्धिलक्षणसिद्धत्वप्रतिपक्षभूतकर्मोदयेन यद्यप्यसिद्धस्तथापि निश्चयनयेनानन्तज्ञानानन्तगुणस्वभावत्वात् सिद्धः । 'सो' स एव गुणविशिष्टो जीवः । 'विस्ससोड्ढगई' यद्यपि व्यवहारेण चतुर्गतिजनककर्मोदयवशेनोर्द्ध्वाधस्तिर्यग्गतिस्वभावस्तथापि निश्चयेन केवलज्ञानाद्यनन्तगुणावाप्तिलक्षणमोक्षगमनकाले विस्रसा स्वभावेनोर्द्ध्वगतिश्चेति

शुद्ध, बुद्धरूप एक स्वभाव का धारक होनेसे अमूर्त्तिक है । "कत्ता" यद्यपि यह जीव निश्चयनय से क्रिया रहित, टंकोत्कीर्ण—अविचल ज्ञायक एक स्वभाव का धारक है, तथापि व्यवहारनयसे मन, वचन, काय के व्यापार को उत्पन्न करने वाले कर्मों से सहित होनेके कारण शुभ और अशुभ कर्मोका करनेवाला होनेसे कर्ता है । "सदेहपरिमाणो" यद्यपि जीव निश्चयनय से लोकाकाश के प्रमाण असंख्यात स्वाभाविक शुद्ध प्रदेशो का धारक है, तो भी व्यवहार से अनादि कर्मबन्धवशात् शरीर कर्म के उदय से उत्पन्न, संकोच तथा विस्तार के अधीन होनेसे, घट आदि मे स्थित दीपक की तरह, अपने देह के बराबर है । "भोत्ता" यद्यपि जीव शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से रागादिविकल्प रूप उपाधियो से रहित तथा अपनी आत्मा से उत्पन्न सुख रूपी अमृत का भोगने वाला है, तो भी अशुद्धनय की अपेक्षा उस प्रकार के सुख अमृत भोजन के अभाव से शुभ कर्म से उत्पन्न सुख और अशुभ कर्म से उत्पन्न दुख का भोगने वाला होनेके कारण भोक्ता है । "संसारत्थो" यद्यपि जीव शुद्ध निश्चयनय से संसार रहित है ओर नित्य आनन्द एक स्वभाव का धारक है, फिर भी अशुद्धनय की अपेक्षा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव इन पाच प्रकार के संसार मे रहता है, इस कारण संसारस्थ है । "सिद्धो" यद्यपि यह जीव व्यवहारनय से निज-आत्मा की प्राप्तिस्वरूप जो सिद्धत्व है उसके प्रतिपक्षी कर्मो के उदय से असिद्ध है, तो भी निश्चयनय से अनन्त ज्ञान और अनन्त-गुण-स्वभाव होने से सिद्ध है । "सो" वह इस प्रकार के गुणो से युक्त जीव है । 'विस्ससोड्ढगई' यद्यपि व्यवहार से चार गतियो को उत्पन्न करने वाले कर्मो के उदय-वश ऊंचा, नीचा तथा तिरछा गमन करने वाला है, फिर भी निश्चयनय से केवल ज्ञान आदि अनन्त गुणो की प्राप्ति स्वरूप जो मोक्ष है उसमे पहुँचने के समय स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है । यहा पर खंडान्वय के ढग से शब्दो का अर्थ कहा, तथा शुद्ध, अशुद्ध नयो के विभाग से नय का अर्थ भी कहा है । अब मत का अर्थ कहते है । चार्वाक के लिये जीव की सिद्धि की गई है । नैयायिक के लिये जीव का ज्ञान तथा दर्शन उपयोगमय लक्षण का कथन है । भट्ट तथा चार्वाक के प्रति जीवका अमूर्त स्थापन है, 'आत्मा कर्म का कर्ता है' ऐसा कथन सांख्य के प्रति है । 'आत्मा अपने शरीर प्रमाण है' यह कथन नैयायिक, मीमांसक और सांख्य

अत्र पदखण्डनारूपेण शब्दार्थ. कथित , शुद्धाशुद्धनयद्वयविभागेन नयार्थोऽप्युक्त । इदानी मतार्थः कथ्यते । जीवसिद्धिश्चार्वाक प्रति, ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणं नैयायिक प्रति, अमूर्तजीवस्थापनं भट्टचार्वाकद्वय प्रति, कर्मकर्तृत्वस्थापन साख्य प्रति, स्वदेहप्रमितिस्थापनं नैयायिकमीमासक-सांख्यत्रय प्रति, कर्मभोक्तृत्वव्याख्यान बौद्ध प्रति, ससारस्थव्याख्यान सदाशिवं प्रति, सिद्धत्व-व्याख्यान भट्टचार्वाकद्वय प्रति, ऊर्ध्वगतिस्वभावकथन माण्डलिकग्रन्थकार प्रति, इति मतार्थो ज्ञातव्यः। आगमार्थः पुन 'अस्त्यात्मानादिवद्ध' इत्यादि प्रसिद्ध एव। शुद्धनयाश्रितं जीवस्वरूपमुपादेयम्, शेप च हेयम् । इति हेयोपादेयरूपेण भावार्थोऽप्यववोद्धव्य । एव शब्दनयमतागमभावार्थो यथासम्भव व्याख्यानकाले सर्वत्र ज्ञातव्य । इति जीवादिनवाधिकारसूचनसूत्रगाथा ॥२॥

अत परं द्वादशगाथाभिर्नवाधिकारान् विवृणोति, तत्रादौ जीवस्वरूप कथयति —

तिक्काले चदुपाणा इन्दियवलमाउआणपाणो य ।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स ॥ ३ ॥

त्रिकाले चतुःप्राणा इन्द्रिय बलं आयुः आनप्राणश्च ।
व्यवहारात् स जीवः निश्चयनयतस्तु चेतना यस्य ॥ ३ ॥

इन तीनो के प्रति है। 'आत्मा कर्मो का भोक्ता है' यह कथन बौद्ध के प्रति है। 'आत्मा संसारस्थ है' ऐसा वर्णन सदाशिव के लिये है। 'आत्मा सिद्ध है' यह कथन भट्ट और चार्वाक के प्रति है। 'जीव का ऊर्ध्वगमन स्वभाव है' यह कथन मण्डलीक मतानुयायी के लिये है। इस तरह मत का अर्थ जानना चाहिये। 'अनादिकाल से कर्मो से बंधा हुआ आत्मा है' इत्यादि आगम का अर्थ तो प्रसिद्ध ही है। शुद्ध नय के आश्रित जो जीव का स्वरूप है वह तो उपादेय यानी—ग्रहण करने योग्य है और शेप सब त्याज्य है। इस प्रकार हेयोपादेयरूपसे भावार्थ भी समझना चाहिये। इस तरह शब्द, नय, मत, आगमार्थ, भावार्थ यथासम्भव व्याख्यान के समय मे सब जगह जानना चाहिये। इस तरह जीव आदि नौ अधिकारो को सूचित करने वाली यह दूसरी गाथा है॥ २ ॥

अब इसके आगे १२ गाथाओ द्वारा नौ अधिकारो का विवरण कहते है। उनमे पहले जीवका स्वरूप कहते है —

गाथार्थ—तीन काल मे इन्द्रिय, बल, आयु, श्वास-निश्वास इन चारो प्राणो को जो धारण करता है व्यवहारनय से वह जीव है। निश्चयनय से जिसके चेतना है, वही जीव है॥ ३ ॥

वृत्त्यर्थ.—"तिक्काले चदुपाणा" तीन काल मे जीव के चार प्राण होते है। वे कौन से? "इन्दियवलमाउआणपाणो य" इन्द्रियो के अगोचर जो शुद्ध चैतन्य प्राण है उसके प्रतिपक्षभूत क्षयोपशमिक (क्षयोपशम से होने वाले) इन्द्रिय प्राण है, अनन्त-वीर्यरूप जो बलप्राण है उसके अनन्तवे भाग के प्रमाण मनोबल वचनबल और कायबल प्राण है, अनादि, अनन्त तथा शुद्ध जो चैतन्य प्राण है

व्याख्या---'तिक्काले चदुपाणा' कालत्रये चत्वार प्राणा भवन्ति । ते के 'इ दियबलमाउआणपाणो य' अतीन्द्रियशुद्धचैतन्यप्राणात्प्रतिशत्रुपक्षभूत क्षायोपशमिक इन्द्रियप्राण, अनन्तवीर्यलक्षणबलप्राणादनन्तैकभागप्रमिता मनोवचनकायबलप्राणा, अनाद्यनन्तशुद्धचैतन्यप्राणविपरीततद्विलक्षण सादि सान्तश्चायु प्राण, उच्छ्वासपरावर्त्तोत्पन्नखेदरहितविशुद्धचित्प्राणाद्विपरीतसदृश आनपानप्राण । 'ववहारा सो जीवो' इत्थभूतैश्चतुर्भिर्द्रव्यभावप्राणैर्यथासभव जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा यो व्यवहारनयात्स जीव, द्रव्येन्द्रियादिद्रव्यप्राणा अनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण, भावेन्द्रियादि क्षायोपशमिकभावप्राणा पुनरशुद्धनिश्चयेन, सत्ताचैतन्यबोधादि शुद्धभावप्राणा निश्चयेनेति । 'णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स' शुद्धनिश्चयनयत सकाशादुपादेयभूता शुद्धचेतना यस्य स जीव, एव 'वच्छरक्खभवसारिच्छ, सग्गणिरयपियराय । चुल्लयहडिय पुण मडउ णव दिट्ठता जाय ॥ १ ॥' इति दोहककथितनवदृष्टान्तैश्चार्वाकमतानुसारिशिष्यसबोधनार्थ जीवसिद्धिव्याख्यानेन गाथा गता । अथ अध्यात्मभाषया नयलक्षण कथ्यते । सर्वेजीवा शुद्धबुद्धैकस्वभावा, इति शुद्धनिश्चयनयल-

---

उससे विपरीत एव विलक्षण सादि (आदि सहित) और सान्त (अन्त सहित) आयु प्राण है, श्वासोच्छ्वास के आने जाने से उत्पन्न खेद से रहित जो शुद्ध चित्-प्राण है उससे विपरीत श्वासोच्छ्वास प्राण है । "ववहारा सोजीवो" व्यवहारनय से, इस प्रकार के चार द्रव्य व भाव प्राणो से जो जीता है, जीवेगा या पहले जी चुका है, वह जीव है। अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा द्रव्येन्द्रिय आदि द्रव्य प्राण है, और अशुद्ध निश्चयनय से भावेन्द्रिय आदि क्षायोपशमिक भावप्राण है, और निश्चयनय से सत्ता चैतन्य, बोध आदि शुद्धभाव जीव के प्राण है। "णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स" शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा उपादेयभूत यानी ग्रहण करने योग्य शुद्ध चेतना जिसके हो वह जीव है । "वच्छ रक्ख भवसारिच्छ सग्गणिरय पियराय । चुल्लय हंडय पुण मडउ णव दिठ्ठंता जाय ।" १ वत्स—जन्म लेते ही बछडा पूर्व जन्म के सस्कार से, बिना सिखाये अपने आप ही माता के स्तन पीने लगता है । २ अक्षर-अक्षरो का उच्चारण जीव जानकारी के साथ आवश्यकतानुसार करता है, जड पदार्थो मे शब्द उच्चारण मे यह विशेषता नही होती । ३ भव—आत्मा यदि एक स्थायी पदार्थ न हो तो जन्म-ग्रहण किसका होगा ४ सादृश्य—आहार, परिग्रह, भय, मैथुन, हर्ष, विषाद आदि सब जीवो मे एक समान दृष्टिगोचर होते है । ५-६ स्वर्ग-नरक—जीव यदि स्वतत्र पदार्थ न हो तो स्वर्ग मे जाना तथा नरक मे जाना किसके सिद्ध होगा । ७ पितर—अनेक मनुष्य मर कर भूत आदि हो जाते है और फिर अपने पुत्र, पत्नी आदि को कष्ट, सुख आदि देकर अपने पूर्व भव का हाल बताते है । ८ चूल्हा हंडी—जीव यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पाच भूतो से बन जाता हो तो दाल बनाते समय चूल्हे पर रक्खी हुई हडिया मे पाचो भूत पदार्थो का ससर्ग होने के कारण वहा भी जीव उत्पन्न हो जाना चाहिये, किन्तु ऐसा होता नही है । ९ मृतक—मुर्दा शरीर मे पाचो भूत पदार्थ पाये जाते है, किन्तु फिर भी उसमे जीव के ज्ञान आदि नही होते । इस तरह जीव एक पृथक् स्वतन्त्र पदार्थ सिद्ध होता है । इस दोहे मे कहे हुए नौ दृष्टान्तो द्वारा चार्वाकमतानुयायी शिष्यो को समझाने के लिए जीव की सिद्धि के व्याख्यान से यह गाथा

क्षणम् । रागादय एव जीवा इत्यशुद्धनिश्चयनयलक्षणम् । गुणगुणिनोरभेदोऽपि भेदोपचार इति सद्भूतव्यवहारलक्षणम् । भेदेऽपि त्वभेदोपचार इत्यसद्भूतव्यवहारलक्षण चेति । तथा हि—जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणा इत्यनुपचरितसज्ञा शुद्धसद्भूतव्यवहारलक्षणम् । जीवस्यमतिज्ञानादयो विभावगुणा इत्युपचरितसज्ञाऽशुद्धसद्भूतव्यवहारलक्षणम् । 'मदीयो-देहमित्यादि' संश्लेषसंबन्धसहितपदार्थ पुनरनुपचरितसज्ञाऽसद्भूतव्यवहारलक्षणम् । यत्र तु सश्लेषसंबन्धोनास्ति तत्र 'मदीय पुत्र इत्यादि' उपचरिताभिधानासद्भूतव्यवहारलक्षणमिति नयचक्रमूलभूतम् । सक्षेपेणनयपट्क ज्ञातव्य मिति ॥ ३ ॥

अथ गाथात्रयपर्यन्त ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयं कथ्यते । तत्र प्रथमगाथाया मुख्यवृत्त्या दर्शनोपयोगव्यख्यान करोति । यत्र मुख्यत्वमिति वदति तत्र यथासभवमन्यदपि विवक्षित लभ्यत इति ज्ञातव्यम् —

उवओगो दुवियप्पो दसण णाण च दसण चदुधा ।

चक्खु अचक्खू ओही दसण मध केवल णेय ॥ ४ ॥

उपयोगः द्विविकल्पः दर्शनं ज्ञानं च दर्शनं चतुर्धा ।

चक्षुः अचक्षुः अवधिः दर्शनं अथ केवलं ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

समाप्त हुई । अव अध्यातम भाषा द्वारा नय का लक्षण कहते है । "सव जीव शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव वाले है ।" यह शुद्ध निश्चय नय का लक्षण है । "रागादि ही जीव है" यह अशुद्ध निश्चय नय का लक्षण है । "गुण और गुणी का अभेद होने पर भी भेद का उपचार करना" यह सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है । 'भेद होने पर भी अभेद का उपचार" यह असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है । विशेष इस प्रकार है—'जीव के केवल ज्ञान आदि गुण है' यह अनुपचरित शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है । जीव के मतिज्ञानादि विभाव गुण है' वह उपचरित अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है । 'संश्लेष संबंध सहित पदार्थ शरीरादि मेरे है' अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है । 'जिनका संश्लेस संवध नही है, ऐसे पुत्र आदि मेरे है' यह उपचरित असद्भूत व्यवहार नयका लक्षण है । यह नय चक्र का मूल है । संक्षेप मे यह छह नय जाननी चाहिए ॥ ३ ॥

अव तीन गाथा पर्यन्त ज्ञान तथा दर्शन इन दो उपयोगो का वर्णन करते है । उनमे भी पहली गाथा मे मुख्य रूप से दर्शनोपयोग का व्याख्यान करते है । जहा पर यह कथन हो कि 'अमुक विषय का मुख्यता से वर्णन करते हैं'; वहा पर गौणता से अन्य विषय का भी यथासंभव कथन प्राप्त होना है' यह जानना चाहिये —

गाथार्थः—उपयोग दो प्रकार का है—दर्शन और ज्ञान । उनमे दर्शनोपयोग, चक्षुदर्शन अचक्षु-दर्शन अवधिदर्शन और केवलदर्शन ऐसे चार प्रकार का जानना चाहिये ।

वृत्त्यर्थ.—उपयोग दो प्रकार का है—दर्शन और ज्ञान । दर्शन तो निर्विकल्पक है और ज्ञान

व्याख्या—'उवओगो दुवियप्पो' उपयोगो द्विविकल्प 'दसणणाण च' निर्विकल्पकं दर्शन सविकल्पक ज्ञान च, पुन दसण चदुधा' दर्शन चतुर्धा भवति 'चक्खु अचक्खू ओही दसणमध केवल णेय' चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनमथ अहो केवलदर्शनमिति विज्ञेयम्। तथाहि—आत्मा हि जगत्त्रयकालत्रयवर्त्तिसमस्तवस्तुसामान्यग्राहकसकलविमलकेवलदर्शन-स्वभावस्तावत् पश्चादनादिकर्मबन्धाधीन सन् चक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमाद्बहिरङ्गद्रव्येन्द्रि-यालम्वनाच्च मूर्त सत्तासामान्य निर्विकल्पम् सव्यवहारेण प्रत्यक्षमपि निश्चयेन परोक्षरूपे-णैकदेशेन यत्पश्यति तच्चक्षुर्दर्शन । तथैव स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमत्वात्स्व-कीयस्वकीयवहिरङ्गद्रव्येन्द्रियालम्वनाच्च मूर्त सत्तासामान्य विकल्परहित परोक्षरूपेणैकदेशेन यत्पश्यति तदचक्षुर्दर्शनम् । तथैव च मनइन्द्रियावरणक्षयोपशमात्सहकारिकारणभूताष्टदल-पद्माकारद्रव्यमनोऽवलम्बानाच्च मूर्त्तामूर्त्तसमस्तवस्तुगतसत्तासामान्य विकल्परहित परोक्षरू-पेण यत्पश्यति तन्मानसमचक्षुर्दर्शनम् । स एवात्मा यदवधिदर्शनावरणक्षयोपशमान्मूर्त्तव-स्तुगतसत्तासामान्य निर्विकल्परूपेणैकदेशप्रत्यक्षेण यत्पश्यति तदवधिदर्शनम् । यत्पुन सह-जशुद्धसदानन्दैकरूपपरमात्मतत्त्वसवित्तिप्राप्तिबलेन केवलदर्शनावरणक्षये सति मूर्तामूर्त्तसम-स्तवस्तुगतसत्तासामान्य विकल्परहित सकलप्रत्यक्षरूपेणैकसमये पश्यति तदुपादेयभूत क्षायिक केवलदर्शन ज्ञातव्यमिति ॥ ४ ॥

सविकल्पक है। दर्शनोपयोग चार प्रकार का होता है—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन तथा केवल-दर्शन, ऐसा जानना चाहिये।

विशेष विवरण —आत्मा तीन लोक और भूत, भविष्यत् तथा वर्त्तमान इन तीनो कालो मे रहने वाले सपूर्ण द्रव्य सामान्य को ग्रहण करने वाला जो पूर्ण निर्मल केवलदर्शन स्वभाव है उसका धारक है, किन्तु अनादि कर्मवन्ध के अधीन होकर चक्षुदर्शनावरण के क्षयोपशम से तथा वहिरग द्रव्ये-न्द्रिय के आलम्वन से मूर्तिक पदार्थ के सत्ता सामान्य को जो कि संव्यवहार से प्रत्यक्ष है किन्तु निश्चय से परोक्षरूप है उसको एक देश से विकल्परहित जो देखता है वह चक्षुदर्शन है, उसी तरह स्पर्शन, रसना, घ्राण तथा कर्णइन्द्रिय के आवरण के क्षयोपशम से और अपनी-अपनी वहिरंग द्रव्येन्द्रिय के आलम्वन से मूर्तिक सत्तासामान्य को परोक्षरूप एक देश से जो विकल्परहित देखता है वह अचक्षुदर्शन है। और इसी प्रकार मन इन्द्रिय के आवरण के क्षयोपशम से तथा सहकारी कारण रूप जो आठ पाखडी के कमल के आकार द्रव्य मन है उसके अवलम्वन से मूर्त्त तथा अमूर्त्त समस्त द्रव्यो मे विद्यमान सत्तासामान्य को परोक्ष रूप मे विकल्परहित जो देखता है वह मानस अचक्षुदर्शन है। वही आत्मा अवधिदर्शनावरण के क्षयोपशम से मूर्त्त वस्तु मे सत्तासामान्य को एक देश प्रत्यक्ष से विकल्परहित जो देखता है, वह अवधिदर्शन है। तथा सहज शुद्ध अविनाशी आनन्द रूप एक स्वरूप का धारक परमात्म तत्त्व के ज्ञान तथा प्राप्ति के बल से केवल-दर्शनावरण के क्षय होने पर समस्त मूर्त्त, अमूर्त्त वस्तु के सत्तासामान्य को सकल प्रत्यक्ष रूप मे एक समय मे विकल्परहित जो देखता है उसको उपादेय रूप

अथाष्टविकल्पं ज्ञानोपयोगं प्रतिपादयति :—

णाण अट्ठवियप्प मदिसुदिओही अणाणणाणाणि ।

मणपज्जयकेवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च ॥ ५ ॥

ज्ञानं अष्टविकल्पं मतिश्रुतावधयः अज्ञानज्ञानानि ।

मनःपर्ययः केवलं अपि प्रत्यक्षपरोक्षभेदं च ॥ ५ ॥

व्याख्या—'णाण अट्ठवियप्प' ज्ञानमष्टविकल्प भवति । 'मदिसुदिओहीअणाणणाणाणि' अत्राष्टविकल्पमध्ये मतिश्रुतावधयो मिथ्यात्वोदयवशाद्विपरीताभिनिवेशरूपाण्यज्ञानानि भवन्ति तान्येव शुद्धात्मादितत्त्वविषये विपरीताभिनिवेशरहितत्वेन सम्यग्दृष्टिजीवस्य सम्यग्ज्ञानानि भवन्ति । 'मणपज्जवकेवलमवि' मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानमप्येवमष्टविधं ज्ञानं भवति । 'पच्चक्खपरोक्खभेयं च' प्रत्यक्षपरोक्षभेदं च । अवधिमनःपर्ययद्वयमेकदेशप्रत्यक्षं विभङ्गावधिरपि देशप्रत्यक्षं, केवलज्ञानं सकलप्रत्यक्षं, शेषचतुष्टयं परोक्षमिति ।

इतोविस्तरः—आत्मा हि निश्चयनयेन सकलविमलाखण्डैकप्रत्यक्षप्रतिभासमयकेवलज्ञानरूपस्तावत् । स च व्यवहारेणानादिकर्मबन्धप्रच्छादितः सन् मतिज्ञानावरणीयक्षयोपशमाद्वीर्यान्तरायक्षयोपशमाच्च वहिरङ्गपञ्चेन्द्रियमनोऽवलम्बनाच्च मुर्त्तामूर्त्तं वस्त्वेकदेशेन

क्षायिक केवलदर्शन जानना चाहिये ॥ ४ ॥

अब आठ भेद सहित ज्ञानोपयोग प्रतिपादन करते है —

गाथार्थः—कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल ऐसे आठ प्रकार का ज्ञान है। इनमे कुअवधि, अवधि, मनःपर्यय तथा केवल ये चार प्रत्यक्ष है और शेष चार परोक्ष है ॥ ५ ॥

वृत्त्यर्थ—"णाणं अट्ठवियप्प" ज्ञान आठ प्रकार का है। "मदिसुदिओही अणाणणाणाणि" उन आठ प्रकार के ज्ञानो मे मति, श्रुत तथा अवधि ये तीन मिथ्यात्व के उदय के वश से विपरीताभिनिवेश रूप अज्ञान होते है इसीसे कुमति, कुश्रुत तथा कुअवधि [विभंगावधि] इनके नाम है, तथा वे ही मति, श्रुत तथा अवधि ज्ञान आत्मा आदि तत्त्व के विषय मे विपरीत श्रद्धा न होने के कारण सम्यग्दृष्टि जीव के सम्यग्ज्ञान होते है। इस तरह कुमति आदि तीन अज्ञान और मति आदि तीन ज्ञान, ज्ञान के ये ६ भेद हुए तथा "मणपज्जवकेवलमपि" मनःपर्यय और केवल ज्ञान ये दोनो मिलकर ज्ञान के सब आठ भेद हुए। "पच्चक्खपरोक्खभेयं च" प्रत्यक्ष और परोक्ष भेद रूप है। इन आठो मे अवधि और मनःपर्यय ये दोनो तथा विभंगावधि तो देश प्रत्यक्ष है और केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष है, शेष कुमति, कुश्रुत, मति और श्रुत ये चार परोक्ष है।

विस्तार—जैसे आत्मा निश्चयनय से पूर्ण, विमल अखंड एक प्रत्यक्ष केवल ज्ञानस्वरूप है।

विकल्पाकारेण परोक्षरूपेण सांव्यवहारिकप्रत्यक्षरूपेण वा यज्जानाति तत्क्षायोपशमिकं मतिज्ञानम् । किञ्च छद्मस्थानां वीर्यान्तरायक्षयोपशमः केवलिनां तु निरवशेषक्षयो ज्ञान-चारित्राद्युत्पत्तौ सहकारी सर्वत्र ज्ञातव्यः । संव्यवहारलक्षणं कथ्यते—समीचीनो व्यवहारः संव्यवहारः । प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणः संव्यवहारो भण्यते । संव्यवहारे भवं सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षम् । यथा घटरूपमिदं मया दृष्टमित्यादि । तथैव श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमान्नोइन्द्रि-यावलम्बनाच्च प्रकाशोपाध्यायादिबहिरङ्गसहकारिकारणाच्च मूर्त्तामूर्त्तवस्तुलोकालोकव्याप्ति-ज्ञानरूपेण यदस्पष्टं जानाति तत्परोक्षं श्रुतज्ञानं भण्यते । किञ्च विशेषः—शब्दात्मकं श्रुत-ज्ञानं परोक्षमेव तावत्, स्वर्गापवर्गादिबहिर्विषयपरिच्छित्तिपरिज्ञानं विकल्परूपं तदपि परोक्षं, यत्पुनरभ्यन्तरे सुखदुःखविकल्परूपोऽहमनन्तज्ञानादिरूपोऽहमिति वा तदीषत् परो-क्षम्, यच्च निश्चयभावश्रुतज्ञानं तच्च शुद्धात्माभिमुखसुखसंवित्तिस्वरूपं स्वसंवित्त्याकारेण स-विकल्पमपीन्द्रियमनोजनितरागादिविकल्पजालरहितत्वेन निर्विकल्पम्, अभेदनयेन तदेवात्म-शब्दवाच्यं वीतरागसम्यक्चारित्राविनाभूतं केवलज्ञानापेक्षया परोक्षमपि संसारिणां क्षायि-कज्ञानाभावात् क्षायोपशमिकमपि प्रत्यक्षमभिधीयते । अत्राह शिष्यः—आद्ये परोक्षमिति

वही आत्मा व्यवहारनय से अनादिकालीन कर्मबन्ध से आच्छादित हुआ, मतिज्ञान के आवरण के क्षयोपशम से तथा वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से और बहिरंग पांच इन्द्रिय तथा मनके अवलम्बन से मूर्त्त और अमूर्त्त वस्तुको एक देश से विकल्पाकार परोक्ष रूपसे अथवा सव्यवहारिक प्रत्यक्ष रूपसे जो जानता है वह क्षायोपशमिक 'मतिज्ञान' है। छद्मस्थोके तो वीर्यान्तरायका क्षयोपशम सर्वत्र ज्ञान चारित्र आदि की उत्पत्ति मे सहकारी कारण है और केवलियो के वीर्यान्तराय का सर्वथा क्षय, ज्ञान चारित्र आदि की उत्पत्ति मे सर्वत्र सहकारी कारण है, ऐसा सर्वत्र जानना चाहिए। अब सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष का लक्षण कहते है—समीचीन अर्थात् ठीक जो व्यवहार है वह सव्यवहार कहलाता है, सव्यवहार का लक्षण प्रवृत्ति निवृत्ति रूप है। सव्यवहार मे जो हो सो साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। जैसे-यह घटका रूप मैनेदेखा इत्यादि, ऐसे ही श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम मे और नो इन्द्रिय मन के अवलम्बन से प्रकाश और अध्यापक आदि बहिरंग सहकारी कारण के सयोग मे मूर्त्त तथा अमूर्तिकवस्तु को, लोक तथा अलोक को व्याप्ति रूप ज्ञान से जो अस्पष्ट जानता है उसको परोक्ष "श्रुतज्ञान" कहते है। इसमे विशेष यह है कि शब्दा-त्मक जो श्रुतज्ञान है वह तो परोक्ष है ही, तथा स्वर्ग, मोक्ष आदि बाह्य विषयो का बोध कराने वाला विकल्परूप जो ज्ञान है वह भी परोक्ष है और जो आभ्यन्तर मे सुख दुःख विकल्परूप मैं हू अथवा मैं अनन्त ज्ञान आदि रूप हू, इत्यादिक ज्ञान है वह ईषत् (किंचित्) परोक्ष है। तथा जो निश्चय भावश्रुत ज्ञान है वह-शुद्ध आत्मा के अभिमुख (सन्मुख) होनेसे सुखसंवित्ति-सुखानुभव-स्वरूप है और वह निज आत्मज्ञान के आकार से सविकल्प है तो भी इन्द्रिय तथा मन से उत्पन्न जो रागादि विकल्पसमूह है, उनमे रहित होनेके कारण निर्विकल्प है, और अभेदनय से वही ज्ञान 'आत्मा' शब्द से कहा जाता है तथा वह वीतराग सम्यक् चारित्रके विना नही होता, वह ज्ञान यद्यपि केवलज्ञान की अपेक्षा परोक्ष है, तथापि संसारियो को क्षायिक ज्ञान का अभाव होने मे क्षायोपशमिक होने पर भी "प्रत्यक्ष" कहलाता है।

तत्त्वार्थसूत्रे मतिश्रुतद्वयं परोक्ष भणित तिष्ठति कथ प्रत्यक्ष भवतीति ? परिहारमाह—तदुत्सर्गव्याख्यानम्, इद पुनरपवादव्याख्यानम्, यदि तदुत्सर्गव्याख्यान न भवति तर्हि मतिज्ञान कथ तत्त्वार्थे परोक्ष भणित तिष्ठति। तर्कशास्त्रे साव्यवहारिकं प्रत्यक्ष कथ जातम्। यथा अपवादव्याख्यानेन मतिज्ञान परोक्षमपि प्रत्यक्षज्ञानम्, तथा स्वात्माभिमुख भावश्रुतज्ञानमपि परोक्ष सत्प्रत्यक्ष भण्यते। यदि पुनरेकान्तेन परोक्ष भवति तर्हि सुखदुःखादिसंवेदनमपि परोक्षं प्राप्नोति, न च तथा। तथैव च स एवात्मा, अवधिज्ञानावरणीयक्षयोपशमान्मूर्त्त वस्तु यदेकदेशप्रत्यक्षेण सविकल्प जानाति तदवधिज्ञानम्। यत्पुनर्मन.पर्ययज्ञानावरणक्षयोपशमाद्वीर्यान्तरायक्षयोपशमाच्च स्वकीयमनोऽवलम्बनेन परकीयमनोगत मूर्त्तमर्थमेकदेशप्रत्यक्षेण सविकल्प जानाति तदीहामतिज्ञानपूर्वक मन पर्ययज्ञानम्। तथैव निजशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणलक्षणैकाग्रध्यानेन केवलज्ञानावरणादिघातिचतुष्टयक्षये सति यत्समुत्पद्यते तदेक समये समस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावग्राहक सर्वप्रकारोपादेयभूत केवलज्ञानमिति ॥ ५ ॥

अथ ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयव्याख्यानस्य नयविभागेनोपसहार कथ्यते :—

यहा पर शिष्य शका करता है कि "आद्ये परोक्षम्" इस तत्त्वार्थसूत्र मे मति और श्रुत इन दोनो ज्ञानो को परोक्ष कहा है फिर श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है ?

अब शका का उत्तर देते है कि तत्वार्थ सूत्रमे जो श्रुत को परोक्ष कहा है सो उत्सर्ग व्याख्यान है और 'भाव श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष है' यह अपवादकी अपेक्षासे कथन है। यदि तत्त्वार्थसूत्रमे उत्सर्गका कथन न होता तो तत्त्वार्थसूत्रमे मतिज्ञान परोक्ष कैसे कहा जाता ? और यदि वह सूत्रमे परोक्ष ही कहा गया है तो तर्कशास्त्र मे साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कैसे हुआ ? इसलिए जैसे अपवाद व्याख्यानसे परोक्षरूप मतिज्ञान को भी साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा है वैसे ही अपने आत्मा के सन्मुख जो भावश्रुत ज्ञान है वह परोक्ष है तो भी उसको प्रत्यक्ष कहा जाता है। यदि एकान्तसे ये मति, श्रुत दोनो परोक्ष ही हो तो सुख-दुःख आदिका जो स्वसवेदन-स्वानुभव है वह भी परोक्ष ही होगा। किन्तु वह स्वसवेदन परोक्ष नही है। उसी तरह वही आत्मा अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम से मूर्तिक पदार्थ जो एक देश प्रत्यक्ष द्वारा सविकल्प जानता है वह "अवधिज्ञान" है। तथा जो मन.पर्ययज्ञानावरण के क्षयोपशम से, वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से अपने मन के अवलम्बन द्वारा पर के मन मे प्राप्त हुए मूर्त्त पदार्थ को एक देश प्रत्यक्ष से सविकल्प जानता है वह ईहा मतिज्ञान पूर्वक "मन.पर्यय ज्ञान" है। एव अपने शुद्ध आत्म-द्रव्य के यथार्थ श्रद्धान ज्ञान और आचरण रूप एकाग्र ध्यान द्वारा केवल ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों के नष्ट होने पर जो उत्पन्न होता है वह एक समय मे समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव को ग्रहण करने वाला और सब प्रकार से उपादेय [ग्रहण करने योग्य] "केवल ज्ञान" है ॥ ५ ॥

अब ज्ञान, दर्शन दोनो उपयोगो के व्याख्यान का नय-विभाग द्वारा उपसंहार कहते हैं:—

अट्ठ चदु णाणदसण सामण्णं जीवलक्खण भणिय ।

ववहारा सुद्धणया सुद्ध पुण दसण णाण ॥ ६ ।

अष्टचतुर्ज्ञानदर्शने सामान्य जीवलक्षण भणितम् ।

व्यवहारात् शुद्धनयात् शुद्ध पुन दर्शन ज्ञानम् ॥ ६ ॥

व्याख्या—'अट्ठ चदु णाण दसण सामण्ण जीवलक्खण भणिय' अष्टविध ज्ञान चतुर्विध दर्शन सामान्य जीवलक्षण भणितम् । सामान्यमिति कोऽर्थ ससारिजीवमुक्तजीवविवक्षा नास्ति, अथवा शुद्धाशुद्धज्ञानदर्शनविवक्षा नास्ति । तदपि कथमितिचेद् ? विवक्षाया अभाव सामान्यलक्षणमिति वचनात् । कस्मात् सामान्यम् जीव लक्षण भणितम् ? 'ववहारा' व्यवहारात् व्यवहारनयात् । अत्र केवलज्ञानदर्शन प्रति शुद्धसद्भूतशब्दवाच्योऽनुपचरितसद्भूतव्यवहार, छद्मस्थज्ञानदर्शनापरिपूर्णापेक्षया पुनरशुद्धसद्भूतशब्दवाच्य उपचरितसद्भूतव्यवहार, कुमतिकुश्रुतविभङ्गत्रये पुनरुपचरितासद्भूतव्यवहार । 'सुद्धणया सुद्ध पुण दसण णाण' शुद्धनिश्चयनयात्पुन शुद्धमखण्ड केवलज्ञानदर्शनद्वय जीव लक्षणमिति । किञ्चज्ञानदर्शनोपयोगविवक्षायामुपयोगशब्दन विवक्षितार्थपरिच्छित्तिलक्षणोऽर्थग्रहणव्यापारो गृह्यते । शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयविवक्षाया पुनरुपयोगशब्देन शुभाशुभशुद्ध-

---

गाथार्थः—व्यवहारनय से आठ प्रकार के ज्ञान और चार प्रकार के दर्शन का जो धारक है वह सामान्य रूप से जीव का लक्षण है और शुद्ध नय की अपेक्षा जो शुद्ध ज्ञान, दर्शन है वह जीव का लक्षण कहा गया है ।

वृत्त्यर्थ —"अट्ठ चदु णाण दंसण सामण्ण जीवलक्खण भणिय" आठ प्रकार का ज्ञान तथा चार प्रकार का दर्शन सामान्य रूप से जीव का लक्षण कहा गया है ।

यहा पर सामान्य इस कथन का यह तात्पर्य है कि इस लक्षण मे संसारी तथा मुक्त जीव की विवक्षा नही है, अथवा शुद्ध अशुद्ध ज्ञान दर्शन की भी विवक्षा नही है ।

सो कैसे ? इस शका का उत्तर यह है कि "विवक्षा का अभाव ही सामान्य का लक्षण है" ऐसा कहा है । किस अपेक्षा से जीव का सामान्य लक्षण कहा है ? इसका उत्तर यह है कि "ववहारा" अर्थात् व्यवहार नय की अपेक्षा से कहा है । यहा केवलज्ञान, केवल दर्शन के प्रति शुद्ध-सदभूत शब्द से वाच्य (कहने योग्य) अनुपचरित-सद्भूत-व्यवहार है और छद्मस्थ के अपूर्ण ज्ञान दर्शन की अपेक्षा से अशुद्ध-सद्भूत-शब्द से वाच्य उपचरित सद्भूत-व्यवहार है, तथा कुमति, कुश्रुत तथा कुअवधि इनमे उपचरित-असद्भूत-व्यवहार नय है ।

"सुद्धणया सुद्धं पुण दंसण णाण" शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध अखंड केवल ज्ञान तथा केवल दर्शन ये दोनो जीव के लक्षण है । यहा ज्ञान दर्शनरूप उपयोग की विवक्षा मे उपयोग शब्द से विवक्षित

भावनैकरूपमनुष्ठान ज्ञातव्यमिति । अत्र सहजशुद्धनिर्विकारपरमानन्दैकलक्षणस्य साक्षादुपादेयभूतस्याक्षयसुखस्योपादानकारणत्वात् केवलज्ञानदर्शनद्वयमुपादेयमिति । एवं नैयायिकं प्रति गुणगुणिभेदैकान्तनिराकरणार्थमुपयोगव्याख्यानेन गाथात्रय गतम् ॥ ६ ॥

अथामूर्त्तातीन्द्रियनिजात्मद्रव्यसंवित्तिरहितेन मूर्त्तपञ्चेन्द्रियविषयासक्तेन च यदुपार्जित मूर्त कर्म तदुदयेन व्यवहारेण मूर्तोऽपि निश्चयेनामूर्तो जीव इत्युपदिशति —

वण्ण रस पंच गधा दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे ।

णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ॥ ७ ॥

वर्णाः रसाः पंच गन्धौ द्वौ स्पर्शाः अष्टौ निश्चयात् जीवे ।

नो संति अमूर्त्तिः ततः व्यवहारात् मूर्त्तिः बन्धतः ॥ ७ ॥

व्याख्या—"वण्ण रस पञ्च गधा दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे णो सति" श्वेतपीतनीलारुणकृष्णसंज्ञा पञ्च वर्णाः, तिक्तकटुकषायाम्लमधुरसंज्ञा पञ्च रसाः, सुगन्धदुर्गन्धसंज्ञौ द्वौ गन्धौ, शीतोष्णस्निग्धरूक्षमृदुकर्कशगुरुलघुसंज्ञा अष्टौ स्पर्शाः, "णिच्छया" शुद्धनिश्चयनयात् शुद्धबुद्धैकस्वभावे शुद्धजीवे न सन्ति । 'अमुत्ति तदो' ततः कारणादमूर्त्तः,

---

पदार्थ के जानने रूप वस्तु के ग्रहण रूप व्यापार का ग्रहण किया जाता है और शुभ, अशुभ तथा शुद्ध इन तीनो उपयोगोकी विवक्षामे उपयोग शब्दसे शुभ, अशुभ तथा शुद्ध भावनामे एक रूप अनुष्ठान जानना चाहिये। यहा सहज शुद्ध निर्विकार परमानन्द रूप साक्षात् उपादेय जो अक्षय सुख है उसका उपादान कारण होने से केवल ज्ञान और केवल दर्शन ये दोनो उपादेय है। इस प्रकार नैयायिक के प्रति गुण, गुणी अर्थात् ज्ञान और आत्मा इन दोनो के एकान्त रूप से भेद के निराकरण के लिये उपयोग के व्याख्यान द्वारा तीन गाथा समाप्त हुई ॥ ६ ॥

अब अमूर्त्तिक तथा अतीन्द्रिय निज आत्मा के ज्ञान से रहित होने के कारण तथा मूर्त्त जो पांचों इन्द्रियो के विषय है उनमे आसक्ति के द्वारा जीव ने जो मूर्त्तिक कर्म उपार्जन किया है उसके उदय से व्यवहार नय की अपेक्षा से जीव मूर्त्तिक है तथापि निश्चयनय से अमूर्त्तिक है ऐसा उपदेश देते है —

गाथार्थ—निश्चयनय से जीव मे पाच वर्ण, पाच रस, दो गंध और आठ स्पर्श नही है, इसलिये जीव अमूर्त्तिक है और व्यवहारनय की अपेक्षा कर्म-बध होने के कारण जीव मूर्त्तिक है ॥ ७ ॥

वृत्त्यर्थः—"वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे णो सति" सफेद, पीला, नीला, लाल तथा काला ये पाच वर्ण, चरपरा, कडुआ, कषायला, खट्टा और मीठा ये पाच रस, सुगन्ध और दुर्गन्ध ये दो गन्ध तथा ठडा, गर्म, चिकना, रूखा, नरम कडा, भारी और हलका यह आठ प्रकार्के स्पर्श शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध-बुद्ध स्वभाव-धारक शुद्ध जीव मे नही है। "अमुत्ति तदो" इस कारण यह जीव

यद्यमूर्तस्तर्हि तस्य कथ कर्मबन्ध इति चेत् ? 'ववहारा मुत्ति' अनुपचरितासद्भूतव्यवहारान्मूर्तो यत । तदपि कस्मात् ? 'बधादो' अनन्तज्ञानाद्युपलम्भलक्षणमोक्षविलक्षणादनादिकर्मबन्धनादिति । तथा चोक्तम्—कथचिन्मूर्तामूर्तजीवलक्षणम्—'ब ध पडि एयत्त लक्खणादो हवदि तस्स भिण्णत्त । तम्हा अमुत्तिभावो णेगतो होदि जीवस्स ॥ १ ॥' अयमत्रार्थ—यस्यैवामूर्तस्यात्मन प्राप्त्यभावादनादिससारे भ्रमितोऽय जीव स एवामूर्तो मूर्तपञ्चेन्द्रियविषयत्यागेन निरतर ध्यातव्य । इति भट्टचार्वाकमत प्रत्यमूर्तजीवस्थापनमुख्यत्वेन सूत्र गतम् ॥ ७ ॥

अथ निष्क्रियामूर्तटङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावेन कर्मादिकर्तृत्वरहितोऽपि जीवो व्यवहारादिनयविभागेन कर्ता भवतीति कथयति —

पुग्गलकम्मादीण कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो ।

चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाण ॥ ८ ॥

पुद्गलकर्म्मादीना कर्त्ता व्यवहारतः तु निश्चयतः ।

चेतनकर्म्मणा आत्मा शुद्धनयात् शुद्धभावानाम् ॥ ८ ॥

अमूर्तिक है अर्थात् मूर्ति रहित है ।

शका:—यदि जीव अमूर्तिक है तो इस जीव के कर्म का बध कैसे होता है ?

उत्तर:—"ववहारा मुत्ति" क्योकि अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से जीव मूर्त्तिक है, अत कर्म बध होता है ।

शका.—जीव मूर्त्त भी किस कारण से है ?

उत्तर:—"बधादो" अनंतज्ञान आदि की प्राप्ति रूप जो मोक्ष है उस मोक्ष से विपरीत अनादि कर्मोके बन्धनके कारण जीव मूर्त्त है । कथचित् मूर्त्त तथा कथचित् अमूर्त्त जीव का लक्षण है । कहा भी है —कर्मबध के प्रति जीव की एकता है और लक्षण से उस कर्मबंध की भिन्नता है इसलिये एकान्त से जीव के अमूर्तभाव नही है ॥ १ ॥ इसका तात्पर्य यह हे कि जिस अमूर्त्त आत्मा की प्राप्ति के अभाव से इस जीव ने अनादि ससार मे भ्रमण किया है उसी अमूर्त्तिक शुद्धस्वरूप आत्मा को मूर्त्त पाचो इन्द्रियो के विषयो का त्याग करके ध्यान करना चाहिये । इस प्रकार भट्ट और चार्वाक के प्रति जीव को मुख्यता से अमूर्त्त सिद्ध करने वाला सूत्र कहा ॥ ७ ॥

अब "क्रिया–शून्य अमूर्त्तिक" टकोत्कीर्ण [टाकी से उकेरी हुई मूर्ति समान अविचल] ज्ञायक एक स्वभाव से जीव यद्यपि कर्म आदि के कर्त्तापने से रहित है फिर भी व्यवहार आदि नय की अपेक्षा कर्त्ता होता हे, ऐसा कहते है:—

गाथार्थ:—आत्मा व्यवहारनय से पुद्गल कर्म आदि का कर्त्ता है, निश्चयनय से चेतन कर्म का कर्त्ता है और शुद्ध नय की अपेक्षा से शुद्ध भावो का कर्त्ता है ॥ ८ ॥

व्याख्या---अत्र सूत्रे भिन्नप्रक्रमरूपव्यवहितसम्बन्धेन मध्यपदं गृहीत्वा व्याख्यान क्रियते। 'आदा' आत्मा 'पुग्गलकम्मादीण कत्ता ववहारदो दु' पुद्गलकर्मादीना कर्त्ता व्यवहारतस्तु पुन, तथाहि---मनोवचनकायव्यापारक्रियारहितनिजशुद्धात्मतत्त्वभावनाशून्य सन्ननुपचरितासद्भूतव्यवहारेण ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मणामादिशब्देनौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरत्रयाहारादिषट्पर्याप्तियोग्यपुद्गलपिण्डरूपनोकर्मणा तथैवोपचरितासद्भूतव्यवहारेण बहिर्विषयघटपटादीनां च कर्ता भवति। 'णिच्छयदो चेदणकम्माणादा' निश्चयनयतश्चेतनकर्मणां तद्यथा रागादिविकल्पोपाधिरहितनिष्क्रियपरमचैतन्यभावनारहितेन यदुपार्जितं रागाद्युत्पादकं कर्म तदुदये सति निष्क्रियनिर्मलस्वसंवित्तिमलभमानो भावकर्मशब्दवाच्यरागादिविकल्परूपचेतनकर्मणामशुद्धनिश्चयेन कर्त्ता भवति। अशुद्धनिश्चयस्यार्थ कथ्यते--कर्मोपाधिसमुत्पन्नत्वादशुद्ध, तत्काले तप्ताय. पिण्डवत्तन्मयत्वाच्च निश्चय., इत्युभयमेलापकेनाशुद्धनिश्चयो भण्यते। 'सुद्धणया सुद्धभावाणं' शुभाशुभयोगत्रयव्यापाररहितेन शुद्धबुद्धैकस्वभावेन यदा परिणमति तदानन्तज्ञानसुखादिशुद्धभावानां छद्मस्थावस्थाया भावनारूपेण विवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयेन कर्ता, मुक्तावस्थाया तु शुद्धनयेनेति। किन्तु शुद्धाशुद्धभावानां परिणममानानाम् एव कर्तृत्वं ज्ञातव्यम्, न च हस्तादिव्यापाररूपाणामिति। यतो हि नित्य-

---

वृत्त्यर्थः---इस सूत्र मे भिन्न प्रक्रमरूप व्यवहित संबध से बीच के पद को ग्रहण करके व्याख्यान किया जाता है। "आदा" आत्मा "पुग्गलकम्मादीण कत्ता ववहारदो दु" व्यवहार नय की अपेक्षा से पुद्गल कर्म आदि का कर्त्ता है। जैसे---मन, वचन तथा शरीर की क्रिया से रहित निज शुद्ध आत्मतत्त्व की जो भावना है उस भावना से शून्य होकर अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय की अपेक्षा ज्ञानावरण आदि द्रव्य कर्मो का तथा आदि शब्दसे औदारिक, वैक्रियिक और आहारक रूप तीन शरीर तथा आहार आदि ६ पर्याप्तियोके योग्य जो पुद्गल पिड रूप नो कर्म है उनका तथा उपचरित असद्भूत व्यवहार नयसे बाह्य विषय घट, पट आदि का भी यह जीव कर्त्ता होता है। "णिच्छयणयदो चेदणकम्मणादा" और निश्चय नय की अपेक्षा से यह आत्मा चेतन कर्मोका कर्त्ता है। वह इस तरह---राग आदि विकल्प उपाधि से रहित निष्क्रिय, परमचैतन्य भावना से रहित होने के कारण जीव ने राग आदि को उत्पन्न करनेवाले कर्मो का जो उर्पाजन किया है उन कर्मो का उदय होने पर निष्क्रिय और निर्मल आत्मज्ञान को नही प्राप्त होता हुआ यह जीव भावकर्म इस शब्द से वाच्य जो रागादि विकल्प रूप चेतन-कर्म है उनका अशुद्ध निश्चय नय से कर्त्ता होता है। अशुद्ध निश्चय का अर्थ यह है---कर्म उपाधि से उत्पन्न होने से अशुद्ध कहलाता है और उस समय अग्निमे तपे हुए लोहेके गोलेके समान तन्मय (उसी रूप) होनेसे निश्चय कहा जाता है इस रीति से अशुद्ध और निश्चय इन दोनो को मिलाकर अशुद्ध निश्चय कहा जाता है। 'सुद्धणया सुद्धभावाणा' जब जीव शुभ, अशुभ मन, वचन, काय इन तीनो योगोके व्यापारसे रहित शुद्ध, बुद्ध, एक स्वभाव से परिणमन करता है तब अनत ज्ञान, सुख आदि शुद्ध भावो का छद्मस्थ अवस्था में भावना रूपसे विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चयनयसे कर्त्ता होता है और मुक्त अवस्था मे शुद्ध निश्चनय से

निरञ्जननिष्क्रियनिजात्मस्वरूपभावनारहितस्य कर्मादिकर्तृत्वं व्याख्यातम्, ततस्तत्रैव निजशुद्धात्मनि भावना कर्तव्या। एवं साख्यमतं प्रत्येकान्ताकर्तृत्वनिराकरणमुख्यत्वेन गाथा गता ॥ ८ ॥

अथ यद्यपि शुद्धनयेन निर्विकारपरमाह्लादैकलक्षणसुखामृतस्य भोक्ता तथाप्यशुद्धनयेन सासारिकसुखदुःखस्यापि भोक्तात्मा भवतीत्याख्याति –

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।

आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥ ९ ॥

व्यवहारात् सुखदुःखं पुद्गलकर्म्मफलं प्रभुङ्क्ते।

आत्मा निश्चयनयतः चेतनभावं खलु आत्मनः ॥ ९ ॥

व्याख्या—'ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि' व्यवहारात् सुखदुःखरूपं पुद्गलकर्मफलं प्रभुङ्क्ते। स कः कर्त्ता ? 'आदा' आत्मा। 'णिच्छयणयदो चेदणभावं आदस्स' निश्चयनयतश्चेतनभावं भुङ्क्ते। 'खु' स्फुटम्। कस्य सम्बन्धिनमात्मनः स्वस्येति। तद्यथा—आत्माहि निजशुद्धात्मसंवित्तिसमुद्भूतपारमार्थिकसुखसुधारसभोजनमलभमानः उपचरितासद्भूतव्यवहारेणेष्टानिष्टपञ्चेन्द्रियविषयजनितसुखदुःखं भुङ्क्ते, तथैवानुपचरितासद्भूतव्यवहारेणाभ्यन्तरे सुखदुःखजनकं द्रव्यकर्म्मरूपं सातासातोदयं भुङ्क्ते। स एवाशुद्धनिश्चयनयेन

अनंतज्ञानादि शुद्ध भावो का कर्त्ता है। किन्तु परिणमन करते हुए शुद्ध, अशुद्ध भावो का कर्तृत्व जीव मे जानना चाहिये और हस्त आदि के व्यापार रूप परिणमनो का कर्तापन न समझना चाहिए। क्योकि नित्य, निरंजन, निष्क्रिय ऐसे अपने आत्मस्वरूप की भावना से रहित जीव के कर्म आदि का कर्तृत्व कहा गया है, इसलिये उस निज शुद्ध आत्मा मे ही भावना करनी चाहिये। इस तरह साख्यमत के प्रति "एकान्त से जीव कर्त्ता नही है" इस मत के निराकरण की मुख्यता से गाथा समाप्त हुई ॥ ८ ॥

अब यद्यपि आत्मा शुद्ध नय से विकार रहित परम आनन्द रूप लक्षण वाले ऐसे सुख रूपी अमृत को भोगने वाला है तो भी अशुद्ध नय से सासारिक सुख-दुःखका भी भोगने वाला है, ऐसा कहते है

गाथार्थ—व्यवहार नय से आत्मा सुख-दुःख रूप पुद्गल कर्मो के फल को भोगता है और निश्चय नय से अपने चेतन भाव को भोगता है ॥ ९ ॥

वृत्त्यर्थ—"ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि" व्यवहार नय की अपेक्षा से सुख-दुःख रूप पुद्गल कर्म फलो को भोगता है। वह कर्म फलो का भोक्ता कौन है ? "आदा" आत्मा। "णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स" और निश्चय नयसे तो स्पष्ट रीतिसे चेतन भावका ही भोक्ता आत्मा है। वह चेतन भाव किस सम्बन्धी है ? आत्मा का अपना ही है। वह ऐसे—अपने शुद्ध आत्मअनुभव से उत्पन्न पारमार्थिक सुखरूप अमृत रस का भोजन न प्राप्त करता हुआ आत्मा, उपचरित असद्भूत व्यवहार नयसे इष्ट, अनिष्ट पाचो इन्द्रियोके विषयोमे उत्पन्न सुख-दुःख को भोगता है, उसी तरह अनुपचरित

हर्षविषादरूप सुखदु ख च भु क्ते । शुद्धनिश्चयनयेन तु परमात्मस्वभावसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानोत्पन्नसदानन्दैकलक्षण सुखामृत भुंक्त इति । अत्र यस्यैव स्वाभाविकसुखामृतस्य भोजनाभावादिन्द्रियसुख भुञ्जान सन् ससारे परिभ्रमति तदेवातीन्द्रियसुख सर्वप्रकारेणोपादेयमित्यभिप्राय । एव कर्ता कर्मफलं न भुंक्त इति बौद्धमतनिषेधार्थ भोक्तृत्वव्याख्यानरूपेण सूत्रं गतम् ॥ ९ ॥

अथ निश्चयेन लोकप्रमितासख्येयप्रदेशमात्रोऽपि व्यवहारेण देहमात्रो जीव इत्यावेदयति —

अणुगुरुदेहपमाणो उवसहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असखदेसो वा ॥ १० ॥

अणुगुरुदेहप्रमाणः उपसंहारप्रसर्पतः चेतयिता ।
असमुद्घातात् व्यवहारात् निश्चयनयतः असंख्यदेशो वा ॥ १० ॥

व्याख्या—'अणुगुरुदेहपमाणो' निश्चयेनस्वदेहाद्भिन्नस्य केवलज्ञानाद्यनन्तगुणराशेरभिन्नस्य निजशुद्धात्मस्वरूपस्योपलब्धेरभावात्तथैव देहममत्वमूलभूताहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञाप्रभृतिसमस्तरागादिविभावानामासक्तिसद्भावाच्च यदुपार्जित शरीरनामकर्म तदुदये सति अणुगुरुदेहप्रमाणो भवति । स क कर्ता ? 'चेदा' चेतयिता जीव । कस्मात् ? 'उवसंहा-

---

असद्भूत व्यवहार नय से अन्तरग मे सुख-दु ख को उत्पन्न करने वाले द्रव्य कर्म रूप साता-असाता के उदय को भोगता है। तथा अशुद्ध निश्चय नय से वह ही आत्मा हर्ष, विषाद रूप सुख-दु ख को भोगता है और शुद्ध निश्चय नय से तो परमात्मस्वभाव के सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और आचरण से उत्पन्न अविनाशी आनन्द रूप वाले सुखामृत को भोगता है। यहा पर जिस स्वाभाविक सुखामृत के भोजन के अभाव से आत्मा इन्द्रियो के सुखो को भोगता हुआ ससारमे भ्रमण करता है, वही अतीन्द्रिय सुख सब प्रकार से ग्रहण करने योग्य है, ऐसा अभिप्राय है। इस प्रकार "कर्त्ता कर्म के फल को नही भोगता है" इस बौद्ध मत का खंडन करने के लिये "जीव कर्मफल का भोक्ता है" यह व्याख्यान रूप सूत्र समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

"आत्मा यद्यपि निश्चय नय से लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेशो का धारक है फिर भी व्यवहार नय से अपनी देह के बराबर है" यह बतलाते है —

गाथार्थः—समुद्घात के विना यह जीव व्यवहार नय से सकोच तथा विस्तार से अपने छोटे और बडे शरीर के प्रमाण रहता है और निश्चय नय से असख्यात प्रदेशो का धारक है ॥ १० ॥

वृत्त्यर्थः—"अणुगुरुदेहपमाणो" निश्चय नय से अपने देह से भिन्न तथा केवल ज्ञान आदि अनन्त गुणों की राशि से अभिन्न, ऐसे शुद्ध आतमस्वरूप की प्राप्ति के अभाव से तथा देह की ममता के मूल भूत आहार, भय, मैथुन, परिग्रह रूप संज्ञा आदि, समस्त राग आदि विभावो मे आसक्ति के होने से जीव ने जो शरीर नामकर्म उपार्जन किया उसका उदय होने पर अपने छोटे तथा बड़े देह के बराबर

रप्पसप्पदो' उपसहारप्रसर्पन शरीरनामकर्मजनितविस्तारोपसहारधर्मभ्यामित्यर्थ । कोऽत्र दृष्टान्त ? यथा प्रदीपो महद्भाजनप्रच्छादितस्तद्भाजनान्तर सर्व प्रकाशयति लघुभाजनप्रच्छादितस्तद्भाजनान्तर प्रकाशयति । पुनरपि कस्मात् ? 'असमुहदो' असमुद्घातात् वेदनाकपायविक्रियामारणान्तिकतैजसाहारककेवलिसज्ञसप्तसमुद्घातवर्जनात् । तथा चोक्त सप्तसमुद्घातलक्षणम्–'वेयणकसायवेउव्वियमारणतिओ समुग्घादो । तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीण तु ॥ १ ॥ तद्यथा–'मूलसरीरमछडिय उत्तारदेहस्स जीवपिडस्स । णिग्गमण देहादो हवदि समुग्घादय णाम ॥ १ ॥" तीव्रवेदनानुभवान्मूलशरीरमत्यक्त्वा आत्मप्रदेशाना वहिर्निर्गमनमिति वेदनासमुद्घात ॥ १ ॥ तीव्रकपायोदयान्मूलशरीरमत्यक्त्वा परस्य घातार्थमात्मप्रदेशाना वहिर्गमनमिति कपायसमुद्घात ॥ २ ॥ मूलशरीरमपरित्यज्य किमपि विकर्तुमात्मप्रदेशाना वहिर्गमनमिति विक्रियासमुद्घात ॥ ३ ॥ मरणान्तसमये मूलशरीरमपरित्यज्य यत्र कुत्रचिद्वद्धमायुस्तत्प्रदेश स्फुटितुमात्मप्रदेशाना वहिर्गमनमिति मारणान्तिकसमुद्घात ॥ ४ ॥ स्वस्य मनोनिष्टजनक किञ्चित्कारणान्तरमवलोक्य समुत्पन्नक्रो-

---

होता है। प्रश्न —शरीर प्रमाण वाला कौन है ? उत्तर —"चेदा" चेतन अर्थात् जीव है। प्रश्न —किस कारण से ? उत्तर —"उवसंहारप्पसप्पदो" सकोच तथा विस्तार स्वभाव से। यानी—शरीर नाम कर्म से उत्पन्न हुआ विस्तार तथा सकोच रूप जीव के धर्म है, उनसे यह जीव अपने देह के प्रमाण होता है। प्रश्न —यहा दृष्टान्त क्या है ? उत्तर —जैसे दीपक किसी वडे पात्र से ढक दिया जाता है तो दीपक उस पात्र के भीतर प्रकाशित करता है और यदि छोटे पात्र मे रख दिया जाता है तो उस पात्र के भीतर प्रकाशित करता है। प्रश्न —फिर अन्य किस कारण से यह जीव देह प्रमाण है ? उत्तर —"असमुहदो" समुद्घात के न होने से। वेदना, कपाय, विक्रिया, मारणान्तिक, तैजस, आहारक और केवली नामक सात समुद्घातो के न होने से जीव शरीर के वरावर होता है। (समुद्घात की दशा मे तो जीव देह से बाहर भी रहता है किन्तु समुद्घात के विना देह प्रमाण ही रहता है)। सात समुद्घातो का लक्षण इस प्रकार कहा है—"१. वेदन, २ कपाय, ३ विक्रिया, ४ मारणान्तिक, ५ तैजस, ६ आहार और ७ केवली ये सात समुद्घात है।" इनका स्वरूप यो है—'अपने मूल शरीर को न छोडते हुए जो आत्मा के कुछ प्रदेश देह से वाहर निकल कर उत्तरदेह के प्रति जाते है उसको समुद्घात कहते है।" तीव्र पीडा के अनुभव से मूल शरीर न छोडते हुए जो आत्मा के प्रदेशो का शरीर से वाहर निकलना, सो "वेदना" समुद्घात है ॥ १ ॥ तीव्र क्रोधादिक कपाय के उदय से अपने धारण किये हुए शरीर को न छोडते हुए जो आत्मा के प्रदेश दूसरे को मारने के लिये शरीर के वाहर जाते है उसको "कपाय" समुद्घात कहते है ॥ २ ॥ किसी प्रकार की विक्रिया [छोटा या वडा शरीर अथवा अन्य शरीर] उत्पन्न करने के लिये मूल शरीर को न त्याग कर जो आत्मा के प्रदेशो का वाहर जाना है उसको "विक्रिया" समुद्घात कहते है ॥ ३ ॥ मरण के समय मे मूल शरीर को न त्याग कर जहा इस आत्माने आगामी आयु वाधी है उसके छूने के लिये जो आत्म-प्रदेशो का शरीर से वाहर निकलना सो "मारणान्तिक" समुद्घात है ॥ ४ ॥

धस्य संयमनिधानस्य महामुनेर्मूलशरीरमपरित्यज्य सिन्दूरपुञ्जप्रभो दीर्घत्वेन द्वादशयोजनप्रमाण सूच्यङ्गुलसख्येयभागमूलविस्तारो नवयोजनाग्रविस्तार काहलाकृतिपुरुषो वामस्कन्धान्निर्गत्य वामप्रदक्षिणेन हृदये निहित विरुद्ध वस्तु भस्मसात्कृत्य तेनैव संयमिना सह स च भस्म व्रजति द्वीपायनवत्, असावशुभस्तेज समुद्घात· लोक व्याधिदुर्भिक्षादिपीडितमवलोक्य समुत्पन्नकृपस्य परमसयमनिधानस्य महर्षेर्मूलशरीरमपरित्यज्य शुभ्राकृति· प्रागुक्तदेहप्रमाण. पुरुषो दक्षिणप्रदक्षिणेन व्याधिदुर्भिक्षादिक स्फोटयित्वा पुनरपि स्वस्थाने प्रविशति, असौ शुभरूपस्तेजः समुद्घात । ५ । समुत्पन्नपदपदार्थभ्रान्ते· परमर्द्धिसपन्नस्य महर्षेर्मूलशरीरमपरित्यज्य शुद्धस्फटिकाकृतिरेकहस्तप्रमाण पुरुषो मस्तकमध्यान्निर्गत्य यत्र कुत्रचिदन्तर्मुहूर्तमध्ये केवलज्ञानिन पश्यति तद्दर्शनाच्च स्वाश्रयस्य मुने पदपदार्थनिश्चयं समुत्पाद्य पुन स्वस्थाने प्रविशति, असावाहारसमुद्घात । ६ । सप्तम· केवलिनां दण्डकपाटप्रतरपूरण. सोऽय केवलिसमुद्घात । ७ ।

नयविभागः कथ्यते—'ववहारा' अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयात् । 'णिच्छियणयदो असंखदेसो वा' निश्चयनयतो लोकाकाशप्रमितासख्येयप्रदेशप्रमाण. । 'वा' शब्देन तु

अपने मन को अनिष्ट उत्पन्न करने वाले किसी कारण को देखकर क्रोधित संयम के निधान महामुनि के बाएं कन्धे से सिन्दूर के ढेर जैसी कान्ति वाला, बारह योजन लम्बा, सूच्यंगुल के संख्यात भाग प्रमाण मूल-विस्तार और नौ योजन के अग्र-विस्तार वाला, काहल [विलाव] के आकार का धारक पुरुष निकल करके बायी प्रदक्षिणा देकर, मुनि जिस पर क्रोधी हो उस विरुद्ध पदार्थ को भस्म करके और उसी मुनि के साथ आप भी भस्म हो जावे। जैसे द्वीपायन मुनि के शरीर से पुतला निकल कर द्वारिका नगरी को भस्म करने के बाद उसी ने द्वीपायन मुनि को भस्म किया और वह पुतला आप भी भस्म हो गया। सो "अशुभ तैजस" समुद्घात है। तथा जगत् को रोग, दुर्भिक्ष आदि से दुखित देखकर जिसको दया उत्पन्न हुई ऐसे परम संयमनिधान महाऋषि के मूल शरीर को न त्याग कर पूर्वोक्त देह के प्रमाण, सौम्य आकृति का धारक पुरुष दाए कन्धे से निकल कर दक्षिण प्रदक्षिणा करके रोग, दुर्भिक्ष आदि को दूर कर फिर अपने स्थान मे आकर प्रवेश कर जावे वह "शुभ तैजस समुद्घात्" है। ५। पद और पदार्थ मे जिसको कुछ संशय उत्पन्न हुआ हो, उस परम ऋद्धि के धारक महर्षि के मस्तक मे से मूल शरीर को न छोड़कर, निर्मल स्फटिक के रंग का एक हाथ का पुतला निकल कर अन्तर्मुहूर्त मे जहा कही भी केवली को देखता है तब उन केवली के दर्शन से अपने आश्रय मुनि को पद और पदार्थ का निश्चय उत्पन्न कराकर फिर अपने स्थान मे प्रवेश कर जावे, सो "आहारक समुद्घात" है। ६। केवलियो के जो दड कपाट प्रतर लोक पूर्ण होता है, सो सातवा केवलि समुद्घात है ॥ ७ ॥

अब नयो का विभाग कहते है। "ववहारा" अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से जीव अपने शरीर के बराबर है तथा "णिच्छयणयदो असखदेसो वा" निश्चय नय से लोकाकाश प्रमाण जो असंख्य

स्वसंवित्तिसमुत्पन्नकेवलज्ञानोत्पत्तिप्रस्तावे ज्ञानापेक्षया व्यवहारनयेन लोकालोकव्यापक, न च प्रदेशापेक्षया नैयायिकमीमांसकसांख्यमतवत् । तथैव पञ्चेन्द्रियमनोविषयविकल्परहित-समाधिकाले स्वसंवेदनलक्षणबोधसद्भावेऽपि बहिर्विषयेन्द्रियबोधाभावाज्जड, न च सर्वथा सांख्यमतवत् । तथा रागादिविभावपरिणामापेक्षया शून्योऽपि भवति, न चानन्तज्ञानाद्यपे-क्षया बौद्धमतवत् । किञ्च—अणुमात्रशरीरशब्देनात्र उत्सेधघनाङ्गुलासंख्येयभागप्रमित लब्ध्यपूर्णसूक्ष्मनिगोदशरीर ग्राह्यम्, न च पुद्गलपरमाणु । गुरुशरीरशब्देन च योजनसह-स्रपरिमाणं महामत्स्यशरीर मध्यमावगाहेन मध्यमशरीराणि च । इदमत्रतात्पर्यम्—देहमम-त्वनिमित्तेन देह गृहीत्वा ससारे परिभ्रमति तेन कारणेन देहादिममत्व त्यक्त्वा निर्मोहनि-जशुद्धात्मनि भावना कर्तव्येति । एव स्वदेहमात्रव्याख्यानेन गाथा गता ॥ १० ॥

अत पर गाथात्रयेण नयविभागेन ससारिजीवस्वरूप तदवसाने शुद्धजीवस्वरूप च कथयति । तद्यथा —

पुढविजलतेयवाऊ वणप्फदी विविहथावरेइ दी ।
विगतिगचदुपचक्खा तसजीवा होंति संखादी ॥ ११ ॥

प्रदेश है उन प्रमाण असख्यात प्रदेशो का धारक यह आत्मा है । 'असंखदेसो वा'' यहा जो वा' शब्द दिया है उस शब्द से ग्रन्थकर्त्ता ने यह सूचित किया है कि स्वसवेदन [आत्मअनुभूति] से उत्पन्न हुए केवल ज्ञान की उत्पत्ति की अवस्था मे ज्ञान की अपेक्षा से व्यवहार नय द्वारा आत्मा लोक, अलोक व्यापक है । किन्तु नैयायिक, मीमासक तथा साख्य मत अनुयायी जिस तरह आत्मा को प्रदेशो की अपेक्षा से व्यापक मानते है, वैसा नही है । इसी तरह पाचो इन्द्रियो और मन के विषयो के विकल्पो से रहित जो ध्यान का समय है उस समय आत्म-अनुभव रूप ज्ञान के विद्यमान होने पर भी बाहरी विषय रूप इन्द्रिय ज्ञान के अभाव से आत्मा जड माना गया है परन्तु साख्य मत की तरह आत्मा सर्वथा जड नही है । इसी तरह आत्मा राग द्वेष आदि विभाव परिणामो की अपेक्षा से [उनके न होने से] शून्य होता है, किन्तु बौद्ध मत के समान अनन्त ज्ञानादि की अपेक्षा शून्य नही है ।

विशेष—अणुमात्र शरीर आत्मा है, यहा अणु शब्द से उत्सेधघनागुल के असख्यातवे भाग परिमाण जो लब्धि-अपर्याप्तक सूक्ष्म-निगोद शरीर है, उस शरीर का ग्रहण करना चाहिये किन्तु पुद्गल परमाणु का ग्रहण न करना चाहिये । एवं गुरु शरीर शब्द से एक हजार योजन प्रमाण जो महामत्स्य का शरीर है उसको ग्रहण करना चाहिये, और मध्यम अवगाहना से मध्यम शरीरो का ग्रहण है । तात्पर्य यह है—जीव देह के साथ ममत्व के निमित्त से देह को ग्रहण कर संसार मे भ्रमण करता है, इसलिये देह आदि के ममत्व को छोडकर निर्मोह अपने शुद्ध आत्मा मे भावना करनी चाहिये । इस प्रकार 'जीव स्वदेह-मात्र है' इस व्याख्यान से यह गाथा समाप्त हुई ॥ १० ॥

अब तीन गाथाओ द्वारा नय विभाग पूर्वक ससारी जीव का स्वरूप और उसके अन्त मे शुद्ध जीवका स्वरूप कहते हैं—

पृथिवीजलतेजोवायुवनस्पतयः विविधस्थावरैकेन्द्रियाः ।
द्विकत्रिकचतुःपञ्चाक्षाः त्रसजीवाः भवन्ति शंखादयः ॥ ११ ॥

व्याख्या—'होति' इत्यादिव्याख्यानं क्रियते । 'होति' अतीन्द्रियामूर्तनिजपरमात्मस्वभावानुभूतिजनितसुखामृतरसस्वभावमलभमानास्तुच्छमपीन्द्रियसुखमभिलषन्ति छद्मस्था:, तदासक्ता. सन्त एकेन्द्रियादिजीवाना घात कुर्वन्ति तेनोपार्जित यत्त्रसस्थावरनामकर्म तदुदयेन जीवा भवन्ति । कथंभूता भवन्ति ? 'पुढविजलतेयवाऊवरणप्फदो विविहथावरेइंदी' पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतय । कतिसख्योपेता ? विविधा आगमकथितस्वकीयस्वकीयान्तर्भेदैर्बहुविधा । स्थावरनामकर्मोदयेन स्थावरा, एकेन्द्रियजातिनामकर्मोदयेन स्पर्शनेन्द्रिययुक्ता एकेन्द्रिया:, न केवलमित्थ भूता स्थावरा भवन्ति । 'विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा' द्वित्रिचतु पञ्चाक्षास्त्रसनामकर्मोदयेन त्रसजीवा भवन्ति । ते च कथभूता ? 'संखादी' शङ्खादय । स्पर्शनरसनेन्द्रियद्वययुक्ता शङ्खशुक्तिकृम्यादयो द्वीन्द्रिया । स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियत्रययुक्ता: कुन्थुपिपीलिकायूकामत्कुणादयस्त्रीन्द्रिया , स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरिन्द्रियचतुष्टययुक्ता दंशमशकमक्षिकाभ्रमरादयश्चतुरिन्द्रिया , स्पर्शनरसनघ्राणचक्षु:श्रोत्रेन्द्रियपञ्चयुक्ता मनुष्यादय

गाथार्थः—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति इन भेदो से नाना प्रकार के स्थावर जीव है और ये सब एक स्पर्शन इन्द्रिय के ही धारक है तथा शंख आदि दो, तीन, चार और पाच इन्द्रियो के धारक त्रस जीव होते है ।। ११ ।।

वृत्त्यर्थः—यहा 'होति' आदि पदो की व्याख्या की जाती है । 'होति' अल्पज्ञ जीव, अतीन्द्रिय अमूर्तिक परमात्म अपने स्वभावके अनुभवसे उत्पन्न सुखरूपी अमृत रस को न पा करके, इन्द्रियोसे उत्पन्न तुच्छ सुख की अभिलाषा करते है । उस इन्द्रियजनित सुख मे आसक्त होकर एकेन्द्रिय आदि जीवो का घात करते है, उस जीव-घात से उपार्जन किये त्रस, स्थावर नाम कर्म के उदय से स्वयं त्रस, स्थावर होते है । किस प्रकार होते है ? "पुढविजलयतेयवाऊ वणप्फदीविविहथावरेइन्दी" पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा वनस्पति जीव होते है । वे कितने है ? अनेक प्रकार के है । शास्त्र मे कहे हुए अपने अपने अवान्तर भेद से बहुत प्रकार के है । स्थावर नाम कर्म के उदय से स्थावर एकेन्द्रिय जाति कर्म के उदय से स्पर्शन इन्द्रिय सहित एकेन्द्रिय होते है । इस प्रकार से केवल स्थावर ही नही होते बल्कि "विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा" दो, तीन, चार तथा पाच इन्द्रियो वाले त्रस नाम कर्म के उदय से त्रस जीव भी होते है । वे कैसे है ? "सखादी" शंख आदि । स्पर्शन और रसना इन दो इन्द्रियो वाले शंख, कृमि, सीप आदि दो इन्द्रिय जीव है । स्पर्शन, रसना तथा घ्राण इन तीन इन्द्रियो वाले कुन्थु, पिपीलिका (कीडी), जूं, खटमल आदि तीन इन्द्रिय जीव है । स्पर्शन, रसना, घ्राण और नेत्र इन चार इन्द्रियो वाले डास, मच्छर, मक्खी, भौरा, वर्र आदि चतुरिन्द्रिय जीव है । स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन पाचो इन्द्रियो वाले मनुष्य आदि पचेन्द्रिय जीव है । साराश यह है कि निर्मल ज्ञान, दर्शन स्वभाव निज पर-

पञ्चेन्द्रिया इति । अयमत्रार्थ —विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मस्वरूपभावनोत्पन्नपारमार्थिकसुखमलभमाना इन्द्रियसुखासक्ता एकेन्द्रियादिजीवाना वध कृत्वा त्रसस्थावरा भवन्तीत्युक्तं पूर्व तस्मात्त्रसस्थावरोत्पत्तिविनाशार्थ तत्रैव परमात्मनि भावना कर्त्तव्येति ॥ ११ ॥

तदेव त्रसस्थावरत्व चतुर्दशजीवसमासरूपेण व्यक्तीकरोति —

समणा अमणा णेया पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे ।

बादरसुहमेइ दी सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥ १२ ॥

समनस्काः अमनस्काः ज्ञेयाः पचेन्द्रियाः निर्मनस्काः परे सर्वे ।

बादरसूक्ष्मैकेन्द्रियाः सर्वे पर्याप्ताः इतरे च ॥ १२ ॥

व्याख्या —"समणा अमणा" समस्तशुभाशुभविकल्पातीतपरमात्मद्रव्यविलक्षण नानाविकल्पजालरूप मनो भण्यते, तेन सह ये वर्त्तन्ते ते समनस्का सज्ञिन, तद्विपरीता अमनस्का असज्ञिन । 'णेया' ज्ञेया ज्ञातव्या । 'पचिदिय' ते सज्ञिनस्तथैवासज्ञिनश्च पञ्चेन्द्रिया । एव सज्ञ्यसज्ञिपञ्चेन्द्रियास्तिर्यञ्च एव, नारकमनुष्यदेवा सज्ञिपञ्चेन्द्रिया एव । 'णिम्मणा परे सव्वे' निर्मनस्का पञ्चेन्द्रियात्सकाशात् परे सर्वे द्वित्रिचतुरिन्द्रिया. । 'बादरसुहमेइ दी' बादरसूक्ष्मा एकेन्द्रियास्तेऽपि यदष्टपत्रपद्माकार द्रव्यमनस्तदाधारेण शिक्षालापो-

---

मात्मस्वरूप की भावना से उत्पन्न जो पारमार्थिक सुख है उसको न पाकर जीव इन्द्रियो के सुख मे आसक्त होकर जो एकेन्द्रियादि जीवो की हिसा करते हैं उससे त्रस तथा स्थावर होते है, ऐसा पहले कह चुके है, इस कारण त्रस, स्थावरो मे जो उत्पत्ति होती है, उसको मिटाने के लिये उसी पूर्वोक्त प्रकार से परमात्मा मे भावना करनी चाहिये ॥ ११ ॥

अब उसी त्रस तथा स्थावर पन को १४ जीवसमासो द्वारा प्रकट करते है.—

गाथार्थ:—पचेन्द्रिय जीव सज्ञी और असंज्ञी ऐसे दो तरह के जानने चाहिये, शेष सब जीव मन रहित असंज्ञी है। एकेन्द्रिय जीव बादर और सूक्ष्म दो प्रकार के है। और ये सब जीव पर्याप्त तथा अपर्याप्त होते है। (पंचेन्द्रिसज्ञी, पचेन्द्रिय असज्ञी, दो-इन्द्रिय, ते-इन्द्रिय, चौ-इन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय बादर एकेन्द्रिय इन सातो के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से जीव समास १४ होते है)। ॥ १२ ॥

वृत्त्यर्थ —"समणा अमणा" समस्त शुभ अशुभ विकल्पो से रहित जो परमात्मरूप द्रव्य उससे विलक्षण अनेक तरह के विकल्पजालरूप मन है, उस मन से सहित जीव को 'समनस्कसज्ञी' कहते है। तथा मन से शून्य अमनस्क यानी असंज्ञी 'णेया' जानने चाहिये। 'पचिदिया' 'पचेन्द्रिय जीव सज्ञी तथा असज्ञी दोनो होते है। ऐसे सज्ञी तथा असंज्ञी ये दोनो पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च ही होते है। नारकी, मनुष्य और देव संज्ञीपंचेन्द्रिय ही होते है। "णिम्मणा परे सव्वे" पंचेन्द्रिय से भिन्न अन्य सब द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चारन्द्रिय जीव मन रहित असंज्ञी होते है। "बादरसुहमेइंदी" बादर और सूक्ष्म जो एकेन्द्रिय जीव है, वे

पदेशादिग्राहकं भावमनश्चेति तदुभयाभावादसंज्ञिन एव । 'सव्वे पज्जत्त इदरा य' एवमुक्त-प्रकारेण सञ्ज्ञ्यसञ्ज्ञिरूपेण पञ्चेन्द्रियद्वयं द्वित्रिचतुरिन्द्रियरूपेण विकलेन्द्रियत्रय बादरसूक्ष्म-रुपेणैकेन्द्रियद्वयं चेति सप्त भेदा । 'आहारसरीरिदिय पज्जत्ती आणपाणभासमणो । चत्तारिपंचछप्पियएइंन्दियवियलसण्णिसण्णीण ॥ १ ॥' इति गाथाकथितक्रमेण ते सर्वे प्रत्येकं स्वकीयस्वकीयपर्याप्तिसंभवात्सप्त पर्याप्ता सप्तापर्याप्ताश्च भवन्ति । एव चतुर्दशजीव-समासा ज्ञातव्यास्तेषा च 'इन्दियकायाऊणिय पुण्णापुण्णेसु पुण्णगे आणा । बेइंदियादिपुण्णे वचिमणो सण्णिपुण्णेव ॥ १ ॥ दस सण्णीण पाणा सेसेगूणंति मस्सवे ऊणा । पज्जतेसिद-रेसु य सत्तदुगे सेसगेगूणा ॥ २ ॥' इति गाथाद्वयकथितक्रमेण यथासभवमिन्द्रियादिदशप्रा-णाश्च विज्ञेया. । अत्रैतेभ्यो भिन्न निजशुद्धात्मतत्त्वमुपादेयमिति भावार्थ ॥ १२ ॥

अथ शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावा अपि जीवाः पश्चादशुद्धनयेन चतुर्दशमार्गणास्थानचतुर्दशगुणस्थानसहिता भवन्तीति प्रतिपा-दयति :—

भी आठ पाखंडी के कमल के आकार जो द्रव्य मन और उस द्रव्य मन के आधार से शिक्षा, वचन, उपदेश आदि का ग्राहक भावमन, इन दोनो प्रकार के मन न होने से असंज्ञी ही है । "सव्वे पज्जत्त इदरा य" इस तरह उक्त प्रकार से संज्ञी और असज्ञी दोनो पंचेन्द्रिय और द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय रूप विकलत्रय तथा बादर सूक्ष्म दो तरह के एकेन्द्रिय ये सात भेद हुए । आहार, शरीर, इन्द्रिय श्वासो-च्छ्वास, भाषा तथा मन ये ६ पर्याप्तिया है । इनमे से एकेन्द्रिय जीव के आहार, शरीर, स्पर्शनेन्द्रिय तथा श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्तिया होती है । विकलेन्द्रिय [दो इंद्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय,] तथा असज्ञी पचेन्द्रिय जीवो के मन के बिना पाच पर्याप्तिया होती है और सज्ञी पंचेन्द्रिय के छहों पर्या-प्तिया होती है ।

इस गाथा मे कहे हुए क्रम से वे जीव अपनी-अपनी पर्याप्तियो के पूर्ण होने से सातो पर्याप्त है और अपनी पर्याप्तियां पूरी न होने की दशा मे सातो अपर्याप्त भी होते है । ऐसे चौदह जीव समास जानने चाहिये । 'इन्द्रिय, काय, आयु ये तीन प्राण, पर्याप्त और अपर्याप्त दोनो ही के होते है । श्वासोच्छ्वास पर्याप्त के ही होता है । वचन बल प्राण पर्याप्त द्वीन्द्रिय आदि के ही होता है । मनोबल प्राण सज्ञीपर्याप्त के ही होता है । १ । 'पर्याप्त अवस्था में सज्ञी पञ्चेन्द्रियो के १० प्राण, असंज्ञी पंचेन्द्रियो के मन के बिना ९ प्राण, चौइन्द्रियो के मन और कर्ण इन्द्रिय के बिना ८ प्राण, तीन इन्द्रियो के मन, कर्ण और चक्षु के विना ७ प्राण, दो इन्द्रियो के मन कर्ण, चक्षु और घ्राण के बिना ६ प्राण और एकेन्द्रियोके मन, कर्ण, चक्षु, घ्राण, रसना तथा वचन बल के बिना ४ प्राण होते है । अपर्याप्त जीवो मे संज्ञी तथा असज्ञी इन दोनो पंचेन्द्रियो के श्वासोच्छ्वास, वचनबल और मनोबल के बिना ७ प्राण होते है और चौइन्द्रिय से एकेन्द्रिय तक क्रम से एक एक प्राण घटता हुआ है । २ ।' इन दो गाथाओ द्वारा कहे हुए क्रम से यथा-संभव इन्द्रियादिक दश प्राण समझने चाहिये । अभिप्राय यह है कि इन पर्याप्तियो तथा प्राणों से भिन्न अपना शुद्ध आत्मा ही उपादेय है ॥ १२ ॥

मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया ।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ।। १३ ।।

मार्गणागुणस्थानैः चतुर्दशभिः भवन्ति तथा अशुद्धनयात् ।
विज्ञेयाः संसारिणः सर्वे शुद्धाः खलु शुद्धनयात् ।। १३ ।।

व्याख्या —'मग्गणगुणठाणेहि य हवंति तह विण्णेया' यथा पूर्वसूत्रोदितचतुर्दशजीवसमासैर्भवन्ति मार्गणागुणस्थानैश्च तथा भवन्ति सभवन्तीति विज्ञेया ज्ञातव्या । कतिसख्योपेतै ? 'चउदसहि' प्रत्येक चतुर्दशभि । कस्मात् ? 'असुद्धणया' अशुद्धनयात् सकाशात् । इत्थभूता के भवन्ति ? 'ससारी' सासारिजीवा । 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया' त एव सर्वे ससारिण शुद्धा सहजशुद्धज्ञायकैकस्वभावा । कस्मात् ? शुद्धनयात् शुद्धनिश्चयनयादिति । अथागमप्रसिद्धगाथाद्वयेन गुणस्थाननामानि कथयति । 'मिच्छो सासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य । विरया पमत्त इयरो अपुव्व अणियट्ठि सुहमो य ।। १ ।। उवसत खीणमोहो सजोगिकेवलिजिणो अजोगी या । चउदस गुणठाणाणि य कमेण सिद्धा य णायव्वा ।। २ ।।' इदानी तेषामेव गुणस्थानाना प्रत्येक सक्षेपलक्षण कथ्यते । तथाहि-सहजशुद्धकेवलज्ञानदर्शनरूपाखण्डैकप्रत्यक्षप्रतिभासमयनिजपरमात्मप्रभृतिषड्द्रव्यपञ्चास्ति-

---

अब शुद्ध पारिणामिक परम भाव का ग्राहक जो शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है उसकी अपेक्षा सब जीव शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव के धारक है तो भी अशुद्ध नय से चौदह मार्गणा स्थान और चौदह गुणस्थानो सहित होते है, ऐसा बतलाते है —

गाथार्थः—संसारी जीव अशुद्ध नय की दृष्टि से चौदह मार्गणा तथा चौदह गुण स्थानो के भेद से चौदह २ प्रकार के होते हैं और शुद्धनय से सभी ससारी जीव शुद्ध है।

वृत्त्यर्थ — 'मग्गणगुणठाणेहि य हवंति तह विण्णेया'' जिस प्रकार पूर्व गाथा मे कहे हुए १४ जीव समासो से जीवो के १४ भेद होते है उसी तरह मार्गणा और गुणस्थानो से भी होते है, ऐसा जानना चाहिये । मार्गणा और गुणस्थानो से कितनी सख्या वाले होते है ? ''चउदसहि'' प्रत्येक से १४-१४ सख्या वाले है। किस अपेक्षा से ? ''असुद्धणया'' अशुद्ध नयकी अपेक्षा से । मार्गणा और गुणस्थानो से अशुद्ध नयकी अपेक्षा चौदह-चौदह प्रकार के कौन होते है ? ''संसारी'' ससारी जीव होते है। ''सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'' वेही सब ससारी जीव शुद्ध यानी-स्वाभाविक शुद्ध ज्ञायक रूप एक-स्वभाव-धारक है। किस अपेक्षा से ? शुद्ध नय से अर्थात् शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा से ।

अब शास्त्र प्रसिद्ध दो गाथाओ द्वारा गुणस्थानो के नाम कहते है । ''मिथ्यात्व १, सासादन २, मिश्र ३, अविरतसम्यक्त्व ४, देशविरत ५, प्रमत्तविरत ६, अप्रमत्तविरत ७, अपूर्वकरण ८ अनिवृत्तिकरण ९, सूक्ष्म साम्पराय १०, उपशान्तमोह ११, क्षीणमोह १२, सयोगिकेवली १३ और, अयोगिकेवली १४ इस

कायसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु मूढत्रयादिपञ्चविंशतिमलरहितं वीतरागसर्वज्ञप्रणीतनयविभागेन यस्य श्रद्धानं नास्ति स मिथ्यादृष्टिर्भवति। पाषाणरेखासदृशानन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभान्यतरोदयेन प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वात्पतितो मिथ्यात्वं नाद्यापि गच्छतीत्यन्तरालवर्ती सासादनः। निजशुद्धात्मादितत्त्वं वीतरागसर्वज्ञप्रणीतं परप्रणीतं च मन्यते यः स दर्शनमोहनीयभेदमिश्रकर्मोदयेन दधिगुडमिश्रभाववत् मिश्रगुणस्थानवर्त्ती भवति। अथ मतं—येन केनाप्येकेन मम देवेन प्रयोजनं तथा सर्वे देवा वन्दनीया न च निन्दनीया इत्यादिवैनयिकमिथ्यादृष्टिः संशयमिथ्यादृष्टिर्वा तथा मन्यते तेन सह सम्यग्मिथ्यादृष्टेः को विशेष इति? अत्र परिहारः—'स सर्वदेवेषु सर्वसमयेषु च भक्तिपरिणामेन येन केनाप्येकेन मम पुण्यं भविष्यतीति मत्वा संशयरूपेण भक्तिं कुरुते निश्चयो नास्ति। मिश्रस्य पुनरुभयत्र निश्चयोऽस्तीति विशेषः।' स्वाभाविकानन्तज्ञानाद्यनन्तगुणाधारभूतं निजपरमात्मद्रव्यमुपादेयम्, इंद्रियसुखादिपरद्रव्यं हि हेयमित्यर्हत्सर्वज्ञप्रणीतनिश्चयव्यवहारनयसाध्यसाधकभावेन मन्यते परं किन्तु भूमिरेखादिसदृशक्रोधादिद्वितीयकषायोदयेन मारणनिमित्तं तलवरगृहीततस्करव-

---

तरह क्रम से चौदह गुणस्थान जानने चाहिये ॥ २ ॥ अब इन गुणस्थानो मे से प्रत्येक का सक्षेप से लक्षण कहते है। वह इस प्रकार स्वाभाविक शुद्ध केवल ज्ञान केवल दर्शन रूप अखंड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय निजपरमात्मा आदि षट द्रव्य, पाच अस्तिकाय, सात तत्व और नव पदार्थो मे तीन मूढता आदि पच्चीस दोष रहित वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कहे हुए नयविभाग से जिस जीव के श्रद्धान नही है वह जीव "मिथ्यादृष्टि," होता है ॥ १ ॥ पाषाणरेखा [पत्थर मे उकेरी हुई लकीर] के समान जो अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ में से किसी एक के उदय से प्रथम–औपशमिक सम्यक्त्व से, गिरकर जब तक मिथ्यात्व को प्राप्त न हो, तब तक सम्यक्त्व और मिथ्यात्व इन दोनो के बीच के परिणाम वाला जीव "सासादन" होता है। २। जो अपने शुद्ध आत्मा आदि तत्वो को वीतराग सर्वज्ञ के कहे अनुसार मानता है और अन्य मत के अनुसार भी मानता है वह मिश्र दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से दही और गुड मिले हुए पदार्थ की भाति "मिश्रगुण स्थान वाला" है। ३। शका—"चाहे जिससे हो हो मुझे तो एक देव से मतलब है अथवा सब ही देव वन्दनीय है, निन्दा किसी भी देव की न करनी चाहिये" इस प्रकार वैनयिक और संशय मिथ्यादृष्टि मानता है, तब उनमे तथा मिश्रगुणस्थानवर्त्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टि मे क्या अन्तर है? इसका उत्तर यह है कि–वैनयिक मिथ्यादृष्टि तथा संशयमिथ्यादृष्टि तो सभी देवो मे तथा सब शास्त्रो मे से किसी एक की भक्ति के परिणाम से मुझे पुण्य होगा ऐसा मानकर संशय रूप से भक्ति करता है, उसको किसी एक देव मे निश्चय नही है। और मिश्रगुणस्थानवर्त्ती जीव के दोनो मे निश्चय है। बस, यही अन्तर है। जो "स्वाभाविक अनन्त ज्ञान आदि अनन्त गुणका आधारभूत निज परमात्मद्रव्य उपादेय है तथा इन्द्रिय सुख आदि परद्रव्य त्याज्य है" इस तरह सर्वज्ञ देवप्रणीत निश्चय व व्यवहार नय को साध्य-साधक भाव से मानता है, परन्तु भूमि की रेखा के समान क्रोध आदि अप्रत्याख्यानकषाय के उदय से, मारने के लिये कोतवाल से पकड़े हुए चोर की भांति आत्म निन्दादि सहित होकर इन्द्रिय-सुख का अनुभव करता है; यह "अविरत सम्यग्दृष्टि" चौथे गुण स्थान-

दात्मनिन्दासहित सन्निन्द्रियसुखमनुभवतीत्यविरतसम्यग्दृष्टेर्लक्षणम् । य पूर्वोक्तप्रकारेण सम्यग्दृष्टि सन् भूमिरेखादिसमानक्रोधादिद्वितीयकषायोदयाभावे सत्यभ्यन्तरे निश्चयनयेनैकदेशरागादिरहितस्वाभाविकसुखानुभूतिलक्षणेषु वहिर्विषयेषु पुनरेकदेशहिंसानृतास्तेयाब्रह्मपरिग्रहनिवृत्तिलक्षणेषु 'दसणवयसामाइयपोसहसचित्तराइभत्ते य। वम्हारंभपरिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य ॥ १ ॥ इति गाथाकथितैकादशनिलयेषु वर्तते स पञ्चमगुणस्थानवर्ती श्रावको भवति ॥ ५ ॥ स एव सद्दृष्टिर्धूलिरेखादिसदृशक्रोधादितृतीयकषायोदयाभावे सत्यभ्यन्तरे निश्चयनयेन रागाद्युपाधिरहितस्वशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतानुभवलक्षणेषु वहिर्विषयेषु पुन सामस्त्येन हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहनिवृत्तिलक्षणेषु च पञ्चमहाव्रतेषु वर्त्तते यदा तदा दु स्वप्नादिव्यक्ताव्यक्तप्रमादसहितोऽपि षष्ठगुणस्थानवर्ती प्रमत्तसंयतो भवति । ६ । स एव जलरेखादिसदृशसंज्वलनकषायमन्दोदये सति निष्प्रमादशुद्धात्मसंवित्तिमलजनकव्यक्ताव्यक्तप्रमादरहित सन्सप्तमगुणस्थानवर्ती अप्रमत्तसंयतो भवति । ७ । स एवातीतसंज्वलनकषायमन्दोदये सत्यपूर्वपरमाह्लादैकसुखानुभूतिलक्षणापूर्वकरणोपशमकक्षपकसंज्ञोऽष्टमगुणस्थानवर्ती भवति । ८ । दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षादिरूपसमस्तसंकल्पविकल्परहितनिजनिश्चलपरमात्मतत्त्वैकाग्रध्यानपरिणामेन कृत्वा येषा जीवानामेकसमये ये परस्परं पृथक्कर्तु नायान्ति ते वर्णसंस्थानादिभेदेऽप्यनिवृत्तिकरणौपशमिकक्षपकसंज्ञा द्वितीयकषायाद्येकविंशतिभेदभिन्नचारित्रमोहप्रकृतीनामुपशमनक्षपणसमर्था नवमगुण-

---

वर्त्ती का लक्षण है ॥ ८ ॥ पूर्वोक्त प्रकार से सम्यग्दृष्टि होकर भूमिरेखादि के समान क्रोधादि अप्रत्याख्यानावरण द्वितीय कषायो के उदय का अभाव होने पर अन्तरग मे निश्चय नय से एक देश राग आदि से रहित स्वाभाविक सुख के अनुभव लक्षण तथा वाह्य विषयो मे हिसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म ओर परिग्रह इनके एक देश त्याग रूप पाच अणुव्रतो मे और "दर्शन, व्रत, सामयिक, प्रोषध, सचित्तविरत, रात्रिभुक्ति त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग ॥ १ ॥ इस गाथा मे कहे हुए श्रावक के एकादश स्थानो मे से किसी एक मे वर्तने वाला है वह "पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक" होता है ॥ ५ ॥ जब वही सम्यग्दृष्टि, धूलि की रेखा के समान क्रोध आदि प्रत्याख्यानावरण तीसरी कषाय के उदय का अभाव होने पर निश्चय नय से अन्तरङ्ग मे राग आदि उपाधि-रहित निज-शुद्ध अनुभव मे उत्पन्न सुखामृत के अनुभव लक्षण रूप वाहरी विषयो मे सम्पूर्ण रूप से हिसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह के त्याग रूप ऐसे पाच महाव्रतो का पालन करता है, तब वह बुरे स्वप्न आदि प्रकट तथा अप्रकट प्रमाद सहित होता हुआ छठे गुणस्थानवर्त्ती "प्रमत्तसंयत" होता है ।६। वही, जलरेखा के तुल्य सज्वलन कषाय का मन्द उदय होने पर प्रमाद रहित जो शुद्ध आत्मा का अनुभव है उसमे मल उत्पन्न करने वाले व्यक्त अव्यक्त प्रमादो से रहित होकर, सप्तम गुणस्थानवर्त्ती "अप्रमत्तसंयत" होता है । ७ । वही, अतीत संज्वलन कषाय का मन्द उदय होने पर, अपूर्व परमआल्हाद एक सुख अनुभव रूप 'अपूर्वकरण मे उपशमक या क्षपक नामक अष्टम गुणस्थानवर्त्ती" होता है ॥ ८ ॥

स्थानवर्तिनो भवन्ति । ९ । सूक्ष्मपरमात्मतत्वभावनाबलेन सूक्ष्मकृष्टिगतलोभकषायस्योपशमका क्षपकाश्च दशमगुणस्थानवर्तिनो भवन्ति । १० । परमोपशममूर्तिनिजात्मस्वभावसंवित्तिबलेन सकलोपशान्तमोहा एकादशगुणस्थानवर्तिनो भवति । ११ । उपशमश्रेणिविलक्षणेन क्षपकश्रेणिमार्गेण निष्कषायशुद्धात्मभावनाबलेन क्षीणकषायाद्वादशगुणस्थानवर्तिनो भवन्ति । १२ । मोहक्षपणानन्तरमन्तर्मुहूर्तकाल स्वशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणैकत्ववितर्कावीचारद्वितीयशुक्लध्याने स्थित्वा तदन्त्यसमये ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायत्रयं युगपदेकसमयेन निर्मूल्य मेघपञ्जरविनिर्गतदिनकर इव सकलविमलकेवलज्ञानकिरणैर्लोकालोकप्रकाशकास्त्रयोदशगुणस्थानवर्तिनो जिनभास्करा भवन्ति । १३ । मनोवचनकायवर्गणालम्बनकर्मादाननिमितात्मप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणयोगरहिताश्चतुर्दशगुणस्थानवर्तिनोऽयोगिजिना भवति । १४ । तपश्च निश्चयरत्नत्रयात्मककारणभूतसमयसारसज्ञेन परमयथाख्यातचारित्रेण चतुर्दशगुणस्थानातीता ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मरहिता सम्यक्त्वाद्यष्टगुणान्तर्भूतनिर्नामनिर्गोत्राद्यनतगुणा सिद्धा भवति ।

देखे, सुने और अनुभव किये हुए भोगो की वाछादिरूप सपूर्ण सकल्प तथा विकल्प रहित अपने निश्चल परमात्मस्वरूप के एकाग्र ध्यान के परिणाम से जिनजीवो के एक समय मे परस्पर अन्तर नही होता वे वर्ण तथा संस्थान के भेद होने पर भी अनिवृत्तिकरण उपशमक क्षपक संज्ञा के धारक, अप्रत्याख्यानावरण द्वितीय कषाय आदि इक्कीस प्रकार की चारित्रमोहनीय कर्म की प्रकृतियो के उपशमन और क्षपण मे समर्थ "नवम गुणस्थानवर्त्ती" जीव है। ९। सूक्ष्म परमात्मतत्त्व भावनाके बल से जो सूक्ष्म कृष्टि रूप लोभ कपाय के उपशमक और क्षपक है वे दशम 'गुणस्थानवर्त्ती' है।१०। परम उपशममूर्त्ति निज आत्मा के स्वभाव अनुभव के वल से सम्पूर्ण मोह को उपशम करने वाले ग्यारहवे 'गुणस्थानवर्त्ती' होते है।११। उपशमश्रेणी से भिन्न क्षपकश्रेणी के मार्ग से कपाय रहित शुद्ध आत्मा की भावना के वल से जिनके समस्त कपाय नष्ट हो गये है वे बारहवे "गुणस्थानवर्त्ती" होते है ॥ १२ ॥ मोह के नाश होने के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त्त काल मे ही निज शुद्ध आत्मानुभव रूप एकत्व वितर्क अवीचार नामक द्वितीय शुक्ल ध्यान मे स्थिर होकर उसके अन्तिम समय मे ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय इन तीनो को एक साथ एक काल मे सर्वथा निर्मूल करके मेघपटल से निकले हुए सूर्य के समान सम्पूर्ण निर्मल केवल ज्ञान किरणो से लोक अलोक के प्रकाशक तेरहवे "गुणस्थानवर्त्ती" जिन भास्कर (सूर्य) होते है ॥ १३ ॥ और मन, वचन, कायवर्गणा के अवलम्बन से कर्मों के ग्रहण करने मे कारण जो आत्मा के प्रदेशो का परिस्पन्द रूप योग है उससे रहित चौदहवे "गुणस्थानवर्त्ती" "अयोगी जिन" होते है ॥ १४ ॥ तदन्तर निश्चय रत्नत्रयात्मक कारणभूत समयसार नामक जो परम यथाख्यात चारित्र है उससे पूर्वोक्त चौदह गुणस्थानो से रहित, ज्ञानावरण आदि अष्ट कर्मो से रहित तथा सम्यक्त्व आदि अष्ट गुणो मे गर्भित निर्नाम (नाम रहित) निर्गोत्र (गोत्र रहित) आदि अनन्त गुण सहित सिद्ध होते है।

अत्राह शिष्य —-केवलज्ञानोत्पत्तौ मोक्षकारणभूतरत्नत्रयपरिपूर्णतायां सत्यां तस्मिन्नेव क्षणे मोक्षेण भाव्यं सयोग्ययोगिजिनगुणस्थानद्वये कालो नास्तीति ? परिहारमाह—यथाख्यातचारित्रं जातं परं किन्तु परमयथाख्यानं नास्ति। अत्र दृष्टान्त। यथा—चौरव्यापाराभावेऽपि पुरुषस्य चौरसंसर्गो दोषं जनयति तथा चारित्रविनाशकचारित्रमोहोदयाभावेऽपि सयोगिकेवलिनां निष्क्रियशुद्धात्माचरणविलक्षणो योगत्रयव्यापारश्चारित्रमलं जनयति, योगत्रयगते पुनरयोगिजिने चरमसमयं विहाय शेषाघातिकर्मतीव्रोदयश्चारित्रमलं जनयति, चरमसमये तु मन्दोदये सति चारित्रमलाभावात् मोक्षं गच्छति। इति चतुर्दशगुणस्थानव्याख्यानं गतम्। इदानीं मार्गणाः कथ्यन्ते। 'गइ इंदियेसु काये जोगे वेदे कसायणाणे य। संयम दंसण लेस्सा भविया सम्मत्तसण्णि आहारे ॥ १ ॥' इति गाथाकथितक्रमेण गत्यादिचतुर्दशमार्गणा ज्ञातव्या। तद्यथा—-स्वात्मोपलब्धिसिद्धिविलक्षणा नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवगतिभेदेन चतुर्विधा गतिमार्गणा भवति। १। अतीन्द्रियशुद्धात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूता ह्येकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियभेदेन पञ्चप्रकारेन्द्रियमार्गणा। २। अशरीरात्मतत्त्वविसदृशी पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायभेदेन षड्भेदा कायमार्गणा। ३। निर्व्यापारशुद्धात्मपदार्थविलक्षणमनोवचनकाययोगभेदेन त्रिधा योगमार्गणा, अथवा विस्तरेण सत्यासत्योभयानुभयभेदेन

यहां शिष्य पूछता है कि केवल ज्ञान हो जाने पर जब मोक्ष के कारण भूतरत्नत्रय की पूर्णता हो गई तो उसी समय मोक्ष होना चाहिये, सयोगी और अयोगी इन दो गुण स्थानों मे रहने का कोई समय ही नही है ?

इस शंका का परिहार करते है कि केवल ज्ञान हो जाने पर यथाख्यात चारित्र तो हो जाता है किन्तु परम यथाख्यात चारित्र नही होता है। यहां दृष्टान्त है—जैसे कोई मनुष्य चोरी नही करता, किंतु उसको चोर के संसर्ग का दोष लगता है, उसी तरह सयोग केवलियों के चारित्र के नाश करने वाले चारित्रमोह के उदय का अभाव है तो भी निष्क्रिय शुद्ध आत्मा के आचरण से विलक्षण जो तीन योगों का व्यापार है वह चारित्र मे दूषण उत्पन्न करता है। तीनों योगों से रहित जो अयोगी जिन हैं उनके अन्त समय को छोडकर शेष चार अघातिया कर्मो का तीव्र उदय चारित्र मे दूषण उत्पन्न करता है और अन्तिम समय मे उन अघातिया कर्मो का मन्द उदय होने पर चारित्र मे दोष का अभाव हो जाने से अयोगी जिन मोक्ष को प्राप्त हो जाते है। इस प्रकार चौदह गुणस्थानों का व्याख्यान समाप्त हुआ।

अब चौदह मार्गणाओं को कहते है "गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञा तथा आहार। १।" इस तरह क्रमसे गति आदि चतुर्दश मार्गणा जाननी चाहिये। निज आत्मा की प्राप्ति से विलक्षण नारक, तिर्यक्, मनुष्य तथा देवगति भेद से गतिमार्गणा चार प्रकार की है—१ अतीन्द्रिय, शुद्ध आत्मतत्त्व के प्रतिपक्षभूत एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय भेद से इन्द्रियमार्गणा पांच प्रकार की है। २। शरीर रहित आत्मतत्त्व से भिन्न पृथिवी, जल, अग्नि वायु, वनस्पति और त्रस काय के भेद से कायमार्गणा छह तरह की होती है। ३। व्यापार रहित शुद्ध आत्मतत्त्व से विलक्षण मनोयोग, वचनयोग तथा काययोग के भेद से योग-

चतुर्विधो मनोयोगो वचनयोगश्च, औदारिकौदारिकमिश्रवैक्रियिकवैक्रियिकमिश्राहारकाहारकमिश्रकार्मणकायभेदेन सप्तविधो काययोगश्चेति समुदायेन पञ्चदशविधा वा योगमार्गणा । ४ । वेदोदयोद्भवरागादिदोषरहितपरमात्मद्रव्याद्भिन्ना स्त्रीपुंनपुंसकभेदेन त्रिधा वेदमार्गणा ॥ ५ ॥ निष्कषायशुद्धात्मस्वभावप्रतिकूलक्रोधलोभमायामानभेदेन चतुर्विधा कषायमार्गणा, विस्तरेण कषायनोकषायभेदेन पञ्चविंशतिविधा वा ॥ ६ ॥ मत्यादिसंज्ञापञ्चक कुमत्याद्यज्ञानत्रयं चेत्यष्टविधा ज्ञानमार्गणा ॥ ७ ॥ सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातभेदेन चारित्र पञ्चविधम्, सयमासयमस्तथैवासयमश्चेति प्रतिपक्षद्वयेन सह सप्तप्रकारा सयममार्गणा । ८ । चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनभेदेन चतुर्विधा दर्शनमार्गणा । ९ । कषायोदयरञ्जितयोगप्रवृत्तिविसदृशपरमात्मद्रव्यप्रतिपन्थिनी१ कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्लभेदेन षड्विधा लेश्यामार्गणा । १० । भव्याभव्यभेदेन द्विविधा भव्यमार्गणा । ११ । अत्राह शिष्य —शुद्धपारिणामिकपरमभावरूपशुद्धनिश्चयेन गुणस्थानमार्गणास्थानरहिता जीवा इत्युक्त पूर्वम्, इदानी पुनर्भव्याभव्यरूपेण मार्गणामध्येऽपि पारिणामिक-

---

मार्गणा तीन प्रकार की है अथवा विस्तार से सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग उभयमनोयोग और अनुभयमनोयोग के भेद से चार प्रकार का मनोयोग है। ऐसे ही सत्य, असत्य, उभय, अनुभय इन चार भेदो से वचन योग भी चार प्रकार का है एवं औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मण ऐसे काययोग सात प्रकार का है। सब मिलकर योगमार्गणा १५ प्रकार की हुई। ४। वेद के उदय से उत्पन्न होने वाले रागादिक दोषो से रहित जो परमात्मद्रव्य है उससे भिन्न स्त्रीवेद; पुंवेद और नपुंसकवेद ऐसे तीन प्रकार की वेदमार्गणा है । ५ । कषाय रहित शुद्ध आत्मा के स्वभाव से प्रतिकूल क्रोध, मान, माया, लोभ भेदो से चार प्रकार की कषायमार्गणा है। विस्तार से अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण तथा संज्वलन भेद से १६ कषाय और हास्यादिक भेद से ९ नो कषाय ये सब मिलकर पच्चीस प्रकार की कषायमार्गणा है। ६। मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय और केवल, पाच ज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत और विभंगावधि ये तीन अज्ञान इस तरह ८ प्रकार की ज्ञानमार्गणा है। ७। सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसापराय और यथाख्यात ये पाच प्रकार का चारित्र और सयमासंयम तथा असयम ये दो प्रतिपक्षी, ऐसे सयममार्गणा सात प्रकार की है। ८। चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवलदर्शन इन भेदोसे दर्शनमार्गणा चार प्रकार की है। ९। कषायो के उदय से रगी हुई जो मन, वचन, काय की प्रवृत्ति है उससे भिन्न जो परमात्मद्रव्य है, उस परमात्मद्रव्य से विरोध करने वाली कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल ऐसे ६ प्रकार की लेश्यामार्गणा है। १०। भव्य और अभव्य भेद से भव्य मार्गणा दो प्रकार की है। ११।

यहा शिष्य प्रश्न करता है कि—"शुद्धपारिणामिक परमभावरूप शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा से

१. "प्रतिपक्षी" इति पाठान्तरं।

भावो भणित इति पूर्वापरविरोध ? अत्र परिहारमाह—पूर्व शुद्धपारिणामिकभावापेक्षया गुणस्थानमार्गणानिषेध कृत, इदानी पुनर्भव्याभव्यत्वद्वयमशुद्धपारिणामिकभावरूप मार्गणामध्येऽपि घटते। ननु—शुद्धाशुद्धभेदेन पारिणामिकभावो द्विविधो नास्ति किन्तु शुद्ध एव ? नैव यद्यपि सामान्यरूपेणोत्सर्गव्याख्यानेन शुद्धपारिणामिकभाव कथ्यते तथाप्यपवादव्याख्यानेनाशुद्धपारिणामिकभावोऽप्यस्ति । तथाहि—'जीवभव्याभव्यत्वानि च' इति तत्त्वार्थसूत्रे त्रिधा पारिणामिकभावो भणित, तत्र शुद्धचैतन्यरूप जीवत्वमविनश्वरत्वेन शुद्धद्रव्याश्रितत्वाच्छुद्धद्रव्यार्थिकसज्ञ शुद्धपारिणामिकभावो भण्यते, यत्पुन कर्मजनितदशप्राणरूप जीवत्व, भव्यत्वम्, अभव्यत्व चेति त्रय, तद्विनश्वरत्वेन पर्यायाश्रितत्वात्पर्यायार्थिकसज्ञस्त्वशुद्धपारिणामिकभाव उच्यते। अशुद्धत्व कथमिति चेत् ? यद्यप्येतदशुद्धपारिणामिकत्रय व्यवहारेण ससारिजीवेऽस्ति तथापि 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'' इति वचनाच्छुद्धनिश्चयेन नास्ति त्रय, मुक्तजीवे पुन सर्वथैव नास्ति, इति हेतोरशुद्धत्व भण्यते। तत्र शुद्धाशुद्धपारिणामिकमध्ये शुद्धपारिणामिकभावो ध्यानकाले ध्येयरूपो भवति ध्यानरूपो न भवति, कस्मात् ध्यानपर्यायस्य विनश्वरत्वात् शुद्धपारिणामिकस्तु द्रव्यरूपत्वादविनश्वर, इति

जीव गुणस्थान तथा मार्गणास्थानो से रहित है" ऐसा पहले कहा गया है और अब यहा भव्य अभव्य रूप से मार्गणा मे भी आपने परिणामिक भाव कहा, सो यह तो पूर्वापरविरोध है ? अब इस शका का समाधान करते है—पूर्व प्रसग मे तो शुद्ध पारिणामिक भाव की अपेक्षा से गुणस्थान और मार्गणा का निषेध किया है और यहा पर अशुद्ध पारिणामिक भाव रूप से भव्य तथा अभव्य ये दोनो मार्गणा मे भी घटित होते है। यदि कदाचित् ऐसा कहो कि "शुद्ध अशुद्ध भेद से पारिणामिक भाव दो प्रकार का नही है किन्तु पारिणामिक भाव शुद्ध ही है" तो वह भी ठीक नही, क्योकि, यद्यपि सामान्य रूप से पारिणामिक भाव शुद्ध है, ऐसा कहा जाता हैं, तथापि अपवाद व्याख्यान से अशुद्ध पारिणामिक भाव भी है। इसी कारण "जीवभव्याभव्यत्वानि च" (अ २ सू ७) इस तत्त्वार्थसूत्र मे जीवत्व, भव्यत्व तथा अभव्यत्व इन भेदो से पारिणामिक भाव तीन प्रकार का कहा है। उनमे शुद्ध चैतन्यरूप जो जीवत्व है वह अविनश्वर होने के कारण शुद्ध द्रव्य के आश्रित होने से शुद्ध द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा शुद्ध पारिणामिक भाव कहा जाता है। तथा जो कर्म से उत्पन्न दश प्रकार के प्राणो रूप जीवत्व है वह जीवत्व, भव्यत्व तथा अभव्यत्व भेदसे तीन तरहका है और ये तीनो विनाशशील होनेके कारण पर्याय के आश्रित होने से पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा अशुद्ध परिणामिक भाव कहे जाते है। "इसकी अशुद्धता किस प्रकार से है ?" इस शका का उत्तर यह है। यद्यपि ये तीनो अशुद्ध पारिणामिक व्यवहारनय से ससारी जीव मे है, तथापि "सव्वेसुद्धा हु सुद्धणया" इस वचन से ये तीनो भाव शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा नही है और मुक्त जीवो मे तो सर्वथा ही नही है, इस कारण उनकी अशुद्धता कही जाती है। उन शुद्ध तथा अशुद्ध पारिणामिक भाव मे से जो शुद्ध पारिणामिक भाव है वह ध्यान के समय ध्येय (ध्यान करने योग्य) होता है, ध्यानरूप नही होता। क्योकि, ध्यान पर्याय विनश्वर है, और शुद्ध पारिणामिक द्रव्य-

भावार्थ । औपशमिकक्षायोपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वभेदेन त्रिधा सम्यक्त्वमार्गणा मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रसंज्ञविपक्षत्रयभेदेन सह षड्विधा ज्ञातव्या । १२ । संज्ञित्वासंज्ञित्वविसदृशपरमात्मस्वरूपाद्भिन्ना संज्ञ्यसंज्ञिभेदेन द्विधा संज्ञिमार्गणा । १३ । आहारकानाहारकजीवभेदेनाहारकमार्गणापि द्विधा । १४ । इति चतुर्दशमार्गणास्वरूप ज्ञातव्यम् । एवं 'पुढविजलतेयवाऊ' इत्यादिगाथाद्वयेन, तृतीयगाथापादत्रयेण च 'गुणजीवापज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओय । उवओगोवि य कमसो वीस तु परूवणा भणिया । १ ।' इति गाथाप्रभृतिकथितस्वरूप धवलजयधवलमहाधवलप्रबन्धाभिधानसिद्धान्तत्रयबीजपद सूचितम् । 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया' इति शुद्धात्मतत्त्वप्रकाशक तृतीयगाथाचतुर्थपादेन पञ्चास्तिकायप्रवचनसारसमयसाराभिधानप्राभृतत्रयस्यापि बीजपद सूचितमिति । अत्र गुणस्थानमार्गणादिमध्ये केवलज्ञानदर्शनद्वयं क्षायिकसम्यक्त्वमनाहारकशुद्धात्मस्वरुपं च साक्षादुपादेयं, यत्पुनश्च शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणलक्षण कारण-समयसारस्वरूप तत्तस्यैवोपादेयभूतस्य विवक्षितैकदेशशुद्धनयेन साधकत्वात्पारम्पर्येणोपादेयं, शेष तु हेयमिति । यच्चाध्यात्मग्रन्थस्य बीज पदभूत शुद्धात्मस्वरूपमुक्तं तत्पुनरुपादेयमेव । अनेन प्रकारेण जीवाधिकारमध्ये शुद्धाशुद्धजीवकथनमुख्यत्वेन सप्तमस्थले गाथात्रयं गतम् ।। १३ ।।

रूप होने के कारण अविनाशी है, यह साराश है । सम्यक्त्व के भेद से सम्यक्त्वमार्गणा तीन प्रकार की है । औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक । और मिथ्यादृष्टि, सासादन और मिश्र इन तीन विपक्ष भेदो के साथ छह प्रकार की भी सम्यक्त्वमार्गणा जाननी चाहिए । १२ । संज्ञित्व तथा असंज्ञित्व से विलक्षण परमात्मस्वरूप से भिन्न संज्ञिमार्गणा 'संज्ञी तथा असंज्ञी भेद से' दो प्रकार की है । १३ । आहारक अनाहारक जीवो के भेद से आहारमार्गणा भी दो प्रकार की है । १४ । इस प्रकार चौदह मार्गणाओ का स्वरूप जानना चाहिये । इस रीति से "पुढविजलतेयवाऊ" इत्यादि दो गाथाओ और तीसरी गाथा "णिक्कम्मा अट्ठगुणा" के तीन पदो से "गुणस्थान, जीव समास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा चौदह मार्गणा और उपयोगो से इस प्रकार क्रमश, बीस प्ररूपणा कही है । १ ।" इत्यादि गाथा मे कहा हुआ स्वरूप धवल, जयधवल और महाधवल प्रबन्ध नामक जो तीन सिद्धान्त ग्रन्थ है उनके बीज-पद की सूचना ग्रन्थकार ने की है । "सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" इस तृतीय गाथा के चौथे पाद से शुद्ध आत्मतत्त्व के प्रकाशक पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार इन तीनों प्राभृतो का बीजपद सूचित किया है । यहा गुणस्थान और मार्गणाओ मे केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दोनो तथा क्षायिक सम्यक्त्व और अनाहारक शुद्ध आत्मा के स्वरूप है, अत साक्षात् उपादेय है, और जो शुद्ध आत्मा के सम्यक्श्रद्धान ज्ञान और आचरण रूप कारण समयसार है वह उसी उपादेय-भूतका विवक्षित एक देश शुद्ध नय द्वारा साधक होने से परम्परा से उपादेय है, इसके सिवाय और सब हेय है । और जो अध्यात्म ग्रन्थ का बीज-पदभूत शुद्ध आत्मा का स्वरूप कहा है वह तो उपादेय ही है । इस प्रकार जीवाधिकार मे शुद्ध, अशुद्ध जीव के कथन की मुख्यता से सप्तम स्थल मे तीन गाथा समाप्त हुई ।।१३ ।।

अथेदानी गाथापूर्वार्द्धेन सिद्धस्वरूपमुत्तरार्द्धेन पुनरूर्ध्वगतिस्वभाव च कथयति –

णिवकम्मा अट्ठगुणा किचूणा चरमदेहदो सिद्धा ।

लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहिं सजुत्ता ।। १४ ।।

निष्कर्माणः अष्टगुणाः किंचिदूनाः चरमदेहतः सिद्धाः ।

लोकाग्रस्थिताः नित्याः उत्पादव्ययाभ्या सयुक्ताः ।। १४ ।।

व्याख्या—'सिद्धा' सिद्धा भवन्तीति क्रियाध्याहार । कि विशिष्टा ? 'णिक्कम्मा अट्ठगुणा किचूणा चरमदेहदो' निष्कर्माणोऽष्टगुणा किञ्चिदूनाश्चरमदेहत सकाशादिति सूत्रपूर्वार्द्धेन सिद्धस्वरूपमुक्तम् । ऊर्ध्वगमन कथ्यते 'लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहि सजुत्ता' ते च सिद्धा लोकाग्रस्थिता नित्या उत्पादव्ययाभ्या सयुक्ता । अतो विस्तर —कर्मारिविध्वसकस्वशुद्धात्मसवित्तिबलेन ज्ञानावरणादिमूलोत्तरगतसमस्तकर्मप्रकृतिविनाशकत्वादष्टकर्मरहिता 'सम्मत्तणाणदसणवीरियसुहुम तहेव अवगहण । अगुरुलहुअव्ववाह अट्ठगुणा होति सिद्धाण । १ ।' इति गाथाकथितक्रमेण तेषामष्टकर्मरहितानामष्टगुणा कथ्यन्ते । तथाहि—केवलज्ञानादिगुणास्पदनिजशुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व यत्पूर्व तपश्चरणावस्थाया भावित तस्य फलभूत समस्तजीवादितत्त्वविषये विपरीताभिनिवेशरहि-

---

अब निम्नलिखित गाथा के पूर्वार्द्ध द्वारा सिद्धो के स्वरूप का और उत्तरार्द्ध द्वारा उनके ऊर्ध्वगमन स्वभाव का कथन करते है —

गाथार्थ—सिद्ध भगवान ज्ञानावरणादि आठ कर्मो से रहित है, सम्यक्त्व आदि आठ गुणो के धारक है और अन्तिम शरीर से कुछ कम आकार वाले है और (ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण) लोक के अग्रभाग मे स्थित है नित्य है तथा उत्पाद, व्यय से युक्त है ।। १४ ।।

वृत्त्यर्थ — 'सिद्धा" सिद्ध होते है, इस रीति से यहा "भवन्ति" इस क्रिया का अध्याहार करना चाहिये । सिद्ध किन विशेषणो से विशिष्ट होते है ? "णिक्कम्मा अट्ठगुणा किचूणा चरमदेहदो" कर्मो से रहित, आठ गुणो से सहित और अन्तिम शरीर से कुछ छोटे ऐसे सिद्ध है । इस प्रकार सूत्र के पूर्वार्द्ध द्वारा सिद्धो का स्वरूप कहा । अब उनका ऊर्ध्वगमन स्वभाव कहते है । "लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहि सजुत्ता" वे सिद्ध लोक के अग्रभाग मे स्थित है, नित्य है तथा उत्पाद, व्यय से संयुक्त है । अब विस्तार से इसकी व्याख्या करते है —कर्म शत्रुओ के विध्वसक अपने शुद्ध आत्मसंवेदन के बल के द्वारा ज्ञानावरण आदि समस्त मूल व उत्तर कर्म प्रकृतियो के विनाश करने से आठो कर्मो से रहित सिद्ध होते है । न-१ "सम्यक्त्व, ज्ञान दर्शन वीर्य, सूक्ष्म, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध ये आठ गुण सिद्धो के होते है । १ ।" इस गाथा मे कहे क्रम से आठ कर्म रहित सिद्धो के आठ गुण कहे जाते है । केवल ज्ञान गुणो का आश्रयभूत निज शुद्ध आत्मा ही उपादेय है, इस प्रकार की रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व जो पहले तपश्चरण की अवस्था मे भावित किया था उसके फलस्वरूप समस्त जीव आदि तत्त्वो के

तपरिणतिरूपं परमक्षायिकसम्यक्त्वं भण्यते। पूर्व छद्मस्थावस्थायां भावितस्य निर्विकारस्व-संवेदनज्ञानस्य फलभूतं युगपल्लोकालोकसमस्तवस्तुगतविशेषपरिच्छेदकं केवलज्ञानम्। निर्विकल्पस्वशुद्धात्मसत्तावलोकनरूपं यत्पूर्वं दर्शन भावित तस्यैव फलभूतं युगपल्लोकालोकसमस्तवस्तुगतसामान्यग्राहक केवलदर्शनम्। कस्मिश्चित्स्वरूपचलनकारणे जाते सति घोरपरीषहोपसर्गादौ निजनिरञ्जनपरमात्मध्याने पूर्व यत् धैर्यमवलम्बित तस्यैव फलभूतमनन्तपदार्थपरिच्छित्तिविषये खेदरहितत्वमनन्तवीर्यम्। सूक्ष्मातीन्द्रियकेवलज्ञानविषयत्वात्सिद्धस्वरूपस्य सूक्ष्मत्वं भण्यते। एकदीपप्रकाशे नानादीपप्रकाशवदेकसिद्धक्षेत्रे सङ्करव्यतिकरदोषपरिहारेणानन्तसिद्धावकाशदानसामर्थ्यमवगाहनगुणो भण्यते। यदि सर्वथागुरुत्वं भवति तदा लोहपिण्डवदध पतनं, यदि च सर्वथा लघुत्व भवति तदा वाताहतार्कतूलवत्सर्वदैव भ्रमणमेव स्यान्न च तथा तस्मादगुरुलघुत्वगुणोऽभिधीयते। सहजशुद्धस्वरूपानुभवसमुत्पन्नरागादिविभावरहितसुखामृतस्य यदेकदेशसवेदनं कृतं पूर्व तस्यैव फलभूतमव्याबाधमनन्तसुखं भण्यते। इति मध्यमरुचिशिष्यापेक्षया सम्यक्त्वादिगुणाष्टक भणितम्। विस्तररुचिशिष्य प्रति पुनर्विशेषभेदनयेन निर्गतित्व, निरिन्द्रियत्व निष्कायत्व, निर्योगत्वं, निर्वेदत्व, निष्कषायत्वं, निर्नामत्व, निर्गोत्रत्व निरायुपत्वमित्यादिविशेषगुणास्तथैवास्तित्ववस्तुत्वप्रमेयत्वादिसा-

---

विषय मे विपरीत अभिनिवेश [विरुद्ध अभिप्राय] से रहित परिणामरूप परम क्षायिक "सम्यक्त्व" गुण सिद्धों के कहा गया है। पहले छद्मस्थ [अल्पज्ञ] अवस्था मे भावना किये हुए निर्विकार स्वानुभवरूप ज्ञान के फलस्वरूप एक ही समय मे लोक तथा अलोक के सम्पूर्ण पदार्थो मे प्राप्त हुए विशेषो को जानने वाला "केवल ज्ञान" गुण है। समस्त विकल्पो से रहित अपनी शुद्ध आत्मा की सत्ता का अवलोकन रूप जो दर्शन पहले भावित किया था उसी दर्शन के फलरूप एक काल मे लोक अलोक के सपूर्ण पदार्थो के सामान्य को ग्रहण करने वाला "केवलदर्शन" गुण है। आत्मध्यान से विचलित करनेवाले किसी अतिघोर परिषह तथा उपसर्ग आदि के आने के समय जो पहले अपने निरंजन परमात्मा के ध्यान मे धैर्य का अवलम्बन किया उसी के फलरूप अनन्त पदार्थो के जानने मे खेद के अभावरूप "अनन्तवीर्य" गुण है। सूक्ष्मअतीन्द्रिय केवलज्ञान का विषय होने के कारण सिद्धो के स्वरूपको 'सूक्ष्मत्व' कहते है। यह पाचवा गुण है। एक दीप के प्रकाश मे जैसे अनेक दीपो का प्रकाश समा जाता है उसी तरह एक सिद्ध के क्षेत्र मे संकर तथा व्यतिकर दोष से रहित जो अनन्त सिद्धो को अवकाश देने की सामर्थ्य है वह "अवगाहन" गुण है। यदि सिद्धस्वरूप सर्वथा गुरु [भारी] हो तो लोहे के गोले के समान वह नीचे पडा रहेगा और यदि सर्वथा लघु (हलका) हो तो वायुसे प्रेरित आक की रुई की तरह वह सदा इधर उधर घूमता रहेगा, किन्तु सिद्धो का स्वरूप ऐसा नही है इस कारण उनके "अगुरुलघु" गुण कहा जाता है। स्वाभाविक शुद्ध आत्मस्वरूप के अनुभव से तथा राग आदि विभावों से रहित सुखरूपी अमृत का जो एकदेश अनुभव पहले किया था उसी के फलस्वरूप अव्याबाधरूप "अनन्त सुख" गुण सिद्धो मे कहा गया है। इस प्रकार सम्यक्त्व आदि आठ गुण मध्यमरुचि वाले शिष्यो के लिये हैं। विस्ताररुचि

मान्यगुणा स्वागमाविरोधेनानन्ता ज्ञातव्या । सक्षेपरुचिशिष्यं प्रति पुनर्विवक्षिताभेदनयेनानन्तज्ञानादिचतुष्टयम्, अनन्तज्ञानदर्शनसुखत्रय, केवलज्ञानदर्शनद्वय, साक्षादभेदनयेन शुद्धचैतन्यमेवैको गुण इति । पुनरपि कथभूता सिद्धा ? चरमशरीरात् किञ्चिदूना भवन्ति । तत् किञ्चिदूनत्व शरीरोपाङ्गजनितनासिकादिच्छिद्राणामपूर्णत्वे सति यस्मिन्नेव क्षणे सयोगिचरमसमये त्रिंशत्प्रकृति-उदयविच्छेदमध्ये शरीरोपाङ्गनामकर्मविच्छेदो जातस्तस्मिन्नेव क्षणे जातमिति ज्ञातव्यम् । कश्चिदाह—यथा प्रदीपस्य भाजनाद्यावरणे गते प्रकाशस्य विस्तारो भवति तथा देहाभावे लोकप्रमाणेन भाव्यमिति ? तत्र परिहारमाह—प्रदीपसबन्धी योऽसौ प्रकाशविस्तार पूर्व स्वभावेनैव तिष्ठति पश्चादावरण जात, जीवस्य तु लोकमात्रासंख्येयप्रदेशत्व स्वभावो भवति यस्तु प्रदेशाना सबन्धी विस्तार स स्वभावो न भवति । कस्मादिति चेत्, पूर्व लोकमात्रप्रदेशा विस्तीर्णा निरावरणास्तिष्ठन्ति पश्चात् प्रदीपवदावरण जातमेव । तन्न, किन्तु पूर्वमनादिसन्तानरूपेण शरीरेणावृतास्तिष्ठन्ति तत कारणात्प्रदेशाना सहारो न भवति. विस्तारश्च शरीरनामकर्माधीन एव, न च स्वभावस्तेन कारणेन शरीराभावे विस्तारो न भवति । अपरमप्युदाहरण दीयते—यथा हस्तचतुष्टयप्रमाणवस्त्र

वाले शिष्य के प्रति विशेष भेद नय के अवलम्बन से गतिरहितता, इन्द्रियरहितता, शरीररहितता, योगरहितता, वेदरहितता, कषायरहितता, नामरहितता, गोत्ररहितता तथा आयुरहितता आदि विशेष गुण और इसी प्रकार अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्वादि सामान्य गुण इस तरह जैनागम के अनुसार अनन्त गुण जानने चाहिये । और सक्षेपरुचि शिष्य के लिये विवक्षित अभेद नयकी अपेक्षा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य ये चार गुण अथवा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुखरूप तीन गुण अथवा केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दो गुण है । और साक्षात् अभेदनय से एक शुद्ध चैतन्य गुण ही सिद्धो का है । पुन वे सिद्ध कैसे होते है ? चरम [अन्तिम] शरीर से कुछ छोटे होते है । वह जो किंचित्—ऊनता है सो शरीरोपाङ्गसे उत्पन्न नासिका आदि छिद्रो के अपूर्ण [खाली स्थान] होने से जिस समय सयोगी गुणस्थान के अन्त समय मे तीस प्रकृतियो के उदय का नाश हुआ उनमे शरीरोपाङ्ग कर्म का भी विच्छेद हो गया, अत उसी समय किंचित् ऊनता हुई है । ऐसा जानना चाहिए ।

कोई शका करता है कि जैसे दीपक को ढकने वाले पात्र आदि के हटा लेने पर उस दीपक के प्रकाश का विस्तार हो जाता है, उसी प्रकार देह का अभाव हो जाने पर सिद्धो की आत्मा भी फैलकर लोकप्रमाण होनी चाहिए ? इस शका का उत्तर यह है—दीपक के प्रकाश का जो विस्तार है, वह तो पहले ही स्वभाव से दीपक मे रहता है, पीछे उस दीपक के आवरण से संकुचित होता है । किन्तु जीव का लोक प्रमाण असंख्यात-प्रदेशत्व स्वभाव है, प्रदेशो का लोकप्रमाण-विस्तार स्वभाव नही है ।

यदि यो कहो कि जीव के प्रदेश पहले लोक के बराबर फैले हुए, आवरणरहित रहते हैं फिर जैसे दीपक के आवरण होता है उसी तरह जीवप्रदेशो के भी आवरण हुआ है ? ऐसा नही है । किन्तु

पुरुषेण मुष्टौ बद्धं तिष्ठति पुरुषाभावे सङ्कोचविस्तारौ वा न करोति, निष्पत्तिकाले सार्द्रं मृन्मयभाजन वा शुष्क सज्जलाभावे सति; तथा जीवोऽपि पुरुपस्थानीयजलस्थानीयशरीराभावे विस्तारसकोचौ न करोति । यत्रैव मुक्तस्तत्रैव तिष्ठतीति ये केचन वदन्ति, तन्निषेधार्थ पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथा गतिपरिणामात् चेति हेतुचतुष्टयेन तथैवाविद्धकुलालचक्रवद् व्यपगतलेपालाम्बुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्चेति दृष्टान्तचतुष्टयेन च स्वभावोर्द्धगमन ज्ञातव्य, तच्च लोकाग्रपर्यन्तमेव, न च परतो धर्मास्तिकायाभावादिति । 'नित्या' इति विशेषण तु, मुक्तात्मना कल्पशतप्रमितकाले गते जगति शून्ये जाते सति पुनरागमन भवतीति सदाशिववादिनो वदन्ति, तन्निषेधार्थ विज्ञेयम् । 'उत्पादव्ययसयुक्तत्व' विशेपण, सर्वथैवापरिणामित्वनिषेधार्थमिति । किञ्च विशेप. निश्चलाविनश्वरशुद्धात्मस्वरूपाद्भिन्नं सिद्धाना नारकादिगतिषु भ्रमण नास्ति कथमुत्पादव्ययत्वमिति ? तत्र परिहार –आगमकथितागुरुलघुपट्स्थानपतितहानिवृद्धिरूपेण येऽर्थपर्यायास्तदपेक्षया अथवा येन येनोत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण प्रतिक्षणं ज्ञेयपदार्था परिणमन्ति तत्परिच्छित्त्याकारेणानीहितवृत्त्या सिद्धज्ञानमपि

जीव के प्रदेश तो पहले अनादिकाल से सन्तानरूप चले आये हुये शरीर के आवरण सहित ही रहते है । इस कारण जीवके प्रदेशो का सहार नही होता, तथा विस्तार व सहार शरीर नामक नामकर्म के अधीन ही है, जीवका स्वभाव नही है । इस कारण जीव के शरीर का अभाव होनेपर प्रदेशो का विस्तार नही होता । इस विषय मे और भी उदाहरण देते है कि जैसे किसी मनुष्य की मुट्ठी के भीतर चार हाथ लम्बा वस्त्र वधा (भिचा) हुआ है, अब वह वस्त्र, मुट्ठी खोल देने पर पुरुष के अभाव मे संकोच तथा विस्तार नही करता, जैसा उम पुरुष ने छोडा वैसा ही रहता है । अथवा गीली मिट्टीका वर्तन बनते समय तो सकोच तथा विस्तार को प्राप्त होता जाता है, किन्तु जब वह सूख जाता है तब जलका अभाव होने से संकोच व विस्तार को प्राप्त नही होता । इसी तरह मुक्त जीव भी, पुरुप के स्थानभूत अथवा जल के स्थानभूत शरीर के अभाव मे, संकोच विस्तार नही करता ।

कोई कहते है कि "जीव जिस स्थान मे कर्मो से मुक्त हो जाता है वहा ही रहता है, इसके निषेध के लिये कहते है कि पूर्व प्रयोग से, असंग होने से, बध का नाश होने से तथा गति के परिणाम से, इन चार हेतुओ से तथा घूमते हुए कुम्हार के चाक के समान, मिट्टी के लेप से रहित तुम्बी के समान एरंड के बीज के समान तथा अग्नि की शिखा के समान, इन चार दृष्टान्तो से जीव के स्वभाव से ऊर्ध्व [ऊपर को] गमन समझना चाहिये । वह ऊर्ध्वगमन लोक के अग्रभाग तक ही होता है उससे आगे नही होता, क्योकि उसके आगे धर्मास्तिकाय का अभाव है ।

सिद्ध नित्य है । यहा जो नित्य विशेषण है सो सदाशिववादी जो यह कहते है कि "१०० कल्प प्रमाण समय बीत जाने पर जब जगत् शून्य हो जाता है तब फिर उन मुक्त जीवो का ससार मे आगमन होता है ।" इस मत का निषेध करने के लिये है, ऐसा जानना चाहिये ।

उत्पाद, व्यय—सयुक्तपना जो सिद्धो का विशेपण है, वह सर्वथा अपरिणामिता के निषेध के

परिणमति तेन कारणेनोत्पादव्ययत्वम्, अथवा व्यञ्जनपर्यायापेक्षया ससारपर्यायविनाश सिद्धपर्यायोत्पाद, शुद्धजीवद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति। एव नयविभागेन नवाधिकारैर्जीवद्रव्य ज्ञातव्यम् अथवा तदेव वहिरात्मान्तरात्मपरमात्मभेदेन त्रिधा भवति। तद्यथा—स्वशुद्धात्मसवित्तिसमुत्पन्नवास्तवसुखात्प्रतिपक्षभूतेनेन्द्रियसुखेनासक्तो बहिरात्मा, तद्विलक्षणोऽन्तरात्मा। अथवा देहरहितनिजशुद्धात्मद्रव्यभावनालक्षणभेदज्ञानरहितत्वेन देहादिपरद्रव्येष्वेकत्वभावनापरिणतो वहिरात्मा, तस्मात्प्रतिपक्षभूतोऽन्तरात्मा। अथवा हेयोपादेयविचारकचित्त, निर्दोषपरमात्मनो भिन्ना रागादयो दोषा, शुद्धचैतन्यलक्षण आत्मा, इत्युक्तलक्षणेषु चित्तदोषात्मसु त्रिषु वीतरागसर्वज्ञप्रणीतेषु अन्येषु वा पदार्थेषु यस्य परस्परसापेक्षनयविभागेन श्रद्धान ज्ञान च नास्ति स वहिरात्मा, तस्माद्विसदृशोऽन्तरात्मेति रूपेण वहिरात्मान्तरात्मनोर्लक्षण ज्ञातव्यम्। परमात्मलक्षण कथ्यते—सकलविमलकेवलज्ञानेन येन कारणेन समस्त लोकालोक जानाति व्याप्नोति तेन कारणेन विष्णुर्भण्यते। परमब्रह्मसज्ञनिजशुद्धात्मभावनासमुत्पन्नसुखामृततृप्तस्य सत उर्वशीरम्भातिलोत्तमाभिर्देवकन्याभिरपि यस्य ब्रह्मचर्यव्रत न खण्डित स परमब्रह्म भण्यते। केवलज्ञानादिगुणैश्वर्ययुक्तस्य सतो देवेन्द्रादयोऽपि तत्पदाभिलाषिण सन्तो यस्याज्ञा कुर्वन्ति स ईश्वराभिधानो भवति। केवलज्ञानशब्दवाच्य

लिये है। यहा पर यदि कोई शका करे—कि सिद्ध निरन्तर निश्चल अविनश्वर शुद्ध आत्म-स्वरूप से भिन्न नरक आदि गतियो मे भ्रमण नही करते है इसलिये सिद्धो मे उत्पाद व्यय कैसे हो ? इसका परिहार यह है—कि आगम मे कहे गये अगुरुलघु गुण के षट्-हानि वृद्धि रूप से अर्थ पर्याय होती है, उनकी अपेक्षा सिद्धो मे उत्पाद व्यय है। अथवा ज्ञेय पदार्थ अपने जिस–जिस उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप से प्रति समय परिणमते है उनके आकार से निरिच्छुक वृत्ति से सिद्धो का ज्ञान भी परिणमता है इस कारण भी उत्पाद व्यय सिद्धो मे घटित होता है। अथवा सिद्धो मे व्यंजन पर्याय की अपेक्षा से ससार पर्याय का नाश और सिद्ध पर्याय का उत्पाद तथा शुद्ध जीव द्रव्य पने से ध्रौव्य है। इस प्रकार नयविभाग से नौ अधिकारो द्वारा जीव द्रव्य का स्वरूप समझना चाहिये।

अथवा वही जीव वहिरात्मा तथा परमात्मा इन भेदो से तीन प्रकार का भी होता है। निज शुद्ध आत्मा के अनुभव मे उत्पन्न यथार्थ सुख से विरुद्ध इन्द्रिय सुख मे आसक्त वहिरात्मा है, उससे विलक्षण अन्तरात्मा है। अथवा देहरहित निज शुद्ध आत्म द्रव्य की भावना रूप भेद-विज्ञान से रहित होने के कारण देह आदि पर द्रव्यो मे जो एकत्व भावना से परिणत है [देह को ही आत्मा समझने वाला] वहिरात्मा है। वहिरात्मा से विरुद्ध [निज शुद्ध आत्मा को आत्मा जानने वाला] अन्तरात्मा है। अथवा हेय उपादेय का विचार करने वाला जो "चित्त" तथा निर्दोष परमात्मा से भिन्न राग आदि "दोष" और शुद्ध चैतन्य लक्षण का धारक 'आत्मा' इस प्रकार उक्त लक्षण वाले चित्त, दोष, आत्मा इन तीनो मे अथवा वीतराग सर्वज्ञकथित अन्य पदार्थो मे जिसके परस्पर सापेक्ष नयो द्वारा श्रद्धान और ज्ञान न[illegible] वह वहिरात्मा है और उस वहिरात्मा से भिन्न अन्तरात्मा है। ऐसा वहिरात्मा, अन्तरात्मा [illegible] समझना चाहिए।

गतं ज्ञानं यस्य स सुगतः, अथवा शोभनमविनश्वरं मुक्तिपदं गत सुगत । "शिवं परमकल्याण निर्वाण १ज्ञानमक्षयम् । प्राप्त मुक्तिपदं येन स शिव परिकीर्त्तित ॥ १ ॥" इति श्लोककथितलक्षण. शिवः । कामक्रोधादिदोषजयेनानन्तज्ञानादिगुणसहितो जिन । इत्यादिपरमागमकथिताष्टोत्तरसहस्रसंख्यनामवाच्य परमात्मा ज्ञातव्य । एवमेतेपु त्रिविधात्मसु मध्ये मिथ्यादृष्टिभव्यजीवे बहिरात्मा व्यक्तिरूपेण तिष्ठति, अन्तरात्मपरमात्मद्वयं शक्तिरूपेण भाविनैगमनयापेक्षया व्यक्तिरूपेण च । अभव्यजीवे पुनर्बहिरात्मा व्यक्तिरूपेण अन्तरात्मपरमात्मद्वयं शक्तिरूपेणैव, न च भाविनैगमनयेनेति । यद्यभव्यजीवे परमात्मा शक्तिरूपेण वर्तते तर्हि कथमभव्यत्वमिति चेत् ? परमात्मशक्ते केवलज्ञानादिरूपेण व्यक्तिर्न भविष्यतीत्यभव्यत्वं, शक्ति पुन. शुद्धनयेनोभयत्र समाना । यदि पुन शक्तिरूपेणाप्यभव्यजीवे केवलज्ञानं नास्ति तदा केवलज्ञानावरण न घटते । भव्याभव्यद्वय पुनरशुद्धनयेनेति भावार्थ । एवं यथा मिथ्यादृष्टिसज्ञे बहिरात्मनि नयविभागेन दर्शितमात्मत्रय तथा शेषगुणस्थानेष्वपि । तद्यथा—बहिरात्मावस्थायामन्तरात्मपरमात्मद्वय शक्तिरूपेण भाविनैगमनयेन व्यक्तिरूपेण च

अब परमात्मा का लक्षण कहते है—क्योकि पूर्णनिर्मल केवलज्ञान द्वारा सर्वज्ञ समस्त लोकालोक को जानता है या अपने ज्ञान द्वारा लोकालोक मे व्याप्त होता है, इस कारण वह परमात्मा 'विष्णु' कहा जाता है। परमब्रह्म नामक निज शुद्ध आत्मा की भावना से उत्पन्न सुखामृत से तृप्त होने के कारण उर्वशी, तिलोत्तमा, रभा आदि देवकन्याओ द्वारा भी जिसका ब्रह्मचर्य खंडित न हो सका अत. वह 'परम ब्रह्म कहलाता है। केवलज्ञान आदि गुणरूपी ऐश्वर्य से युक्त होने के कारण जिसके पद की अभिलाषा करते हुए देवेन्द्र आदि भी जिसकी आज्ञापालन करते है, अत वह परमात्मा "ईश्वर" होता है। केवलज्ञान शब्द से वाच्य 'सु' उत्तम 'गत' यानी ज्ञान जिसका वह "सुगत" है। अथवा शोभायमान अविनश्वर मुक्ति पद को प्राप्त हुआ सो "सुगत" है। तथा "शिव यानी परम कल्याण, निर्वाण एवं अक्षय ज्ञानरूप मुक्तपद को जिसने प्राप्त किया वह शिव कहलाता है। १।" इस श्लोक मे कहे गये लक्षण का धारक होने के कारण वह परमात्मा शिव है। अनन्त ज्ञान आदि गुणो का धारक काम क्रोध आदि जीतने से 'जिन' कहलाता है। इत्यादि परमागम मे कहे हुए एक हजार आठ नामो से कहे जाने योग्य जो है, उसको परमात्मा जानना चाहिये।

इस प्रकार ऊपर कहे गये इन तीनो आत्माओ मे जो मिथ्या–दृष्टि भव्य जीव है उसमे केवल बहिरात्मा तो व्यक्ति-रूप से रहता है। और अन्तरात्मा तथा परमात्मा ये दोनों शक्तिरूप से रहते है, भावी नैगमनय की अपेक्षा व्यक्ति रूप से भी रहते है। मिथ्यादृष्टि अभव्य जीव मे बहिरात्मा व्यक्ति रूप से और अन्तरात्मा तथा परमात्मा ये दोनो शक्तिरूप से ही रहते है, भावी नैगमनय की अपेक्षा अभव्य मे अन्तरात्मा तथा परमात्मा व्यक्ति रूप से नही रहते। कदाचित् कोई कहे कि यदि अभव्य जीव मे परमात्मा शक्ति रूप से रहता है तो उसमे अभव्यत्व कैसे है ? इसका उत्तर यह है कि अभव्य जीव मे पर-

---

१ 'ज्ञानमय' इति पाठान्तरम् ।

विज्ञेयम्, अन्तरात्मावस्थाया तु बहिरात्मा भूतपूर्वनयेन घृतघटवत्, परमात्मस्वरूपं तु शक्तिरूपेण भाविनैगमनयेन व्यक्तिरूपेण च । परमात्मावस्थाया पुनरन्तरात्मबहिरात्मद्वय भूतपूर्वनयेनेति । अथ त्रिधात्मान गुणस्थानेषु योजयति । मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्यन्यूनाधिकभेदेन बहिरात्मा ज्ञातव्य, अविरतगुणस्थाने तद्योग्याशुभलेश्यापरिणतो जघन्यान्तरात्मा, क्षीणकषायगुणस्थाने पुनरुत्कृष्ट, अविरतक्षीणकषाययोर्मध्ये मध्यम, सयोग्ययोगिगुणस्थानद्वये विवक्षितैकदेशशुद्धनयेन सिद्धसदृश परमात्मा, सिद्धस्तु साक्षात्परमात्मेति । अत्र बहिरात्मा हेय, उपादेयभूतस्यानन्तसुखसाधकत्वादन्तरात्मोपादेय, परमात्मा पुन साक्षादुपादेय इत्यभिप्राय । एव षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकप्रथमाधिकारमध्ये नमस्कारादिचतुर्दशगाथाभिर्नवभिरन्तरस्थलैर्जीवद्रव्यकथनरूपेण प्रथमोऽन्तराधिकार समाप्तः ॥ १४ ॥

अत पर यद्यपि शुद्धबुद्धैकस्वभाव परमात्मद्रव्यमुपादेय भवति तथापि हेयरूपस्याजीवद्रव्यस्य गाथाष्टकेन व्याख्यान करोति । कस्मादिति चेत् ? हेयतत्त्वपरिज्ञाने सति पश्चादुपादेयस्वीकारो भवतीति हेतो । तद्यथा—

मात्मा शक्ति की केवल ज्ञान आदि रूपमे व्यक्ति न होगी इसलिये उसमे अभव्यत्व है, शुद्ध नय की अपेक्षा परमात्मा की शक्ति तो मिथ्या दृष्टि भव्य और अभव्य इन दोनो मे समान है । यदि अभव्य जीव मे शक्ति रूप से भी केवल ज्ञान न हो तो उसके केवलज्ञानावरण कर्म सिद्ध नही हो सकता । साराश यह है कि भव्य, अभव्य ये दोनो अशुद्ध नय से है । इस प्रकार जैसे मिथ्यादृष्टि वहिरात्मा मे नय विभाग से तीनो आत्माओ को वतलाया उसी प्रकार शेष तेरह गुण स्थानो मे भी घटित करना चाहिये । इस प्रकार वहिरात्मा की दशा मे अन्तरात्मा तथा परमात्मा ये दोनो शक्ति रूप से रहते है और भावी नैगमनय से व्यक्ति रूप से भी रहते हे ऐसा समझना चाहिये । अन्तरात्मा की अवस्था मे बहिरात्मा भूतपूर्व नय से घृत के घट के समान और परमात्मा का स्वरूप शक्ति रूप से तथा भावी नैगमनय की अपेक्षा व्यक्ति रूप से जानना चाहिये । परमात्म अवस्था मे अन्तरात्मा तथा वहिरात्मा भूतपूर्व नय की अपेक्षा जानने चाहिये । अव तीनो तरह के आत्माओं को गुण स्थानो मे योजित करते है—मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र इन तीनो गुणस्थानो मे तारतम्य न्यूनाधिक भाव से वहिरात्मा जानना चाहिए, अविरत गुणस्थान मे उनके योग्य अशुभ लेश्या मे परिणत जघन्य अन्तरात्मा हे और क्षीणकषाय गुणस्थान मे उत्कृष्ट अन्तरात्मा है । अविरत और क्षीणकषाय गुण स्थानो के बीच मे जो सात गुणस्थान है उनमे मध्यम-अन्तरात्मा है । सयोगी और अयोगी इन दोनो गुणस्थानो मे विवक्षित एक देश शुद्ध नय की अपेक्षा सिद्ध के समान परमात्मा है और सिद्ध तो साक्षात् परमात्मा है ही । यहा वहिरात्मा तो हेय है और उपादेयभूत (परमात्मा) के अनन्त सुखका साधक होने से अन्तरात्मा उपादेय है और परमात्मा साक्षात् उपादेय है ऐसा अभिप्राय है । इस प्रकार छह द्रव्य और पच अस्तिकाय के प्रतिपादन करने वाले प्रथम अधिकार मे नमस्कार गाथा आदि चौदह गाथाओ द्वारा ९ मध्य स्थलो द्वारा जीव द्रव्य के प्रथम अन्तर अधिकार समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

अज्जीवो पुण णेओ पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं ।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु (हु) ।। १५ ।।

अजीवः पुनः ज्ञेयः पुद्गलः धर्मः अधर्मः आकाशम् ।
कालः पुद्गलः मूर्त्तः रूपादिगुणः अमूर्त्ताः शेषाः तु ।। १५ ।।

व्याख्या—"अज्जीवो पुण णेओ" अजीव पुनर्ज्ञेय । सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनद्वय शुद्धोपयोग, मतिज्ञानादि पो विकलोऽशुद्धोपयोग इति द्विविधोपयोग, अव्यक्तसुखदु खानुभवनरूपा कर्मफलचेतना, तथैव मतिज्ञानादिमन पर्ययपर्यन्तमशुद्धोपयोग इति, स्वेहापूर्वेष्टानिष्टविकल्परूपेण विशेषरागद्वेषपरिणमनं कर्मचेतना, केवलज्ञानरूपा शुद्धचेतना इत्युक्तलक्षणोपयोगश्चेतना च यत्र नास्ति स भवत्यजीव इति विज्ञेय । 'पुण' पुन पश्चाज्जीवाधिकारानन्तर । "पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं कालो" स च पुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्यभेदन पञ्चधा । पूरणगलनस्वभावत्वात्पुद्गल इत्युच्यते । गतिस्थित्यवगाहवर्त्तनालक्षणा धर्माधर्माकाशकाला:, "पुग्गल मुत्तो" पुद्गलो मूर्त्त । कस्मात् "रूवादिगुणो" रूपादिगुणसहितो यत । "अमुत्ति सेसा हु" रूपादिगुणाभावादमूर्त्ता भवन्ति पुद्गलाच्छेषाश्च-

---

उसके पश्चात् यद्यपि शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव परमात्मा द्रव्य ही उपादेय है तो भी हेय रूप अजीव द्रव्य का आठ गाथाओ द्वारा निरूपण करते हैं । क्यो करते हो ? क्योकि पहले हेयतत्त्व का ज्ञान होने पर फिर उपादेय पदार्थ स्वीकार होता है । अजीव द्रव्य इस प्रकार है—

गाथार्थः—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये अजीवद्रव्य जानने चाहिये । इनमे रूप आदि गुणो का धारक पुद्गल मूर्त्तिमान् है और शेप चारो द्रव्य अमूर्त्तिक है ।। १५ ।।

वृत्त्यर्थः—"अज्जीवो पुण णेओ" अजीव पदार्थ जानना चाहिये । पूर्ण व निर्मल केवल ज्ञान, केवल दर्शन ये दोनो शुद्ध उपयोग है और मति ज्ञान आदि रूप विकल अशुद्ध उपयोग है, इस तरह उपयोग दो प्रकार का है । अव्यक्त सुखदु खानुभव स्वरूप "कर्मफलचेतना" है । तथा मतिज्ञान आदि मन -पर्यय तक चारो ज्ञान रूप अशुद्ध उपयोग है । निज चेष्टा पूर्वक इष्ट, अनिष्ट विकल्प रूप से विशेप राग-द्वेष रूप परिणाम "कर्मचेतना" है । केवल ज्ञान रूप "शुद्ध चेतना" है । इस तरह पूर्वोक्त लक्षण वाला उपयोग तथा चेतना ये जिसमे नही है वह "अजीव" है ऐसा जानना चाहिये । "पुण" जीव अधिकार के पश्चात् अजीव अधिकार है । "पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं कालो" वह अजीव पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल द्रव्य के भेद से पाच प्रकार का है । पूरण तथा गलन स्वभाव सहित होने से पुद्गल कहा जाता है (पूरने और गलने के स्वभाव वाला पुद्गल है) । कर्म से गति, स्थिति, अवगाह और वर्त्तना लक्षण वाले धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चारो द्रव्य है । (गति मे सहायक धर्म, ठहरने मे सहायक अधर्म, अवगाह देने वाला आकाश, वर्त्तना लक्षण वाला काल द्रव्य है) 'पुग्गल मुत्तो' पुद्गल द्रव्य मूर्त्त है । क्योकि पुद्गल 'रूवादिगुणो' रूप आदि गुणो से सहित है । 'अमुत्ति सेसा हु' पुद्-

त्वार इति । तथाहि–यथा अनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यगुणचतुष्टयं सर्वजीवसाधारणं तथा रूपरसगन्धस्पर्शगुणचतुष्टयं सर्वपुद्गलसाधारणं, यथा च शुद्धबुद्धैकस्वभावसिद्धजीवे अनन्तचतुष्टयमतीन्द्रियं तथैव शुद्धपुद्गलपरमाणुद्रव्ये रूपादिचतुष्टयमतीन्द्रियं, यथा रागादिस्नेहगुणेन कर्मबन्धावस्थायां ज्ञानादिचतुष्टयस्याशुद्धत्वं तथा स्निग्धरूक्षत्वगुणेन द्व्यणुकादिबन्धवस्थायां रूपादिचतुष्टयस्याशुद्धत्वं, यथा निःस्नेहनिजपरमात्मभावनाबलेन रागादिस्निग्धत्वविनाशे सत्यनंतचतुष्टयस्य शुद्धत्वं तथा जघन्यगुणानां बन्धो न भवतीति वचनात्परमाणुद्रव्ये स्निग्धरूक्षत्वगुणस्य जघन्यत्वे सति रूपादिचतुष्टयस्य शुद्धत्वमबोद्धव्यमित्यभिप्रायः ॥ ५ ॥

अथ पुद्गलद्रव्यस्य विभावव्यञ्जनपर्यायान्प्रतिपादयति.—

सद्दो बधो सुहुमो थूलो सठाणभेदतमछाया ।

उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥

शब्दः बन्धः सूक्ष्मः स्थूलः सस्थानभेदतमश्छायाः ।

उद्योतातपसहिताः पुद्गलद्रव्यस्य पर्यायाः ॥ १६ ॥

व्याख्या––शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतसहिता पुद्गलद्र-

---

गल के सिवाय शेष धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चारो द्रव्य रूप आदि गुणो के न होने से अमूर्तिक है। जैसे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य ये चारो गुण सब जीवो मे साधारण है, उसी प्रकार रूप, रस, गध, और स्पर्श पुद्गलो मे साधारण है। जिस प्रकार शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावधारी सिद्ध मे अनन्त चतुष्टय अतीन्द्रिय है, उसी प्रकार शुद्ध पुद्गल परमाणु मे रूप आदि चतुष्टय अतीन्द्रिय है। जिस तरह राग आदि स्नेह गुण से कर्मबन्ध की दशा मे ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य इन चारो गुणो की अशुद्धता है, उसी तरह स्निग्ध रूक्षत्व गुण से द्वि-अणुक आदि बध दशा मे रूप आदि चारो गुणो की अशुद्धता है। जैसे स्नेह रहित निज परमात्मा की भावना के बल से राग आदि स्निग्धता का विनाश हो जाने पर अनन्त चतुष्टय की शुद्धता है, उसी तरह "जघन्य गुणो का बन्ध नही होता है" इस वचन के अनुसार परमाणु मे स्निग्ध रूक्षत्व गुण की जघन्यता होने पर रूप आदि चारो गुणो की शुद्धता समझनी चाहिए' ऐसा अभिप्राय है ॥ १५ ॥

अब पुद्गल द्रव्य की विभाव व्यजन पर्यायो को वर्णन करते है —

गाथार्थः—शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, सस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत और आतप सहित सब पुद्गल द्रव्य की पर्याय है ॥ १६ ॥

वृत्त्यर्थः—शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, सस्थान, भेद, तम, छाया आतप और उद्योत इन सहित पुद्गल द्रव्य की पर्याय होती है। अब इसको विस्तार से बतलाते है—भाषात्मक और अभाषात्मक ऐसे शब्द दो तरह का है। उनमे भाषात्मक शब्द अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक रूप से दो तरह का है। उनमे भी अक्षरात्मक भाषा, सस्कृत—प्राकृत और उनके अपभ्रंश रूप पैशाची आदि भाषाओ

व्यस्य पर्याया भवन्ति । अथ विस्तरः—भाषात्मकोऽभाषात्मकश्च द्विविधः शब्दः । तत्राक्षरानक्षरात्मकभेदेन भाषात्मको द्विधा भवति । तत्राप्यक्षरात्मकः संस्कृतप्राकृतापभ्रंशपैशाचिकादिभाषाभेदेनार्यम्लेच्छमनुष्यादिव्यवहारहेतुर्बहुधा । अनक्षरात्मकस्तु द्वीन्द्रियादितिर्यग्जीवेषु सर्वज्ञदिव्यध्वनौ च । अभाषात्मकोऽपि प्रायोगिकवैश्रसिकभेदेन द्विविधः । "ततं वीणादिकं ज्ञेयं विततं पटहादिकम् । घनं तु कांस्यतालादि सुषिरं वंशादिकं विदुः ॥ १ ॥" इति श्लोककथितक्रमेण प्रयोगे भवः प्रायोगिकश्चतुर्धा भवति । विश्रसा स्वभावेन भवो वैश्रसिको मेघादिप्रभवो बहुधा । किञ्च शब्दातीतनिजपरमात्मभावनाच्युतेन शब्दादिमनोज्ञामनोज्ञपञ्चेन्द्रियविषयासक्तेन च जीवेन यदुपार्जितं सुस्वरदुःस्वरनामकर्म तदुदयेन यद्यपि जीवे शब्दो दृश्यते तथापि स जीवसंयोगेनोत्पन्नत्वाद् व्यवहारेण जीवशब्दो भण्यते, निश्चयेन पुनः पुद्गलस्वरूप एवेति । बन्धः कथ्यते—मृत्पिण्डादिरूपेण योऽसौ बहुधा बंधः स केवलः पुद्गलबन्धः, यस्तु कर्मनोकर्मरूपः स जीवपुद्गलसंयोगबंधः । किञ्च विशेषः—कर्मबंधपृथग्भूतस्वशुद्धात्मभावनारहितजीवस्यानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यबंधः, तथैवाशुद्धनिश्चयेन योऽसौ रागादिरूपो भावबन्धः कथ्यते सोऽपि शुद्धनिश्चयनयेन पुद्गलबंध एव । बिल्वाद्यपेक्षया बदरादीनां सूक्ष्मत्वं, परमाणोः साक्षादिति, बदराद्यपेक्षया बिल्वादीनां स्थूलत्वं, जगद्व्यापिनि महास्कंधे सर्वोत्कृष्टमिति । समचतुरस्रन्यग्रोधसातिककुब्जवामनहुण्डभेदेन

के भेद से आर्य व म्लेच्छ मनुष्यों के व्यवहार के कारण अनेक प्रकार की है । अनक्षरात्मक भाषा द्वीन्द्रिय आदि तिर्यंच जीवों में तथा सर्वज्ञ की दिव्य ध्वनि में है । अभाषात्मक शब्द भी प्रायोगिक और वैश्रसिक के भेद से दो तरह का है । उनमें "वीणा आदि के शब्द को तत, ढोल आदि के शब्द को वितत, मंजीरे तथा ताल आदि के शब्द को घन और बंसी आदि के शब्द को सुषिर कहते हैं । १ ।" इस श्लोक में कहे हुए क्रम से प्रायोगिक (प्रयोग से पैदा होने वाला) शब्द चार तरह का है, "विश्रसा" अर्थात् स्वभाव से होने वाला वैश्रसिक शब्द बादल आदि से होता है वह अनेक तरह का है । विशेष—शब्द से रहित निज परमात्मा की भावना से छूटे हुए तथा शब्द आदि मनोज्ञअमनोज्ञ पंच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त जीव ने जो सुस्वर तथा दुःस्वर नाम कर्म का बंध किया उस कर्म के उदय के अनुसार यद्यपि जीव में शब्द दिखता है तो भी वह शब्द जीव के संयोग से उत्पन्न होने के निमित्त से व्यवहार नय की अपेक्षा 'जीव का शब्द' कहा जाता है, किन्तु निश्चय नय से तो वह शब्द पुद्गल मयी ही है । अब बंध को कहते हैं—मिट्टी आदि के पिंड रूप जो बहुत प्रकार का बंध है वह तो केवल पुद्गल बंध है । जो कर्म, नोकर्म रूप बंध है वह जीव और पुद्गल के संयोग से होनेवाला बंध है । विशेष यह है— कर्मबन्ध से भिन्न जो निज शुद्ध आत्मा की भावना से रहित जीव के अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से द्रव्य बंध है और उसी तरह अशुद्ध निश्चय नय से जो वह रागादिक रूप भावबन्ध कहा जाता है, यह भी शुद्ध निश्चय नय से पुद्गल का ही बन्ध है । बेल आदि की अपेक्षा बेर आदि फलों में सूक्ष्मता है और परमाणु में [साक्षात् सूक्ष्मता है [परमाणु की सूक्ष्मता किसी की अपेक्षा से नहीं है] । बेर आदि की अपेक्षा बेल

षट्प्रकारसंस्थानं यद्यपि व्यवहारनयेन जीवस्यास्ति तथाप्यसंस्थानाच्चिच्चमत्कारपरिणतेर्भिन्नत्वान्निश्चयेन पुद्गलसंस्थानमेव, यदपि जीवादन्यत्र वृत्तत्रिकोणचतुष्कोणादिव्यक्ताव्यक्तरूपं बहुधा संस्थानं तदपि पुद्गल एव । गोधूमादिचूर्णरूपेण घृतखण्डादिरूपेण बहुधा भेदो ज्ञातव्यः । दृष्टिप्रतिबंधकोऽन्धकारस्तम इति भण्यते । वृक्षाद्याश्रयरूपा मनुष्यादिप्रतिबिम्बरूपा च छाया विज्ञेया । उद्योतश्चन्द्रविमाने खद्योतादितिर्यग्जीवेषु च भवति । आतप आदित्यविमाने अन्यत्रापि सूर्यकांतमणिविशेषादौ पृथ्वीकाये ज्ञातव्यः । अयमत्रार्थः—यथा जीवस्य शुद्धनिश्चयेन स्वात्मोपलब्धिलक्षणे सिद्धस्वरूपे स्वभावव्यञ्जनपर्याये विद्यमानेऽप्यनादिकर्मबन्धवशात् स्निग्धरूक्षस्थानीयरागद्वेषपरिणामे सति स्वाभाविकपरमानंदैकलक्षणस्वास्थ्यभावभ्रष्टः नरनारकादिविभावव्यञ्जनपर्याया भवन्ति तथा पुद्गलस्यापि निश्चयनयेन शुद्धपरमाण्ववस्थालक्षणे स्वभावव्यञ्जनपर्याये सत्यपि स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धो भवतीति वचनाद्रागद्वेषस्थानीयबंधयोग्यस्निग्धरूक्षत्वपरिणामे सत्युक्तलक्षणाच्छब्दादन्येऽपि आगमोक्तलक्षणाकुञ्चनप्रसारणदधिदुग्धादयो विभावव्यञ्जनपर्याया ज्ञातव्याः । एवमजीवाधिकारमध्ये पूर्वसूत्रोदितरूपादिगुणचतुष्टययुक्तस्य तथैवात्र सूत्रोदितशब्दादिपर्यायसहितस्य संक्षेपेणाणुस्कंधभेदभिन्नस्य पुद्गलद्रव्यस्य व्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथाद्वयं गतम् ॥ १६ ॥

आदि में स्थूलता [बड़ापन] है, तीन लोक में व्याप्त महास्कन्ध में सबसे अधिक स्थूलता है। समचतुरस्र, न्यग्रोध, सातिक, कुब्जक, वामन और हुंडक ये ६ प्रकार के संस्थान व्यवहार नय से जीव के होते हैं। किन्तु संस्थान शून्य चेतन चमत्कार परिणाम से भिन्न होने के कारण निश्चय नय की अपेक्षा संस्थान पुद्गल का ही होता है जो जीव से भिन्न गोल, त्रिकोन, चौकोर आदि प्रगट अप्रगट अनेक प्रकार के संस्थान हैं, वे भी पुद्गल के ही हैं। गेहूं आदि के चून रूप से तथा घी, खांड आदि रूप से अनेक प्रकार का 'भेद' [खंड] जानना चाहिये। दृष्टि को रोकने वाला अन्धकार है उसको "तम" कहते हैं। पेड़ आदि के आश्रय से होने वाली तथा मनुष्य आदि की परछाईं रूप जो है उसे 'छाया' जानना चाहिये चन्द्रमा के विमान में तथा जुगनू आदि तिर्यञ्च जीवों में "उद्योत" होता है। सूर्य के विमान में तथा अन्यत्र भी सूर्यकांत विशेष मणि आदि पृथ्वीकाय में "आतप" जानना चाहिये। सारांश यह है कि जिस प्रकार शुद्धनिश्चयनय से जीव के निज-आत्मा की उपलब्धिरूप सिद्ध-स्वरूप में स्वभावव्यञ्जन पर्याय विद्यमान है फिर भी अनादि कर्मबंधन के कारण पुद्गल के स्निग्ध तथा रूक्ष गुण के स्थानभूत राग द्वेष परिणाम होने पर स्वाभाविक—परमानन्दरूप एक स्वास्थ्य भाव से भ्रष्ट हुए जीव के मनुष्य, नारक आदि विभाव-व्यंजन-पर्याय होते हैं, उसी तरह पुद्गल में निश्चयनय की अपेक्षा शुद्ध परमाणु दशारूप स्वभाव—व्यञ्जन-पर्याय के विद्यमान होते हुए भी "स्निग्ध तथा रूक्षता से बन्ध होता है।" इस वचन से राग और द्वेष के स्थानीय बंध योग्य स्निग्ध तथा रूक्ष परिणाम के होने पर पहले बतलाये गये शब्द आदि के सिवाय अन्य भी शास्त्रोक्त सिकुड़ना, फैलना, दही, दूध आदि विभाव-व्यञ्जन-पर्याय जाननी चाहिये।

इस प्रकार अजीव अधिकार में "अज्जीवो" आदि पूर्व गाथा में कहे गये रूप-रसादि चारों

अथ धर्मद्रव्यमाख्याति :—

गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ।
तोय जह मच्छाण अच्छताणेव सो णेई ।। १७ ।।

गतिपरिणताना धर्म्मः पुद्गलजीवाना गमनसहकारी ।
तोयं यथा मत्स्याना अगच्छता नैव सः नयति ।। १७ ।।

व्याख्या—गतिपरिणताना धर्मो जीवपुद्गलाना गमनसहकारिकारण भवति । दृष्टान्त-माह—तोयं यथा मत्स्यानाम् । स्वय तिष्ठतो नैव स नयति तानिति । तथाहि—यथा सिद्धो भगवानमूर्त्तोऽपि निष्क्रियस्तथैवाप्रेरकोऽपि सिद्धवदनन्तज्ञानादिगुणस्वरूपोऽहमित्यादिव्यव-हारेण सविकल्पसिद्धभक्तियुक्तानां निश्चयेन निर्विकल्पसमाधिरूपस्वकीयोपादानकारणपरि-णताना भव्याना सिद्धगते. सहकारिकारणं भवति । तथा निष्क्रियोऽमूर्तो निष्प्रेरकोऽपि धर्मा-स्तिकाय· स्वकीयोपादानकारणेन गच्छता जीवपुद्गलाना गते· सहकारिकारण भवति । लोकप्रसिद्धदृष्टान्तेन तु मत्स्यादीना जलादिवदित्यभिप्राय । एव धर्मद्रव्यव्याख्यानरूपेण गाथा गता ।। १७ ।।

अथाधर्मद्रव्यमुपदिशति —

गुणो से युक्त तथा यहा गाथा मे कथित शब्द.आदि पर्याय सहित अणु, स्कन्ध आदि पुद्गल द्रव्य का संक्षेप से निरूपण करने वाली दो गाथाये समाप्त हुई ।। १६ ।।

अव धर्मद्रव्य को कहते है —

गाथार्थः—गमन मे परिणत पुद्गल और जीवोको गमन मे सहकारी धर्मद्रव्य है–जैसे मछलियो को गमन मे जल सहकारी है । गमन न करते हुए (ठहरे हुए] पुद्गल व जीवो को धर्मद्रव्य गमन नही कराता ।। १७ ।।

वृत्त्यर्थ —चलते हुए जीव तथा पुद्गलो को चलने मे सहकारी धर्मद्रव्य होता है । इसका दृष्टात यह है कि जैसे मछलियो के गमन मे सहायक जल है। परन्तु स्वयं ठहरे हुए जीव पुद्गलो को धर्मद्रव्य गमन नही कराता। तथैव, जैसे सिद्ध भगवान् अमूर्त्त है, क्रिया रहित है तथा किसी को प्रेरणा भी नही करते, तो भी "मै सिद्ध के समान अनन्त ज्ञानादि गुणरूप हू" इत्यादि व्यवहार मे सविकल्प सिद्धभक्ति के धारक और निश्चय से निर्विकल्पक ध्यानरूप अपने उपादान कारण से परिणत भव्यजीवो को वे सिद्ध भगवान सिद्धगति मे सहकारी कारण होते है। ऐसे ही क्रियारहित, अमूर्त्त प्रेरणारहित धर्म-द्रव्य भी अपने अपने उपादान कारणो से गमन करते हुए जीव तथा पुद्गलो को गमन मे सहकारी कारण होता है । जैसे मत्स्य आदि के गमन मे जल आदि सहायक कारण होने का लोक प्रसिद्ध दृष्टात है, यह अभिप्राय है । इस तरह धर्म द्रव्य के व्याख्यान से यह गाथा समाप्त हुई ।। १७ ।।

अव अधर्मद्रव्य को कहते है :—

ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ।

छाया जह पहियाण गच्छता णेव सो धरई ।। १८ ।।

स्थानयुताना अधर्मः पुद्गलजीवाना स्थानसहकारी ।

छाया यथा पथिकाना गच्छता नैव सः धरति ॥ १८ ॥

व्याख्या–स्थानयुक्तानामधर्म पुद्गलजीवाना स्थिते सहकारिकारण भवति । तत्र दृष्टान्त —छाया यथा पथिकानाम् । स्वय गच्छतो जीवपुद्गलान्स नैव धरतीति । तद्यथा–स्वसवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरूप परमस्वास्थ्य यद्यपि निश्चयेन स्वरूपे स्थितिकारण भवति तथा "सिद्धोऽह सुद्धोऽह अणतणाणाइगुणसमिद्धोऽह । देहपमाणो णिच्चो असखदेसो अमुत्तो य ॥ १ ॥" इति गाथाकथितसिद्धभक्ति रूपेणेह पूर्व सविकल्पावस्थाय। सिद्धोऽपि यथा भव्याना वहिरङ्गसहकारिकारण भवति तथैव स्वकीयोपादानकारणेन स्वयमेव तिष्ठता जीवपुद्गलानामधर्मद्रव्य स्थिते सहकारिकारणम् । लोकव्यवहारेण तु छायावद्वा पृथिवीवद्वेति सूत्रार्थ । एवमधर्मद्रव्यकथनेन गाथा गता ॥ १८ ॥

अथाकाशद्रव्यमाह —

अवगासदाणजोग्ग जीवादीण वियाण आयास ।

जेण्ह लोगागास अल्लोगागासमिदि दुविह ।। १९ ।।

गाथार्थः—ठहरे हुए पुद्गल और जीवो को ठहरने मे सहकारी कारण अधर्मद्रव्य है । जैसे छाया यात्रियो को ठहरने मे सहकारी है । गमन करते हुए जीव तथा पुद्गलो को अधर्मद्रव्य नही ठहराता ।। १८ ॥

वृत्त्यर्थ —ठहरे हुए पुद्गल तथा जीवो को ठहरने मे सहकारी कारण अधर्मद्रव्य है । उसमे दृष्टान्त—जैसे छाया पथिको को ठहरने मे सहकारी कारण है । परन्तु स्वय गमन करते हुए जीव व पुद्गलो को अधर्मद्रव्य नही ठहराता है । सो ऐसे है--यद्यपि निश्चय नय से आत्म-अनुभव से उत्पन्न सुखामृत रूप जो परम स्वास्थ्य है वह निज रुप मे स्थिति का कारण है, परन्तु "मै सिद्ध हू, शुद्ध हू, अनन्त-ज्ञान आदि गुणो का धारक हू, शरीर प्रमाण हू, नित्य हू, असंख्यात प्रदेशी हू तथा अमूर्त्तिक हू ।१। इस गाथा मे कही हुई सिद्ध भक्ति के रुप से पहले सविकल्प अवस्था मे सिद्ध भी जैसे भव्य जीवो के लिए वहिरग सहकारी कारण होते है उसी तरह अपने २ उपादान कारण से अपने आप ठहरते हुए जीव पुद्गलो को अधर्मद्रव्य ठहरने का सहकारी कारण होता है । लोक व्यवहार से जैसे छाया अथवा पृथिवी ठहरते हुए यात्रियो आदि को ठहरने मे सहकारी होती है उसी तरह स्वय ठहरते हुए जीव पुद्गलो के ठहरने मे अधर्मद्रव्य सहकारी होता है । इसी प्रकार अधर्म द्रव्य के कथन द्वारा यह गाथा समाप्त हुई।१८।

अव आकाशद्रव्य को कहते है —

गाथार्थ—जो जीव आदि द्रव्यो को अवकाश देने वाला है उसको जिनेन्द्रदेव द्वारा कहा हुआ आकाश जानो । लोकाकाश और अलोकाकाश इन भेदो से आकाश दो प्रकार का है ।। १९ ।।

अवकाशदानयोग्यं जीवादीना विजानीहि आकाशम् ।
जैनं लोकाकाशं अलोकाकाशं इति द्विविधम् ॥ १६ ॥

व्याख्या——जीवादीनामवकाशदानयोग्यमाकाशं विजानीहि हे शिष्य ! किं विशिष्टं ? "जेण्ह" जिनस्येदं जैनं, जिनेन प्रोक्तं वा जैनम् । तच्च लोकालोकाकाशभेदेन द्विविधमिति । इदानीं विस्तरः—सहजशुद्धसुखामृतरसास्वादेन परमसमरसीभावेन भरितावस्थेषु केवलज्ञानाद्यनन्तगुणाधारभूतेषु लोकाकाशप्रमितासंख्येयस्वकीयशुद्धप्रदेशेषु यद्यपि निश्चयनयेन सिद्धास्तिष्ठन्ति, तथाप्युपचरितासद्भूतव्यवहारेण मोक्षशिलायां तिष्ठन्तीति भण्यते इत्युक्तोऽस्ति । स च ईदृशो मोक्षो यत्र प्रदेशे परमध्यानेनात्मा स्थितः सन् कर्मरहितो भवति, तत्रैव भवति नान्यत्र । ध्यानप्रदेशे कर्मपुद्गलान् त्यक्त्वा ऊर्ध्वगमनस्वभावेन गत्वा मुक्तात्मानो यतो लोकाग्रे तिष्ठन्तीति तत उपचारेण लोकाग्रमपि मोक्षः प्रोच्यते, यथा तीर्थभूतपुरुषसेवितस्थानमपि भूमिजलादिरूपमुपचारेण तीर्थं भवति । सुखबोधार्थं कथितमास्ते । यथा तथैव सर्वद्रव्याणि यद्यपि निश्चयनयेन स्वकीयप्रदेशेषु तिष्ठन्ति तथाप्युपचरितासद्भूतव्यवहारेण लोकाकाशे तिष्ठन्तीत्यभिप्रायो भगवता श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तदेवानामिति ॥ १६ ॥

तमेव लोकाकाशं विशेषेण द्रढयति :—

वृत्त्यर्थः—हे शिष्य ! जीवादिक द्रव्यो को अवकाश [रहने का स्थान] देने की योग्यता जिस द्रव्य मे है उसको श्री जिनेन्द्र द्वारा कहा हुआ आकाश द्रव्य समझो । वह आकाश, लोकाकाश तथा अलोकाकाश इन भेदो से दो तरह का है । अब इसको विस्तार से कहते है—स्वाभाविक, शुद्ध सुखरूप अमृत रस के आस्वाद रूप परमसमरसी भाव से परिपूर्ण तथा केवलज्ञान आदि अनन्त गुणो के आधारभूत जो लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेश अपनी आत्मा के है; उन प्रदेशो मे यद्यपि निश्चयनय की अपेक्षा से सिद्ध जीव रहते है, तो भी उपचरित असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा से सिद्ध मोक्षशिला (ऊपरी तनुवात वलय) मे रहते है, ऐसा कहा जाता है । ऐसा पहले कह चुके है । जिस स्थान मे आत्मा परमध्यान से कर्मरहित होता है, ऐसा मोक्ष वहा ही है, अन्यत्र नही । ध्यान करनेके स्थानमे कर्मपुद्गलो को छोडकर तथा ऊर्ध्वगमन स्वभाव से गमन कर मुक्त जीव चूंकि लोक के अग्रभाग मे जाकर निवास करते है इस कारण लोक का अग्रभाग भी उपचार से मोक्ष कहलाता है, जैसे कि तीर्थभूत पुरुषो द्वारा सेवित भूमि, पर्वत, गुफा जल आदि स्थान भी उपचार से तीर्थ होते है । यह वर्णन सुगमता से समझाने के लिये किया है । जैसे सिद्ध अपने प्रदेशो मे रहते है उसी प्रकार निश्चयनय से सभी द्रव्य यद्यपि अपने-अपने प्रदेशों मे रहते है, तो भी उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से लोकाकाश मे सब द्रव्य रहते है, ऐसा भगवान् श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव का अभिप्राय जानना चाहिए ।। १६ ।।

उसी लोकाकाश को विशेष रूप से दृढ करते है :—

धम्माऽधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये ।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥ २० ॥

धर्माधर्मौ कालः पुद्गलजीवाः च सन्ति यावतिके ।
आकाशे सः लोकः ततः परतः अलोकः उक्तः ॥२०॥

व्याख्या—धर्माधर्मकालपुद्गलजीवाश्च सन्ति यावत्याकाशे स लोक । तथा चोक्त—लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र स लोक इति । तस्माल्लोकाकाशात्परतो बहिर्भागे पुनरनन्ताकाशमलोक इति । अत्राह सोमाभिधानो राजश्रेष्ठी । हे भगवन् ! केवलज्ञानस्यानन्तभागप्रमितमाकाशद्रव्य तस्याप्यनन्तभागे सर्वमध्यमप्रदेशे लोकस्तिष्ठति । स चानादिनिधन केनापि पुरुषविशेषेण न कृतो न हृतो न धृतो न च रक्षित । तथैवासख्यातप्रदेशस्तत्रासख्यातप्रदेशे लोकेऽनन्तजीवास्तेभ्योऽप्यनन्तगुणा पुद्गला, लोकाकाशप्रमितासख्येयकालाणुद्रव्याणि, प्रत्येक लोकाकाशप्रमाण धर्माधर्मद्वयमित्युक्तलक्षणा पदार्था कथमवकाश लभन्त इति ? भगवानाह—एकप्रदीपप्रकाशे नानाप्रदीपप्रकाशवदेकगूढरसनागगद्याणके बहुसुवर्णवद्भस्मघटमध्ये सूचिकोष्ट्रदुग्धवदित्यादिदृष्टान्तेन विशिष्टावगाहनशक्तिवशादसख्यातप्रदेशेऽपि लोकेऽवस्थानमवगाहो न विरुध्यते । यदि पुनरित्थभूतावगाहनशक्तिर्न भवति तर्ह्यसख्यातप्रदेशेष्वसख्यातपरमाणूनामेव व्यवस्थान, तथा सति सर्वे जीवा यथा शुद्धनिश्चयेन

गाथार्थ:—धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव ये पाचो द्रव्य जितने आकाश मे है वह "लोकाकाश" है और उस लोकाकाश के बाहर "अलोकाकाश" है ॥ २० ॥

वृत्त्यर्थ —धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव जितने आकाश मे रहते है उतने आकाश का नाम "लोकाकाश" है। ऐसा कहा भी है कि—जहा पर जीव आदि पदार्थ देखने मे आते है वह लोक है। उस लोकाकाश से बाहर जो अनन्त आकाश है वह "अलोकाकाश" है।

यहा सोम नामक राजश्रेष्ठी प्रश्न करता है कि हे भगवन् ! केवल ज्ञान के अनन्तवे भाग प्रमाण आकाश द्रव्य है और उस आकाश के भी अनन्तवे भाग मे, सबके बीच मे लोक है और वह लोक (काल की दृष्टि से) आदि अन्त रहित है, न किसी का बनाया हुआ है, न किसी से कभी नष्ट होता है, न किसी के द्वारा धारण किया हुआ है और न कोई उसकी रक्षा करता है। वह लोकाकाश असख्यात प्रदेशो का धारक है उस असंख्यात प्रदेशी लोक मे असख्यात प्रदेशी अनन्त जीव, उनसे भी अनन्त गुणे पुद्गल, लोकाकाश प्रमाण असख्यात कालाणु लोकाकाश प्रमाण धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्य कैसे रहते है ?

भगवान् उत्तर मे कहते है—एक दीपक के प्रकाश मे अनेक दीपो का प्रकाश समा जाता है, अथवा एक गूढ रस विशेष मे भरे शीसे के बर्तन मे बहुत सा सुवर्ण समा जाता है, अथवा भस्म से भरे हुए घट मे सुई और ऊटनी का दूध आदि समा जाते है, इत्यादि दृष्टान्तो के अनुसार विशिष्ट अवगाहन

शक्तिरूपेण निरावरणा शुद्धबुद्धैकस्वभावास्तथा व्यक्तिरूपेण व्यवहारनयेनापि, न च तथा प्रत्यक्षविरोधादागमविरोधाच्चेति । एवमाकाशद्रव्यप्रतिपादनरूपेण सूत्रद्वयं गतम् ॥२०॥

अथ निश्चयव्यवहारकालस्वरूपं कथयति —

दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो ।
परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥२१॥

द्रव्यपरिवर्तनरूपः यः सः कालः भवेत् व्यवहारः ।
परिणामादिलक्ष्यः वर्त्तनालक्षणः च परमार्थः ॥२१॥

व्याख्या—'दव्वपरिवट्टरूवो जो' द्रव्यपरिवर्त्तरूपो यः 'सो कालो हवेइ ववहारो' स कालो भवति व्यवहाररूपः । स च कथंभूतः ? 'परिणामादीलक्खो' परिणामक्रियापरत्वापरत्वेन लक्ष्यत इति परिणामादिलक्ष्यः । इदानीं निश्चयकालः कथ्यते 'वट्टणलक्खो य परमट्ठो' वर्त्तनालक्षणश्च परमार्थकाल इति । तद्यथा—जीवपुद्गलयोः परिवर्त्तो नवजीर्णपर्यायस्तस्य या समयघटिकादिरूपा स्थितिः स्वरूपं यस्य स भवति द्रव्यपर्यायरूपो व्यवहारकालः । तथाचोक्तं संस्कृतप्राभृतेन—'स्थितिः कालसंज्ञका' तस्य पर्यायस्य सम्बन्धिनी याऽसौ समयघटिकादिरूपा स्थितिः सा व्यवहारकालसंज्ञा भवति, न च पर्याय इत्यभिप्रायः । यत

शक्ति के कारण असख्यात प्रदेश वाले लोक मे पूर्वोक्त जीव पुद्गलादिक के भी समा जाने मे कुछ विरोध नही आता । यदि इस प्रकार अवगाहनशक्ति न होवे तो लोक के असंख्यात प्रदेशो मे असख्यात परमाणुओ का ही निवास हो सकेगा । ऐसा होने पर जैसे शक्ति रूप शुद्ध निश्चयनय से सब जीव आवरण रहित तथा शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव के धारक है, वैसे ही व्यक्ति रूप व्यवहारनय से भी हो जाये, किन्तु ऐसे है नही । क्योकि ऐसा मानने मे प्रत्यक्ष और आगम मे विरोध है । इस तरह आकाश द्रव्य के निरूपण से दो सूत्र समाप्त हुए ।। २० ।।

अब निश्चयकाल तथा व्यवहारकाल के स्वरूप का वर्णन करते है —

गाथार्थ —जो द्रव्यो के परिवर्तन मे सहायक, परिणामादि लक्षण वाला है, सो व्यवहारकाल है, वर्त्तना-लक्षण वाला जो काल है वह निश्चय काल है ।। २१ ।।

वृत्त्यर्थः—"दव्वपरिवट्टरूवो जो" जो द्रव्य परिवर्त्तन रूप है 'सो कालो हवेइ ववहारो' वह व्यवहार रूप काल होता है । और वह कैसा है ? "परिणामादीलक्खो" परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व से जाना जाता है, इसलिये परिणामादि से लक्ष्य है । अब निश्चयकाल को कहते है—"वट्टणलक्खो य परमट्ठो" जो वर्त्तनालक्षण वाला है वह परमार्थ (निश्चय) काल है । विशेष—जीव तथा पुद्गल का परिवर्त्तनरूप जो नूतन तथा जीर्ण पर्याय है—उस पर्याय की जो समय, घडी आदि रूप स्थिति है, वह स्थिति है स्वरूप जिसका, वह द्रव्यपर्याय रूप व्यवहारकाल है । ऐसा ही संस्कृत-प्राभृत में भी कहा

एव पर्यायसम्बन्धिनी स्थितिर्व्यवहारकालसज्ञा भजते तत एव जीवपुद्गलसम्बन्धिपरिणामेन पर्यायेण तथैव देशान्तरचलनरूपया गोदोहनपाकादिपरिस्पन्दलक्षणरूपया वा क्रियया तथैव दूरासन्नचलनकालकृतपरत्वापरत्वेन च लक्ष्यते ज्ञायते य. स परिणामक्रियापरत्वापरत्वलक्षण इत्युच्यते । अथ द्रव्यरूपनिश्चयकालमाह । स्वकीयोपादानरूपेण स्वयमेवपरिणममानानां पदार्थानां कुम्भकारचक्रस्याधस्तनशिलावत्, शीतकालाध्ययने अग्निवत्, पदार्थपरिणतेर्यत्सहकारित्व सा वर्त्तना भण्यते । सैव लक्षण यस्य स वर्त्तनालक्षण कालाणुद्रव्यरूपो निश्चयकाल, इति व्यवहारकालस्वरूप निश्चयकालस्वरूप च विज्ञेयम् ।

कश्चिदाह 'समयरूप एव निश्चयकालस्तस्मादन्य कालाणुद्रव्यरूपो निश्चयकालो नास्त्यदर्शनात् ?' तत्रोत्तर दीयते—समयस्तावत्कालस्तस्यैव पर्याय । स कथ पर्याय इति चेत् ? पर्यायस्योत्पन्नप्रध्वसित्वात् । तथाचोक्त 'समओ उप्पण्ण पद्धंसी' । स च पर्यायो द्रव्य विना न भवति, पश्चात्तस्य समयरूपपर्यायकालस्योपादानकारणभूत द्रव्य तेनापि कालरूपेण भाव्यम् । इन्धनाग्निसहकारिकारणोत्पन्नस्यौदनपर्यायस्य तन्दुलोपादानकारणवत्, अथ कुम्भकारचक्रचीवरादिबहिरगनिमित्तोत्पन्नस्य मृण्मयघटपर्यायस्य मृत्पिण्डोपादानकारणवत्,

---

है—"जो स्थिति है, वह कालसज्ञक है" । साराश यह है—द्रव्य की पर्याय से सम्बन्ध रखने वाली जो यह समय, घडी आदि रूप स्थिति है, वह स्थिति ही "व्यवहारकाल" है, वह पर्याय व्यवहारकाल नही है । और क्योकि पर्यायसम्बन्धिनी स्थिति 'व्यवहारकाल' है इसी कारण जीव व पुद्गल के परिणाम रूप पर्याय मे तथा देशान्तर मे आने-जाने रूप अथवा गाय दुहनी व रसोई करना आदि हलन-चलन रूप क्रिया से तथा दूर या समीप देश मे चलन रूप कालकृत परत्व तथा अपरत्व से यह काल जाना जाता है, इसीलिये वह व्यवहारकाल परिणाम, क्रिया, परत्व तथा अपरत्व लक्षण वाला कहा जाता है । अब द्रव्य रूप निश्चयकाल को कहते है—अपने-अपने उपादान रूप कारण से स्वयं परिणमन करते हुए पदार्थों को, जसे कुम्भकार के चाक के भ्रमण मे उसके नीचे की कीली सहकारिणी है, अथवा शीतकाल मे छात्रो को पढने के लिये अग्नि सहकारी है, उसी प्रकार जो पदार्थो के परिणमन मे सहकारता है, उसको "वर्त्तना" कहते है । वह वर्त्तना ही है लक्षण जिसका, वह वर्त्तना लक्षण वाला कालाणु द्रव्य रूप "निश्चयकाल" है । इस तरह व्यवहारकाल तथा निश्चयकाल का स्वरूप जानना चाहिये ।

यहा कोई कहता है—कि समय रूप ही निश्चयकाल है, उस समय से भिन्न अन्य कोई कालाणु द्रव्य रूप निश्चयकाल नही है, क्योकि वह देखने मे नही आता । इसका उत्तर देते है—कि समय तो काल की ही पर्याय है । यदि यह पूछो कि समय काल की पर्याय कैसे है ? तो उत्तर यह है, पर्याय का लक्षण उत्पन्न व नाश होना है । 'समय' भी उत्पन्न व नष्ट होता है, इसलिये पर्याय है । पर्याय द्रव्य के बिना नही होती, उस समय रूप पर्याय काल का (व्यवहार काल का) उपादान कारणभूत द्रव्य भी कालरूप ही होना चाहिए । क्योकि जैसे ईधन, अग्नि आदि सहकारी कारण से उत्पन्न भात (पके चावल) का उपादान कारण चावल ही होता है, अथवा कुम्भकार, चाक, चीवर आदि बहिरंग निमित्त

अथवा नरनारकादिपर्यायस्य जीवोपादानकारणवदिति । तदपि कस्मादुपादानकारणसदृशं कार्यं भवतीति वचनात् । अथ मतं 'समयादिकालपर्यायाणां कालद्रव्यमुपादानकारण न भवति, किन्तु समयोत्पत्तौ मन्दगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुस्तथा निमेषकालोत्पत्तौ नयनपुटविघटन, तथैव घटिकाकालपर्यायोत्पत्तौ घटिकासामग्रीभूतजलभाजनपुरुषहस्तादिव्यापारो, दिवसपर्याये तु दिनकरविम्बमुपादानकारणमिति ।' नैवम् । यथा तन्दुलोपादानकारणोत्पन्नस्य सदोदनपर्यायस्य शुक्लकृष्णादिवर्णा, सुरभ्यसुरभिगन्ध–स्निग्धरूक्षादिस्पर्श–मधुरादिरसविशेषरूपा गुणा दृश्यन्ते । तथा पुद्गलपरमाणुनयनपुटविघटनजलभाजनपुरुषव्यापारादिदिनकरविम्बरूपै पुद्गलपर्यायैरुपादानभूतै समुत्पन्नाना समयनिमिषघटिकादिकालपर्यायाणामपि शुक्लकृष्णादिगुणा प्राप्नुवन्ति, न च तथा । उपादानकारणसदृश कार्यमिति वचनात् । कि बहुना । योऽसावनाद्यनिधनस्तथैवामूर्त्तो नित्य समयाद्युपादानकारणभूतोऽपि समयादिविकल्परहित: कालाणुद्रव्यरूप स निश्चयकालो, यस्तु सादिसान्तसमयघटिकाप्रहरादिविवक्षितव्यवहारविकल्परूपस्तस्यैव द्रव्यकालस्य पर्यायभूतो व्यवहारकाल इति । अयमत्र भाव । यद्यपि काललब्धिवशेनानन्तसुखभाजनो भवति जीवस्तथापि विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभा-

---

कारणो से उत्पन्न जो मिट्टी की घट पर्याय है उसका उपादान कारण मिट्टी का पिड ही है, अथवा नर, नारक आदि जो जीव की पर्याय है उनका उपादान कारण जीव है, इसी तरह समय घडी आदि काल का भी उपादान कारण काल ही होना चाहिए । यह नियम भी इसलिये है कि "अपने उपादान कारण के समान ही कार्य होता है" ऐसा वचन है ।

कदाचित् ऐसा कहो कि "समय, घडी आदि कालपर्यायो का उपादान कारण कालद्रव्य नही है किन्तु समय रूप कालपर्याय की उत्पत्ति मे मदगति से परिणत पुद्गल परमाणु उपादान कारण है, तथा निमेषरूप कालपर्याय की उत्पत्ति मे नेत्रो के पुटो का विघटन अर्थात् पलक का गिरना उठना उपादान कारण है, ऐसे ही घडी रूप कालपर्याय की उत्पत्ति मे घडी की सामग्रीरूप जल का कटोरा और पुरुष के हाथ आदि का व्यापार उपादान कारण है, दिन रूप कालपर्याय की उत्पत्ति मे सूर्य का विम्व उपादान कारण है ।" ऐसा नही है, जिस तरह चावलरूप उपादान कारण से उत्पन्न भात पर्याय के उपादान कारण मे प्राप्त गुणो के समान ही सफेद, काला आदि वर्ण, अच्छी या बुरी गन्ध, चिकना अथवा रूखा आदि स्पर्श, मीठा आदि रस, इत्यादि विशेप गुण दीख पडते है, वैसे ही पुद्गल परमाणु, नेत्रपलक विघटन, जल कटोरा, पुरुषव्यापार आदि तथा सूर्य का विम्व इन रूप जो उपादानभूत पुद्गलपर्याय है उनसे उत्पन्न हुए समय, निमिष, घडी, दिन आदि जो कालपर्याय है उनके भी सफेद, काला आदि गुण मिलने चाहिये, परन्तु समय घडी आदि मे ये गुण नही दीख पडते, क्योकि उपादान कारण के समान कार्य होता है ऐसा वचन है ।

बहुत कहने से क्या लाभ । जो आदि तथा अन्त से रहित अमूर्त्त है, नित्य है, समय आदि का उपादानकारणभूत है तो भी समय आदि भेदो से रहित है और कालाणु द्रव्यरूप है, वह निश्चयकाल

वनिजपरमात्मतत्त्वस्य सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानसमस्तवहिर्द्रव्येच्छानिवृत्तिलक्षणतपश्चरण-रूपा या निश्चयचतुर्विधाराधना सैव तत्रोपादानकारण ज्ञातव्यम् न च कालस्तेन स हेय इति ॥ २१ ॥

अथ निश्चयकालस्यावस्थानक्षेत्र द्रव्यगणना च प्रतिपादयति –

लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का ।
रयणाण रासी इव ते कालाणू असंखदव्वाणि । २२ ।

लोकाकाशप्रदेशे एकैकस्मिन ये स्थिताः हि एकैकाः ।
रत्नाना राशिः इव ते कालाणवः असख्यद्रव्याणि ॥ २२ ॥

व्याख्या—'लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का' लोकाकाशप्रदेशेष्वेकैकेषु ये स्थिता एकैकसख्योपेता 'हु' स्फुट । क इव ? 'रयणाण रासीइव' परस्परतादात्म्यपरिहारेण रत्नाना राशिरिव । 'ते कालाणू' ते कालाणव । कति सख्योपेता ? 'असखदव्वाणि' लोकाकाशप्रमितासख्येयद्रव्याणीति । तथाहि–यथा अगुलिद्रव्यस्य यस्मिन्नेव क्षणे वक्रपर्यायोत्पत्तिस्तस्मिन्नेव क्षणे पूर्वप्राञ्जलपर्यायविनाशोऽङ्गुलिरूपेण ध्रौव्यमिति द्रव्यसिद्धि ।

है और जो आदि तथा अन्त से सहित है, समय, घडी, पहर आदि व्यवहार के विकल्पो से युक्त है, वह उसी द्रव्यकाल का पर्याय रूप व्यवहारकाल है । साराश यह कि यद्यपि यह जीव काललब्धि के वश से अनन्त सुख का भाजन होता है, तो भी विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभाव का धारक जो निज परमात्म तत्त्व का सम्यकश्रद्धान, ज्ञान आचरण और सपूर्ण बाह्य द्रव्यो की इच्छा को दूर करने रूप लक्षण वाला तपश्चरणरूप जो दर्शन ज्ञान, चारित्र, तपरूप चार प्रकार की निश्चय आराधना है, वह आराधना ही उस जीव के अनन्त सुख की प्राप्ति मे उपादान कारण जाननी चाहिए उसमे काल उपादान कारण नही है, इसलिये वह कालद्रव्य हेय है ॥ २१ ॥

अब निश्चयकाल के रहने का क्षेत्र तथा काल द्रव्य की संख्या का प्रतिपादन करते है :—

गाथार्थ —जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नो के ढेर समान परस्पर भिन्न हो कर एक-एक स्थित है वे कालाणु असख्यात द्रव्य है ॥ २२ ॥

वृत्त्यर्थ —"लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का" एक–एक लोकाकाश के प्रदेश पर जो एक-एक सख्यायुक्त स्पष्ट रूप से स्थित है । किस के समान है ? "रयणाणं रासी इव" परस्पर मे तादातम संबंध के अभाव के कारण रत्नो की राशि के समान भिन्न २ स्थित है । "ते कालाणू" वे कालाणु है । कितनी सख्या के धारक है ? "असखदव्वाणि" लोकाकाश के प्रदेशो की संख्या के बराबर असख्यात द्रव्य है । विशेष—जैसे जिस क्षण मे अ गुली रूप द्रव्य के टेढी रूप पर्याय की उत्पत्ति होती है उसी क्षण मे उसके सीधे आकार रूप पर्याय का नाश होता और अ गुली रूप से वह अ गुली दोनो दशाओ मे ध्रौव्य है । इस तरह उत्पत्ति, नाश तथा ध्रौव्य इन तीनो लक्षणो से युक्त द्रव्य के स्वरूप की सिद्धि है । तथा

यथैव च केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपेण कार्यसमयसारस्योत्पादो निर्विकल्पसमाधिरूपकारणसमयसारस्य विनाशस्तदुभयाधारपरमात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति वा द्रव्यसिद्धि.। तथा कालाणोरपि मन्दगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुना व्यक्तीकृतस्य कालाणूपादानकारणोत्पन्नस्य य एव वर्तमानसमयस्योत्पाद स एवातीतसमयापेक्षया विनाशस्तदुभयाधारकालाणुद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमित्युत्पादव्ययध्रौव्यात्मककालद्रव्यसिद्धि । लोकवहिर्भागेकालाणुद्रव्याभावात्कथमाकाशद्रव्यस्य परिणतिरिति चेत् ? अखण्डद्रव्यत्वादेकदेशदण्डाहतकुम्भकारचक्रभ्रमणवत्, तथैवैकदेशमनोहरस्पर्शनेन्द्रियविषयानुभवसर्वाङ्गसुखवत्. लोकमध्यस्थितकालाणुद्रव्यधारणैकदेशेनापि सर्वत्र परिणमनं भवतीति कालद्रव्य शेपद्रव्याणा परिणते सहकारिकारण भवति। कालद्रव्यस्य कि सहकारिकारणमिति ? यथाकाशद्रव्यमशेषद्रव्याणामाधार स्वस्यापि तथा कालद्रव्यमपि परेषा परिणतिसहकारिकारण स्वस्यापि। अथ मतं यथा कालद्रव्य स्वस्योपादानकारण परिणते सहकारिकारण च भवति तथा सर्वद्रव्याणि, कालद्रव्येण कि प्रयोजनमिति ? नैवम्, यदि पृथग्भूतसहकारिकारणेनप्रयोजन नास्ति तर्हि सर्वद्रव्याणा साधारणगतिस्थित्यवगाहनविपये धर्माधर्माकाशद्रव्यैरपि सहकारिकारणभूतै. प्रयोजनं नास्ति।

जैसे केवल ज्ञान आदि की प्रकटता रूप कार्य समयसार का (परम-आत्मा का) उत्पाद होता है उसी समय निर्विकल्प ध्यान रूप जो कारण समयसार है, उसका नाश होता है और उन दोनो का आधारभूत जो परमात्मा द्रव्य है उस रूप मे ध्रौव्य है, इस तरह से भी द्रव्य की सिद्धि है। उसी तरह कालाणु के भी, जो मन्दगति मे परिणत पुद्गल परमाणु द्वारा प्रगट किये हुए और कालाणुरूप उपादान कारण से उत्पन्न हुए जो यह वर्त्तमान समय का उत्पाद है, वही बीते हुए समय की अपेक्षा विनाश है और उन वर्त्तमान तथा अतीत दोनो समय का आधारभूत कालद्रव्यत्व से ध्रौव्य है। इस तरह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप काल द्रव्य की सिद्धि है।

शंका —"लोक के बाहरी भाग मे कालाणु द्रव्य के अभाव से अलोकाकाश में परिणमन कैसे हो सकता है ?,' इस शका का उत्तर यह है—आकाश अखड द्रव्य है इसलिये जैसे चाक के एक कोने मे डन्डे की प्रेरणा से कुम्हार का सारा चाक घूमने लगता है; अथवा जैसे स्पर्शन इन्द्रिय के विपय का प्रिय अनुभव एक अंग मे करने से समस्त शरीर मे सुख का अनुभव होता है, उसी प्रकार लोक आकाश मे स्थित जो कालाणु द्रव्य है वह आकाश के एक देश मे स्थित है तो भी सर्व अखण्ड आकाश मे परिणमन होता है, इसी प्रकार काल द्रव्य शेप सव द्रव्यो के परिणमन मे सहकारी कारण है।

शंका :—जैसे काल द्रव्य जीव पुद्गल आदि द्रव्यो के परिणमन मे सहकारी कारण है वैसे ही काल द्रव्य के परिणमन मे सहकारी कारण कौन है ? उत्तर—जिस तरह आकाशद्रव्य शेप सव द्रव्यो का आधार है और अपना आधार भी आप ही है, इसी तरह कालद्रव्य भी अन्य सव द्रव्यो के परिणमन मे सहकारी कारण है और अपने परिणमन मे भी सहकारी कारण है।

किञ्च, कालस्य घटिकादिवसादिकार्यं प्रत्यक्षेण दृश्यते, धर्मादीना पुनरागमकथनमेव, प्रत्यक्षेण किमपि कार्यं न दृश्यते, ततस्तेपामपि कालद्रव्यस्येवाभाव प्राप्नोति । ततश्च जीवपुद्गलद्रव्यद्वयमेव, स चागमविरोध. । किञ्च, सर्वद्रव्याणा परिणतिसहकारित्वं कालस्यैव गुण , घ्राणेन्द्रियस्य रसास्वादनमिवान्यद्रव्यस्य गुणोऽन्यद्रव्यस्य कर्तुं नायाति द्रव्यसकरदोपप्रसगादिति ।

कश्चिदाह---यावत्कालेनैकाकाशप्रदेश परमाणुरतिक्रामति ततस्तावत् कालेन समयो भवतीत्युक्तमागमे एकसमयेन चतुर्दशरज्जुगमने यावत आकाशप्रदेशास्तावन्त समया प्राप्नुवन्ति । परिहारमाह---एकाकाशप्रदेशातिक्रमेण यत् समयव्याख्यान कृत तन्मन्दगत्यपेक्षया, यत्पुनरेकसमये चतुर्दशरज्जुगमनव्याख्यान तत्पुन शीघ्रगत्यपेक्षया । तेन कारणेन चतुर्दशरज्जुगमनेऽप्येकसमय । तत्र दृष्टान्त ---कोऽपि देवदत्तो योजनशत मन्दगत्या दिनशतेन गच्छति । स एव विद्याप्रभावेण शीघ्रगत्या दिनेनैकेनापि गच्छति तत्र कि दिनशत भवति । किन्त्वेक एव दिवस । तथा चतुर्दशरज्जुगमनेऽपि शीघ्रगमनेनैक एव समय ।

शका —जैसे कालद्रव्य अपना उपादान कारण है और अपने परिणमन का सहकारी कारण है, वैसे ही जीव आदि सब द्रव्य भी अपने उपादान कारण और अपने २ परिणमन के सहकारी कारण रहे । उन द्रव्यो के परिणमन मे कालद्रव्य से क्या प्रयोजन है ? समाधान—ऐसा नही है क्योकि, यदि अपने से भिन्न वहिरग सहकारी कारण की आवश्यकता न हो तो सब द्रव्यो के साधारण गति, स्थिति, अवगाहन के लिये सहकारी कारणभूत जो धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्य है उनकी भी कोई आवश्यकता नही रहेगी । विशेष —काल का कार्य तो घडी, दिन आदि प्रत्यक्ष से दीख पडता है, किन्तु धर्म द्रव्य आदि का कार्य तो केवल आगम (शास्त्र) के कथन से ही माना जाता है, उनका कोई कार्य प्रत्यक्ष नही देखा जाता इसलिए जैसे कालद्रव्य का अभाव मानते हो उसी प्रकार उन धर्म, अधर्म तथा आकाश द्रव्यो का भी अभाव प्राप्त होता है । और तब जीव तथा पुद्गल ये दो ही द्रव्य रह जायेगे । केवल दो ही द्रव्योके मानने पर आगम मे विरोध आता है । सब द्रव्यो के परिणमन मे सहकारी होना यह केवल कालद्रव्य का ही गुण है । जैसे नाक से रस का आस्वाद नही हो सकता, ऐसे ही अन्य द्रव्य का गुण भी अन्य द्रव्य के द्वारा नही किया जाता । क्योकि ऐसा मानने से द्रव्यसकर दोप का प्रसग आवेगा (अन्य द्रव्य का लक्षण अन्य द्रव्य मे चला जायगा) ।

अब कोई कहता है—जितने काल मे "आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे परमाणु गमन करता है उतने काल का नाम समय है', ऐसा शास्त्र मे कहा है तो एक समय मे परमाणु के चौदह रज्जु गमन करने पर जितने आकाश के प्रदेश है उतने ही समय होने चाहिये ? शका का निराकरण करते है-आगम मे जो परमाणु का एक समय मे एक आकाश के प्रदेश से साथ वाले दूसरे प्रदेश पर गमन करना कहा है, सो तो मन्दगति की अपेक्षा से है तथा परमाणु का एक समय मे जो चौदह रज्जु गमन कहा है वह शीघ्र गमन की अपेक्षा से है। इसलिये शीघ्रगति से चौदह रज्जु गमन करने मे भी

किञ्च—स्वय विषयानुभवरहितोऽप्यय जीव परकीयविषयानुभव दृष्टम् श्रुत च मनसि स्मृत्वा यद्विषयाभिलाष करोति तदपध्यान भण्यते तत्प्रभृतिसमस्तजालरहितं स्वसवित्तिसमुत्पन्नसहजानन्दैकलक्षणसुखरसास्वादसहित यत्तद्वीतरागचारित्र भवति । यत्पुनस्तदविनाभूत तन्निश्चयसम्यक्त्वं बीतरागसम्यक्त्व चेति भण्यते । तदेव कालत्रयेऽपि मुक्तिकारणम् । कालस्तु तदभावे सहकारिकारणमपि न भवति ततः स हेय इति । तथाचोक्तम्,—"कि पलविएण बहुणा जे सिद्धा णरवरा गए काले । सिद्धिहहि जेवि भविया त जाणह सम्ममाहप्प ॥" इदमत्र तात्पर्यम्—कालद्रव्यमन्यद्वा परमागमाविरोधेन विचारणीय पर किन्तु वीतरागसर्वज्ञवचनं प्रमाणमिति मनसि निश्चित्य विवादो न कर्तव्य । कस्मादिति चेत् ? विवादे रागद्वेषौ भवतस्ततश्च ससारवृद्धिरिति ॥ २२ ॥

एव कालद्रव्यव्याख्यानमुख्यतया पञ्चमस्थले सूत्रद्वय गत । इतिगाथाष्टकसमुदायेन पचभि. स्थलै पुद्गलादिपचविधाजीवद्रव्यकथनरूपेण द्वितीयो अन्तराधिकार समाप्त ।

अत पर सूत्रपञ्चकपर्यन्त पञ्चास्तिकायव्याख्यानं करोति । तत्रादौ गाथापूर्वार्द्धेन

परमाणु को एक ही समय लगता है । इसमे दृष्टान्त यह ह कि जेसे जो देवदत्त धीमी चाल के सौ योजन सौ दिन मे जाता है, वही देवदत्त विद्या के प्रभाव स शीघ्रगति के द्वारा सौ योजन एक दिन मे भी जाता है, तो क्या उस देवदत्त को शीघ्रगति से सौ योजन गमन करने मे सौ दिन हो गये ? किन्तु एक ही दिन लगेगा । इसी तरह शीघ्रगति से चौदह रज्जु गमन करन मे भी परमाणु को एक ही समय लगता है ।

तथा स्वय विषयो के अनुभव से रहित भी यह जीव अन्य के द्वारा अनुभव किए हुए, देखे हुए, सुने हुए विषय को मनमे स्मरण करके विषयो की इच्छा करता है उसको अपध्यान कहते है । उस विषय अभिलापा आदि समस्त विकल्पो से रहित और आत्मअनुभव से उत्पन्न स्वाभाविक आनन्दरूप सुख के रस आस्वाद से सहित वीतराग चारित्र होता है और जो उस वीतराग चारित्र से अविनाभूत है वह निश्चय सम्यक्त्व तथा वीतराग सम्यक्त्व है । वह निश्चय सम्यक्त्व ही तीनो कालो मे मुक्ति का कारण है । काल तो उस निश्चय सम्यक्त्व के अभाव मे वीतराग चारित्रका सहकारी कारण भी नही होता, इस कारण कालद्रव्य हेय है । ऐसा कहा भी है—'वहुत कहने से क्या, जो श्रेष्ठ पुरुप सिद्ध हुए है, हो रहे है व होगे, वह सब सम्यक्त्व का माहात्म्य है ।" यहा तात्पर्य यह है कि कालद्रव्य तथा अन्य द्रव्योके विपय मे परम-आगम के अविरोध से ही विचारना चाहिए; 'वीतराग सर्वज्ञ का वचन प्रमाण है" ऐसा मन मे निश्चय करके उनके कथन मे विवाद नही करना चाहिए । क्योकि विवाद मे राग-द्वेप उत्पन्न होते है और उन राग-द्वेषो से ससार की वृद्धि होती है ॥ २२ ॥

इस प्रकार कालद्रव्य के व्याख्यान की मुख्यता से पाचवे स्थल मे दो गाथा हुई । इस प्रकार आठ गाथाओ के समुदाय रूप पाचवे स्थल से पुद्गलादि पाच प्रकार के अजीव द्रव्य के कथन द्वारा दूसरा अन्तर अधिकार समाप्त हुआ ।

षड्द्रव्यव्याख्यानोपसहार उत्तरार्धेन तु पचास्तिकायव्याख्यानप्रारम्भ कथ्यते :—

एव छब्भेयमिद जीवाजीवप्पभेददो दब्ब ।

उत्तं कालविजुत्त णादव्वा पच अत्थिकाया दु ॥२३॥

एव षड्भेद इदं जीवाजीवप्रभेदतः द्रव्यम् ।

उक्त कालवियुक्तम् ज्ञातव्याः पञ्च अस्तिकायाः तु ॥२३॥

व्याख्या—"एव छब्भेयमिद जीवाजीवप्पभेददो दब्वा उत्त" एव पूर्वोक्तप्रकारेण षड्भेदमिद जीवाजीवप्रभेदत सकाशाद्द्रव्यमुक्त कथित प्रतिपादितम् । "कालविजुत्त णादव्वा पच अत्थिकाया दु" तदेव षड्विध द्रव्य कालेन वियुक्त रहित ज्ञातव्या पञ्चास्तिकायास्तु पुनरिति ॥ २३ ॥

पञ्चेति सख्या ज्ञाता तावदिदानीमस्तित्व कायत्व च निरूपयति –

सति जदो तेणेदे अत्थित्ति भणति जिणवरा जह्मा ।

काया इव बहुदेसा तह्मा काया य अत्थिकाया य ॥ २४ ॥

सन्ति यतः तेन एते अस्ति इति भणन्ति जिनवराः यस्मात् ।

काया इव बहुदेशाः तस्मात् कायाः च अस्तिकायाः च ॥ २४ ॥

अब इसके पश्चात् पाँच गाथाओ मे पचास्तिकाय का व्याख्यान करते है और उनमे भी प्रथम गाथा के पूर्वार्ध मे छहो द्रव्यो के व्याख्यान का उपसहार और उत्तरार्ध से पचास्तिकाय के व्याख्यान का आरम्भ कहते है —

गाथार्थः—इस प्रकार जीव और अजीव के अभेद से यह द्रव्य छह प्रकार के है । कालद्रव्य के विना शेप पाच द्रव्य अस्तिकाय जानने चाहिये ॥ २३ ॥

वृत्यर्थ —"एव छब्भेयमिद जीवाजीवप्पभेददो दव्व उत्त" पूर्वोक्त प्रकार से जीव तथा अजीव के भेद मे ये द्रव्य छह प्रकार के कहे गये है। "कालविजुत्त णादव्वा पंच अत्थिकाया दु" वे ही छह प्रकार के द्रव्य कालरहित अर्थात् काल के विना (शेप पाच द्रव्यो को) पाच अस्तिकाय समझना चाहिये

अस्तिकाय की पाच सख्या तो जान ली है, अव उनके अस्तित्व और कायत्व का निरूपण करते है :—

गाथार्थ :—"चूकि विद्यमान है इसलिये जिनेश्वर ने इनको 'अस्ति' कहा है और ये शरीर के समान बहुप्रदेशी है इसलिये इनको 'काय' कहा है। अस्ति तथा काय दोनो को मिलाने से 'अस्तिकाय' होते है ॥ २४ ॥

वृत्यर्थ —"संति जदो तणेदे अत्थित्ति भणति जिणवरा" जीव से आकाश तक पाच द्रव्य

व्याख्या--"संति जदो तेणेदे अत्थित्ति भणंति जिणवरा" सन्ति विद्यन्ते यत एते जीवाद्याकाशपर्यन्ता पञ्च तेन कारणेनैतेऽस्तीति भणंति जिणवरा सर्वज्ञा । "जह्मा काया इव बहुदेसा तह्मा काया य" यस्मात्काया इव बहुप्रदेशास्तस्मात्कारणात्कायाश्च भणंति जिनवरा. । 'अत्थिकाया य' एव न केवल पूर्वोक्तप्रकारेणास्तित्वेन युक्ता अस्तिसंज्ञास्तथैव कायत्वेन युक्ता कायसंज्ञा भवन्ति किन्तूभयमेलापकेनास्तिकायसंज्ञाश्च भवन्ति । इदानीं संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽप्यस्तित्वेन सहाभेद दर्शयति । तथाहिशुद्धजीवास्तिकाये सिद्धत्व-लक्षण. शुद्धद्रव्यव्यञ्जनपर्यायः, केवलज्ञानादयो विशेषगुणा अस्तित्ववस्तुत्वागुरुलघुत्वादय सामान्यगुणाश्च । तथैवाव्याबाधानन्तसुखाद्यनन्तगुणव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्योत्पादो रागादिविभावरहितपरमस्वास्थ्यरूपस्य कारणसमयसारस्य व्ययस्तदुभयाधारभूतपरमात्म-द्रव्यत्वेन ध्रौव्यमित्युक्तलक्षणैर्गुणपर्यायैरुत्पादव्ययध्रौव्यैश्च सह मुक्तावस्थाया संज्ञालक्षणप्र-योजनादिभेदेऽपि सत्तारूपेण प्रदेशरूपेण च भेदो नास्ति । कस्मादिति चेत् ? मुक्तात्मसत्तायां गुणपर्यायाणामुत्पादव्ययध्रौव्याणा चास्तित्व सिद्ध्यति, गुणपर्यायोत्पादव्ययध्रौव्यसत्तायाश्च मुक्तात्मास्तित्वं सिद्ध्यतीति परस्परसाधितसिद्धत्वादिति । कायत्व कथ्यते—बहुप्रदेशप्रचय दृष्ट्वा यथा शरीरं कायो भण्यते तथानन्तज्ञानादिगुणाधारभूताना लोकाकाशप्रमितासंख्येय-शुद्धप्रदेशाना प्रचयं समूहं संघातं मेलापक दृष्ट्वा मुक्तात्मनि कायत्व भण्यते । यथा शुद्धगुणप-

विद्यमान है इसलिये सर्वज्ञ देव इनको 'अस्ति' कहते है । "जह्मा काया इव बहुदेसा तह्मा काया य" और क्योकि काय अर्थात् शरीर के समान ये बहुत प्रदेशो के धारक है, इस कारण जिनेश्वरदेव इनको 'काय' कहते है । "अत्थिकाया य" इस प्रकार अस्तित्व से युक्त ये पाचो द्रव्य केवल 'अस्ति' ही नही है और कायत्व से युक्त होने से केवल 'काय' भी नही है, किन्तु अस्ति और काय इन दोनो को मिलाने से "अस्ति-काय" संज्ञा के धारक है ।

अब इन पाचो के संज्ञा लक्षण तथा प्रयोजन आदि से यद्यपि परस्पर भेद है तथापि अस्तित्व के साथ अभेद है यह दर्शाते है —

जैसे शुद्ध जीवास्तिकाय मे सिद्धत्व रूप शुद्ध द्रव्य-व्यञ्जन-पर्याय है, केवल ज्ञान आदि विशेष गुण है तथा अस्तित्व, वस्तुत्व और अगुरुलघुत्व आदि सामान्य गुण है । तथा मुक्ति दशा मे अव्याबाध अनन्तसुख आदि अनन्तगुणो की प्रकटता रूप कार्य समयसार का उत्पाद, रागादि विभाव रहित परम स्वास्थ्य रूप कारण समय-सार का व्यय (नाश) और उत्पाद तथा व्यय इन दोनो का आधारभूत परमात्मा रूप द्रव्यपने से ध्रौव्य है । इस प्रकार पहले कहे लक्षण सहित गुण तथा पर्यायो से और उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य के साथ मुक्त अवस्था मे संज्ञा, लक्षण तथा प्रयोजन आदि का भेद होने पर भी सत्ता रूप से और प्रदेश रूप से भेद नही है । क्योकि मुक्त जीवो की सत्ता होने पर गुण तथा पर्यायो की और उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य की सत्ता सिद्ध होती है, एवं गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य की सत्ता मे मुक्त आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है । इस तरह गुण पर्याय आदि मे मुक्त आत्मा की और मुक्त

यपर्योत्पादव्ययध्रौव्यै सह मुक्तात्मन सत्तारूपेण निश्चयेनाभेदो दर्शितस्तथा यथासंभवं संसारिजीवेषु पुद्गलधर्माधर्माकाशकालेषु च द्रष्टव्य.। कालद्रव्य विहाय कायत्वं चेति सूत्रार्थ ॥ २४ ॥

अथ कायत्वव्याख्याने पूर्व यत्प्रदेशास्तित्व सूचित तस्य विशेषव्याख्यान करोतीत्येका पातनिका, द्वितीया तु कस्य द्रव्यस्य कियन्त प्रदेशा भवन्तीति प्रतिपादयति –

होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे ।

मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥ २५ ॥

भवन्ति असंख्याः जीवे धर्माधर्मयोः अनन्ताः आकाशे ।

मूर्ते त्रिविधा प्रदेशाः कालस्य एकः न तेन सः कायः ॥ २५ ॥

व्याख्या––"होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे" भवन्ति लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशा प्रदीपवदुपसंहारविस्तारयुक्तेऽप्येकजीवे, नित्य स्वभावविस्तीर्णयोर्धर्माधर्मयोरपि । "अणंत आयासे" अनन्तप्रदेशा आकाशे भवन्ति । "मुत्ते तिविह पदेसा" मूर्ते पुद्गलद्रव्ये संख्याता-संख्यातानन्ताणूना पिण्डा स्कन्धास्त एव त्रिविधा प्रदेशा भण्यन्ते, न च क्षेत्रप्रदेशा ।

आत्मा मे गुण पर्याय की परस्पर सत्ता सिद्ध होती है । अव इनके कायपना कहते है—बहुत से प्रदेशो के समूह को देखकर जैसे शरीर को काय कहते है (जैसे शरीर मे अधिक प्रदेश होने के कारण शरीर को काय कहते है) उसी प्रकार अनतज्ञान आदि गुणो के आधारभूत जो लोकाकाश के बराबर असख्यात शुद्ध प्रदेशो का समूह, सघात अथवा मेल को देखकर मुक्त जीव मे भी कायत्व कहा जाता है। जैसे शुद्ध गुण, पर्यायो से उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से सहित मुक्तआत्मा के निश्चयनय की अपेक्षा सत्ता रूप से अभेद बताया गया है, वैसे ही ससारी जीवो मे पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यो मे भी यथा सभव परस्पर अभेद देख लेना चाहिये। कालद्रव्य को छोडकर अन्य सब द्रव्यो के कायत्व रूप से भी अभेद है। यह गाथा का अभिप्राय है ॥ २४ ॥

अव कायत्व के व्याख्यान मे जो पहले प्रदेशो का अस्तित्व सूचित किया है उसका विशेष व्याख्यान करते है यह तो अगली गाथा की एक भूमिका है, और किस द्रव्य के कितने प्रदेश होते है, दूसरी भूमिका यह प्रतिपादन करती है —

गाथार्थः—जीव, धर्म तथा अधर्म द्रव्य मे असख्यात प्रदेश है और आकाश मे अनन्त है । पुद्गल संख्यात, असख्यात तथा अनन्त प्रदेशी तीनो प्रकार वाले है। काल के एक ही प्रदेश है इसलिये काल 'काय' नही है ॥ २५ ॥

वृत्त्यर्थः—"होंति असखा जीवे धम्माधम्मे" दीपक के समान सकोच तथा विस्तार से युक्त एक जीव मे भी और सदा स्वभाव से फैले हुए धर्म, अधर्म द्रव्यो मे भी लोकाकाश के बराबर असख्यात प्रदेश होते है। 'अणंत आयासे" आकाश मे अनन्त प्रदेश होते है । "मुत्ते तिविह पदेसा" मूर्त—पुद्गल मे जो सख्यात, असख्यात तथा अनन्त परमाणुओ के पिंड अर्थात् स्कन्ध हैं, वे ही तीन प्रकार

कस्मात् ? पुद्गलस्यानन्तप्रदेशक्षेत्रे अवस्थानाभावादिति । "कालस्सेगो" कालाणुद्रव्यस्यैक एव प्रदेश । 'ण तेण सो काओ' तेन कारणेन स कायो न भवति । कालस्यैकप्रदेशत्वविषये युक्ति प्रदर्शयति । तद्यथा--किञ्चिदूनचरमशरीरप्रमाणस्य सिद्धत्वपर्यायस्योपादानकारणभूत शुद्धात्मद्रव्य तत्पर्यायप्रमाणमेव । यथा वा मनुष्यदेवादिपर्यायोपादानकारणभूतं ससारिजीवद्रव्यं तत्पर्यायप्रमाणमेव, तथा कालद्रव्यमपि समयरूपस्य कालपर्यायस्य विभागेनोपादानकारणभूतमविभाग्येकप्रदेश एव भवति । अथवा मन्दगत्या गच्छत पुद्गलपरमाणोरेकाकाशप्रदेशपर्यन्तमेव कालद्रव्य गते सहकारिकारण भवति ततो ज्ञायते तदप्येकप्रदेशमेव ।

कश्चिदाह--पुद्गलपरमाणोर्गतिसहकारिकारण धर्मद्रव्यं तिष्ठति, कालस्य किमायातम् ? नैव वक्तव्यम्--धर्मद्रव्ये गतिसहकारिकारणे विद्यमानेऽपि मत्स्याना जलवन्मनुष्याणा शकटारोहणादिवत्सहकारिकारणानि बहून्यपि भवन्ति इति । अथ मत कालद्रव्य पुद्गलानां गतिसहकारिकारण कुत्र भणितमास्ते ? तदुच्यते--"पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणादु" इत्युक्तं श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवैः पञ्चास्तिकायप्राभृते । अस्यार्थः कथ्यते--धर्मद्रव्ये विद्यमानेऽपि जीवानाम् कर्मनोकर्मपुद्गला गते सहकारिकारण भवन्ति, अणुस्कन्धभेदभिन्नपुद्गलाना तु कालद्रव्यमित्यर्थ ॥ २५ ॥

के प्रदेश कहे जाते है, न कि क्षेत्र-प्रदेश तीन प्रकार के है । क्योकि पुद्गल अनन्त प्रदेश वाले क्षेत्र मे नही रहता । 'कालस्सेगो'' कालद्रव्य का एक ही प्रदेश है । 'ण तेण सो काओ'' इसी कारण कालद्रव्य 'काय' नही है ।

कालद्रव्य के एक प्रदेशी होने मे युक्ति बतलाते है । यथा—जैसे अन्तिम शरीर से कुछ कम प्रमाण के धारक सिद्धत्व पर्याय का उपादान कारण भूत जो शुद्ध आत्म-द्रव्य है वह सिद्धत्व पर्याय के प्रमाण ही है । अथवा जैसे मनुष्य, देव आदि पर्यायो का उपादान कारण भूत जो ससारी जीव द्रव्य है वह उस मनुष्य देव आदि पर्याय के प्रमाण ही है । उसी प्रकार कालद्रव्य भी समयरूप काल पर्याय के विभाग से उपादान रूप अविभागी एक प्रदेश ही होना है । अथवा मदगति से गमन करते हुए पुद्गल परमाणु के एक आकाश के प्रदेश तक ही कालद्रव्य गति का सहकारी कारण होता है, इस कारण जाना जाता है कि वह कालद्रव्य भी एक ही प्रदेश का धारक है ।

यहा कोई कहता है कि—पुद्गल परमाणु की गति मे सहकारी कारण तो धर्मद्रव्य विद्यमान है ही, इसमे काल द्रव्य का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—ऐसा नही है । क्योकि गति के सहकारी कारण धर्मद्रव्य के विद्यमान रहते भी मत्स्यों की गति मे जल के समान तथा मनुष्यो की गति मे गाडी पर बैठना आदि के समान पुद्गल की गति मे और भी बहुत से सहकारी कारण होते है । कदाचित् कोई यह कहे कि "कालद्रव्य पुद्गलो की गति मे सहकारी कारण है'' यह कहा कहा है ? सो कहते है—श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने "पचास्तिकाय प्राभृत" की गाथा ९८ मे "पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणादु'' ऐसा कहा है । इसका अर्थ यह है—

अथैकप्रदेशस्यापि पुद्गलपरमाणोरुपचारेण कायत्वमुपदिशति --

एयपदेसो वि अणू णाणाखधप्पदेसदो होदि ।

वहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥ २६ ॥

एकप्रदेशः अपि अणु नानास्कन्धप्रदेशतः भवति ।

वहुदेशः उपचारात् तेन च कायः भणन्ति सर्वज्ञाः ॥ २६ ॥

व्याख्या--"एयपदेसो वि अणू णाणाखधप्पदेसदो होदि वहुदेसो" एकप्रदेशोऽपि पुद्गलपरमाणुर्नानास्कन्धरूपवहुप्रदेशत सकाशाद्वहुप्रदेशो भवति । "उवयारा" उपचाराद् व्यवहारनयात् 'तेण य काओ भणति सव्वण्हु' तेन कारणेन कायमिति सर्वज्ञा भणन्तीति । तथाहि--यथायं परमात्मा शुद्धनिश्चयनयेन द्रव्यरूपेण शुद्धस्तथैकोऽप्यनादिकर्मबन्धवशात्स्निग्धरूक्षस्थानीयरागद्वेषाभ्यां परिणम्य नरनारकादिविभावपर्यायरूपेण व्यवहारेण बहुविधो भवति । तथा पुद्गलपरमाणुरपि स्वभावेनैकोऽपि शुद्धोऽपि रागद्वेषस्थानीयबन्धयोग्यस्निग्धरूक्षगुणाभ्यां परिणम्य द्विअणुकादिस्कन्धरूपविभावपर्यायैर्बहुविधोबहुप्रदेशो भवति तेन कारणेन वहुप्रदेशलक्षणकायत्वकारणत्वादुपचारेण कायो भण्यते । अथ मतं यथा पुद्गलप-

---

धर्मद्रव्य के विद्यमान होने पर भी जीवो की गति मे कर्म, नोकर्म पुद्गल सहकारी कारण होते है और अणु तथा स्कन्ध इन भेदो वाले पुद्गलो के गमन मे कालद्रव्य सहकारी कारण होता है ॥ २५ ॥

पुद्गल परमाणु यद्यपि एक प्रदेशी है तो भी उपचार से उसको काय कहते है, अव ऐसा उपदेश देते है —

गाथार्थ —एक प्रदेशी भी परमाणु अनेक स्कन्ध रूप वहुप्रदेशी हो सकता है इस कारण सर्वज्ञ देव उपचार से पुद्गल परमाणु को 'काय' कहते है ॥ २६ ॥

वृत्त्यर्थ —"एयपदेसो वि अणू णाणाखधप्पदेसदो होदि वहुदेसो" यद्यपि पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी है तथापि अनेक प्रकार के द्विअणुक आदि स्कन्ध रूप वहुत प्रदेशो के कारण वहुप्रदेशी होता है। "उवयारा" उपचार मे अथवा व्यवहारनय से । "तेण य काओ भणंति सव्वण्हु" इसी कारण सर्वज्ञ देव उस पुद्गल परमाणु को काय कहते है । जैसे यह परमात्मा शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा द्रव्य रूप से शुद्ध तथा एक है तो भी अनादिकर्मवन्धन के कारण स्निग्ध तथा रूक्ष गुणो के स्थानीय (वजाय) राग, द्वेष रूप परिणमन करके व्यवहारनय के द्वारा मनुष्य, नारक आदि विभाव पर्याय रूप अनेक प्रकार का होता है उसी प्रकार पुद्गल परमाणु भी यद्यपि स्वभाव से एक और शुद्ध है तो भी रागद्वेष के स्थानभूत जो वन्ध के योग्य स्निग्ध रूक्ष गुणो के द्वारा परिणमन करके द्वि-अणुक आदि स्कन्ध रूप जो विभाव पर्याय है उनके द्वारा अनेक प्रकार का वहुत प्रदेशो वाला हो जाता है । इसीलिये वहु-प्रदेशता रूप कायत्व का कारण होने से पुद्गल परमाणु को सर्वज्ञ भगवान् व्यवहार से काय कहते है ।

यदि कोई ऐसा कहे कि जैसे द्रव्य रूप से एक भी पुद्गल परमाणु के द्वि-अणुक आदि स्कन्ध

रमाणोर्द्रव्यरूपेणैकस्यापि द्व्यणुकादिस्कन्धपर्यायरूपेण बहुप्रदेशरूपं कायत्व जात तथा कालाणोरपि द्रव्येणैकस्यापि पर्यायेण कायत्व भवत्विति ? तत्र परिहार –स्निग्धरूक्षहेतुकस्य बन्धस्याभावान्न भवति । तदपि कस्मात् ? स्निग्धरूक्षत्व पुद्गलस्यैव धर्मो यत कारणा-दिति । अणुत्व पुद्गलसज्ञा, कालस्याणुसंज्ञा कथमिति चेत् ? तत्रोत्तरम्–अणुशब्देन व्यव-हारेण पुद्गला उच्यन्ते निश्चयेन तु वर्णादिगुणाना पूरणगलनयोगात्पुद्गला इति वस्तुवृत्या पुनरणुशब्द सूक्ष्मवाचक । तद्यथा–परमेण प्रकर्षेणाणु । अणु कोऽर्थ ? सूक्ष्म, इति व्युत्पत्त्या परमाणु । स च सूक्ष्मवाचकोऽणुशब्दो निर्विभागपुद्गलविवक्षाया पुद्गलाणु वदति । अविभागिकालद्रव्यविवक्षायां तु कालाणु कथयतीत्यर्थ ॥ २६ ॥

अथ प्रदेशलक्षणमुपलक्षयति –

जावदियं आयासं अविभागीपुग्गलाणुउट्टद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥ २७ ॥

यावतिकं आकाशं अविभागिपुद्गलाणववष्टब्धम् ।
तं खलु प्रदेशं जानीहि सर्वाणुस्थानदानार्हम् ॥ २७ ॥

पर्याय द्वारा बहु-प्रदेश रूप कायत्व सिद्ध हुआ है, ऐसे ही द्रव्य रूप से एक होने पर भी कालाणु के पर्याय द्वारा कायत्य सिद्ध होता है । इसका परिहार करते है कि स्निग्ध रूक्ष गुण के कारण होने वाले बन्ध का कालद्रव्य मे अभाव है इसलिये वह काय नही हो सकता । ऐसा भी क्यो ? क्योकि स्निग्ध रूक्षपना पुद्गल का ही धर्म है । काल मे स्निग्ध रूक्ष नही है अत उनके विना वन्ध नही होता ।

कदाचित् यह पूछो कि 'अणु' यह तो पुद्गल की संज्ञा है, काल की 'अणु' संज्ञा कैसे हुई ? इसका उत्तर यह है कि—'अणु' इस शब्द द्वारा व्यवहारनय से पुद्गल कहे जाते है और निश्चयनय से तो वर्ण आदि गुणो के पूरण तथा गलन के सम्बन्ध से पुद्गल कहे जाते है, वास्तव मे 'अणु' शब्द सूक्ष्म का वाचक है, जैसे परम अर्थात् अत्यन्त रूप से जो अणु हो सो 'परमाणु' है । अणु का क्या अर्थ है ? "सूक्ष्म" इस व्युत्पत्ति से परमाणु शब्द 'अतिसूक्ष्म' पदार्थ को कहता है और वह सूक्ष्मवाचक अणु शब्द निर्विभाग पुद्गल की विवक्षा (कहने की इच्छा) मे पुद्गल अणु को कहता है और अविभागी कालद्रव्य के कहने की जब इच्छा होती है तब 'कालाणु' को कहता है ॥ २६ ॥

अब प्रदेश का लक्षण कहते है :—

गाथार्थ —जितना आकाश अविभागी पुद्गलाणु से रोका जाता है उसको सब परमाणुओ को स्थान देने मे समर्थ प्रदेश जानो ॥ २७ ॥

वृत्त्यर्थ —"जावदियं आयासं अविभागीपुग्गलाणुउट्टद्धं तं खु पदेसं जाणे" हे शिष्य ! जितना आकाश अविभागी पुद्गल परमाणु से घिरा है उसको स्पष्ट रूप से प्रदेश जानो । वह प्रदेश "सव्वाणु-ट्ठाणदाणरिहं" सब परमाणु और सूक्ष्म स्कन्धो को स्थान देने के लिये समर्थ है, क्योकि ऐसी अवगाहन

व्याख्या—"जीवदिय आयास अविभागीपुग्गलाणुउट्टद्धं त खु पदेस जाणे" यावत्प्रमाणमाकाशमविभागिपुद्गलपरमाणुना विष्टब्ध व्याप्त तदाकाश खु स्फुट प्रदेश जानीहि। हे शिष्य! कथभूत "सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं" सर्वाणूना सर्वपरमाणूना सूक्ष्मस्कन्धाना च स्थानदानस्यावकाशदानस्यार्ह योग्य समर्थमिति। यत एवेत्थभूतावगाहनशक्तिरस्त्याकाशस्य तत एवासख्यातप्रदेशेऽपि लोके अनन्तानन्तजीवास्तेभ्योऽप्यनन्तगुणपुद्गला अवकाश लभन्ते। तथा चोक्तम्, जीवपुद्गलविषयेऽवकाशदानसामर्थ्यम् 'एगणिगोदसरीरे जोवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा। सिद्धेहि अणतगुणा सव्वेण वितीदकालेण ॥ १ ॥ ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकाएहि सव्वदो लोगो। सुहमेहि बादरेहि य णताणतेहि विविधेहि ॥ २ ॥ अथ मत मूर्त्तपुद्गलाना विभागो भेदो भवतु नास्ति विरोध, अमूर्त्ताखण्डस्याकाशद्रव्यस्य कथ विभागकल्पनेति? तन्न। रागाद्युपाधिरहितस्वसवेदनप्रत्यक्षभावनोत्पन्नसुखामृतरसास्वादतृप्तस्य मुनियुगलस्यावस्थानक्षेत्रमेकमनेक वा। यद्येक, तर्हि द्वयोरेकत्व प्राप्नोति, न च तथा। भिन्न चेत्तदा निर्विभागद्रव्यस्यापि विभागकल्पनमायात घटाकाशपटाकाशमित्यादिवदिति ॥ २७ ॥ एव सूत्रपञ्चकेन पञ्चास्तिकायप्रतिपादकनामा तृतीयोऽन्तराधिकार ॥

इति श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तदेवविरचिते द्रव्यसग्रहग्रन्थे नमस्कारादिसप्तविंशतिगाथाभिरन्तराधिकारत्रयसमुदायेन षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकनामा प्रथमोधिकार समाप्त।

शक्ति आकाश मे है। इसी कारण असंख्यातप्रदेशी लोकाकाश मे अनन्तानन्त जीव तथा उन जीवो से भी अनन्तगुणे पुद्गल समा जाते है। इसी प्रकार जीव और पुद्गल के विषय मे भी अवकाश देने की सामर्थ्य आगम मे कही है। "एक निगोद शरीर मे द्रव्य-प्रमाण से भूतकाल के सब सिद्धो से भी अनतगुणे जीव देखे गये है। १। यह लोक सब तरफ से विविध तथा अनन्तानन्त सूक्ष्म और बादर पुदगलो द्वारा अतिसघन भरा हुआ है। २।"

यदि किसी का ऐसा मत हो कि "मूर्तिमान् पुद्गलो के तो अणु तथा स्कन्ध आदि विभाव हो, इसमे तो कुछ विरोध नही, किन्तु अखड, अमूर्त्तिक आकाश की विभाग कल्पना कैसे हो सकती है?" यह शका ठीक नही क्योकि राग आदि उपाधियो से रहित निजआत्म-अनुभव की प्रत्यक्ष भावना से उत्पन्न सुख रूप अमृत रस के आस्वादन से तृप्त ऐसे दो मुनियो के रहने का स्थान एक है अथवा अनेक यदि दोनो का निवास क्षेत्र एक ही है तब तो दोनो एक हुए, परन्तु ऐसा है नही। यदि भिन्न मानो तो घट का आकाश तथा पट का आकाश की तरह विभाग रहित आकाश द्रव्य की भी विभाग कल्पना सिद्ध हुई ॥ २७ ॥

इस तरह पाच सूत्रो द्वारा पच अस्तिकायो का निरूपण करने वाला तीसरा अन्तराधिकार समाप्त हुआ।

इस प्रकार श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त देव विरचित द्रव्य सग्रह ग्रन्थ मे नमस्कारादि २७ गाथाओ मे तीन अन्तर अधिकारो द्वारा छह द्रव्य, पाच अस्तिकाय प्रतिपादन करने वाला प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

चूलिका

अत पर पूर्वोक्तषड्द्रव्याणा चूलिकारूपेण विस्तरव्याख्यान क्रियते । तद्यथा–

परिणामि जीव–मुत्त , सपदेस एय–खेत्त–किरिया य ।
णिच्च कारण कत्ता, सव्वगदमिदर हि यपवेसे ।। १ ।।
दुण्णि य एय एय, पच त्तिय एय दुण्णि चउरो य ।
पच य एय एय, एदेस एय उत्तर णेय ।।२।। (युग्मम्)

व्याख्या—"परिणामि" इत्यादिव्याख्यान क्रियते । "परिणामि" परिणामिनौ जीवपुद्गलौ स्वभावविभावपरिणामाभ्या कृत्वा, शेपचत्वारि द्रव्याणि विभावव्यञ्जनपर्यायाभावान्मुख्यवृत्त्या पुनरपरिणामीनीति । "जीव" शुद्धनिश्चयनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाव शुद्धचैतन्य प्राणशव्देनोच्यते तेन जीवतीति जीव । व्यवहारनयेन पुन कर्मोदयजनितद्रव्यभावरूपैश्चतुर्भि प्राणैर्जीवति, जीविष्यति, जीवितपूर्वो वा जीव. । पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणि पुनरजीवरूपाणि । "मुत्त" अमूर्त शुद्धात्मनो विलक्षणस्पर्शरसगन्धवर्णवती मूर्त्तिरुच्यते,

---

इसके अनन्तर अब छह द्रव्यो का उपसहार रूप से विशेप व्याख्यान करते है.—

गाथार्थ:—छह द्रव्यो मे जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य परिणामी है, चेतन द्रव्य एक जीव है, मूर्तिक एक पुद्गल है, प्रदश सहित जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा आकाश ये पाच द्रव्य है, एक-एक सख्या वाल धर्म, अधर्म और आकाश ये तीन द्रव्य है । क्षेत्रवान् एक आकाश द्रव्य है, क्रिया सहित जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य है, नित्यद्रव्य–धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चार है, कारण द्रव्य–पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल ये पाच है, कर्त्ता–एक जीव द्रव्य है, सर्वगत सर्व व्यापक) द्रव्य एक आकाश है (एक क्षेत्र अवगाह होने पर भी) इन छहो द्रव्य का परस्पर प्रवेश नही है । इस प्रकार छहो मूल–द्रव्यो के उत्तर गुण जानने चाहिये ।। १ ।। २ ।।

वृत्त्यर्थ:—"परिणामि" इत्यादि गाथाओ का व्याख्यान करते है "परिणाम" स्वभाव तथा विभाव पर्यायो द्वारा परिणाम से जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य परिणामी है, शेप चार द्रव्य (धर्म, अधर्म, आकाश, काल) विभावव्यजन पर्याय के अभाव की मुख्यता से अपरिणामी है । "जीव"–शुद्ध निश्चयनय से निर्मल ज्ञान, दर्शन स्वभाव रूप शुद्ध चैतन्य को 'प्राण' कहते है, उस शुद्ध चेतन्य रूप प्राण से जो जीता है वह जीव है। व्यवहारनय से कर्मो के उदय से प्राप्त द्रव्य तथा भाव रूप चार प्रकार के जो इन्द्रिय, वल, आयु और स्वासोच्छ्वास नामक प्राण से जो जीता है, जीवेगा और पहले जीता था वह जीव है। पुद्गल आदि पाच द्रव्य अजीव रूप है । "मुत्त" शुद्ध आत्मा से विलक्षण स्पर्श, रू

तत्सद्भावान्मूर्त्तं पुद्गल । जीवद्रव्य पुनरनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण मूर्त्तमपि, शुद्धनिश्चयनयेनामूर्त्तम्, धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि चामूर्त्तानि । 'सपदेस' लोकमात्रप्रमितासख्येयप्रदेशलक्षण जीवद्रव्यमादिं कृत्वा पञ्चद्रव्याणि पञ्चास्तिकायसंज्ञानि सप्रदेशानि । कालद्रव्य पुनर्बहुप्रदेशत्वलक्षणकायत्वाभावादप्रदेशम् । 'एय' द्रव्यार्थिकनयेन धर्माधर्माकाशद्रव्याण्येकानि भवन्ति । जीवपुद्गलकालद्रव्याणि पुनरनेकानि भवन्ति । 'खेत्त' सर्वद्रव्याणामवकाशदानसामर्थ्यात् क्षेत्रमाकाशमेकम् । शेषपञ्चद्रव्याण्यक्षेत्राणि । 'किरियाय' क्षेत्रात्क्षेत्रान्तरगमनरूपा परिस्पन्दवती चलनवती क्रिया सा विद्यते ययोस्तौ क्रियावन्तौ जीवपुद्गलौ। धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि पुनर्निष्क्रियाणि । 'णिच्च' धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि यद्यप्यर्थपर्यायत्वेनानित्यानि, तथापि मुख्यवृत्त्या विभावव्यञ्जनपर्यायाभावान्नित्यानि, द्रव्यार्थिकनयेन च, जीवपुद्गलद्रव्ये पुनर्यद्यपि द्रव्यार्थिकनयापेक्षया नित्ये तथाप्यगुरुलघुपरिणतिस्वरूपस्वभावपर्यायापेक्षया विभावव्यञ्जनपर्यायापेक्षया चानित्ये । 'कारण' पुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि व्यवहारनयेन जीवस्यशरीरवाङ्मनःप्राणापानादिगतिस्थित्यवगाहवर्त्तनाकार्याणि कुर्वन्तीति कारणानि भवति । जीवद्रव्य पुनर्यद्यपि गुरुशिष्यादिरूपेण परस्परोपग्रह करोति

गन्ध तथा वर्ण वाला मूर्त्ति कहा जाता है, उस मूर्त्ति के सद्भाव से पुद्गल मूर्त्त है । जीवद्रव्य अनुचरित असद्भूत-व्यवहारनय से मूर्त्त है, किन्तु शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा अमूर्त्त है । धर्म, अधर्म, आकाश ओर कालद्रव्य भी अमूर्त्तिक है । "सपदेस" लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेशो को धारण करने से पचास्तिकाय नामक जीव आदि पाच द्रव्य बहु-प्रदेशी है और बहु-प्रदेश रूप कायत्व के न होने से कालद्रव्य अप्रदेश (एक-प्रदेशी) है । "एय" द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा धर्म, अधर्म, तथा आकाश ये तीन द्रव्य एक एक है । जीव, पुद्गल तथा काल ये तीन द्रव्य अनेक है । "खेत्त" सब द्रव्यो को स्थान देने का सामर्थ्य होने से क्षेत्र एक आकाश द्रव्य है, शेष पाच द्रव्य क्षेत्र नही है । "किरियाय" एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे गमन रूप हिलने वाली अथवा चलने वाली जो क्रिया है, वह क्रिया जिनमे है ऐसे क्रियावान् जीव, पुद्गल ये दो द्रव्य है । धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चार द्रव्य क्रियाशून्य है । "णिच्च" धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चार द्रव्य यद्यपि अर्थपर्याय के कारण अनित्य है, फिर भी मुख्य रूप से इनमे विभाव व्यजन पर्याय नही होती इसलिये ये नित्य है, द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा भी नित्य है । जीव, पुद्गल द्रव्य यद्यपि द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य है । तो भी अगुरुलघुगुण के परिणाम रूप स्वभाव पर्याय की अपेक्षा तथा विभावव्यजन पर्याय की अपेक्षा अनित्य है । 'कारण' पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश, काल द्रव्यो मे से व्यवहारनय की अपेक्षा जीव के शरीर, वचन, मन, श्वास, निःश्वास आदि कार्य तो पुद्गल द्रव्य करता है और गति, स्थिति, अवगाह तथा वर्त्तना रूप कार्य क्रम से धर्म आदि चार द्रव्य करते है, इस कारण पुद्गलादि पाच द्रव्य 'कारण' है । जीवद्रव्य यद्यपि गुरु, शिष्य आदि रूप से आपस मे एक दूसरे का उपकार करता है फिर भी पुद्गलआदि पाच द्रव्यो के लिये जीव कुछ भी नही करता, इसलिये 'अकारण' है । "कत्ता" शुद्ध पारिणामिक परमभाव के ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा जीव यद्यपि

तथापि पुद्गलादिपचद्रव्याणा किमपि न करोतीत्यकारणम् । 'कत्ता' शुद्धपारिणामिकपरम-भावग्राहकेन शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन यद्यपि वधमोक्षद्रव्यभावरूपपुण्यपापघटपटादीनामकर्त्ता जीवस्तथाप्यशुद्धनिश्चयेन शुभाशुभोपयोगाभ्या परिणत सन् पुण्यपापवधयो कर्त्तातत्फल-भोक्ता च भवति । विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजशुद्धात्मद्रव्यस्य सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण शुद्धोपयोगेन तु परिणत सन् मोक्षस्यापि कर्त्ता तत्फलभोक्ता चेति । शुभाशुभशुद्धपरिणा-माना परिणमनमेव कर्तृत्व सर्वत्र ज्ञातव्यमिति । पुद्गलादिपचद्रव्याणां च स्वकीयस्वकीय-परिणामेन परिणमनमेव कर्तृत्वम्, वस्तुवृत्त्या पुन पुण्यपापादिरूपेणाकर्तृत्वमेव । 'सव्व-गद' लोकालोकव्याप्त्यपेक्षया सर्वगतमाकाशं भण्यते । लोकव्याप्त्यपेक्षया धर्माधर्मौ च । जीवद्रव्य पुनरेकजीवापेक्षया लोकपूरणावस्थां विहायासर्वगत, नानाजीवापेक्षया सर्वगतमेव भवति, पुद्गलद्रव्यं पुनर्लोकरूपमहास्कन्धापेक्षया सर्वगत, शेषपुद्गलापेक्षया सर्वगतं न भवति, कालद्रव्यं पुनरेककालाणुद्रव्यापेक्षया सर्वगत न भवति, लोकप्रदेशप्रमाणनानाकाला-णुविवक्षया लोके सर्वगतं भवति । 'इदरहि यपवेसे' यद्यपि सर्वद्रव्याणि व्यवहारेणैकक्षेत्रा-वगाहेनान्योन्यप्रवेशेन तिष्ठन्ति तथापि निश्चयनयेन चेतनादिस्वकीयस्वरूप न त्यजन्तीति । अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये वीतरागचिदानन्दैकादिगुणस्वभाव शुभाशुभमनोवचनकाय व्यापाररहितं निजशुद्धात्मद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थः ।

वंध मोक्ष के कारणभूत द्रव्य-भाव रूप पुण्य, पाप, घट, पट आदि का कर्त्ता नही है किन्तु अशुद्ध निश्चय नयकी अपेक्षा शुभ, अशुभ उपयोगो मे परिणत होकर पुण्य, पाप वध का कर्त्ता और उनके फलोका भोक्ता होता है । तथा विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभाव निज शुद्ध आत्मा द्रव्यके सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और आचरण रूप शुद्धोपयोग से परिणत होकर यह जीव मोक्षका भी कर्त्ता और उसके फलका भोगने वाला होता है । यहा सव जगह शुभ, अशुभ तथा शुद्ध परिणामो परिणमन का ही कर्त्ता जानना चाहिए । पुद्गल आदि पाच द्रव्यो के तो अपने-अपने परिणाम से जो परिणमन है वही कर्तृत्व है और वास्तव मे पुण्य, पाप आदि की अपेक्षा अकर्तापना ही है ।। "सव्वगद" लोक और अलोक व्यापक होने की अपेक्षा आकाश सर्वगत कहा जाता है, लोक मे सर्वव्यापक होने की अपेक्षा धर्म और अधर्म सर्वगत है । जीवद्रव्य एक जीव की अपेक्षा से लोकपूर्ण समुद्घात के सिवाय असर्वगत है किन्तु अनेक जीवो की अपेक्षा सर्वगत ही है । पुद्-गल द्रव्य लोकव्यापक महास्कन्ध की अपेक्षा सर्वगत है और शेष पुद्गलो की अपेक्षा असर्वगत है, एक कालाणुद्रव्य की अपेक्षा तो कालद्रव्य सर्वगत नही है किन्तु लोक प्रदेश के वरावर अनेक कालाणुओ की अपेक्षा कालद्रव्य लोक मे सर्वगत है । "इदरंहि यपवेसे" यद्यपि व्यवहारनय से सव द्रव्य एक क्षेत्र मे रहने के कारण आपस मे प्रवेश करके रहते है, फिर भी निश्चयनय से चेतना आदि अपने २ स्वरूप को नही छोडते । इसका साराश यह है कि इन छह द्रव्यो मे वीतराग, चिदानन्द, एक शुद्ध वुद्ध आदि गुण स्व-भाव वाला और शुभ, अशुभ मन, वचन और काय के व्यापारसे रहित निज शुद्ध-आत्म-द्रव्य ही उपादेय है

अत ऊर्ध्वं पुनरपि षड्द्रव्याणां मध्ये हेयोपादेयस्वरूपं विशेषेण विचारयति । तत्र शुद्धनिश्चयनयेन शक्तिरूपेण शुद्धबुद्धैकस्वभावत्वात् सर्वे जीवा उपादेया भवन्ति । व्यक्तिरूपेण पुनः पञ्चपरमेष्ठिन एव । तत्राप्यर्हत्सिद्धद्वयमेव । तत्रापि निश्चयेन सिद्ध एव । परमनिश्चयेन तु भोगाकांक्षादिरूपसमस्तविकल्पजालरहितपरमसमाधिकाले सिद्धसदृश स्वशुद्धात्मैवोपादेय शेषद्रव्याणि हेयानीति तात्पर्यम् । शुद्धबुद्धैकस्वभाव इति कोऽर्थ ? मिथ्यात्वरागादिसमस्तविभावरहितत्वेन शुद्ध इत्युच्यते केवलज्ञानाद्यनन्तगुणसहितत्वाद्बुद्ध. । इति शुद्धबुद्धैकलक्षणम् सर्वत्र ज्ञातव्यम् ।

चूलिकाशब्दार्थः कथ्यते—चूलिका विशेषव्याख्यानम्, अथवा उक्तानुक्तव्याख्यानम्, उक्तानुक्तसंकीर्णव्याख्यानम् चेति ।

॥ इति षड्द्रव्यचूलिका समाप्ता ॥

तदनन्तर फिर भी छह द्रव्यो मे से क्या हेय है और क्या उपादेय है, इसका विशेष विचार करते है। वहा शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा शक्ति रूप से शुद्ध, बुद्ध एक स्वभाव के धारक सभी जीव उपादेय है और व्यक्ति रूप से अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु ये पंच परमेष्ठी ही उपादेय है। उनमे भी अर्हन्त-सिद्ध ये दो ही उपादेय है। इन दो मे भी निश्चयनय की अपेक्षा सिद्ध ही उपादेय है। परम-निश्चयनय से तो भोगो की इच्छा आदि समस्त विकल्पो से रहित परमध्यान के समय सिद्ध-समान निज शुद्ध आत्मा ही उपादेय है अन्य सब द्रव्य हेय है, यह तात्पर्य है। "शुद्धबुद्धैकस्वभाव" इस पद का क्या अर्थ है ? इसको कहते है–मिथ्यात्व, राग आदि समस्त विभावो से रहित होने के कारण आत्मा शुद्ध कहा जाता है। तथा केवलज्ञान आदि अनन्त गुणो से सहित होने के कारण आत्मा बुद्ध है। इस तरह "शुद्धबुद्धैकस्वभाव" पद का अर्थ सर्वत्र समझना चाहिए।

अब 'चूलिका' शब्द का अर्थ कहते है—किसी पदार्थ के विशेष व्याख्यान को कहे हुए विषय मे जो अनुक्त विषय है उनके व्याख्यान को अथवा उक्त, अनुक्त विषय से मिले हुए कथन को 'चूलिका' कहते है।

इस प्रकार छह द्रव्यो की चूलिका समाप्त हुई।

द्वितीयः अधिकारः

अत परं जीवपुद्गलपर्यायरूपाणामास्रवादिसप्तपदार्थानामेकादशगाथापर्यन्तं व्याख्यानं करोति। तत्रादौ 'आसवबंधण' इत्याद्यधिकारसूत्रगाथैका, तदनन्तरमास्रवपदार्थव्याख्यानरूपेण 'आसवदि जेण' इत्यादि गाथात्रयम्, तत पर बन्धव्याख्यानकथनेन 'बज्झदि कम्म' इति प्रभृतिगाथाद्वय, ततोऽपि सवरकथनरूपेण 'चेदणपरिणामो' इत्यादिसूत्रद्वय, ततश्च निर्जराप्रतिपादनरूपेण 'जहकालेण तवेण य' इति प्रभृतिसूत्रमेक, तदनन्तर मोक्षस्वरूपकथनेन 'सव्वस्स कम्मणो' इत्यादि सूत्रमेक, ततश्च पुण्यपापद्वयकथनेन 'सुहअसुह' इत्यादि सूत्रमेक चेत्येकादशगाथाभि. स्थलसप्तकसमुदायेन द्वितीयाधिकारे समुदायपातनिका।

अत्राह शिष्य –यद्येकान्तेन जीवाजीवौ परिणामिनौ भवतस्तदा संयोगपर्यायरूप एक एव पदार्थ ,यदि पुनरेकान्तेनापरिणामिनौ भवतस्तदा जीवाजीवद्रव्यरूपौ द्वावेव पदार्थौ, तत आस्रवादिसप्तपदार्था कथ घटन्त इति। तत्रोत्तर–कथचित्परिणामित्वाद् घटन्ते। कथचित्परिणामित्वमिति कोऽर्थ: ? यथा स्फटिकमणिविशेषो यद्यपि स्वभावेन निर्मलस्तथापि जपापुष्पाद्युपाधिजनितं पर्यायान्तर परिणति गृह्णाति। यद्यप्युपाधि गृह्णाति तथापि निश्चयेन शुद्धस्वभाव न

दूसरा अधिकार

(भूमिका)

इसके पश्चात् जीव और पुद्गल द्रव्य के पर्याय रूप आस्रव आदि ७ पदार्थो का ११ गाथाओ द्वारा व्याख्यान करते है। उसमे प्रथम "आसवबधण" इत्यादि अधिकार सूचन रूप २८ वी एक गाथा है। उसके पश्चात् आस्रव के व्याख्यान रूप 'आसवदि जेण' इत्यादि तीन गाथाये है। तदनन्तर "वज्झदि कम्मं जेण" इत्यादि दो गाथाओ मे बध पदार्थ का निरूपण है। तत्पश्चात् "चेदणपरिणामो" इत्यादि ३४, ३५ वी गाथाओ मे संवर पदार्थ का कथन है। फिर निर्जरा के प्रतिपादन रूप "जह कालेण तवेण य" इत्यादि ३६ वी एक गाथा है। उसके बाद मोक्ष के निरूपण रूप "सव्वस्स कम्मणो" इत्यादि ३७ वी एक गाथा है। तदनन्तर पुण्य, पाप पदार्थो के कथन करने वाली "सुहअसुह" इत्यादि एक गाथा है। इस तरह ११ गाथाओ द्वारा सप्त स्थलो के समुदाय सहित द्वितीय अधिकार की भूमिका समझनी चाहिए।

यहा शिष्य प्रश्न करता है कि यदि जीव, अजीव यह दोनो द्रव्य सर्वथा एकान्त से परिणामी ही है तो संयोग पर्याय रूप एक ही पदार्थ सिद्ध होता है और यदि सर्वथा अपरिणामी है तो जीव, अजीव द्रव्य रूप दो ही पदार्थ सिद्ध होते है, इसलिये आस्रव आदि सात पदार्थ कैसे सिद्ध होते है ? इसका उत्तर कथचित् परिणामी होने से सात पदार्थो का कथन संगत होता है। "कथंचित् परिणामित्व" का क्या अर्थ है ? वह इस प्रकार है—जैसे स्फटिकमणि यद्यपि स्वभाव से निर्मल है फिर भी जपापुष्प (लाल

त्यजति तथा जीवोऽपि यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सहजशुद्धचिदानन्दैकस्वभावस्तथाप्यनादिकर्मबन्धपर्यायवशेन रागादिपरद्रव्योपाधिपर्यायं गृह्णाति । यद्यपि परपर्यायेण परिणमति तथापि निश्चयेन शुद्धस्वरूप न त्यजति । पुद्गलोऽपि तथेति । परस्परसापेक्षत्व कथचित्परिणामित्वशब्दस्यार्थ । एव कथचित्परिणामित्वे सति जीवपुद्गलसयोगपरिणतिनिर्वृत्तत्वादास्रवादिसप्तपदार्था घटन्ते । ते च पूर्वोक्तजीवाजीवपदार्थाभ्या सह नव भवन्ति तत एव नव पदार्था । पुण्यपापपदार्थद्वयस्याभेदनयेन कृत्वा पुण्यपापयोरास्रवपदार्थस्य, बन्धपदार्थस्य वा मध्ये अन्तर्भावविवक्षया सप्ततत्त्वानि भण्यन्ते । हे भगवन ! यद्यपि कथचित्परिणामित्वबलेन भेदप्रधानपर्यायार्थिकनयेन नवपदार्था सप्ततत्त्वानि वा सिद्धानि तथापि तै किं प्रयोजनम् । यथैवाभेदनयेन पुण्यपापपदार्थद्वयस्यान्तर्भावो जातस्तथैव विशेषाभेदनयविवक्षायामास्रवादिपदार्थानामपि जीवाजीवद्वयमध्येऽन्तर्भावे कृते जीवाजीवौ द्वावेव पदार्थाविति । तत्र परिहार –हेयोपादेयतत्त्वपरिज्ञानप्रयोजनार्थमास्रवादिपदार्था व्याख्येया भवन्ति । तदेव कथयति–उपादेयतत्त्वमक्षयानन्तसुख, तस्य कारण मोक्ष, मोक्षस्य कारण सवरनिर्जराद्वय, तस्य कारणं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणलक्षण निश्चयरत्नत्रयस्वरूप,

---

फूल) आदि के ससर्ग से लाल आदि अन्य पर्याय रूप परिणमती है (बिलकुल सफेद स्फटिक मणि के साथ जब जपाफूल होता है तब वह उस फूल की तरह लाल रंग का हो जाता है ।) स्फटिक मणि यद्यपि लाल उपाधि ग्रहण करती है फिर भी निश्चयनय से अपने सफेद निर्मल स्वभाव को नही छोडती इसी तरह जीव भी यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनय से स्वभाविक शुद्ध-चिदानन्दस्वभाव वाला है फिर भी अनादि कर्म-बध रूप पर्याय के कारण राग आदि परद्रव्यजनित उपाधिपर्याय को ग्रहण करता है। यद्यपि जीव पर पर्याय रूप परिणमन करता है तो भी निश्चयनय से अपने शुद्ध स्वरूप को नही छोडता उसी प्रकार पुद्गल द्रव्य के विषय मे जानना चाहिये । परस्पर अपेक्षा सहित होना यही "कथंचित्परिणामित्व" शब्द का अर्थ है। इस प्रकार कथचित् परिणामित्व सिद्ध होने पर, जीव और पुद्गल के संयोग परिणति से बने हुए आस्रव आदि सप्त पदार्थ घटित होते है और वे सात पदार्थ पूर्वोक्त जीव और अजीव द्रव्यो सहित ९ हो जाते है इसलिये नौ पदार्थ कहे जाते है। अभेदनय की अपेक्षासे पुण्य और पाप पदार्थका आस्रव पदार्थ मे याबन्ध पदार्थ मे अन्तर्भाव करने से सात तत्त्व कहे जाते है। शिष्य पूछता है कि हे भगवन् ! यद्यपि कथचित्परिणामित्वके बलसे भेदप्रधान पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा ९ पदार्थ ७ तत्त्व सिद्ध हो गये किन्तु इनमे प्रयोजनक्या सिद्ध हुआ ? जैसे अभेदनय की अपेक्षा पुण्य, पाप इन दो पदार्थो का सात पदार्थो मे अतर्भाव हुआ है उसी तरह विशेष अभेदनयकी अपेक्षासे आस्रवादि पदार्थो का भी जीव, अजीव इन दो पदार्थो मे अन्तर्भाव कर लेनेसे जीव तथा अजीव ये दो पदार्थ सिद्ध होते है ? इन दोनो शंकाओ का परिहार करते है कि—कौन तत्त्व हेय है और कौन तत्त्व उपादेय है' इस विषय का परिज्ञान कराने के

---

१ 'परिणमति' इति पाठान्तर

तत्साधकं व्यवहाररत्नत्रयरूपं चेति। इदानी हेयतत्त्व कथ्यते—आकुलत्वोत्पादकं नारकादि-दु ख निश्चयेनेन्द्रियसुखं च हेयतत्त्वम्। तस्य कारण संसार., संसारकारणमास्रवबन्धपदा-र्थद्वय, तस्य कारण पूर्वोक्तव्यवहारनिश्चयरत्नत्रयाद्विलक्षण मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रत्रयमिति। एव हेयोपादेयतत्वव्याख्याने कृते सति सप्ततत्वनवपदार्था स्वयमेव सिद्धा·।

इदानी कस्य पदार्थस्य क कर्त्तेति कथ्यते—निजनिरञ्जनशुद्धात्मभावनोत्पन्नपर-मानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादपराङ्मुखो बहिरात्मा भण्यते। स चास्रवबन्धपापपदार्थत्र-यस्य कर्ता भवति। क्वापि काले पुनर्मन्दमिथ्यात्वमन्दकषायोदये सति भोगाकांक्षादिनिदान-बधेन भाविकाले पापानुबधिपुण्यपदार्थस्यापि कर्त्ता भवति। यस्तु पूर्वोक्तबहिरात्मनो विल-क्षण सम्यग्दृष्टि. स सवरनिर्जरामोक्षपदार्थत्रयस्य कर्ता भवति। रागादिविभावरहितपरम-सामायिके यदा स्थातु समर्थो न भवति तदा विषयकषायोत्पन्नदुर्ध्यानवञ्चनार्थ ससारस्थि-तिच्छेद कुर्वन् पुण्यानुबधितीर्थकरनामप्रकृत्यादिविशिष्टपुण्यपदार्थस्यापि कर्ता भवति। कर्तृ-त्वविषये नयविभाग कथ्यते। मिथ्यादृष्टेर्जीवस्य पुद्गलद्रव्यपर्यायरूपाणामास्रवबधपुण्यपा-पपदार्थाना कर्तृत्वमनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण, जीवभावपर्यायरूपाणा पुनरशुद्धनिश्चयन-

---

लिये आस्रव आदि पदार्थ निरूपण करने योग्य है। इसी को कहते है, अविनाशी अनन्तसुख उपादेय तत्त्व है। उस अक्षय अनन्त सुख का कारण मोक्ष है, मोक्ष के कारण संवर और निर्जरा है। उन संवर और निर्जरा का कारण, विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभाव वाला निजात्म तत्त्व का सम्यक्-श्रद्धान, ज्ञान तथा आचरण रूप निश्चय रत्नत्रय है तथा उस निश्चय रत्नत्रय का साधक व्यवहाररत्नत्रय है। अब हेयतत्त्व को कहते है—आकुलता को उत्पन्न करने वाला, नरकगति आदि का दु.ख तथा निश्चय से इन्द्रियजनित सुख भी हेय यानी त्याज्य है, उसका कारण ससार है और संसार के कारण आस्रव तथा बध ये दो पदार्थ है, और उस आस्रव का तथा बंध का कारण पहले कहे हुए व्यवहार, निश्चयरत्नत्रय से विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान तथा मिथ्याचारित्र है। इस प्रकार हेय और उपादेय तत्त्व निरूपण करने पर सात तत्त्व तथा नौ पदार्थ स्वयं सिद्ध हो गये।

अब किस पदार्थ का कर्त्ता कौन है ? इस विषय का कथन करते है। निज निरजन शुद्ध आत्मा से उत्पन्न परम-आनन्द रूप सुखामृत-रस-आस्वाद से रहित जो जीव है वह बहिरात्मा कहलाता है। वह बहिरात्मा आस्रव, बंध और पाप इन तीन पदार्थो का कर्त्ता है। किसी समय जब कपाय और मिथ्यात्व का उदय मन्द हो, तब आगामी भोगो की इच्छा आदि रूप निदान बध से पापानुबन्धी पुण्य-पदार्थ का भी कर्त्ता होता है। जो बहिरात्मा से विपरीत लक्षण का धारक सम्यग्दृष्टि जीव है वह संवर, निर्जरा और मोक्ष इन तीन पदार्थो का कर्त्ता होता है और यह सम्यग्दृष्टि जीव, जब राग आदि विभावो से रहित परम सामायिक मे स्थित नही रह सकता, उस समय विषयकषायो से उत्पन्न होने वाले दुर्ध्यान से बचने के लिये तथा संसार की स्थिति का नाश करता हुआ पुण्यानुबन्धी तीर्थंकर प्रकृति आदि विशिष्ट पुण्य पदार्थ का भी कर्त्ता होता है। अब कर्तृत्व के विषय मे नयो का विभाग निरूपण

येनेति । सम्यग्दृष्टेस्तु सवरनिर्जरामोक्षपदार्थाना द्रव्यरूपाणां यत्कर्तृत्व तदप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण, जीवभावपर्यायरूपाणा तु विवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयनयेनेति । परमशुद्धनिश्चयेन तु 'ण वि उप्पज्जई, ण वि मरइ, बन्धु ण मोक्खुकरेइ । जिउ परमत्थे जोइया, जिणवरु एउ भणेइ ।' इति वचनाद्बन्धमोक्षो न स्त । स च पूर्वोक्तविवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चय आगमभाषया कि भण्यते—स्वशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपेण भविष्यतीति भव्य, एवभूतस्य भव्यत्वसज्ञस्य पारिणामिकभावस्य सबन्धिनी व्यक्तिर्भण्यते । अध्यात्मभाषया पुनर्व्यशक्तिरूपशुद्धपारिणामिकभावविषये भावना भण्यते, पर्यायनामान्तरेण निर्विकल्पसमाधिर्वा शुद्धोपयोगादिक चेति । यत एव भावना मुक्तिकारण तत एव शुद्धपारिणामिकभावो ध्येयरूपो भवति, ध्यानभावनारूपो न भवति । कस्मादिति चेत् ? ध्यानभावनापर्यायो विनश्वर स च द्रव्यरूपत्वादविनश्वर इति । इदमत्र तात्पर्य—मिथ्यात्वरागादिविकल्पजालरहितनिजशुद्धात्मभावनोत्पन्नसहजानन्दैकलक्षणसुखसवित्तिरूपा च भावना मुक्तिकारण भवति । ता च कोऽपि जन केनापि पर्यायनामान्तरेण भणतीति। एव पूर्वोक्तप्रकारेणानेकान्तव्याख्यानेनास्रवबधपुण्यपापपदार्था जीवपुद्गलसयोगपरिणामरूपविभावपर्यायेणोत्पद्यन्ते । सवरनिर्जरामोक्षपदार्था पुनर्जीवपुद्गलसयोगपरिणामविनाशोत्पन्नेन विवक्षि-

---

करते है । मिथ्यादृष्टि जीव के जो पुद्गल द्रव्य पर्याय रूप आस्रव, वध तथा पुण्य, पाप पदार्थो का कर्त्तापन है, सो अनुपचरित-असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा है और जीव-भाव-पुण्य-पाप पर्याय रूप पदार्थो का कर्तृत्व अशुद्ध निश्चयनय से है तथा सम्यक्दृष्टि जीव जो द्रव्य रूप सवर निर्जरा तथा मोक्ष पदार्थ का कर्ता है सो अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा से है तथा सवर, निर्जरा मोक्षस्वरूप जीवभाव पर्याय का 'कर्ता', विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चयनय से है और परम शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा तो न वध है न मोक्ष है। जैसा कहा भी है—'यह जीव न उत्पन्न होता है, न मरता है, और न वध तथा न मोक्ष को करता है, इस प्रकार श्री जिनेन्द्र कहते है' । पूर्वोक्त विवक्षितैकदेश शुद्ध निश्चयनय को आगमभाषा से क्या कहते है ? सो दिखाते है—निज शुद्ध आत्मा के सम्यक्श्रद्धान, ज्ञान तथा आचरण रूप से जो होगा उसे 'भव्य, कहते है, इस प्रकार के भव्यत्व नामक पारिणामिक भाव से सम्बन्ध रखने वाली व्यक्ति कही जाती है अर्थात् भव्य पारिणामिक भाव की व्यक्ति यानी प्रकटता है और अध्यात्म भाषा मे उसीको 'द्रव्यशक्ति रूप शुद्ध पारिणामिक भावके विषयमे भावना' कहते है । अन्य पर्याय नामो से इसी द्रव्यशक्ति रूप पारिणामिक भाव की भावना को निर्विकल्प ध्यान तथा शुद्ध उपयोग आदि कहते है । क्योकि भावना मुक्तिका कारण है इसलिये शुद्ध पारिणामिक भाव ध्येय यानी ध्यान करने योग्य है, ध्यान या भावना रूप नही होता । ऐसा क्यो ? इसका उत्तर यह है 'ध्यान या भावना' पर्याय है अतएव विनाशिक है । 'ध्येय है, वह भावना पर्याय रहित द्रव्य रूप होनेसे विनाश रहित है । यहा तात्पर्य यह है—मिथ्यात्व, राग आदि विकल्पो से रहित निज शुद्ध आत्मा की भावना से उत्पन्न स्वाभाविक आनन्द रूप एक सुख अनुभव रूप जो भावना है वही मुक्ति का कारण है । उसी भावना को कोई पुरुष किसी

तस्वभावपर्यायेणेति स्थितम् । तद्यथा—

आसव बंधरा संवर णिज्जर मोक्खो सपुण्णपावा जे ।

जीवाजीवविसेसा तेवि समासेण पभणामो ॥ २८ ॥

आस्रवबंधनसंवरनिर्जरमोक्षाः सपुण्यपापाः ये ।

जीवाजीवविशेषाः तान् अपि समासेन प्रभणामः ॥ २८ ॥

व्याख्या—'आसव' निरास्रवस्वसंवित्तिविलक्षणशुभाशुभपरिणामेन शुभाशुभकर्मा-गमनमास्रवः । 'बंधरा' बधातीतशुद्धात्मतत्त्वोपलम्भभावनाच्युतजीवस्य कर्मप्रदेशैः सह सश्लेषो बन्ध । 'सवर' कर्मास्रवनिरोधसमर्थस्वसवित्तिपरिणतजीवस्य शुभाशुभकर्मागम-नसवरण सवर । 'णिज्जर' शुद्धोपयोगभावनासामर्थ्येन नीरसीभूतकर्मपुद्गलानामेकदेश-गलनं निर्जरा । 'मोक्खो' जीवपुद्गलसश्लेषरूपबन्धस्य विघटने समर्थः स्वशुद्धात्मोपलब्धि-परिणामो मोक्ष इति । 'सपुण्णपावा जे' पुण्यपापसहिता ये, 'ते वि समासेण पभणामो' यथा जीवाजीवपदार्थौ व्याख्यातौ पूर्वं तथा तानप्यास्रवादिपदार्थान् समासेण संक्षेपेण प्रभणामो वय, ते च कथंभूताः ? "जीवाजीवविसेसा" जीवाजीवविशेषाः । चैतन्यभावरूपा

अन्य नामो (निर्विकल्प ध्यान, शुद्धोपयाग आदि) के द्वारा कहता है ।

इस प्रकार अनेकान्त का आश्रय लेकर कहने से आस्रव, बन्ध, पुण्य पाप ये चार पदार्थ जीव और पुद्गल के सयोग परिणाम स्वरूप जो विभाव पर्याय है उसमे उत्पन्न होते है । और सवर, निर्जरा तथा मोक्ष ये तीन पदार्थ, जीव और पुद्गल के सयोग रूप परिणाम के विनाश से उत्पन्न जो विवक्षित स्वभाव पर्याय है उससे उत्पन्न होते है, यह निर्णीत हुआ ।

गाथार्थ — जीव, अजीव की पर्याय रूप जो आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा, मोक्ष पुन्य पाप (ऐसे शेष सात पदार्थ) है , इनको सक्षेप से कहते है ॥ २८ ॥

वृत्त्यर्थः— 'आसव, आस्रव रहित निज आत्मानुभव से विलक्षण जो शुभ तथा अशुभ परिणाम है । उससे जो शुभ और अशुभ कर्मो का आगमन है सो आस्रव है । बन्धरा' बन्धरहित शुद्ध आत्मोपलब्धि रूप भावना से छूटे हुए जीव का जो कर्म के प्रदेशो के साथ परस्पर मेल है, सो बन्ध है । 'संवर' कर्म-आस्रव को रोकने मे समर्थ स्वानुभव मे परिणत जीव के जो शुभ तथा अशुभ कर्मो के आने का निरोध है, वह सवर है । 'णिज्जर' शुद्धोपयोग की भावना के बल से शक्तिहीन हुए कर्म पुद्गलो के एक देश गलने को निर्जरा कहते है । ' मोक्खो' जीव, पुद्गल के बन्ध को नाश करने मे समर्थ निज शुद्ध आत्मा की उपल-ब्धि रूप परिणाम है, वह मोक्ष है । 'सपुण्णपावा जे' पुण्य पाप सहित जो आस्रव आदि पदार्थ है, 'ते वि समासेण पभणामो' उनको भी जैसे पहले जीव अजीव कहे है उसी प्रकार संक्षेप मे कहते है । वे कैसे है ? जीवाजीवविसेसा' जीव तथा अजीव के विशेष (पर्याय) है । चैतन्यभाव रूप जीव की पर्याय

जीवस्य विशेषा । चैतन्याभावरूपा अजीवस्य विशेषा । विशेषा इत्यस्य कोऽर्थ ? पर्याया । चैतन्या अशुद्धपरिणामा जीवस्य, अचेतना कर्मपुद्गलपर्याया अजीवस्येत्यर्थः । एवमधिकारसूत्रगाथा गता ॥ २८ ॥

अथ गाथात्रयेणास्रवव्याख्यान क्रियते । तत्रादौ भावास्रवद्रव्यास्रवस्वरूप सूचयति –

आसवदि जेण कम्म परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवण परो होदि ॥ २९ ॥

आस्रवति येन कर्म परिणामेन आत्मनः स विज्ञेयः ।
भावास्रवः जिनोक्त कर्मास्रवण परः भवति ॥ २९ ॥

व्याख्या—"आसवदि जेण कम्म परिणामेणप्पणो स विण्णेओ भावासवो" आस्रवति कर्म येन परिणामेनात्मन स विज्ञेयो भावास्रव । कर्मास्रवनिर्मूलनसमर्थशुद्धात्मभावनाप्रतिपक्षभूतेन येन परिणामेनास्रवति कर्म, कस्यात्मन ? स्वस्य, स परिणामो भावास्रवो विज्ञेय । स च कथभूत ? "जिणुत्तो" जिनेन वीतरागसर्वज्ञेनोक्त । "कम्मासवण परो होदि" कर्मास्रवण परो भवति, ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मणामास्रवणमागमन पर । पर इति कोऽर्थ ? भावास्रवादन्यो भिन्नो । भावास्रवनिमित्तेन तैलमृक्षिताना

है और चैतन्यरहित अजीव की पर्याय है। 'विशेष' का क्या अर्थ है ? 'विशेष' का अर्थ पर्याय है । चैतन्य रूप जो अशुद्ध परिणाम है वे जीव के विशेष है और जो अचेतनकर्म पुद्गलो की पर्याय है वे अजीव के विशेष है । इस प्रकार अधिकार सूत्र गाथा समाप्त हुई ॥ २८ ॥

अब तीन गाथाओ मे आस्रव पदार्थ का वर्णन करते है, उसमे प्रथम ही भावास्रव तथा द्रव्यास्रव के स्वरूप की सूचना करते है —

गाथार्थ — आत्मा के जिस परिणाम से कर्म का आस्रव होता है उसे श्री जिनेन्द्र द्वारा कहा हुआ भावास्रव जानना चाहिए। और जो (ज्ञानावरणादि रूप) कर्मो का आस्रव है सो द्रव्यास्रव है ॥ २९ ॥

वृत्त्यर्थ — 'आसवदि जेण कम्म परिणामेणप्पणो स विण्णेओ भावासवो' आत्मा के जिस परिणाम से कर्म का आस्रव हो, वह भावास्रव जानना चाहिए । कर्मास्रव के नाश करने मे समर्थ, ऐसी शुद्ध आत्मभावना से विरोधी जिस परिणाम से आत्मा के कर्म का आस्रव होता है, किस आत्मा के ? अपनी आत्मा के, उस परिणाम को भावास्रव जानना चाहिये । वह भावास्रव कैसा है ? 'जिणुत्तो' जिनेन्द्र वीतराग सर्वज्ञदेव द्वारा कहा हुआ है। 'कम्मासवण परो होदि' कर्मो का जो आगमन है वह 'पर' होता है अर्थात् ज्ञानावरण आदि द्रव्य कर्मो का जो आगमन है वह 'पर' द्रव्यास्रव है 'पर' शब्द का क्या अर्थ है ? 'भावास्रव से अन्य या भिन्न' । जैसे तेल से चुपडे पदार्थो पर धूल का समागम होता है, उसी तरह भावास्रव के कारण जीव के द्रव्यास्रव होता है । यहा कोई शका करता है—आसवदि जेण कम्म' (जिससे कर्म का आस्रव होता है) इसी पद से ही द्रव्यास्रव आ गया फिर 'कम्मासवण,

धूलिसमागम इव द्रव्यास्रवो भवतीति । ननु "आस्रवति येन कर्म" तेनैव पदेन द्रव्यास्रवो लब्ध, पुनरपि कर्मास्रवण परो भवतीति द्रव्यास्रवव्याख्यान किमर्थमिति यदुक्त त्वया ? तन्न । येन परिणामेन कि भवति आस्रवति कर्म, तत्परिणामस्य सामर्थ्य दर्शितं, न च द्रव्यास्रवव्याख्यानमिति भावार्थ ॥ २६ ॥

अथ भावास्रवस्वरूप विशेषेण कथयति --

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओऽथ विण्णेया ।

पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥ ३० ॥

मिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोगक्रोधादयः अथ विज्ञेयाः ।

पञ्च पञ्च पञ्चदश त्रयः चत्वार क्रमशः भेदाः तु पूर्वस्य ॥ ३० ॥

व्याख्या--"मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओ" मिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोगक्रोधादय । अभ्यन्तरे वीतरागनिजात्मतत्त्वानुभूतिरुचिविषये विपरीताभिनिवेशजनक बहिर्विषये तु परकीयशुद्धात्मतत्त्वप्रभृतिसमस्तद्रव्येषु विपरीताभिनिवेशोत्पादकं च मिथ्यात्वं भण्यते । अभ्यन्तरे निजपरमात्मस्वरूपभावनोत्पन्नपरमसुखामृतरतिविलक्षणा वहिर्विषये पुनरव्रतरूपा चेत्यविरति । अभ्यन्तरे निष्प्रमादशुद्धात्मानुभूतिचलनरूप, वहिर्विषये तु मूलोत्तरगुणमलजनकश्चेति प्रमाद । निश्चयेन निष्क्रियस्यापि परमात्मनो व्यवहारेण वीर्यान्तरायक्षयोपशमोत्पन्नो मनोवचनकायवर्गणावलम्बन कर्मादानहेतुभूत आत्म-

---

परो होदि, (कर्मास्रव इससे भिन्न होता है) इस पद से द्रव्यास्रव का व्याख्यान किस लिये किया ? समाधान--तुम्हारी यह शका ठीक नही । क्योकि 'जिस परिणाम से क्या होता है ? कर्म का आस्रव होता है' यह जो कथन है, उससे परिणाम का सामर्थ्य दिखाया गया है, द्रव्यास्रव का व्याख्यान नही किया गया' यह तात्पर्य है ॥ २६ ॥

अब भावास्रव का स्वरूप विशेष रूप से कहते है --

गाथार्थः--पहले (भावास्रव) के, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद योग और क्रोधादि कषाय (ऐसे पाच) भेद जानने चाहिये उनमे से मिथ्यात्व आदि के क्रम से पाच पाच पन्द्रह, तीन और चार भेद है। (अर्थात् मिथ्यात्व के पाच, अविरति के पाच प्रमाद के पन्द्रह, योग के तीन और कषायो के चार भेद है) ॥ ३० ॥

वृत्त्यर्थः--'मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओ' मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग तथा क्रोध आदि कषाय आस्रव के भेद है। जो अन्तरग मे वीतराग निज आत्मतत्त्व के अनुभव रूप रुचि के विषय मे विपरीत अभिनिवेश (अभिप्राय) उत्पन्न कराने वाला है तथा बाहरी विषय मे अन्य के शुद्ध आत्म तत्त्व आदि समस्त द्रव्यो मे विपरीत अभिप्राय को उत्पन्न कराने वाला है उसे मिथ्यात्व कहते है। अन्तरङ्ग मे निज परमात्मस्वरूप भावना से उत्पन्न परम -सुख अमृत की प्रीति से विलक्षण तथा

प्रदेशपरिस्पन्दो योग इत्युच्यते । अभ्यन्तरे परमोपशममूर्तिकेवलज्ञानाद्यनन्तगुणस्वभावपरमात्मस्वरूपक्षोभकारका बहिर्विषये तु परेषा सबंधित्वेन क्रूरत्वाद्यावेशरूपा क्रोधादयश्चेत्युक्तलक्षणा पञ्चास्रवा । 'अथ' अथो 'विण्णेया' विज्ञेया ज्ञातव्या । कतिभेदास्ते ? "पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु" पञ्चपञ्चपञ्चदशत्रिचतुर्भेदा क्रमशो भवन्ति पुन । तथाहि "एयंतबुद्धदरसी विवरीओ बह्म तावसो विणओ । इन्दो विय ससइदो मक्कडिओ चेव अण्णाणी । १ ।" इति गाथाकथितलक्षण पञ्चविध मिथ्यात्वम् । हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहाकाङ्क्षारूपेणाविरतिरपि पञ्चविधा । अथवा मन सहितपञ्चेन्द्रियप्रवृत्तिपृथिव्यादिषट्कायविराधनाभेदेन द्वादशविधा । "विकहा तहा कसाया इन्द्रियणिद्दा तहेव पणयो य । चदु चदु पणमेगेग हु ति पमादाहु पण्णरस । १ ।" इति गाथाकथितक्रमेण पञ्चदश प्रमादा । मनोवचनकायव्यापारभेदेन त्रिविधो योग, विस्तरेण पञ्चदशभेदो वा । क्रोधमानमायालोभभेदेन कषायाश्चत्वार, कषायनोकषायभेदेन पञ्चविंशतिविधा वा । एते सर्वे भेदा कस्य सम्बन्धिन "पुव्वस्स" पूर्वसूत्रोदितभावास्रवस्येत्यर्थ ॥ ३० ॥

बाह्य विषय मे व्रत आदि को धारण न करना, सो अविरति है । अन्तरङ्ग मे प्रमादरहित शुद्ध आत्म-अनुभव से डिगाने रूप और बाह्य विषय मे मूल गुणो तथा उत्तर गुणो मे मैल उत्पन्न करने वाला प्रमाद है । निश्चयनय की अपेक्षा क्रियारहित परमात्मा है तो भी व्यवहारनय से वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न मन वचन काय वर्गणा को अवलम्बन करने वाला, कर्मवर्गणा के ग्रहण करने मे कारणभूत आत्मा के प्रदेशो का जो परिस्पन्द (सचलन) है उसको योग कहते है । अन्तरङ्ग मे परम उपशम-मूर्त्ति केवलज्ञान आदि अनन्त, गुण-स्वभाव परमात्मरूप मे क्षोभ उत्पन्न करने वाले तथा बाह्य विषय मे अन्यपदार्थो के सम्बन्ध से क्रूरता आवेश रूप क्रोध आदि (कषाय) है । इस प्रकार मिथ्यात्व अविरति, प्रमाद, योग तथा कषाय ये पाच भावास्रव है । 'अथ, अहो, 'विण्णेया, ये जानने चाहिये । इन पाच भावास्रवो के कितने भेद है ? 'पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु' उन मिथ्यात्व आदि के क्रम से पाच, पाच, पन्द्रह, तीन और चार भेद है । बौद्धमत एकान्त मिथ्यात्वी है, याज्ञिक ब्रह्म विपरीतमिथ्यात्व के धारक है, तापस विनयमिथ्यात्वी है, इन्द्राचार्य सशयमिथ्यात्वी है और मस्करी अज्ञान मिथ्यात्वी है । १ । इस गाथा के कथनानुसार ५ तरह का मिथ्यात्व है । हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह मे इच्छा रूप अविरति भी पाच प्रकार की है अथवा मन और पाचो इन्द्रियो की प्रवृत्ति रूप ६ भेद तथा छहकाय के जीवो की विराधना रूप ६ भेद ऐसे बारह प्रकार की भी अविरति है । "चार विकथा, चार कषाय, पाच इन्द्रिय, निद्रा और राग ऐसे पन्द्रह प्रमाद होते है । मनोव्यापार, वचन व्यापार और कायव्यापार इस तरह योग तीन प्रकार का है, अथवा विस्तार से १५ प्रकार का है । क्रोध, मान, माया तथा लोभ इन भेदो से कषाय चार प्रकार के है, अथवा १६ कषाय और ९ नोकषाय इन भेदो से पच्चीस प्रकार के कषाय है । ये सब भेद किस आस्रव के हैं ? "पुव्वस्स" पूर्व गाथा मे कहे आस्रव के है ॥ ३० ॥

अथ द्रव्यास्रवस्वरूपमुद्योतयति —

णाणावरणादीण जोग्गं ज पुग्गल समासवदि ।

दव्वासवो स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो ।। ३१ ।।

ज्ञानावरणादीना योग्य यत् पुद्गल समास्रवति ।

द्रव्यास्रवः सः ज्ञेयः अनेकभेदः जिनाख्यातः ।। ३१ ।।

व्याख्या—'णाणावरणादीण' सहजशुद्धकेवलज्ञानमभेदेन केवलज्ञानाद्यनन्तगुणाधारभूतं ज्ञानशब्दवाच्यं परमात्मान वा आवृणोतीति ज्ञानावरण, तदादिर्येषां तानि ज्ञानावरणादीनि तेषा ज्ञानावरणादीना 'जोग्ग' योग्य 'ज पुग्गल समासवदि' स्नेहाभ्यक्तशरीराणा धूलिरेणुसमागम इव निष्कषायशुद्धात्मसवित्तिच्युतजीवाना कर्मवर्गणारूपं यत्पुद्गलद्रव्य समास्रवति, 'दव्वासओ स णेओ' द्रव्यास्रव स विज्ञेय । 'अणेयभेओ' स च ज्ञानदर्शनावरणीयवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायसज्ञानामष्टमूलप्रकृतीना भेदेन, तथैव 'पण णव दु अट्ठवीसा चउ तियणवदी य दोण्णि पचेव । बावण्णहीण वियसयपयडिविणासेण होंति ते सिद्धा ।। १ ।।' इति गाथाकथितक्रमेणाष्टचत्वारिंशदधिकशतसख्याप्रमितोत्तरप्रकृतिभेदेन तथा चासख्येयलोकप्रमितपृथिवीकायनामकर्माद्युत्तरोत्तरप्रकृतिरूपेणानेकभेद इति 'जिणक्खादो' जिनख्यातो जिनप्रणीत इत्यर्थ ।। ३१ ।। एवमास्रवव्याख्यानगाथात्रयेण प्रथमस्थल गतम् ।

अब द्रव्यास्रव का स्वरूप कहते है —

गाथार्थ —ज्ञानावरण आदि आठ कर्मो के योग्य जो पुद्गल आता है उसको द्रव्यास्रव जानना चाहिये। वह अनेक भेदो वाला है, ऐसा श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है ।। ३१ ।।

वृत्त्यर्थ —"णाणावरणादीण सहज शुद्ध केवल ज्ञान को अथवा अभेद की अपेक्षा केवल ज्ञान आदि अनन्त गुणो के आधार भूत, 'ज्ञान, शब्द से कहने योग्य परमात्मा को जो आवृत करे यानी ढके सो ज्ञानावरण है। वह ज्ञानावरण है आदि मे जिनके ऐसे जो ज्ञानावरणादि है उनके 'जोग्ग योग्य 'ज' जो 'पुग्गल' पुद्गल' समासवदि, आता है जैसे तेल से चुपड़े शरीर वाले जीवो की देह पर धूल के कण आते है, उसी प्रकार कषाय रहित शुद्ध आत्मानुभूति से रहित जीवो के जो कर्म वर्गणा रूप पुद्गल आता है, 'दव्वासओ स णेओ, उसको द्रव्यास्रव जानना चाहिये । 'अणेयभेओ वह अनेक प्रकार का है, ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र तथा अन्तराय ये आठ मूल कर्म प्रकृति है तथा 'ज्ञानावरणीय के पाच, दर्शनावरणीय के ९, वेदनीय के २, मोहनीय के २८, आयु के ४-नाम के ९३, गोत्र के २ और अन्तरायके पाच इस प्रकार १४८ प्रकृतियो के नाश होने से सिद्ध होते है ।, (सिद्ध भक्ति गाथा ८) इस गाथा मे कहे हुए क्रम से एक सौ अडतालीस १४८ उत्तर प्रकृतिया है और असंख्यात लोकप्रमाण जो पृथिवीकाय नामकर्म आदि उत्तरोत्तर प्रकृति भेद है उनकी अपेक्षा कर्म अनेक

अत पर सूत्रद्वयेन बन्धव्याख्यान क्रियते । तत्रादौ गाथापूर्वार्धेन भावबन्ध-मुत्तरार्धेन तु द्रव्यबन्धस्वरूपमावेदयति —

वज्झदि कम्म जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो ।

कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥ ३२ ॥

बध्यते कर्म येन तु चेतनभावेन भावबन्धः सः ।

कर्मात्मप्रदेशाना अन्योन्यप्रवेशन इतरः ॥ ३२ ॥

व्याख्या—'वज्झदि कम्म जेण दु चेदणभावेण भावबन्धो सो' बध्यते कर्म येन चेतनभावेन स भावबन्धो भवति । समस्तकर्मबन्धविध्वसनसमर्थाखण्डैकप्रत्यक्षप्रतिभासमयपरमचैतन्यविलासलक्षणज्ञानगुणस्य, अभेदनयेनानन्तज्ञानादिगुणाधारभूतपरमात्मनो वा सबन्धिनी या तु निर्मलानुभूतिस्तद्विपक्षभूतेन मिथ्यात्वरागादिपरिणतिरूपेण वाऽशुद्धचेतनभावेन परिणामेन बध्यते ज्ञानावरणादि कर्मयेन भावेन स भावबन्धो भण्यते । 'कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो' कर्मात्मप्रदेशानामन्योन्यप्रवेशनमितर । तेनैव भावबन्धनिमित्तेन कर्मप्रदेशानामात्मप्रदेशाना च क्षीरनीरवदन्योन्य प्रवेशन सश्लेषो द्रव्यबन्ध इति ॥ ३२ ॥

प्रकार का है । 'जिणक्खादो' यह श्री जिनेन्द्रदेव का कहा हुआ है ॥ ३१ ॥

इस प्रकार आस्रव के व्याख्यान की तीन गाथाओ से प्रथम स्थल समाप्त हुआ ।

अब इसके आगे दो गाथाओ से बन्ध का व्याख्यान करते है । उसमे प्रथम गाथा के पूर्वार्ध से भावबन्ध और उत्तरार्ध से द्रव्यबन्ध का स्वरूप कहते है—

गाथार्थ —जिस चेतनभाव से कर्म बधता है वह भावबन्ध है और कर्म तथा आत्मा के प्रदेशो का परस्पर प्रवेश अर्थात् कर्म और आत्मप्रदेशो का एकमेक होना द्रव्यबध है ॥ ३२ ॥

वृत्त्यर्थ —'वज्झदि कम्म जेण दु चेदणभावेण भावबधो सो' जिस चैतन्य भाव से कर्म बधता है, वह भावबध है । समस्त कर्मबध नष्ट करने मे समर्थ, अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभास रूप परम-चैतन्य विलास-लक्षण का धारक ज्ञान गुण की या अभेदनय की अपेक्षा अनन्तज्ञान आदि गुणो के आधारभूत परमात्मा की जो निर्मल अनुभूति है उससे विरुद्ध मिथ्यात्व, राग आदि मे परिणति रूप अशुद्ध-चेतन भाव-स्वरूप जिस परिणाम से ज्ञानावरणादि कर्म बधते है वह परिणाम भावबंध कहलाता है। 'कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो' कर्म और आत्मा के प्रदेशो का परस्पर मिलना दूसरा है, अर्थात् उस भावबध के निमित्त से कर्म के प्रदेशो का और आत्मा के प्रदेशो का जो दूध और जल की तरह एक दूसरे मे प्रवेश होकर मिल जाना है सो द्रव्यबध है ॥ ३२ ॥

अब गाथा के पूर्वार्ध से उसी बंध के प्रकृतिबंध आदि चार भेदो को कहते है और उत्तरार्ध से उनके कारण का कथन करते है —

अथ तस्यैव बन्धस्य गाथापूर्वार्धेन प्रकृतिबन्धादिभेदचतुष्टय कथयति, उत्तरार्धेन तु प्रकृतिबन्धादीनां कारणं चेति ।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदादु चदुविधो बन्धो ।

जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥ ३३ ॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदात् तु चतुर्विधः बन्धः ।

योगात् प्रकृतिप्रदेशौ स्थित्यनुभागौ कषायतः भवतः ॥ ३३ ॥

व्याख्या—'पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदादु चदुविधो बन्धो' प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदाच्चतुर्विधो बन्धो भवति । तथाहि—ज्ञानावरणीयस्य कर्मण का प्रकृति ? देवतामुखवस्त्रमिव ज्ञानप्रच्छादनता । दर्शनावरणीयस्य का प्रकृति ? राजदर्शनप्रतिषेधकप्रतीहारवद्दर्शनप्रच्छादनता । सातासातवेदनीयस्य का प्रकृति ? मधुलिप्तखड्गधारास्वादनवदल्पसुखबहुदु:खोत्पादकता । मोहनीयस्य का प्रकृति ? मद्यपानवद्धेयोपादेयविचारविकलता । आयु.कर्मण का प्रकृति ? निगडवद्गत्यन्तरगमननिवारणता । नामकर्मणः का प्रकृतिः ? चित्रकारपुरुषवन्नानारूपकरणता । गोत्रकर्मण का प्रकृति ? गुरुलघुभाजनकारककुम्भकारवदुच्चनीचगोत्रकरणता । अन्तरायकर्मण का प्रकृति ? भाण्डागारिकवद्दानादिविघ्नकरणतेति । तथाचोक्त— 'पडपडिहारसिमज्जाहलिचित्तकुलालभंडयारीणं । जह एदेसिं भावा तहवि य कम्मा मुणेयव्वा ॥ १ ॥' इति दृष्टान्ताष्टकेन प्रकृतिबन्धो ज्ञातव्यः । अजागोमहिष्यादिदुग्धाना प्रहरद्वयादिस्वकीयमधुररसावस्था-

---

गाथार्थ.—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन भेदो से बन्ध चार प्रकार का है । योगो से प्रकृति तथा प्रदेशबध होते है और कषायो से स्थिति तथा अनुभाग बध होते है ॥ ३३ ॥

वृत्त्यर्थ :—'पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदादु चदुविधो बधो' प्रकृतिबध, स्थितिबध, अनुभागबध और प्रदेशबध इस तरह बध चार प्रकार का है । ज्ञानावरण कर्म की प्रकृति (स्वभाव) क्या है ? उत्तर—जैसे देवता के मुख को परदा आच्छादित कर देता है (ढक देता है) उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म ज्ञान को ढक देता है । दर्शनावरण की प्रकृति क्या है ? राजा के दर्शन की रुकावट जैसे द्वारपाल करता है, उसी तरह दर्शनावरण दर्शन को नही होने देता । सातावेदनीय और असातावेदनीय कर्म की क्या प्रकृति है ? मधु (शहद) से लिपटी हुई तलवार की धार चाटने से जैसे कुछ सुख और अधिक दु.ख होता है, वैसे ही वेदनीय कर्म भी अल्पसुख और अधिक दु ख देता है । मोहनीय कर्म का क्या स्वभाव है ? मद्यपान के समान, 'हेय उपादेय पदार्थ के ज्ञान की रहितता' यह मोहनीय कर्म का स्वभाव अथवा मोहनीय कर्म की प्रकृति है । आयुकर्म की क्या प्रकृति है ? वेडी के समान दूसरी गति मे जाने को रोकना, यह आयुकर्म की प्रकृति है ? नाम कर्म की प्रकृति क्या है ? चित्रकार के समान अनेक प्रकार के शरीर बनाना, यह नामकर्म की प्रकृति है । गोत्रकर्म का क्या स्वभाव है ? छोटे बड़े घट आदि को बनाने

नपर्यन्त यथा स्थितिर्भण्यते, तथा जीवप्रदेशेष्वपि यावत्काल कर्मसम्बन्धेन स्थिति स्तवत्काल स्थितिवन्धो ज्ञातव्य । यथा च तेपामेव दुग्धाना तारतम्येन रसगतशक्तिविशेपोऽनुभागो भण्यते तथा जीवप्रदेशस्थितकर्मस्कन्धानामपि सुखदु खदानसमर्थशक्तिविशेपोऽनुभागबन्धो विज्ञेय । सा च घातिकर्मसम्वधिनी शक्तिर्लतादार्वस्थिपापाणभेदेन१ चतुर्धा । तथैवाशुभाऽघातिकर्मसम्वधिनी निम्बकाञ्जीरविपहालाहलरूपेण, शुभाघातिकर्मसवधिनी पुनर्गुडखण्डशर्करामृतरूपेण चतुर्धा भवति । एकैकात्मप्रदेशे सिद्धानन्तैकभागसख्या अभव्यानतगुणप्रमिता अनतानतपरमाणव प्रतिक्षणवधमायातीति प्रदेशबध । इदानी बधकारण कथ्यते। 'जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो हु ति ।' योगात्प्रकृतिप्रदेशौ, स्थित्यनुभागौ कपायतो भवत इति । तथाहि—निश्चयेन निष्क्रियाणामपि शुद्धात्मप्रदेशाना व्यवहारेण परिस्पदनहेतुर्योग, तस्मात्प्रकृतिप्रदेशबधद्वय भवति । निर्दोषपरमात्मभावनाप्रतिबंधकक्रोधादिकपायोदयात् स्थित्यनुभागबधद्वय भवतीति । आस्रवे बधे च मिथ्यात्वाविरत्यादिकारणानि समानानि को विशेप । इति चेत्, नैव, प्रथमक्षणे कर्मस्कधानामागमनमास्रव,

वाले कुम्भकार की तरह उच्च-नीच गोत्र का करना, यह गोत्र कर्म की प्रकृति है । अन्तरायकर्म का स्वभाव क्या है ? भडारीके समान 'दान आदि मे विघ्न करना', यह अन्तरायकर्म की प्रकृति है । सो ही कहा है 'पट प्रतीहार, द्वारपाल, तलवार, मद्य, वेडी चितेरा, कुम्भकार और भडारी इन आठो का जैसा स्वभाव है वैसा ही क्रम से ज्ञानावरण आदि आठो कर्मो का स्वभाव जानना चाहिये ।। १ ।। इस प्रकार गाथा मे कहे हुए आठ दृष्टान्तो के अनुसार प्रकृति वध जानना चाहिए । बकरी, गाय, भस आदि के दूधो मे जैसे दो पहर आदि समय तक अपने मधुर रस मे रहने की मर्यादा है, (बकरी का दूध दो पहर तक अपने रस मे ठीक स्थित रहता है, गाय, भैंस का दूध उससे अधिक देर तक ठीक बना रहता है), इत्यादि स्थिति का कथन है, उसी प्रकार जीव के प्रदेशो के साथ जितने काल तक कर्मसम्वध की स्थिति है उतने काल को स्थितिबध कहते है । जैसे उन बकरी आदि के दूध मे तारतम से हीनाधिक मीठापन व चिकनाई शक्ति रूप अनुभाग कहा जाता है, उसी प्रकार जीव प्रदेशो मे स्थित जो कर्मो के प्रदेश है, उनमे भी जो हीनाधिक सुख-दु ख देने की समर्थ शक्ति विशेप है, उसको अनुभाग वन्ध जानना चाहिये। घाति कर्म से सम्वन्ध रखने वाली वह शक्ति लता (वेल) काठ, हाड और पापाण के भेद से चार प्रकार की है । उसी तरह अशुभ अघातिया कर्मो मे शक्ति नीम, काजीर (काली जीरी), विप तथा हालाहल रूप से चार तरह की है तथा शुभ अघातिया कर्मो की शक्ति गुड खाड, मिश्री तथा अमृत इन भेदो मे चार तरह की है । एक-एक आत्मा के प्रदेश मे सिद्धो से अनन्तक भाग (सिद्धो के अनन्तवे भाग) और अभव्य राशि मे अनन्त गुणे ऐसे अनन्तानन्त परमाणु प्रत्येक क्षण मे वंध को प्राप्त होते है। इस प्रकार प्रदेश बध का स्वरूप है। अब बध के कारण को कहते है—'जोगो पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो हुन्ति" योग मे प्रकृति प्रदेश और कपाय से स्थिति अनुभाग वंध होते है । निश्चयनय

१—'शक्तिभेदेन' इति पाठ अन्तर

आगमनानतर द्वितीयक्षणादौ जीवप्रदेशेष्ववस्थान बध इति भेद । यत एव योगकषाया-द्बधचतुष्टय भवति तत एव बधविनाशार्थ योगकषायत्यागेन निजशुद्धात्मनि भावना कर्त्तव्येति तात्पर्यम् ।। ३३ ।। एव बधव्याख्यानेन सूत्रद्वयेन द्वितीय स्थल गतम् ।

अत ऊर्ध्व गाथाद्वयेन संवरपदार्थ कथ्यते । तत्र प्रथमगाथायां भावसंवरद्रव्यसंवरस्वरूप निरूपयति —

चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू ।

सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो ।। ३४ ।।

चेतनपरिणाम यः कर्मणः आस्रवनिरोधने हेतुः ।

सः भावसवरः खलु द्रव्यास्रवरोधनः अन्यः ।। ३४ ।।

व्याख्या—"चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू सो भावसंवरो खलु" चेतनपरिणामो य', कथंभूत ? कर्मास्रवनिरोधने हेतु स भावसवरो भवति खलु निश्चयेन । 'दव्वासवरोहणे अण्णो' द्रव्यकर्मास्रवनिरोधने सत्यन्यो द्रव्यसवर इति । तद्यथा—निश्चयेन स्वत सिद्धत्वात्परकारणनिरपेक्ष', स चैवाविनश्वरत्वान्नित्य परमोद्योतस्वभा-

---

से क्रिया रहित शुद्ध आत्मा के प्रदेश है, व्यवहार नय से उन आत्म प्रदेशो के परिस्पदन का (चलायमान करने का) जो कारण है उसको योग कहते है । उस योग से प्रकृति प्रदेश दो बध होते है । दोपरहित परमात्मा की भावना (ध्यान) के प्रतिबंध करने वाले क्रोध आदि कपाय के उदय से स्थिति और अनुभाग ये दो बध होते है । शका—आस्रव और बंध के होने मे मिथ्यात्व, अविरति आदि कारण समान है, इसलिये आस्रव और बध मे क्या भेद है ? उत्तर—यह शका ठीक नही । क्योकि प्रथम क्षण मे जो कर्मस्कन्धो का आगमन है वह तो आस्रव है और कर्मस्कधो के आगमन के पीछे द्वितीय क्षण मे जो उन कर्मस्कंधो का जीव के प्रदशो म स्थित होना, सो बध है । यह भेद आस्रव और बध मे है । क्योकि योग और कषायो से प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग नामक चार बध होते है । इस कारण बन्ध का नाश करने के लिये योग तथा कषाय का त्याग करके अपनी शुद्ध आत्मा मे भावना करनी चाहिये । यह तात्पर्य है ।। ३३ ।।

इस तरह बध के व्याख्यान रूप जो दो गाथासूत्र है, उनके द्वारा द्वितीय अध्याय मे द्वितीय स्थल समाप्त हुआ ।

अब इसके आगे दो गाथाओ द्वारा सवर पदार्थ का कथन करते है । उनमे से प्रथम गाथा मे भावसंवर और द्रव्यसवर का स्वरूप निरूपण करते है —

गाथार्थ —आत्मा का जो परिणाम कर्म के आस्रव को रोकने मे कारण है, उसको भावसवर कहते है । और जो द्रव्यास्रव का रुकना है सो द्रव्यसंवर है ।। ३४ ।।

वत्वात्स्वपरप्रकाशनसमर्थ , अनाद्यनन्तत्वादादिमध्यान्तमुक्त', दृष्टश्रुतानभूतभोगाकाक्षारूप-निदानवन्धादिसमस्तरागादिविभावमलरहितत्वादत्यन्तनिर्मल परमचैतन्यविलासलक्षणत्वा-दुच्छलननिर्भर स्वाभाविकपरमानन्दैकलक्षणत्वात्परमसुखमूर्ति , निरास्रवसहजस्वभावत्वा-त्सर्वकर्मसंवरहेतुरित्युक्तलक्षण परमात्मा तत्स्वभावभावेनोत्पन्नो योऽसौ शुद्धचेतनपरिणाम स भावसवरो भवति । यस्तु भावसवरात्कारणभूतादुत्पन्न कार्यभूतो नवतरद्रव्यकर्मागम-नाभाव स द्रव्यसवर इत्यर्थ ।

अथ सवरविषयनयविभाग कथ्यते । तथाहि—मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायपर्यन्तमु-पर्युपरि मन्दत्वात्तारतम्येन तावदशुद्धनिश्चयो वर्तते । तस्य मध्ये पुनर्गुणस्थानभेदेन शुभाशुभशुद्धानुष्ठानरूपउपयोगत्रयव्यापारस्तिष्ठति । तदुच्यते—मिथ्यादृष्टिसासादनमि - गु-णस्थानेषूपर्युपरि मन्दत्वेनाशुभोपयोगो वर्तते, ततोऽप्यसयतसम्यग्दृष्टिश्रावकप्रमत्तसयतेपु पारम्पर्येण शुद्धोपयोगसाधक उपर्युपरि तारतम्येन शुभोपयोगो वर्तते, तदनन्तरमप्रमत्ता-दिक्षीणकपायपर्यन्त जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन विवक्षितैकदेशशुद्धनयरूपशुद्धोपयोगो वर्तते।

वृत्त्यर्थ —"चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू सो भावसवरो खलु" जो चेतन परिणाम कर्म—आस्रव को रोकने मे कारण है, वह निश्चय से भावसवर है । 'दव्वासवरोहणे अण्णो" द्रव्यकर्मो के आस्रव का निरोध होने पर दूसरा द्रव्यसवर होता है । वह इस प्रकार है—निश्चयनय से स्वय सिद्ध होने से अन्य कारण की अपेक्षा से रहित, अविनाशी होने से नित्य, परम प्रकाश स्वभाव होने से स्व-पर प्रकाशन मे समर्थ, अनादि अनन्त होने से आदि मध्य और अन्तरहित, देखे सुने और अनुभव किए हुए भोगो की आकाक्षा रूप निदान बध आदि समस्त रागादिक विभावमल से रहित होने के कारण अत्यन्त निर्मल, परम चैतन्यविलासरूप लक्षण का धारक होने से चित्—चमत्कार से भरपूर, स्वाभाविक परमानन्दस्वरूप होने से परम सुख की मूर्त्ति और आस्रवरहित-सहज-स्वभाव होने से सब कर्मो के सवर मे कारण, इन लक्षणो वाले परमात्मा के स्वभाव की भावना से उत्पन्न जो शुद्ध चेतन परिणाम है सो भावसवर है । कारणभूत भावसवर से उत्पन्न हुआ जो शुद्ध चेतन परिणाम है सो भावसवर से उत्पन्न हुआ जो कार्यरूप नवीन द्रव्य-कर्मो के आगमन का अभाव सो द्रव्यसवर है। यह गाथार्थ है ।

अब सवर के विषय मे नयो का विभाग कहते है—मिथ्यात्व गुणस्थान से क्षीणकषाय (बारहवे) गुणस्थान तक ऊपर—ऊपर मन्दता की तारतम्य से अशुद्ध निश्चय वर्तता है । उस अशुद्ध निश्चयनय गुणस्थानो के भेद से शुभ अशुभ और शुद्ध अनुष्ठानरूप तीन उपयोगो का व्यापार होता है । सो कहते है–मिथ्यादृष्टि, सासादन और मिश्र, इन तीनो गुणस्थानो मे ऊपर २ मन्दता से अशुभ उपयोग होता है, (जो अशुभोपयोग प्रथम गुणस्थान मे है, उससे कम दूसरे मे और दूसरे से कम तीसरे मे है) । उसके आगे असयत सम्यग्दृष्टि, श्रावक और प्रमत्तसयत, इन तीन गुणस्थानो मे परम्परा से शुद्ध—उपयोग का साधक ऊपर ऊपर तारतम्य से शुभ उपयोग रहता है । तदनन्तर अप्रमत्त आदि क्षीणकपाय तक ६

तत्रैवं, मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने तावत संवरो नास्ति, सासादनादिगुणस्थानेषु 'सोलसपणवीसणभ दसचउछक्केक्कबंधवोछिण्णा । दुगतीसचदुरपुव्वे पणसोलस जोगिणो एक्को । १ ।' इति बन्धविच्छेदत्रिभङ्गीकथितक्रमेणोपर्युपरि प्रकर्षेण संवरो ज्ञातव्य इति । अशुद्धनिश्चयमध्ये मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषूपयोगत्रयं व्याख्यात, तत्राशुद्धनिश्चये शुद्धोपयोग कथं घटते ? इति चेत्तत्रोत्तरं--शुद्धोपयोगे शुद्धबुद्धैकस्वभावो निजात्मा ध्येयस्तिष्ठति तेन कारणेन शुद्धध्येयत्वाच्छुद्धावलम्बनत्वाच्छुद्धात्मस्वरूपसाधकत्वाच्च शुद्धोपयोगो घटते । स च सवरशब्दवाच्य शुद्धोपयोग ससारकारणभूतमिथ्यात्वरागाद्यशुद्धपर्यायवदशुद्धो न भवति तथैव फलभूतकेवलज्ञानलक्षणशुद्धपर्यायवत् शुद्धोऽपि न भवति किन्तु ताभ्यामशुद्धशुद्धपर्यायाभ्या विलक्षण शुद्धात्मानुभूतिरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकं मोक्षकारणमेकदेशव्यक्तिरूपमेकदेशनिरावरण च तृतीयमवस्थान्तर भण्यते ।

कश्चिदाह--केवलज्ञान सकलनिरावरण शुद्धं तस्य कारणेनापि सकलनिरावरणेन शुद्धेन भाव्यम्, उपादानकारणसदृश कार्य भवतीति वचनात् । तत्रोत्तर दीयते--युक्तमुक्त भवता पर किन्तूपादानकारणमपि षोडशवर्णिकासुवर्णकार्यस्याधस्तनवर्णिकोपादानकार-

---

गुणस्थानो मे जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद से विवक्षित एक देश शुद्ध नयरूप शुद्ध उपयोग वर्त्तता है। इनमे से—मिथ्यादृष्टि (प्रथम) गुणस्थान मे तो सवर है ही नही । सासादन आदि गुणस्थानो मे, मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थान मे १६ प्रकृतियो, दूसरे मे २५, तीसरे मे शून्य, चौथे मे १०, पाचवे मे ४, छटे मे ६, सातवे मे १, आठवे मे २, ३० व ४, नौवे मे ५, दसवे मे १६ और सयोग केवली के १ प्रकृति की बन्ध व्युच्छत्ति होती है ।" इस प्रकार बन्धविच्छेद त्रिभगी मे कहे हुए कर्म के अनुसार ऊपर ऊपर अधिकता से सवर जानना चाहिए । ऐसे अशुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानो मे अशुभ, शुभ, शुद्ध रुप तीनो उपयोगो का व्याख्यान किया ।

शका—इस अशुद्ध निश्चयनय मे शुद्ध उपयोग किस प्रकार घटित होता है ?

उत्तर—शुद्ध उपयोग मे शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव का धारक स्व-आत्मा ध्येय (ध्यान करने योग्य पदार्थ) होता है, इस कारण उपयोगमे शुद्धध्येय होनेसे शुद्ध अवलम्बनपनेसे तथा आत्मस्वरूप का साधक होने से शुद्धोपयोग सिद्ध होता है । 'सवर' इस शब्द से कहे जाने वाला वह शुद्धोपयोग, ससार के कारणभूत जो मिथ्यात्व—राग आदि अशुद्ध पर्यायो की तरह अशुद्ध नही होता, तथा फलभूत केवलज्ञान स्वरूप शुद्ध पर्याय की भाति (वह शुद्धोपयोग) शुद्ध भी नही होता, किन्तु उन अशुद्ध तथा शुद्ध दोनो पर्यायो से विलक्षण, शुद्ध आत्मा के अनुभव स्वरूप निश्चय रत्नत्रय रूप, मोक्ष का कारण, एक देश मे प्रगट रूप और एक देश मे आवरणरहित ऐसा तीसरी अवस्थान्तर रूप कहा जाता है ।

कोई शका करता है--केवल ज्ञान समस्त आवरणसे रहित शुद्ध है, इसलिये केवल ज्ञानका कारण भी समस्त आवरण रहित शुद्ध होना चाहिये, क्योकि 'उपादान कारण के समान कार्य होता है' ऐसा आगम वचन है ? इस शंका का उत्तर देते है-आपने ठीक कहा, किन्तु उपादान कारण भी सोलह वानी के सुवर्ण-

णवत्, मृन्मयकलशकार्यस्य मृत्पिण्डस्थासकोशकुशूलोपादानकारणवदिति च कार्यादेकदेशेन भिन्न भवति। यदि पुनरेकान्तेनोपादानकारणस्य कार्येण सहाभेदो भेदो वा भवति, तर्हि पूर्वोक्तसुवर्णमृत्तिकादृष्टान्तद्वयवत्कार्यकारणभावो न घटते। तत किं सिद्ध ? एकदेशेन निरावरणत्वेन क्षायोपशमिकज्ञानलक्षणमेकदेशव्यक्तिरूप विवक्षितैकदेशशुद्धनयेन सवरशब्दवाच्य शुद्धोपयोगस्वरूप मुक्तिकारण भवति। यच्च लब्ध्यपर्याप्तसूक्ष्मनिगोदजीवे नित्योद्घाट निरावरण ज्ञान श्रूयते तदपि सूक्ष्मनिगोदसर्वजघन्यक्षयोपशमापेक्षया निरावरणं न च सर्वथा। कस्मादिति चेत् ? तदावरणे जीवाभाव प्राप्नोति। वस्तुत उपरितनक्षायोपशमिकज्ञानापेक्षया केवलज्ञानापेक्षया च तदपि सावरण, ससारिणां क्षायिकज्ञानाभावाच्च क्षायोपशमिकमेव। यदि पुनर्लोचनपटलस्यैकदेशनिरावरण वत्केवलज्ञानाश रूप भवति तर्हि तेनैकदेशेनापि लोकालोकप्रत्यक्षता प्राप्नोति, न च तथा दृश्यते। किन्तु प्रचुरमेघप्रच्छादितादित्यबिम्बवन्निबिडलोचनपटलवद्वा स्तोकं प्रकाशयतीत्यर्थ.।

अथ क्षयोपशमलक्षण कथ्यते——सर्वप्रकारेणात्मगुणप्रच्छादिका कर्मशक्तय सर्व-

---

र्णरूप कार्य के पूर्ववर्त्तिनी वर्णिकारूप उपादान कारणके समान और मिट्टीका रूप घट कार्य के प्रति मिट्टी पिण्ड, स्थान, कोश तथा कुशूल रूप उपादान कारण के समान, कार्य से एक देश भिन्न होता है (सोलह वानी के सोने के प्रति जैसे पूर्व की सब पन्द्रह वर्णिकाये उपादान कारण है और घट के प्रति जैसे मिट्टी पिण्ड, स्थास, कोश, कुशूल आदि उपादान कारण है, सो सोलह वानी के सुवर्ण और घट रूप कार्य से एक देश भिन्न है, बिलकुल सोलह वानी के सुवर्ण रूप ओर घट रूप नही है। इसी तरह सब उपादान कारण का कार्यसे एक देश भिन्न होते है)। यदि उपादान कारण का कार्यके साथ एकान्तसे सर्वथा अभेद या भेद हो तो उपर्युक्त सुवर्ण और मिट्टी के दो दृष्टान्तो के समान कार्य कारणभाव सिद्ध नही होता।

इससे क्या सिद्ध हुआ ? एक देश निरावरणता से क्षायोपशमिक ज्ञान रूप लक्षणवाला एक देश व्यक्ति रूप, विवक्षित एक देश शुद्ध नय की अपेक्षा 'सवर' शब्द से वाच्य शुद्ध उपयोग स्वरूप क्षयोपशमिक ज्ञान मुक्ति का कारण होता है। जो लब्धि अपर्याप्तक सूक्ष्म निगोद जीव मे नित्य उद्घाटित तथा आवरण रहित ज्ञान सुना जाता है, वह भी सूक्ष्म निगोद मे ज्ञानावरण कर्म का सर्व जघन्य क्षयोपशम की अपेक्षा से आवरण रहित है, किन्तु सर्वथा आवरण रहित नही है। वह आवरण रहित क्यो रहता है ? उत्तर——यदि उस जघन्य ज्ञान का भी आवरण हो जावे तो जीव का ही अभाव हो जायेगा। वास्तव मे तो उपरिवर्त्ती क्षयोपशमिक ज्ञान की अपेक्षा और केवल ज्ञान की अपेक्षा से वह ज्ञान भी आवरण सहित है, क्योकि ससारी जीवो के क्षायिक ज्ञान का अभाव है इसलिये निगोदिया का वह ज्ञान क्षायोपशमिक ही है। यदि नेत्रपटल के एक देश मे निरावरण के समान वह ज्ञान केवलज्ञान का अशरूप हो तो उस एक देश (अश) से भी लोकालोक प्रत्यक्ष हो जाये, परन्तु ऐसा देखा नहीं जाता, किन्तु अधिक बादलो से आच्छादित सूर्य-बिम्ब के समान या निबिड नेत्रपटल के समान, वह निगोदिया का ज्ञान सबसे थोडा जानता है, यह तात्पर्य है।

अब क्षयोपशम का लक्षण कहते है——सर्व प्रकार से आत्मा के गुणों को आच्छादन करने

घातिस्पर्द्धकानि भण्यन्ते, विवक्षितैकदेशेनात्मगुणप्रच्छादिका शक्तयो देशघातिस्पर्द्धकानि भण्यन्ते, सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयाभाव एक क्षयस्तेषामेवास्तित्वमुपशम उच्यते सर्वघात्युदयाभावलक्षणक्षयेण सहित उपशम तेषामेव देशघातिस्पर्द्धकानामुदयश्चेति समुदायेन क्षयोपशमो भण्यते । क्षयोपशमे भव क्षायोपशमिको भाव । अथवा देशघातिस्पर्द्धकोदये सति जीव एकदेशेन ज्ञानादिगुण लभते यत्र स क्षायोपशमिको भाव । तेन कि सिद्ध ? पूर्वोक्तसूक्ष्मनिगोदजीवे ज्ञानावरणीयदेशघातिस्पर्द्धकोदये सत्येकदेशेन ज्ञानगुण लभ्यते तेन कारणेन तत् क्षायोपशमिक ज्ञान, न च क्षायिक, कस्मादेकदेशोदयसद्भावादिति । अयमत्रार्थ—यद्यपि पूर्वोक्त शुद्धोपयोगलक्षण क्षायोपशमिक ज्ञान मुक्तिकारण भवति तथापि ध्यातृपुरुषेण यदेव नित्यसकलनिरावरणमखण्डैकसकलविमलकेवलज्ञानलक्षण परमात्मस्वरूप तदेवाह, न च खण्डज्ञानरूप, इति भावनीयम् । इति सवरतत्त्वव्याख्यानविषये नयविभागो ज्ञातव्य इति ॥ ३४ ॥

अथ सवरकारणभेदान् कथयतीत्येका पातनिका, द्वितीया तु कै कृत्वा संवरो भवतीति पृष्टे प्रत्युत्तर ददातीति पातनिकाद्वयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति भगवान्—

वाली जो कर्मों की शक्तिया है उनको 'सर्वघातिस्पर्द्धक' कहते है । और विवक्षित एक देश से जो आत्मा के गुणो को आच्छादन करने वाली कर्मशक्तिया है वे 'देशघातिस्पर्द्धक' कहलाती है । सर्वघातिस्पर्द्धको के उदय का जो अभाव है सो ही क्षय है और उन्ही सर्वघातिस्पर्द्धको का जो अस्तित्व है वह उपशम कहलाता है । सर्वघातिस्पर्द्धको के उदय का अभावरूप क्षय सहित उपशम और उन (कर्मों) के एक देश घातिस्पर्द्धको का उदय होना, सो ऐसे तीन प्रकार के समुदाय से क्षयोपशम कहा जाता है । क्षयोपशम मे जो भाव हो, वह क्षायोपशमिक भाव है । अथवा देशघातिस्पर्द्धको के उदय के होते हुए, जीव जो एक देश ज्ञानादि गुण प्राप्त करता है वह क्षायोपशमिक भाव है । इससे क्या सिद्ध हुआ ? पूर्वोक्त सूक्ष्म निगोद जीव मे ज्ञानावरण कर्म के देशघातिस्पर्द्धको का उदय होने के कारण एकदेश से ज्ञान गुण होता है इस कारण वह ज्ञान क्षायोपशमिक है, क्षायिक नही, क्योकि, वहा कर्म के एक देश उदय का सदभाव है ।

यहा साराश यह है—यद्यपि पूर्वोक्त शुद्धोपयोग लक्षणवाला क्षायोपशमिक ज्ञान मुक्ति का कारण है तथापि ध्यान करने वाले पुरुष को, 'नित्य सकल—आवरणो से रहित, अखण्ड, एक सकल विमल—केवल ज्ञानरूप परमात्मा का जो स्वरूप है, वही मै हू, खण्ड ज्ञानरूप नही हूँ' ऐसा ध्यान करना चाहिये । इस तरह सवर तत्त्व के व्याख्यान मे नय का विभाग जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

अब सवर के कारणो के भेद कहते है, यह एक भूमिका है । किनसे संवर होता है ? इस प्रश्न का उत्तर देनेवाली दूसरी भूमिका है, इन दोनो भूमिकाओ को मन मे धारण करके, श्री नेमिचन्द्र आचार्य गाथासूत्र को कहते है :—

वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेया णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥ ३५ ॥

व्रतसमितिगुप्तयः धर्मानुप्रेक्षाः परीषहजयः च।
चारित्रं बहुभेदं ज्ञातव्याः भावसंवरविशेषाः ॥ ३५ ॥

व्याख्या---'वदसमिदीगुत्तीओ' व्रतसमितिगुप्तयः, 'धम्माणुपेहा' धर्मस्तथैवानुप्रेक्षा, 'परीसहजओ य' परीषहजयश्च, 'चारित्तं बहुभेया' चारित्रं बहुभेदयुक्तं, 'णायव्वा भावसंवरविसेसा' एते सर्वे मिलिता भावसंवरविशेषा भेदा ज्ञातव्याः। अथ विस्तरः—निश्चयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजात्मतत्त्वभावनोत्पन्नसुखसुधास्वादबलेन समस्तशुभाशुभरागादिविकल्पनिवृत्तिर्व्रतम्, व्यवहारेण तत्साधकं हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहाच्च यावज्जीवनिवृत्तिलक्षणं पञ्चविधं व्रतम्। निश्चयेनानन्तज्ञानादिस्वभावे निजात्मनि सम् सम्यक् समस्तरागादिविभावपरित्यागेन तल्लीनतच्चिन्तनतन्मयत्वेन अयनं गमनं परिणमनं समितिः, व्यवहारेण तद्बहिरङ्गसहकारिकारणभूताचारादिचरणग्रन्थोक्ता ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गसंज्ञाः पञ्च समितयः। निश्चयेन सहजशुद्धात्मभावनालक्षणे गूढस्थाने संसारकारणरागादिभयात्स्वस्यात्मनो गोपनं प्रच्छादनं झम्पनं प्रवेशनं रक्षणं गुप्तिः, व्यवहारेण बहिरङ्गसाधनार्थं मनोवचनकायव्यापारनिरोधो गुप्तिः। निश्चयेन संसारे पतन्तमात्मानं धरतीति

गाथार्थ ---पाच व्रत, पाच समिति, तीन गुप्ति, दश धर्म, वारह अनुप्रेक्षा, वाईस परिषहजय तथा अनेक प्रकार का चारित्र इस तरह ये सब भावसंवर के भेद जानने चाहिए।

वृत्त्यर्थ ---'वदसमिदीगुत्तीओ" व्रत, समिति, गुप्तिया, "धम्माणपेहा" धर्म और अनुप्रेक्षा, 'परीसहजओ य' और परीषहो का जीतना, 'चारित्त बहुभेया' अनेक प्रकार का चारित्र, 'णायव्वा भावसंवरविसेसा' ये सब मिलकर भावसंवर के भेद जानने चाहिए। अब इसको विस्तार से कहते है-निश्चयनय की अपेक्षा विशुद्ध ज्ञान दर्शनरूप स्वभाव धारक निज-आत्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न सुखरूपी अमृत के आस्वाद के बल से सब शुभ--अशुभ राग आदि विकल्पो से रहित होना व्रत है। व्यवहारनय से उस निश्चय व्रत को साधने वाला हिंसा, झूठ, चोरी अब्रह्म और परिग्रह से जीवन भर त्यागरूप पाच प्रकार का व्रत है। निश्चयनय की अपेक्षा अनन्तज्ञान-आदि स्वभाव धारक निज आत्मा है, उसमे 'सम्' भले प्रकार, अर्थात् समस्त रागादि विभावो के त्याग द्वारा आत्मा मे लीन होना, आत्मा का चिन्तन करना, तन्मय होना आदिरूप से जो अयन कहिये गमन अर्थात् परिणमन सो 'समिति' है। व्यवहार से उस निश्चय समिति के वहिरंग सहकारी कारणभूत आचार चारित्र विषयक ग्रन्थो मे कही हुई ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण, उत्सर्ग ये पाच समितिया है। निश्चय से सहज-शुद्ध-आत्म-भावनारूप गुप्त स्थान मे संसार के कारणभूत रागादि के भय से अपने आत्मा का जो छिपाना, प्रच्छादन झपन, प्रवेशन, या रक्षा करना है, सो गुप्ति है। व्यवहारनय से वहिरंग साधन के अर्थ जो मन, वचन काय की क्रिया को रोकना सो गुप्ति है। निश्चय से संसार मे गिरते हुए आत्मा को जो धारण करे (वचावे)

विशुद्धज्ञानदर्शनलक्षणनिजशुद्धात्मभावनात्मको धर्म , व्यवहारेण तत्साधनार्थ देवेन्द्रनरेन्द्रादिवन्द्यपदे धरतीत्युत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्यलक्षणो दशप्रकारो धर्म ।

तद्यथा--प्रवर्तमानस्य प्रमादपरिहार्थ धर्मवचन । क्रोधोत्पत्तिनिमित्ताविषह्याक्रोशादिसभवेऽकालुष्योपरम क्षमा । शरीरस्थितिहेतुमार्गणार्थ परकुलान्युपगच्छतो भिक्षोर्दुष्टजनाक्रोशोत्प्रहसनावज्ञानताडनशरीरव्यापादनादीना क्रोधोत्पत्तिनिमित्ताना सन्निधाने कालुष्याभाव क्षमा इति उच्यते ॥ १ ॥ जात्यादिमदावेशादभिमानाभावो मार्दव ॥ २ ॥ योगस्यावक्रता आर्जव । योगस्यकायवाङ्मनोलक्षणस्यावक्रता आर्जव इति उच्यते ॥ ३ ॥ सत्सु साधुवचन सत्यं । सत्सु प्रशस्तेपु जनेषु साधुवचन सत्यमिति उच्यते ॥ ४॥ प्रकर्षप्राप्ता लोभनिवृत्ति शौचं । लोभस्य निवृत्ति प्रकर्षप्राप्ता, शुचेर्भाव कर्म वा शौच इति निश्चीयते ॥ ५ ॥ समितिषु प्रवर्तमानस्य प्राणीन्द्रियपरिहार सयम । ईर्यासमित्यादिषु वर्तमानस्य मुनेस्तत्प्रतिपालनार्थ प्राणीन्द्रियपरिहार सयम इत्युच्यते । एकेन्द्रियादि प्राणिपीडापरिहार प्राणिसयम । शब्दादिष्विन्द्रियार्थेषु रागानभिष्वङ्ग इन्द्रियसयम ।

सो विशुद्ध ज्ञान दर्शन लक्षणमयी निज शुद्ध आत्मा की भावनास्वरूप धर्म है । व्यवहारनय से उसके साधन के लिये इन्द्र चक्रवर्ती आदि से जो वदने योग्य पद है उसमे पहुचाने वाला उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, स यम, तप, त्याग आकिचन्य तथा ब्रह्मचर्यरूप दस प्रकार का धर्म है ।

वे धर्म इस प्रकार है, जो समिति पालन मे प्रवृत्तिरूप है, उनके प्रमाद को दूर करने के लिये धर्म का निरूपण किया गया है । क्रोध उत्पन्न होने मे निमित्तीभूत ऐसे असह्य दुर्वचन आदि के अवसर प्राप्त होने पर कलुषता का न होना क्षमा है अर्थात् शरीर की स्थिति का कारण जो शुद्ध आहार उसकी खोज के लिये पर कुलो (गृहो) मे जाते हुये मुनि को दुष्टजनो द्वारा गाली, हास्य, निरादर के वचन कहे जाने पर भी तथा ताडन, शरीर घात इत्यादि क्रोध उत्पन्न होने के निमित्त कारण मिलने पर भी परिणामो मे मलिनता न आना, इस ही का नाम क्षमा कहा गया है ॥ १ ॥

उत्तम जाति आदि मद के आवेग से अभिमान का न होना मार्दव है ॥२॥ योगो की अकुटिलता आर्जव है अर्थात् मन वचन कायरूप योगो की सरलता को आर्जव कहा गया है ॥ ३ ॥ सत्जनो से साधुवचन वोलना सत्य है अर्थात् प्रशस्त एव श्रेष्ठ सज्जन पुरुषो से समीचीन वचन वोलना, वह सत्य कहलाता है ॥ ४ ॥ लोभ की निवृत्ति की प्रकर्षता होना, शौच है । शुचि नाम पवित्रता का है, शुचि के भाव व कर्म को शौच कहते है ॥ ५ ॥ समितियो के पालन करने वाले मुनिराज का प्राणियो की रक्षा करना तथा इन्द्रियो के विषयो का निषेध संयम है, अर्थात् ईर्यासमिति आदि मे प्रवर्तमान मुनि का उनकी (समिति की) प्रतिपालना के लिये प्राणी पीडा परिहार एवं इन्द्रियविषयाशक्ति परिहार को सयम कहते है । एकेन्द्रियादि जीवो की हिसा का त्याग प्राणि संयम है, शब्दादि इन्द्रियविषयो मे राग का लगाव न होना इन्द्रिय--सयम है ।

तत्प्रतिपादनार्थं शुद्ध्यष्टकोपदेश, तद्यथा—अष्टौ शुद्धय—भावशुद्धि कालशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, भिक्षाशुद्धि प्रतिष्ठापनशुद्धि, शयनासनशुद्धि, वाक्यशुद्धिश्चेति । तत्र भावशुद्धि कर्मक्षयोपशमजनिता, मोक्षमार्गरुच्याहितप्रसादा, रागाद्युपप्लवरहिता । कायशुद्धि निरावरणाभरणा, निरस्तसस्कारा, यथाजातमलधारिणी, निराकृताङ्गविकारा । विनयशुद्धि अर्हदादिषु परमगुरुषु यथार्ह पूजाप्रवणा, ज्ञानादिषु च यथाविधिभक्तियुक्ता, गुरो सर्वत्रानुकूलवृत्ति । ईर्यापथशुद्धि नानाविधजीवस्थानयोन्याश्रयावबोधजनितप्रयत्नपरिहृतजन्तुपीडा, ज्ञानादित्यस्वेन्द्रियप्रकाशनिरीक्षितदेशगामिनी, द्रुतविलम्बितसम्भ्रातविस्मितलीलाविकारदिगान्तरावलोकनादिदोषविरहितगमना । भिक्षाशुद्धि आचारसूत्रोक्तकालदेशप्रकृतिप्रतिपत्तिकुशला, लाभालाभमानापमानसमानमनोवृत्ति, लोकगर्हितकुलपरिवर्जनपरा, चन्द्रगतिरिवहीनाधिकगृहा, विशिष्टोपस्थाना दीनानाथदानशालाविवाहयजनगेहादि परिवर्जनोपलक्षिता, दीनवृत्तिविगमा, प्रासुकाहारगवेषणप्रणिधाना, आगमविहित निरवद्याशनपरिप्राप्तप्राणयात्राफला । प्रतिष्ठापनशुद्धि, नखरोमसिङ्घाणकनिष्ठीवनशुक्रोच्चारप्रस्रवणशोधने देहपरित्यागे च जतूपरोधविरहिता । शयनासनशुद्धि, स्त्रीक्षुद्रचौरपानाक्षशौण्डशाकुनिकादिपापजनवासा वर्ज्या, अकृत्रिमगिरिगुहातरुकोटरान्य कृत्रिमाश्च शून्यागारादयो मुक्तमोचितावासा अनात्मोद्देशनिर्वर्तिता सेव्या । वाक्यशुद्धि,

---

उस सयम के विशेष निरूपण करने के लिये अथवा उसकी पालना के लिये अष्टशुद्धियो का उपदेश है । वे अष्टशुद्धि इस प्रकार है—भावशुद्धि--कायशुद्धि--विनयशुद्धि--ईर्यापथशुद्धि--भिक्षाशुद्धि प्रतिष्ठापनशुद्धि--शयनासनशुद्धि--वाक्यशुद्धि । इनमे भावशुद्धि कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होती है, मोक्षमार्ग मे रुचि होने से परिणामो को निर्मल करने वाली है, तथा रागादि विकार से रहित है । १ । कायशुद्धि, आवरण एवं आभूषणो से रहित, समस्त सस्कारो से अतीत, बालक (यथाजात) के समान धूलि धूसरित देह को धारण करने वाली शरीर विकारो से रहित है । २ । विनयशुद्धि—परम गुरु अर्हतादि की यथा योग्य पूजा मे तत्परता जहा रहती है, ज्ञानादि मे यथाविधि भक्ति जहा की जाती है, गुरु के प्रति जहा सर्वत्र अनुकूल वृत्ति होती है । ३ । ईर्यापथशुद्धि—नाना प्रकार के जीवो की उत्पत्ति के स्थान तथा योनिरूप आश्रयो का बोध होने से ऐसा प्रयत्न करना जिससे जीवो को पीडा न हो, ज्ञानरूपी सूर्य से एवं इन्द्रियो से तथा प्रकाशसे भले प्रकार देखे हुए प्रदेश मे गमन करना, जल्दी चलना, देरसे चलना चचल उपयोग सहित चलना, साश्चर्य चलना, क्रीडा करते हुए चलना, विकार युक्त चलना, इधर उधर दिशाओ मे देखते हुए चलना, इत्यादि चलने सम्बन्धी दोषो से रहित गमन करना । ४ । भिक्षाशुद्धि आचार सूत्र मे कहे अनुसार काल, देश, प्रकृति का बोध करना, लाभ-अलाभ, मान-अपमान मे समान मनोवृत्ति का रहना लोकनिद्य परिवारो मे आहार के लिये नही जाना, चन्द्रमा के समान कम और गृहो की मर्यादा हो, विशेष रूप से जो स्थान दीनअनाथो के लिये दानशाली हो अथवा विवाह तथा जिस गृह मे हो रहे हो, ऐसे स्थानो मे आहार के लिये चर्या नही करनी । (अन्तराय एवं अनेक

पृथिवीकायिकारम्भादिप्रेरगरहिता, परुषनिष्ठुरादिपरपीडाकरप्रयोगनिरुत्सुका, व्रतशील-देशनादिप्रधानफला, हितमितमधुरमनोहरा, संयतस्ययोग्या, इति संयमान्तर्गताष्टशुद्धय. ॥ ६

कर्मक्षयार्थं तप्यत इति तप । तद्द्विविधं, वाह्यमभ्यन्तर च, तत्प्रत्येक षड्विधम् ॥७॥ परिग्रहनिवृत्तिस्त्यागः । परिग्रहस्य चेतनाचेतनलक्षणस्य निवृत्तिस्त्याग इति निश्चीयते अथवा संयतस्य योग्यं ज्ञानादिदानं त्याग इत्युच्यते ॥ ८ ॥ ममेदमित्यभिसंधि-निवृत्तिराकिंचन्यं । उपात्तेष्वपि शरीरादिषु संस्कारापोहाय ममेदमित्यभिसंधिनिवृत्ति रा-किंचन्यमित्याख्यायते । नास्य किंचनास्ति इत्यकिंचन., तस्य भाव कर्म वा आकिंचन्यम् ॥ ९ ॥ अनुभूतांगन स्मरणतत्कथाश्रवग स्त्रीसंसक्तशयनासनादिवर्जनाद् ब्रह्मचर्य । मया अनुभूतांगना कलागुणविशारदा इति स्मरणं तत्कथाश्रवणं रतिपरिमलादिवासितं स्त्रीसस-क्तशयनासनमित्येवमादिवर्जनात् परिपूर्णं ब्रह्मचर्यमवतिष्ठते । स्वातंत्र्यार्थं गुरौ ब्रह्मणि चर्यमिति वा ॥ १० ॥ एवं दशधा धर्म ।

उपवासो के पश्चात् भी) दीनवृत्ति का न होना । प्रासुक आहार खोजना ही जहा मुख्य लक्ष्य है । आगम विधि के अनुसार निर्दोष भोजन की प्राप्ति से प्राणो की स्थिति मात्र है लक्ष्य जिसमे, ऐसी भिक्षा-शुद्धि है ।५। प्रतिष्ठापनशुद्धि--नख-रोम-नासिका-मल-कफ-वीर्य-मल-मूत्र की क्षेपणक्रिया मे तथा शरीरके उठाने-बैठाने इत्यादि मे जन्तुओ को बाधा न होने देना । ६ । शयनासनशुद्धि-स्त्री, क्षुद्र पुरुष; चौर, मद्यपायी, जुआरी, मद्य-विक्रेता तथा पक्षियो को पकड़ने वाले आदि के स्थानो मे नही बसना चाहिये । प्राकृतिक गिरि-गुफा, वृक्ष का कोटर तथा बनाये हुए सूने घर, छूटे हुए, छोडे हुए स्थानो मे, जो अपने उद्देश्यसे नही बनाये गये हो, बसना चाहिए ।७। वाक्यशुद्धि--पृथिवीकायिक आदि सम्बन्धी आरम्भ आदि की प्रेरणा जिस मे न हो । जो कठोर निष्ठुर और पर पीडा कारी प्रयोगो से रहित हो । व्रतशील आदि का उपदेश देने वाली हो । हित मित मधुर मनोहर ऐसी सयमी के योग्य वाक्य शुद्धि है । ८ । इस प्रकार संयम के अतर्गत आठ शुद्धियो का वर्णन हुआ ।

कर्मक्षयके लिये जो तपा जाये वह तप है । वह तप दो प्रकार का है, बाह्य तप, अन्तरग तप । इनमे से प्रत्येक छ छ. प्रकार का है ॥ ७ ॥ चेतन अचेतन परिग्रह को निवृत्ति को त्याग कहते है अथवा सयमी के योग्य ज्ञानादि के दान को भी त्याग कहा गया ह ॥ ८ ॥ 'यह मेरा है" इस प्रकार के अभिप्राय का त्याग आकिंचन्य है अर्थात् जो शरीरादि प्राप्त परिग्रह है उनमे संस्कार न रहे इसके लिये "यह मेरा है" इस अभिप्राय की निवृत्ति को आकिंचन्य के नाम स कहा गया है । जिसके कुछ भी (परिग्रह) नही है वह अकिंचन है उसका जो भाव अथवा कर्म उसे आकिंचन्य कहते हैं ॥ ९ ॥ अनुभूत स्त्री का स्मरण, उसकी कथा का श्रवण तथा स्त्री संसक्त शय्या आसन आदि स्थान के त्याग से ब्रह्मचर्य है अर्थात् "मैंने उस कला गुण विशारदा स्त्री को भोगा था" ऐसा स्मरण उसकी पूर्व कथा

द्वादशानुप्रेक्षा कथ्यन्ते—अध्रुवाशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुचित्वास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मानुचिन्तनमनुप्रेक्षा । अथाध्रुवानुप्रेक्षा कथ्यते । तद्यथा—द्रव्यार्थिकनयेन टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वेनाविनश्वरस्वभावनिजपरमात्मद्रव्यादन्यद् भिन्नं यज्जीवसंबन्धे अशुद्धनिश्चयनयेन रागादिविभावरूपं भावकर्म, अनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मनोकर्मरूपं च तथैव (उपचरितासद्भूतव्यवहारेण) तत्स्वस्वामिभावसम्बन्धेन गृहीतं यच्चेतनं वनितादिकम्, अचेतनं सुवर्णादिकं, तदुभयमिश्रं चेत्युक्तलक्षणं तत्सर्वमध्रुवमिति भावयितव्यम् । तद्भावनासहितपुरुषस्य तेषां वियोगेऽपि सत्युच्छिष्टेष्विव ममत्वं न भवति तत्र ममत्वाभावादविनश्वरनिजपरमात्मानमेव भेदाभेदरत्नत्रयभावनया भावयति, यादृशमविनश्वरमात्मानं भावयति तादृशमेवाक्षयानन्तसुखस्वभावं मुक्तात्मानं प्राप्नोति । इत्यध्रुवानुप्रेक्षा गता ॥ १ ॥

अथाशरणानुप्रेक्षा कथ्यते—निश्चयरत्नत्रयपरिणतं स्वशुद्धात्मद्रव्यं तद्बहिरङ्गसहकारिकारणभूतं पञ्चपरमेष्ठ्याराधनञ्च शरणम्, तस्माद्बहिर्भूता ये देवेन्द्रचक्रवर्त्तिसुभ-

---

का श्रवण एवं रतिकालीन सुगन्धित द्रव्यों की सुवास तथा स्त्रीसंसक्तशय्या आसन आदि के त्याग से परिपूर्ण ब्रह्मचर्य होता है। अथवा स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये गुरु स्वरूप ब्रह्म जो शुद्ध आत्मा उसमें चर्या होना ब्रह्मचर्य है ॥ १० ॥ इस प्रकार दश धर्म हैं।

बारह अनुप्रेक्षाओं को कहते हैं—अध्रुव, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि दुर्लभ और धर्म इनका चिन्तवन करना, अनुप्रेक्षा है। उनको विस्तार से कहते हैं—

अध्रुव अनुप्रेक्षा—द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभावसे अविनाशी स्वभाव वाले निज परमात्म-द्रव्यसे भिन्न, अशुद्ध निश्चयनयसे जो जीव के रागादि विभावरूप भावकर्म एवं अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से द्रव्यकर्म व शरीरादि नोकर्मरूप, तथा (उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से) उनके स्वस्वामि-भाव सम्बन्ध से ग्रहण किये हुए स्त्री आदि चेतन द्रव्य सुवर्ण आदि अचेतन द्रव्य और चेतन-अचेतन मिश्र पदार्थ, उक्त लक्षण वाले ये सब पदार्थ अध्रुव (नाशवान) हैं इस प्रकार चिन्तन करना चाहिए। उस भावना सहित पुरुषके, उन स्त्री आदि के वियोग होने पर भी, झूठे भोजनों के समान, ममत्व नहीं होता। उनमें ममत्व का अभाव होने से अविनाशी निज परमात्मा को ही भेद, अभेद रूप रत्नत्रय की भावना द्वारा भाता है। जैसी अविनश्वर आत्मा को भाता है, वैसी ही अक्षय अनन्त सुख स्वभाव वाली मुक्त आत्मा को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार अध्रुव भावना है ॥ १ ॥

अशरण अनुप्रेक्षा—निश्चय रत्नत्रय से परिणत जो स्वशुद्धात्म द्रव्य और उसकी बहिरंग सहकारी कारण भूत पंचपरमेष्ठियों की आराधना, यह दोनों शरण (रक्षक) हैं। उनसे भिन्न जो देव, इन्द्र, चक्रवर्ती, सुभट, कोटिभट और पुत्र आदि चेतन पदार्थ तथा पर्वत, किला, भोहरा, मणि,

टकोटिभटपुत्रादिचेतना गिरिदुर्गभूविवरमणिमन्त्राज्ञाप्रासादौषधादय पुनरचेतनास्तदुभया-
त्मका मिश्राश्च मरणकालादौ महाटव्यां, व्याघ्रगृहीतमृगबालस्येव महासमुद्रे पोतच्युतप-
क्षिण इव शरणं न भवन्तीति विज्ञेयम् । तद्विज्ञाय भोगाकांक्षारूपनिदानबन्धादिनिरालम्बने
स्वसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतसालम्बने स्वशुद्धात्मन्येवावलम्बनं कृत्वा भावनां करोति ।
यादृशं शरणभूतमात्मानं भावयति तादृशमेव सर्वकालशरणभूतं शरणागतवज्रपञ्जरसदृशं
निजशुद्धात्मानं प्राप्नोति । इत्यशरणानुप्रेक्षा व्याख्याता ॥ २ ॥

अथ संसारानुप्रेक्षा कथ्यते—शुद्धात्मद्रव्यादितराणि सपूर्वापूर्वमिश्रपुद्गलद्रव्याणि
ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मरूपेण, शरीरपोषणार्थाशनपानादिपञ्चेन्द्रियविषयरूपेण चानन्तवा-
रान् गृहीत्वा विमुक्तानीति द्रव्यसंसारः । स्वशुद्धात्मद्रव्यसंबन्धिसहजशुद्धलोकाकाशप्रमिता-
संख्येयप्रदेशेभ्यो भिन्ना ये लोकक्षेत्रप्रदेशास्तत्रैकैकं प्रदेशं व्याप्यानन्तवारान् यत्र न जातो
न मृतोऽयं जीवः स कोऽपि प्रदेशो नास्तीति क्षेत्रसंसारः । स्वशुद्धात्मानुभूतिरूपनिर्विकल्प-
समाधिकालं विहाय प्रत्येकंदशकोटाकोटिसागरोपमप्रमितोत्सर्पिण्यवसर्पिण्येकैकसमये नाना-
परावर्त्तनकालेनानन्तवारानयं जीवो यत्र न जातो न मृतः स समयो नास्तीति कालसं-

---

मन्त्र, तन्त्र, आज्ञा, प्रासाद (महल) और औषधि आदि अचेतन पदार्थ तथा चेतन-अचेतन मिश्रित पदार्थ ये कोई भी मरण आदि के समय शरण नही होते; जैसे महावन में व्याघ्र से पकड़े हुए हिरण के बच्चे को अथवा महासमुद्र में जहाज से छूटे हुए पक्षी को कोई शरण नहीं होता, ऐसा जानना चाहिए। अन्य पदार्थो को अपना शरण न जानकर, आगामी भोगो की वांछारूप निदानबंध आदि का अवलम्बन न लेकर तथा स्वानुभव से उत्पन्न सुख रूप अमृत का धारक निज-शुद्ध-आत्मा का ही अवलम्बन करके, उस शुद्ध-आत्मा की भावना करता है। जैसी आत्मा को यह शरणभूत भाता है, वैसे ही सदा शरणभूत शरण मे आये हुए के लिए वज्र के पिंजरे के समान, निज-शुद्धआत्मा को प्राप्त होता है। इस प्रकार अशरण अनुप्रेक्षा का व्याख्यान हुआ।

ससारानुप्रेक्षा--शुद्ध-आत्मद्रव्य से भिन्न सपूर्व (पुराने) अपूर्व (नये) तथा मिश्र ऐसे पुद्गल द्रव्यो को ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्म रूप से तथा शरीर पोषण के लिए भोजनपान आदि पांचों इन्द्रियों के विषय रूप से इस जीव ने अनन्त बार ग्रहण करके छोडा है, इस प्रकार 'द्रव्यसंसार है'। निज शुद्धआत्म द्रव्य सम्बन्धी जो सहज शुद्ध लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेश है, उनसे भिन्न लोक-क्षेत्र के सर्व प्रदेशों मे एक-एक प्रदेश को व्याप्त करके, अनन्त बार यह जीव उत्पन्न न हुआ हो और मरा न हो, ऐसा कोई भी प्रदेश नही है। यह 'क्षेत्रससार' है। निज-शुद्धआत्म अनुभव रूप निर्विकार समाधि के काल को छोडकर (प्राप्त न करके) दशकोटाकोटी सागर प्रमाण उत्सर्पिणी काल और दशकोटा-कोटी सागर प्रमाण अवसर्पिणी काल के एक-एक समय मे अनेक परावर्त्तन काल से यह जीव अनन्त बार जन्मा न हो और मरा न हो ऐसा कोई भी समय नही है। इस प्रकार 'कालसंसार' है।

सार । अभेदरत्नत्रयात्मकसमाधिवलेन सिद्धगतौ स्वात्मोपलब्धिलक्षणसिद्धपर्यायरूपेण योऽसावुत्पादो भवस्त विहाय नारकतिर्यग्मनुष्यभवेषु तथैव देवभवेषु च निश्चयरत्नत्रयभावनारहितभोगाकाक्षानिदानपूर्वकद्रव्यतपश्चरणरूपजिनदीक्षाबलेन नवग्रैवेयकपर्यन्त 'सक्को सहग्गमहिस्सी दक्खिणइ दा य लोयवाला य । लोयतिया य देवा तच्छ चुदा णिव्वुदि जति ॥ १ ॥' इति गाथाकथितपदानि तथागमनिषिद्धान्यन्यपदानि च त्यक्त्वा भवविध्वसकनिजशुद्धात्मभावनारहितो भवोत्पादकमिथ्यात्वरागादिभावनासहितश्च सन्नय जीवोऽनन्तवारान् जीवितो मृतश्चेति भवससारो ज्ञातव्य ।

अथ भावससार कथ्यते । तद्यथा—सर्वजघन्यप्रकृतिवन्धप्रदेशबन्धनिमित्तानि सर्वजघन्यमनोवचनकायपरिस्पन्दरूपाणि श्रेण्यसख्येयभागप्रमितानि चतु स्थानपतितानि सर्वजघन्ययोगस्थानानि भवन्ति तथैव सर्वोत्कृष्टप्रकृतिवन्धप्रदेशवन्धनिमित्तानि सर्वोत्कृष्टमनोवचनकायव्यापाररूपाणि तद्योग्यश्रेण्यसख्येयभागप्रमितानि चतु स्थानपतितानि सर्वोत्कृष्ट योगस्थानानि च भवन्ति । तथैव सर्वजघन्यस्थितिवन्धनिमित्तानि सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थानानि तद्योग्यासख्येयलोकप्रमितानि पट्स्थानपतितानि च भवन्ति । तथैव च सर्वो-

---

रत्नत्रयात्मक ध्यान के वल से सिद्धगति मे निज-आत्मा की उपलब्धि रूप सिद्ध पर्याय रूप उत्पाद के सिवाय नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवो के भवो मे निश्चय रत्नत्रय की भावना से रहित और भोग वाछादि निदान सहित द्रव्यतपश्चरण रूप मुनि दीक्षा के वल से नवग्रैवेयक तक, 'प्रथम स्वर्ग का इन्द्र, प्रथम स्वर्ग की इन्द्राणी शची, दक्षिण दिशा के इन्द्र, लोकपाल और लोकान्तिक देव ये सब स्वर्ग से च्युत होकर निवृत्ति (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥' गाथा मे कहे हुए पदो को तथा आगम मे निषिद्ध अन्य उत्तम पदो को छोड कर भव नाशक निज-आत्मा की भावना से रहित व ससार को उत्पन्न करने वाले मिथ्यात्व व राग आदि भावो से सहित हुआ, यह जीव अनन्त बार जन्मा है और मरा है। इस प्रकार 'भवससार' जानना चाहिए ।

अव भाव ससार को कहते है--सवसे जघन्य प्रकृतिवन्ध व प्रदेशवन्ध के कारणभूत जघन्य मन, वचन, काय के अवलम्वन से परिस्पन्द रूप, श्रेणी के असख्यातवेभाग प्रमाण तथा चार स्थानो मे पतित (वृद्धि हानि), ऐसे सर्व जघन्य योगस्थान होते है । इसी प्रकार सर्व उत्कृष्ट प्रकृति बन्ध व प्रदेश वन्ध के कारणभूत, सर्वोत्कृष्ट मन, वचन, काय के व्यापार रूप, यथायोग्य श्रेणी के असंख्यातवे भाग प्रमाण, चार स्थानो मे पतित सर्वोत्कृष्ट योगस्थान होते है। इस प्रकार सर्वजघन्य स्थिति बन्ध के कारणभूत, अपने योग्य असंख्यात लोक प्रमाण, पट् स्थान वृद्धिहानि मे पतित सर्वजघन्य कषाय अध्यवसाय स्थान होते हैं। इसी तरह सर्वोत्कृष्ट स्थिति वन्ध के कारणभूत सर्वोत्कृष्ट कषाय अध्यवसाय स्थान हैं, वे भी असख्यात लोक-प्रमाण और पट् स्थानो मे पतित होते है । इसी प्रकार सवसे जघन्य अनुभाग वन्ध के कारणभूत सवसे जघन्य अनुभाग अध्यवसाय स्थान हैं, वे भी असख्यात लोक-प्रमाण

नित्यनिगोदजीवान् विहाय, पञ्चप्रकारससारव्याख्यान ज्ञातव्यम् । कस्मादिति चेत्—नित्यनिगोदजीवाना कालत्रयेऽपि त्रसत्व नास्तीति । तथा चोक्त—'अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो । भावकलकसुपउरा णिगोदवास ण मुचति ॥ १ ॥' अनुपममद्वितीयमनादिमिथ्यादृशोऽपि भरतपुत्रास्त्रयोविंशत्यधिकनवशतपरिमाणास्ते च नित्यनिगोदवासिन क्षपितकर्माण इन्द्रगोपा सजातास्तेषा च पुञ्जीभूतानामुपरि भरतहस्तिना पादो दत्तस्ततस्ते मृत्वापि वर्द्धनकुमारादयो भरतपुत्रा जातास्ते च केनचिदपि सह न वदन्ति । ततो भरतेन समवसरणे भगवान् पृष्टो, भगवता च प्राक्तन वृत्तान्त कथितम् । तच्छ्रुत्वा ते तपो गृहीत्वा क्षणस्तोककालेन मोक्ष गता । आचाराराधनाटिप्पणे कथितमास्ते । इति ससारानुप्रेक्षा गता ॥ ३ ॥

अथैकत्वानुप्रेक्षा कथ्यते । तद्यथा—निश्चयरत्नत्रयैकलक्षणैकत्वभावनापरिणतस्यास्य जीवस्य निश्चयनयेन सहजानन्दसुखाद्यनन्तगुणाधारभूतं केवलज्ञानमेवैक सहज शरीरम् । शरीरं कोऽर्थ ? स्वरूप, न च सप्तधातुमयौदारिकशरीरम् । तथैवार्त्तरौद्रदुर्ध्यानविलक्षणपरमसामायिकलक्षणैकत्वभावनापरिणत निजात्मतत्त्वमेवैकं सदा शाश्वत परमहितकारी परमोबन्धु, न च विनश्वराहितकारी पुत्रकलत्रादि । तेनैव प्रकारेण परमोपेक्षा-

---

अनतकाल तक रहता है। यहा विशेष यह है—नित्य निगोद के जीवो को छोडकर, पंच प्रकार के ससार का व्याख्यान जानना चाहिए (नित्य-निगोदी जीव इस पाच प्रकार के ससार मे परिभ्रमण नही करते), क्योकि, नित्य निगोदवर्त्ती जीवो को तीन काल मे भी त्रसपर्याय नही मिलती । सो कहा भी है—'ऐसे अनन्त जीव हैं कि जिन्होने त्रसपर्याय को अभी तक प्राप्त ही नही किया और जो भाव-कलको (अशुभ परिणामो) मे भरपूर है, जिससे वे निगोद के निवास को कभी नही छोडते ।' किन्तु यह वृत्तान्त अनुपम और अद्वितीय है कि नित्य निगोदवासी अनादि मिथ्यादृष्टि नौ सौ तेईस जीव, कर्मो की निर्जरा (मन्द) होने से, इन्द्रगोप (मखमली लाल कीडे) हुए, उन सबके ढेर पर भरत के हाथी ने पैर रख दिया इससे वे मर कर, भरत के वर्द्धनकुमार आदि पुत्र हुए । वे पुत्र किसी के भी साथ नही बोलते थे । इसलिये भरतने समवसरणमे भगवान् से पूछा उन पुत्रोका पुराना सब वृत्तान्त कहा । उसको सुनकर उन सब वर्द्धनकुमारादि ने तप ग्रहण किया और बहुत थोडे काल मे मोक्ष चले गये ।' यह कथा आचाराराधना की टिप्पणी मे कही गई है । इस प्रकार 'ससार अनुप्रेक्षा' का व्याख्यान हुआ । ३ ।

अब एकत्व-अनुप्रेक्षा को कहते हैं—निश्चयरत्नत्रय लक्षण वाली एकत्व भावना मे परिणत इस जीव के निश्चयनय से स्वाभाविक आनन्द आदि अनन्त गुणो का आधाररूप केवल ज्ञान ही एक स्वाभाविक शरीर है । यहा 'शरीर' शब्द का अर्थ 'स्वरूप' है, न कि सात धातुओ से निर्मित औदारिक शरीर । इसी प्रकार आर्त्त और रौद्र दुर्ध्यानो से विलक्षण परमसामायिक रूप एकत्व भावना मे परिणत एक अपना आत्मा है वही सदा अविनाशी और परमहितकारी व परम बन्धु है, विनश्वर व अहित

मलक्षणैकत्वभावनासहित स्वशुद्धात्मपदार्थ एक एवाविनश्वरहितकारी परमोऽर्थः, न पुवर्णाद्यर्थ । तथैव निर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्ननिर्विकारपरमानन्दैकलक्षणानाकुलत्वस्व-ात्मसुखमेवैकं सुखं न चाकुलत्वोत्पादकेन्द्रियसुखमिति । कस्मादिद देहबन्धुजनसुवर्णा-न्द्रियसुखादिकं जीवस्य निश्चयेन निराकृतमिति चेत् ? यतो मरणकाले जीव एव एक ान्तर गच्छति न च देहादीनि । तथैव रोगव्याप्तिकाले विषयकषायादिदुर्ध्यानरहितः ुद्धात्मैकसहायो भवति । तदपि कथमिति चेत् ? यदि चरमदेहो भवति तर्हि केवलज्ञा-द्व्यक्तिरूपं मोक्षं नयति, अचरमदेहस्य तु ससारस्थिति स्तोका कृत्वा देवेन्द्राद्यभ्युदय- दत्वा च पश्चात् पारम्पर्येण मोक्षं प्रापयतीत्यर्थ । तथा चोक्तम्--"सग्गं तवेण सव्वो, पावए तहि वि झाणजोयेण । जो पावइ सो पावइ, परलोए सासयं सोक्ख ॥ १ ॥" कत्वभावनाफलं ज्ञात्वा निरन्तरं निजशुद्धात्मैकत्वभावना कर्तव्या । इत्येकत्वानुप्रेक्षा ॥ ४ ॥

अथान्यत्वानुप्रेक्षां कथयति । तथा हि---पूर्वोक्तानि यानि देहबन्धुजनसुवर्णाद्यर्थे-ासुखादीनि कर्माधीनत्वे विनश्वराणि तथैव हेयभूतानि च, तानि सर्वाणि टङ्कोत्की-ायकैकस्वभावत्वेन नित्यात्सर्वप्रकारोपादेयभूतान्निर्विकारपरमचैतन्यचिच्चमत्कारस्वभा-

---

पुत्र, मित्र, कलत्र आदि बन्धु नही है । उसी प्रकार परम उपेक्षा सयमरूप एकत्व भावना से सहित ाज शुद्धात्म पदार्थ है, वह ही एक अविनाशी तथा हितकारी परम अर्थ है, सुवर्ण आदि परम-अर्थ है । एव निर्विकल्प-ध्यान से उत्पन्न निर्विकार परम-आनन्द-लक्षण, आकुलतारहित आत्म-सुख क सुख है और आकुलता को उत्पन्न करने वाला इन्द्रियजन्य जो सुख है वह सुख नही है । --शरीर, वन्धुजन तथा सुवर्ण आदि अर्थ और इन्द्रिय सुख आदि को निश्चयनय से जीव के लिये यो कहे है ? समाधान--मरण समय यह जीव अकेला ही दूसरी गति मे गमन करता है, देह आदि ीव के साथ नही जाते । तथा जब जीव रोगो से घिर जाता है तव विषय कपाय आदि रूप न से रहित एक--निजशुद्ध--आत्मा ही इसका सहायक होता है । शका--वह कैसे सहायक होता उत्तर--यदि जीव का वह अतिम शरीर हो, तव तो केवलज्ञान आदि की प्रकटतारूप मोक्ष मे ले है, यदि अतिम शरीर न हो, तो वह ससार की स्थिति को कम करके देवेन्द्रिय आदि सांसारिक को देकर तत्पश्चात् परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति कराता है । यह निष्कर्ष है कहा भी है--'तप करने र्ग सब कोई पाते है, परन्तु ध्यान के योग से जो कोई स्वर्ग पाता है वह अग्रिम भव मे अक्षय सुख ाता है ॥ १ ॥' इस तरह एकत्व भावना के फल को जान कर, सदा निज-शुद्धात्मा मे एकत्व रूप ा करनी चाहिये । इस प्रकार 'एकत्व' अनुप्रेक्षा समाप्त हुई ॥ ४ ॥

ाब अन्यत्व अनुप्रेक्षा कहते है--पूर्वोक्त देह, बंधुजन, सुवर्ण आदि अर्थ और इन्द्रिय सुख आदि कर्मा धीन है, इसी कारण विनाशशील तथा हेय भी है । इस कारण टंकोत्कीर्ण ज्ञायक रूप एक

वान्निजपरमात्मपदार्थान्निश्चयनयेनान्यानि भिन्नानि। तेभ्य पुनरात्माप्यन्यो भिन्न इति। अयमत्र भाव –एकत्वानुप्रेक्षायामेकोऽहमित्यादिविधिरूपेण व्याख्यान, अन्यत्वानुप्रेक्षाया तु देहादयो मत्सकाशदन्ये, मदीया न भवन्तीति निषेधरूपेण। इत्येकत्वान्यत्वानुप्रेक्षाया विधिनिषेधरूप एव विशेषस्तात्पर्य तदेव। इत्यन्यत्वानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ५॥

अत पर अशुचित्वानुप्रेक्षा कथ्यते। तद्यथा––सर्वाशुचिशुक्रशोणितकारणोत्पन्नत्वात्तथैव 'वसासृग्मासमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातव' इत्युक्ताशुचिसप्तधातुमयत्वेन तथा नासिकादिनवरन्ध्रद्वारैरपि स्वरूपेणाशुचित्वात्तथैव मूत्रपुरीषाद्यशुचिमलानामुत्पत्तिस्थानत्वाच्चाशुचिरय देह। न केवलमशुचिकारणत्वेनाशुचि स्वरूपेणाशुच्युत्पादकत्वेन चाशुचि, शुचि सुगन्धमाल्यवस्त्रादीनामशुचित्वोत्पादकत्वाच्चाशुचि। इदानी शुचित्व कथ्यते–सहजशुद्धकेवलज्ञानादिगुणानामाधारभूतत्वात्स्वय निश्चयेन शुचिरूपत्वाच्च परमात्मैव शुचि। 'जीवो बह्मा जीवह्मि चेव चरिया हविज्ज जो जदिणो। तं जाण बह्मचेर विमुक्कपरदेहभत्तीए ॥ १॥' इति गाथाकथितनिर्मलब्रह्मचर्य तत्रैव निजपरमात्मनि स्थितानामेव लभ्यते। तथैव ब्रह्मचारी सदा शुचि' इतिवचनात्तथाविधब्रह्मचारिणामेव शुचित्वं न च कामक्रोधादिरताना जलस्नानादिशौचेऽपि। तथैव च–'जन्मना जायते शूद्र क्रियया द्विज

स्वभाव से नित्य, सब प्रकार उपादेयभूत निर्विकार--परम चैतन्य चित्--चमत्कार स्वभाव रूप जो निज-परमात्म पदार्थ है, निश्चयनय की अपेक्षा उससे वे सब देह आदि भिन्न है। आत्मा भी उनसे भिन्न है। भावार्थ यह है--एकत्व अनुप्रेक्षा मे तो 'मै एक हू' इत्यादि प्रकार से विधि रूप व्याख्यान है और अन्यत्व अनुप्रेक्षा मे 'देह आदिक पदार्थ मुझसे भिन्न है, ये मेरे नही है' इत्यादि निषेध रूप से वर्णन है। इस प्रकार एकत्व और अन्यत्व इन दोनो अनुप्रेक्षाओ मे विधि निषेध रूप का ही अन्तर है, तात्पर्य दोनो का एक ही है। ऐसे 'अन्यत्व' अनुप्रेक्षा समाप्त हुई ॥ ५ ॥

इसके आगे अशुचित्व अनुप्रेक्षा को कहते है--सब प्रकार से अपवित्र वीर्य और रज से उत्पन्न होनेके कारण, वसा, रुधिर, मास, मेद अस्थि (हाड), मज्जा और शुक्र धातु है' इन अपवित्र सात धातु मय होने से, नाक आदि नो छिद्र द्वार होने से, स्वरूप से भी अशुचि होने के कारण तथा मूत्र, विष्ठा आदि अशुचि मलो की उत्पत्ति का स्थान होने से ही यह देह अशचि नही है, किन्तु यह शरीर अपने ससर्ग से पवित्र-सुगन्ध-माला व वस्त्र आदिमे भी अपवित्रता कर देता है, इसलिये भी यह देह अशुचि है

अब पवित्रता को बतलाते है---सहज-शुद्ध केवलज्ञान आदि गुण का आधार होने से और निश्चय मे पवित्र होने से यह परमात्मा ही शुचि है। 'जीव ब्रह्म है, जीव ही मे जो मुनि की चर्या होती है उसको परदेह की सेवा रहित ब्रह्मचर्य जानो। इस गाथा मे कहा हुआ जो निर्मल ब्रह्मचर्य है, वह निज परमात्मा मे स्थित जीवो को ही मिलता है। तथा 'ब्रह्मचारी सदा पवित्र है' इस वचन से पूर्वोक्त प्रकार के ब्रह्मचारियो के ही पवित्रता हे। जो काम, क्रोध आदि मे लीन जीव है, उनके जल--स्नान करने पर भी पवित्रता नही है। क्योकि 'जन्म मे शूद्र होता है, क्रिया से द्विज कहलाता है, श्रुत

उच्यते । श्रुतेन श्रोत्रियो ज्ञेयो ब्रह्मचर्येण ब्राह्मण. ॥ १ ॥' इतिवचनात्त एव निश्चयशुद्धा ब्राह्मणाः । तथा चोक्तं नारायणेन युधिष्ठिरं प्रति विशुद्धात्मनदीस्नानमेव परमशुचित्वकारणं, न च लौकिकगङ्गादितीर्थे स्नानादिकम् । 'आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यावहा शीलतटा दयोर्मि' । तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा ॥१॥' इत्यशुचित्वानुप्रेक्षा गता ॥ ६ ॥

अत ऊर्ध्वमास्रवानुप्रेक्षा कथ्यते । समुद्रे सच्छिद्रपोतवदयं जीव इन्द्रियाद्यास्रवैः ससारसागरे पततीति वार्त्तिकम् । अतीन्द्रियस्वशुद्धात्मसंवित्तिविलक्षणानि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुश्रोत्राणीन्द्रियाणि भण्यन्ते । परमोपशममूर्तिपरमात्मस्वभावस्य क्षोभोत्पादकाः क्रोधमानमायालोभकषाया अभिधीयन्ते । रागादिविकल्पनिवृत्तिरूपाया शुद्धात्मानुभूते. प्रतिकूलानि हिसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहप्रवृत्तिरूपाणि पञ्चाव्रतानि । निष्क्रियनिर्विकारात्मतत्त्वाद्विपरीता मनोवचनकायव्यापाररूपा. परमागमोक्ताः सम्यक्त्वक्रिया मिथ्यात्वक्रियेत्यादिपञ्चविशतिक्रिया उच्यन्ते । इन्द्रियकषायाव्रतक्रियारूपास्रवाणा स्वरूपमेतद्विज्ञेयम् । यथा समुद्रेऽनेकरत्नभाण्डपूर्णस्य सच्छिद्रपोतस्य जलप्रवेशे पातो भवति, न च वेलापत्तन प्राप्नोति । तथा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणामूल्यरत्नभाण्डपूर्णजीवपोतस्य पूर्वोक्तास्रव-

---

शास्त्रसे श्रोत्रिय और ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण जानना चाहिये । १ ।' इस आगमवचनानुसार वे (परमात्मा में लीन) ही वास्तविक शुद्ध ब्राह्मण है । नारायण ने युधिष्ठर से कहा भी है--'विशुद्ध आत्मा रूपी शुद्ध नदी मे स्नान का करना ही परम पवित्रता का कारण है, लौकिक गगा आदि तीर्थो मे स्नान का करना शुचि का कारण नही है । 'सयम रूपी जल से भरी, सत्य रूपी प्रवाह शील रूप तट और दयामय तरङ्गो की धारक जो आत्मा रूप नदी है, उसमे हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ! स्नान करो क्योकि, अन्तरात्मा जल से शुद्ध नही होता । १ ।' इस प्रकार अशुचित्व अनुप्रेक्षा का वर्णन हुआ ।। ६ ।।

अब आगे आस्रवानुप्रेक्षा को कहते है। जैसे छेद वाली नाव समुद्र मे डूबती है, उसी तरह इन्द्रिय आदि छिद्रो द्वारा यह जीव ससार-समुद्र मे गिरता है, यह वार्तिक है। अतीन्द्रिय निज-शुद्ध-आत्मज्ञान से विलक्षण स्पर्शन, रसना, नाक, नेत्र और कान ये पाच इन्द्रिया है। परम उपशम रूप परमात्म स्वभाव को क्षोभित करने वाले क्रोध, मान, माया व लोभ ये चार कषाय कहे जाते है। राग आदि विकल्पो से रहित ऐसे शुद्ध-आत्मानुभव से प्रतिकूल हिसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन पाचो मे प्रवृत्ति रूप पाच अव्रत है। क्रिया रहित और निर्विकार आत्मतत्त्व से विपरीत मन वचन काय के व्यापार रूप शास्त्र मे कही हुई सम्यक्क्रिया मिथ्यात्व क्रिया आदि पच्चीस क्रिया है। इस प्रकार इन्द्रिय, कषाय, अव्रत, क्रिया रूप आस्रवो का स्वरूप जानना चाहिये। जैसे समुद्र में अनेक रत्नों से भरा हुआ छिद्र सहित जहाज जल के प्रवेश मे डूब जाता है, समुद्र के किनारे पत्तन (नगर) को नहीं

द्वारै कर्मजलप्रवेशे सति ससारसमुद्रे पातो भवति, न च केवलज्ञानाव्याबाधसुखाद्यनन्त-गुणरत्नपूर्णमुक्तिवेलापत्तन प्राप्नोतीति । एवमास्रवगतदोषानुचिन्तनमास्रवानुप्रेक्षा ज्ञातव्येति ॥ ७ ॥

अथ सवरानुप्रेक्षा कथ्यते–यथा तदेव जलपात्र छिद्रस्य झम्पने सति जलप्रवेशाभावे निर्विघ्नेन वेलापत्तन प्राप्नोति, तथा जीवजलपात्र निजशुद्धात्मसंवित्तिबलेन इन्द्रियाद्यास्रवच्छिद्राणा झम्पने सति कर्मजलप्रवेशाभावे निर्विघ्नेन केवलज्ञानाद्यनन्तगुणरत्नपूर्णमुक्तिवेलापत्तन प्राप्नोतीति । एव सवरगतगुणानुचिन्तन सवरानुप्रेक्षा ज्ञातव्या ॥८॥

अथ निर्जरानुप्रेक्षा प्रतिपादयति । यथा कोप्यजीर्णदोषेण मलसञ्चये जाते सत्याहार त्यक्त्वा किमपि हरीतक्यादिक मलपाचकमग्निदीपक चौषधं गृह्णाति । तेन च मलपाकेन मलाना पतने गलने निर्जरणे सति सुखी भवति । तथाय भव्यजीवोऽप्यजीर्णजनकाहारस्थानीयमिथ्यात्वरागाद्यज्ञानभावेन कर्ममलसञ्चये सति मिथ्यात्वरागादिकं त्यक्त्वा परमौषधस्थानीय जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखादिसमभावनाप्रतिपादक कर्ममलपाचक शुद्धध्यानाग्निदीपक च जिनवचनौषध सेवते । तेन च कर्ममलाना गलने निर्जरणे सति

पहुच पाता । उसी प्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप अमूल्य रत्नो से पूर्ण जीव रुपी जहाज, इन्द्रिय आदि आस्रवो द्वारा कर्म रूपी जल का प्रवेश हो जाने पर ससार रूपी समुद्र मे डूब जाता है । केवलज्ञान अव्याबाध सुख आदि अनत गुणमय रत्नो से पूर्ण व मुक्ति स्वरुप वेलापत्तन (ससार-समुद्र के किनारे का नगर) को यह जीव नही पहुच पाता इत्यादि प्रकार से आस्रव दोषो का विचार करना आस्रवानुप्रेक्षा है ॥ ७ ॥

अब सवर अनुप्रेक्षा कहते है । वही समुद्र का जहाज अपने छेदो के बन्द हो जाने से जल के न घुसने पर निर्विघ्न वेलापत्तन को प्राप्त हो जाता हैं, उसी प्रकार जीवरूपी जहाज अपने शुद्ध आत्मज्ञान के बल से इन्द्रिय आदि आस्रव रुप छिद्रो के मुद जाने पर कर्म रूप जल न घुस सकने से, केवलज्ञान आदि अनन्तगुण रत्नो से पूर्ण मुक्ति रुप वेलापत्तन को निर्विघ्न प्राप्त हो जाता है । ऐसे सवर के गुणो के चितवन रुप सवर अनुप्रेक्षा जाननी चाहिए । ८ ।

अब निर्जरानुप्रेक्षा का प्रतिपादन करते हे—जैसे किसी मनुष्य के अजीर्ण होने से पेट मे मल का जमाव हो जाने पर, वह मनुष्य आहार को छोडकर मल को पचाने वाले तथा जठराग्नि को तीव्र करने वाले हरड आदि औषध को ग्रहण करता है । जब उस औषध से मल पक जाता है, गल जाता है अथवा पेट से बाहर निकल जाता हे तब वह मनुष्य सुखी होता है । उसी प्रकार यह भव्य जीव भी अजीर्ण को उत्पन्न करने वाले आहार के स्थानभूत मिथ्यात्व, रागादि अज्ञान भावो से कर्म रूपी मल का सचय होने पर मिथ्यात्व, राग आदि छोडकर, जीवन–मरण मे व लाभ–अलाभ मे और सुख-दुःख आदि मे समभाव को उत्पन्न करने वाला, कर्ममल को पकाने वाला तथा शुद्ध-ध्यान-अग्नि को प्रज्वलित करने वाला, जो परम औषध के स्थानभूत जिनवचन रुप औषध है, उसका सेवन करता है, उससे कर्म-

सुखी भवति । किञ्चयथा कोऽपि धीमानजीर्णकाले यद्दुखं जातं तदजीर्णे गतेऽपि न विस्मरति ततश्चाजीर्णजनकाहार परिहरति तेन च सर्वदैव सुखी भवति । तथा विवेकिजनोऽपि 'आर्ता नरा धर्मपरा भवन्ति' इति वचनाद्दुखोत्पत्तिकाले ये धर्मपरिणामा जायन्ते तान् दुःखे गतेऽपि न विस्मरति । ततश्च निजपरमात्मानुभूतिबलेन निर्जरार्थं दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षादिविभावपरिणामपरित्यागरूपैः संवेगवैराग्यपरिणामैर्वर्त्तत इति । संवेगवैराग्यलक्षणं कथ्यते—'धम्मे य धम्मफलह्मि दसणे य हरिसो य हुति संवेगो । संसारदेहभोगेसु विरत्तभावो य वैरग्गं ॥ १ ॥ इति निर्जरानुप्रेक्षा गता ॥ ९ ॥

अथ लोकानुप्रेक्षां प्रतिपादयति । तद्यथा—अनंतानन्ताकाशबहुमध्यप्रदेशे घनोदधिघनवाततनुवाताभिधानवायुत्रयवेष्टितानादिनिधनाकृत्रिमनिश्चलासंख्यातप्रदेशो लोकोऽस्ति । तस्याकारः कथ्यते—अधोमुखार्द्धमुरजस्योपरि पूर्णे मुरजे स्थापिते यादृशाकारो भवति तादृशाकारः, परं किन्तु मुरजो वृत्तो लोकस्तु चतुष्कोण इति विशेषः । अथवा प्रसारितपादस्य कटितटन्यस्तहस्तस्य चोर्ध्वस्थितपुरुषस्य यादृशाकारो भवति तादृशः । इदानीं तस्यैवोत्सेधायामविस्ताराः कथ्यन्ते—चतुर्दशरज्जुप्रमाणोत्सेधस्तथैव दक्षिणोत्तरेण सर्वत्र सप्तरज्जुप्रमाणायामो भवति । पूर्वपश्चिमेन पुनरधोविभागे सप्तरज्जुविस्तारः । ततश्चाधोभागात्

रूपी मलो के गलन तथा निर्जरण हो जाने पर सुखी होता है। विशेष—जैसे कोई बुद्धिमान् अजीर्ण के समय जो कष्ट हुआ उसको अजीर्ण चले जाने पर भी नही भूलता और अजीर्ण पैदा करने वाले आहार को छोड देता है, जिससे सदा सुखी रहता है, उसी तरह ज्ञानी मनुष्य भी, 'दुःखी मनुष्य धर्म मे तत्पर होते है' इस वाक्यानुसार, दुःख के समय जो धर्म रूप परिणाम होते है उनको दुःख नष्ट हो जाने पर भी नही भूलता। तत्पश्चात् निज परमात्म अनुभव के बल मे निर्जरा के लिये देखे, सुने तथा अनुभव किए हुए भोगवाछादि रूप विभाव परिणाम के त्याग रूप संवेग तथा वैराग्य रूप परिणामो के साथ रहता है। संवेग और वैराग्य का लक्षण कहते है—धर्म मे, धर्म के फल और दर्शन मे जो हर्ष होता है सो तो संवेग है, और संसार, देह तथा भोगो मे जो विरक्त भाव है सो वैराग्य है। १।' ऐसे निर्जरानुप्रेक्षा समाप्त हुई ॥ ९ ॥

अब लोकानुप्रेक्षा का प्रतिपादन करते है—वह इस प्रकार है—अनंतानंत आकाश के बिल्कुल मध्य के प्रदेशो मे, घनोदधि घनवात नामक तीन पवनो से वेढा हुआ, अनादि अनंत–अकृत्रिम–निश्चल असंख्यात प्रदेशी लोक है। उसका आकार बतलाते है—नीचे मुख किये हुए आधे मृदंग के ऊपर पूरा मृदंग रखने पर जैसा आकार होता है वैसा आकार लोक का है, परन्तु मृदंग गोल है और लोक चौकोर है, यह अन्तर है। अथवा पैर फैलाये, कमर पर हाथ रक्खे, खड़े हुए मनुष्य का जैसे आकार होता है, वैसा लोक का आकार है। अब उसी लोक की ऊंचाई—लम्बाई—विस्तार का निरूपण करते है—चौदह रज्जु प्रमाण ऊंचा तथा दक्षिण उत्तर मे सब जगह सात राजू मोटा और पूर्व पश्चिम मे नीचे के भाग

क्रमहानिरूपेण हीयते यावन्मध्यलोक एकरज्जुप्रमाणविस्तारो भवति । ततो मध्यलोकादूर्ध्वं क्रमवृद्ध्या वर्द्धते यावद् ब्रह्मलोकान्ते रज्जुपञ्चकविस्तारो भवति । ततश्चोर्ध्वं पुनरपि हीयते यावल्लोकान्ते रज्जुप्रमाणविस्तारो भवति । तस्यैव लोकस्य मध्ये पुनरुद्खलस्य मध्याधोभागे छिद्रे कृते सति निक्षिप्तवंशनालिकेव चतुष्कोणा त्रसनाडी भवति । सा चैकरज्जुविष्कम्भा चतुर्दशरज्जूत्सेधा विज्ञेया । तस्यास्त्वधोभागे सप्तरज्जवोऽधोलोकसम्बन्धिन्य । ऊर्ध्वभागे मध्यलोकोत्सेधसंबधिलक्षयोजनप्रमाणमेरूत्सेधः सप्तरज्जव ऊर्ध्वलोकसम्बन्धिन्य ।

अत परमधोलोक कथ्यते । अधोभागे मेरोराधारभूत रत्नप्रभा या प्रथम पृथिवी । तस्या अधोऽध प्रत्येकमेकैकरज्जुप्रमाणमाकाश गत्वा यथाक्रमेण शर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातम सज्ञा षड्भूमयो भवन्ति । तस्मादधोभागे रज्जुप्रमाण क्षेत्र भूमिरहित निगोदादिपञ्चस्थावरभृत च तिष्ठति । रत्नप्रभादिपृथिवीना प्रत्येक घनोदधिघनवाततनुवातत्रयमाधारभूत भवतीति विज्ञेयम् । कस्या पृथिव्या कति नरकबिलानि सन्तीति प्रश्ने यथाक्रमेण कथयति—तासु त्रिशत्पञ्चविशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ८४००००० । अथ रत्नप्रभादिपृथिवीना क्रमेण पिण्डस्य प्रमाण कथयति ।

मे सात राजू विस्तार है, फिर उस अधोभाग से, क्रम से घटता घटता वह मध्यलोक (बीच मे) एक रज्जु रह जाता है फिर मध्यलोक से ऊपर क्रम से बढता है सो ब्रह्मलोक नामक पंचम स्वर्ग के अन्त मे पाच रज्जु का विस्तार है, उसके ऊपर फिर घटता हुआ लोक के अन्त मे जाकर एक रज्जु प्रमाण विस्तारवाला रह जाता है। इसी लोक के मध्य मे, ऊखल के मध्य भाग से नीचे की ओर छिद्र करके एक बांस की नली रक्खी जावे उसका जैसा आकार होता है उसके समान, एक चौकोर त्रसनाडी है, वह एक रज्जु लम्बी और चौदह रज्जु ऊची जाननी चाहिये। उस त्रस नाडी के नीचे के भाग के जो सात रज्जु हैं वे अधोलोक सम्बन्धी है। ऊर्ध्व भाग मे, मध्य लोक की ऊचाई सम्बन्धी लक्ष-योजन-प्रमाण सुमेरु की ऊचाई सहित सात रज्जु ऊर्ध्व लोक सम्बन्धी है।

इसके आगे अधोलोक को कहते है—अधोभाग मे सुमेरु की आधारभूत रत्नप्रभा नामक पहली पृथिवी है। उस रत्नप्रभा पृथिवी के नीचे-नीचे एक-एक रज्जु प्रमाण आकाश जाकर क्रमश: शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महातम प्रभा नामक भूमि है। उनके नीचे भूमिरहित एक रज्जुप्रमाण जो क्षेत्र है वह निगोद आदि पंच स्थावरो से भरा हुआ है। घनोदधि, घनवात और तनुवात नामक जो तीन वातवलय हैं वे रत्नप्रभा आदि प्रत्येक पृथिवी के आधारभूत है (रत्नप्रभा आदि पृथिवी इन तीनो वातवलयो के आधार से है) यह जानना चाहिये। किस पृथिवी मे कितने (कुए सरीखे) नरक-बिले हैं, उनको यथाक्रम से कहते है—पहली भूमि मे तीसलाख, दूसरी मे पच्चीस लाख, तीसरी मे पन्द्रह लाख, चौथी मे दश लाख, पाचवी मे तीन लाख, छठी मे पाच कम एक लाख तथा सातवी पृथिवी मे पाच, इस प्रकार सब मिलकर चौरासी लाख ८४००००० नरक-बिले हैं।

लानि कोऽर्थः ? प्रस्तारा इन्द्रका अंतर्भूमयः इति । तत्र रत्नप्रभायां सीमंतसंज्ञे प्रथमपटलविस्तारे नृलोकवत् यत्संख्येययोजनविस्तारवत् मध्यबिलं तस्येन्द्रकसंज्ञा । तस्यैव चतुर्दिग्विभागे प्रतिदिश पंक्तिरूपेणासंख्येययोजनविस्ताराण्येकोनपञ्चाशद्विलानि । तथैव विदिक्चतुष्टये प्रतिदिश पंक्तिरूपेण यान्यष्टचत्वारिंशद्विलानि तान्यप्यसंख्यातयोजनविस्ताराणि । तेषामपि श्रेणीबद्धसंज्ञा । दिग्विदिगष्टकान्तरेषु पंक्तिरहितत्वेन पुष्पप्रकरवत्कानिचित्संख्येययोजनविस्ताराणि कानिचिदसंख्येययोजनविस्ताराणि यानि तिष्ठन्ति तेषां प्रकीर्णकसंज्ञा । इतीन्द्रकश्रेणीबद्धप्रकीर्णकरूपेण त्रिधा नरका भवन्ति । इत्यनेन क्रमेण प्रथमपटलव्याख्यानं विज्ञेयम् । तथैव पूर्वोक्तैकोनपञ्चाशत्पटलेष्वयमेव व्याख्यानक्रमः किन्त्वष्टकश्रेणिष्वेकैकपटलं प्रत्येकैकं हीयते यावत् सप्तमपृथिव्या चतुर्दिग्भागेष्वेकं विलं तिष्ठति ।

रत्नप्रभादिनारकदेहोत्सेधः कथ्यते । प्रथमपटले हस्तत्रयं ततः क्रमवृद्धिवशात्त्रयोदशपटले सप्तचापानि हस्तत्रयमङ्गुलषट्कं चेति । ततो द्वितीयपृथिव्यादिषु चरमेन्द्रकेषु द्विगुणद्विगुणे क्रियमाणे सप्तमपृथिव्यां चापशतपञ्चकं भवति । उपरितने नरके य उत्कृष्टोत्सेधः सोऽधस्तने नरके विशेषाधिको जघन्यो भवति, तथैव पटलेषु च ज्ञातव्यः । आयुःप्रमाणं

मे पाच, छठी मे तीन और सातवी मे एक, ऐसे सब ४९ पटल है। 'पटल' का क्या अर्थ है ? पटल का अर्थ प्रस्तार, इन्द्रक अथवा अन्तर भूमि है रत्नप्रभा प्रथम पृथिवी के सीमन्त नामक पहले पटल मे ढाई द्वीप के समान सख्यात (पैंतालीस लाख) योजन विस्तार वाला जो मध्य–विल है, उसकी इन्द्रक सज्ञा है। उस इन्द्रक की चारो दिशाओ मे से प्रत्येक दिशा मे असख्यात योजन विस्तार वाले ४९ विल हैं। और इसी प्रकार चारो विदिशाओं मे से प्रत्येक विदिशा मे पंक्ति रूप जो ४८-४८ विल है, वे भी असख्यात योजन प्रमाण विस्तार वाले है। (इन्द्रक-विल की दिशा और विदिशाओ मे जो पंक्तिरूप विल है) उनकी 'श्रेणिबद्ध' संज्ञा है। चारो दिशा और विदिशाओं के बीच मे, पंक्ति के विना, विखरे हुए पुष्पो के समान, असख्यात योजन तथा असख्यात योजन विस्तार वाले जो विल है, उनकी 'प्रकीर्णक, सज्ञा है। ऐसे इन्द्रक, श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक रूप से तीन प्रकार के नरक है। इस प्रकार प्रथम पटल का व्याख्यान जानना चाहिये। इसी प्रकार पूर्वोक्त जो सातो पृथिवियो मे उनचास पटल है उनमे भी विलो का ऐसा ही क्रम है, किन्तु प्रत्येक पटल मे, आठो दिशाओ के श्रेणीवद्ध विलो मे से एक एक विल घटता गया है, अत सातवी पृथ्वी मे चारो दिशाओ मे एक-एक विल ही रह जाता है।

रत्नप्रभादि पृथिवियोके नारकियोके शरीर की ऊचाई को कहते है-प्रथम पटलमे तीन हाथ की ऊचाई है और यहा से क्रम क्रम से वढते हुए तेरहवे पटल मे सात धनुप, तीन हाथ, ६ अगुल की ऊंचाई है। तदनतर दूसरी आदि पृथिवियो के अन्त के इंद्रक विलो मे दूनी-दूनी वृद्धि करने से सातवी पृथिवी मे पांचसौ धनुष की ऊचाई होती है। ऊपर के नरक मे जो उत्कृष्ट ऊंचाई है उससे कुछ अधिक नीचे के

पिण्डस्य कोऽर्थः ? मन्दत्वस्य बाहुल्यस्येति । अशीतिसहस्राधिकैकलक्षं तथैव द्वात्रिंशदष्टाविंशतिचतुर्विंशतिविंशतिषोडशाष्टसहस्रप्रमितानि योजनानि ज्ञातव्यानि । तिर्यग्विस्तारस्तु चतुर्दिग्विभागे यद्यपि त्रसनाड्यपेक्षयैकरज्जुप्रमाणस्तथापि त्रसरहितबहिर्भागे लोकान्तप्रमाणमिति । तथाचोक्त 'भुवामन्ते स्पृशन्तीना लोकान्त सर्वदिक्षु च' । अत्र विस्तारेण तिर्यग्विस्तारपर्यन्तमन्दत्वेन मदरावगाहयोजनसहस्रबाहुल्या मध्यलोके या चित्रा पृथिवी तिष्ठति तस्या अधोभागे षोडशसहस्रबाहुल्यः खरभागस्तिष्ठति । तस्मादप्यधश्चतुरशीतियोजनसहस्रबाहुल्यः पङ्कभाग तिष्ठति । ततोऽप्यधोभागे अशीतिसहस्रबाहुल्यो अब्बहुलभागस्तिष्ठतीत्येवं रत्नप्रभा पृथिवी त्रिभेदा ज्ञातव्या । तत्र खरभागेऽसुरकुल विहाय नवप्रकारभवनवासिदेवाना तथैव राक्षसकुलं विहाय सप्तप्रकारव्यन्तरदेवाना आवासा ज्ञातव्या इति । पङ्कभागे पुनरसुराणा राक्षसाना चेति । अब्बहुलभागे नारकास्तिष्ठन्ति ।

तत्र बहुभूमिकाप्रासादवदधोऽध सर्वपृथिवीषु स्वकीयस्वकीयबाहुल्यात् सकाशादध उपरि चैकैकयोजनसहस्रं विहाय मध्यभागे भूमिक्रमेण पटलानि भवन्ति त्रयोदशैकादशनवसप्तपञ्चत्र्येकसंख्यानि, तान्येव सर्वसमुदायेन पुनरेकोनपञ्चाशत्प्रमितानि पटलानि । पट-

---

अब रत्नप्रभा आदि भूमियो का पिंड प्रमाण क्रम से कहते है । यहा पिंड शब्द का अर्थ गहराई या मोटाई है । प्रथम पृथिवी का एक लाख अस्सी हजार, दूसरी का बत्तीस हजार तीसरी का अट्ठाईस हजार, चौथी का चौबीस हजार, पाचवी का बीस हजार, छठी का सोलह हजार और सातवी का आठ हजार योजन पिंड जानना चाहिये । उन पृथिवियो का तिर्यग् विस्तार चारो दिशाओ मे यद्यपि त्रस नाडी की अपेक्षा से एक रज्जु प्रमाण है तथापि त्रसो से रहित जो त्रस नाडी के बाहर का भाग है वह लोक के अन्त तक है । सोही कहा है–"अन्त को स्पर्श करती हुई भूमियो का प्रमाण सब दिशाओ मे लोकान्त प्रमाण है ।" अब यहा विस्तार की अपेक्षा तिर्यग् लोक पर्यन्त विस्तार वाली, गहराई (मोटाई) की अपेक्षा मेरु की अवगाह समान एक हजार योजन मोटी चित्रा पृथिवी मध्य लोक मे है । उस पृथिवी के नीचे सोलह हजार योजन मोटा खर भाग है । उस खर भाग के नीचे चौरासी हजार योजन मोटा पङ्क भाग है । उससे भी नीचे के भाग मे अस्सी हजार योजन मोटा अब्बुल भाग है । इस प्रकार रत्नप्रभा पृथिवी खर भाग, पङ्क भाग और अब्बहुल भाग भेदो से तीन प्रकार की जाननी चाहिए । उनमे ही खर भाग मे असुरकुमार देवो के सिवाय नौ प्रकार के भवनवासी देवो के और राक्षसो के सिवाय सात प्रकार के व्यन्तर देवो के निवासस्थान है । पङ्क भाग मे असुर तथा राक्षसो का निवास है । अब्बहुल भाग मे नरक है ।

बहुत से खनो वाले महल के समान नीचे–नीचे सब पृथिवियो मे अपनी–अपनी मोटाई मे, नीचे और ऊपर एक-एक हजार योजन छोड कर, जो बीच का भाग है, उसमे पटल होते है । भूमि के मे वे पटल पहली नरक पृथ्वी मे तेरह, दूसरी मे ग्यारह, तीसरी मे नौ, चौथी मे सात, पाचवी

कथ्यते । प्रथमपृथिव्यां प्रथमे पटले जघन्येन दशवर्षसहस्राणि तत आगमोक्तक्रमवृद्धिवशादन्तपटले सर्वोत्कर्षेणैकसागरोपमम् । तत परं द्वितीयपृथिव्यादिषु क्रमेण त्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपममुत्कृष्टजीवितम् । यच्च प्रथमपृथिव्यामुत्कृष्टं तद्द्वितीयाया समयाधिकं जघन्यं, तथैव पटलेषु च । एव सप्तमपृथिवीपर्यन्त ज्ञातव्यम् । स्वशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणनिश्चयरत्नत्रयविलक्षणैस्तीव्रमिथ्यात्वदर्शनज्ञानचारित्रै परिणतानामसंज्ञिपञ्चेन्द्रियसरटपक्षिसर्पसिंहस्त्रीणा क्रमेण रत्नप्रभादिषु षट्पृथिवीषु गमनशक्तिरस्ति सप्तम्यां तु कर्मभूमिजमनुष्याणां मत्स्यानामेव । किञ्च—यदि कोऽपि निरन्तर नरके गच्छति तदा पृथिवीक्रमेणाष्टसप्तषट्पञ्चचतुस्त्रिद्विसंख्यवारानेव । किन्तु सप्तमनरकादागता. पुनरप्येकवारं तत्रान्यत्र वा नरके गच्छन्तीति नियम. । नरकादागता जीवा बलदेववासुदेवप्रतिवासुदेवचक्रवर्तिसंज्ञाः शलाकापुरुषाः न भवन्ति । चतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमनरकेभ्यः समागताः क्रमेण तीर्थंकरचरमदेहभावसयतश्रावका न भवन्ति । तर्हि किं भवन्ति ? 'णिरयादो णिस्सरिदो णरतिरिए कम्मसण्णिपज्जत्ते । गब्भभवे उप्पज्जदि सत्तमणिरयादु तिरिएव ॥ १ ॥'

नरक मे जघन्य ऊंचाई है। इसी प्रकार पटलो मे भी जानना चाहिये। नारकी जीवों की आयु का प्रमाण कहते है। प्रथम पृथिवी के प्रथम पटल मे जघन्य दस हजार वर्ष की आयु है, तत्पश्चात् आगम मे कही हुई क्रमनुसार वृद्धि से अन्त के तेरहवे पटल मे एक सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है। इसके अनन्तर क्रम से दूसरी पृथिवी मे तीन सागर, तीसरी मे सात सागर, चौथी मे दस सागर, पाचवी मे सत्रह सागर छठी मे बाईस सागर और सातवी मे तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है। जो पहली पृथिवी मे उत्कृष्ट आयु है, वह समय अधिक दूसरी मे जघन्य आयु है। इसी तरह जो पहले पटल मे उत्कृष्ट आयु है सो दूसरे मे समयाधिक जघन्य है। ऐसे ही सातवी पृथिवी तक जानना चाहिये। निजशुद्ध-आत्मानुभव रूप निश्चय रत्नत्रय से विलक्षण जो तीव्र मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र है, उनसे परिणत असज्ञी पंचेन्द्रिय, सरट (गोह आदि), पक्षी, सर्प, सिह और स्त्री की क्रम से रत्नप्रभादि छः पृथिवियों तक जाने की शक्ति है (असैनी पंचेन्द्रिय प्रथम भूमि तक, सरट (गोह) दूसरी तक, पक्षी तीसरी तक, सर्प चौथी तक, सिह पाचवी तक तथा स्त्री का जीव छठी भूमि तक जा सकता है), और सातवी पृथिवी में कर्मभूमि के उत्पन्न हुए मनुष्य और मगरमच्छ ही जा सकते है। विशेष—यदि कोई जीव निरन्तर नरक मे जाता है तो प्रथम पृथिवी मे आठ वार, दूसरी मे सात वार, तीसरी मे छ. वार, चौथी मे पाच वार, पाचवी मे चार वार, छठी मे तीन वार और सातवी मे दो बार ही जा सकता है। किंतु सातवे नरक से आये हुए जीव फिर भी एक वार उसी या अन्य किसी नरक मे जाते है, ऐसा नियम है। नरक से आये हुए जीव बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण और चक्रवर्ती नामक शलाका पुरुष नही होते। चौथे नरक के आये हुये तीर्थङ्कर, पाचवे से आये हुये चरम शरीरी, छठे से आये हुये भावलिंगी मुनि

इदानी नारकदु खानि कथ्यन्ते । तद्यथा—विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्म-तत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानभावनोत्पन्ननिर्विकारपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादरहि-तै पञ्चेन्द्रियविषयसुखास्वादलम्पटैर्मिथ्यादृष्टिजीवैर्यदुपार्जित नरकायुर्नरकगत्यादिपापकर्म तदुदयेन नरके समुत्पद्य पृथिवीचतुष्टये तीव्रोष्णदु ख, पञ्चम्या पुनरुपरितन–त्रिभागे तीव्रो-ष्णदु खमधोभागे तीव्र–शीत–दु ख, षष्ठीसप्तम्योरतिशीतोत्पन्नदु खमनुभवन्ति । तथैव छेद-नभेदनक्रकचविदारणयंत्रपीडनशूलारोहणादितीव्रदु ख सहंते तथाचोक्त—"अच्छिणिमीलण-मेत्तं णत्थि सुह दु खमेव अणुबद्धं । णिरये णेरयियाण अहोणिस पच्चमाणाण ॥ १ ॥" प्रथमपृथिवीत्रयपर्यतमसुरोदीरित चेति । एवं ज्ञात्वा,, नारकदु खविनाशार्थ भेदाभेदरत्न त्रयभावना कर्तव्या । सक्षेपेणाधोलोकव्याख्यान ज्ञातव्यम् ।

अत पर तिर्यक्लोक कथ्यते—जम्बूद्वीपादिशुभनामानो द्वीपा लवणो दादिशुभ-नामान समुद्राश्च द्विगुणद्विगुणविस्तारेण पूर्व पूर्व परिवेष्ट्य वृत्ताकारा. स्वयम्भूरमणप-र्यन्तास्तिर्यग्विस्तारेण विस्तीर्णास्तिष्ठन्ति यतस्तेन कारणेन तिर्यग् लोको भण्यते, मध्य-

---

और सातवे से आये हुए श्रावक नही होते । तो क्या होते है ? "नरक से आये हुए जीव, कर्मभूमि मे सज्ञी, पर्याप्त तथा गर्भज मनुष्य या तिर्यच होते है । सातवे नरक से आये हुये तिर्यंच ही होते है ॥ १ ॥

अब नारकियो के दु खो का कथन करते है । यथा—विशुद्धज्ञान, दर्शनस्वभाव निज शुद्ध परमात्म तत्त्व के सम्यक्श्रद्धान–ज्ञान-आचरण की भावना से समुत्पन्न निर्विकार-परम-आनन्दमय सुखरूपी अमृत के आस्वाद से रहित और पाच इन्द्रियो के विषय सुखास्वाद मे लम्पट, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवो ने जो नरक आयु तथा नरक गति आदि पापकर्म उपार्जन किया है, उसके उदय से वे नरक मे उत्पन्न होते है । वहा पहले की चार पृथिवियो मे तीव्र गर्मी का दु ख और पाचवी पृथिवी के ऊपर तीन चौथाई भाग मे तीव्र उष्णता का दु ख और नीचे के चौथाई भाग मे तीव्र शीत का दु ख तथा छठे और सातवी पृथिवी मे अत्यन्त शीत के दु ख का अनुभव करते है । इसी प्रकार छेदने, भेदने, करोंत से चीरने, घानी मे पेरने और शूली पर चढाने आदिरूप तीव्र दु ख सहन करते है । सो ही कहा है कि 'नरक मे रात—दिन दुख–रूप अग्नि मे पकते हुए नारकी जीवो को नेत्रो के टिमकार मात्र भी सुख नही है, किन्तु सदा दु ख ही लगा रहता है । १ ।' पहली तीन पृथिवियो तक, असुरकुमार देवो द्वारा उत्पन्न किये हुए दु.ख को भी सहते हैं । ऐसा जान कर, नरक—सम्बन्धी दु ख के नाश के लिये भेद तथा अभेद रूप रत्नत्रय की भावना करनी चाहिये । इस प्रकार सक्षेप से अधोलोक का व्याख्यान जानना चाहिये ।

इसके अनन्तर तिर्यग् लोक का वर्णन करते है । अपने दूने—दूने विस्तार से पूर्व-पूर्व द्वीप व समुद्र और समुद्र को द्वीप इस क्रम से वेढ करके, गोल आकार वाले जबू द्वीप आदि शुभ नामो वाले और लवणोदधि आदि शुभ नामो वाले समुद्र; स्वयभूरमण समुद्र तक तिर्यग् विस्तार से फैले हुए

लोकाश्चं। तद्यथा—तेषु सार्द्धतृतीयोद्धारसागरोपमलोमच्छेदप्रमितेष्वसंख्यातद्वीपसमुद्रेषु मध्ये जम्बूद्वीपस्तिष्ठति। स च जम्बूवृक्षोपलक्षितो मध्यभागस्थितमेरुपर्वतसहितो वृत्ताकारलक्षयोजनप्रमाणस्तद्द्विगुणविष्कम्भेण योजनलक्षद्वयप्रमाणेन वृत्ताकारेण बहिर्भागे लवणसमुद्रेण वेष्टित। सोऽपि लवणसमुद्रस्तद्द्विगुणविस्तारेण योजनलक्षचतुष्टयप्रमाणेन वृत्ताकारेण बहिर्भागे धातकीखण्डद्वीपेन वेष्टितः। सोऽपि धातकीखण्डद्वीपस्तद्द्विगुणविस्तारेण योजनाष्टलक्षप्रमाणेन वृत्ताकारेण बहिर्भागे कालोदकसमुद्रेण वेष्टित.। सोऽपि कालोदकसमुद्रस्तद्द्विगुणविस्तारेण षोडशयोजनलक्षप्रमाणेन वृत्ताकारेण बहिर्भागे पुष्करद्वीपेन वेष्टित। इत्यादिद्विगुणद्विगुणविष्कम्भ स्वयम्भूरमणद्वीपस्वयम्भूरमणसमुद्रपर्यन्तो ज्ञातव्य.। यथा जम्बूद्वीपलवणसमुद्रविष्कम्भद्वयसमुदयाद्योजनलक्षत्रयप्रमितात्सकाशाद्धातकीखण्ड एकलक्षेणाधिकस्तथैवासख्येयद्वीपसमुद्रविष्कम्भेभ्य स्वयम्भूरमणसमुद्रविष्कम्भ एकलक्षेणाधिको ज्ञातव्य। एवमुक्तलक्षणेष्वसंख्येयद्वीपसमुद्रेषु व्यन्तरदेवानां पर्वताद्युपरिगता आवासा', अधोभूभागगतानि भवनानि तथैव द्वीपसमुद्रादिगतानि पुराणि च, परमागमोक्तभिन्नलक्षणानि। तथैव खरभागपङ्कभागस्थितप्रतरासंख्येयभागप्रमाणासंख्येयव्यन्तरदेवावासा', तथैव

है। इस कारण इसको तिर्यग् लोक या मध्य लोक भी कहते है। वह इस प्रकार है—साढे तीन उद्धार सागर प्रमाण लोमो (बालो) के टुकडो के बराबर जो असख्यात द्वीप समुद्र है, उनके बीच मे जंबू द्वीप है वह जबू (जामन) के वृक्ष से चिन्हित तथा मध्य भाग मे स्थित सुमेरु पर्वत से सहित है, गोलाकार एक लाख योजन लम्बा चौडा है। बाह्य भाग अपने से दूने विस्तार वाले दो लाख योजन प्रमाण गोलाकार लवण समुद्र से वेष्टित बेढा हुआ) है। वह लवण—समुद्र भी बाह्य भाग मे अपने से दूने विस्तार वाले चार लाख योजन प्रमाण गोलाकार धातकी खण्ड द्वीप से वेष्टित है। वह धातकी खण्ड द्वीप भी बाह्य भाग मे अपने से दूने विस्तार वाले आठ लाख योजन प्रमाण गोलाकार कालोदक समुद्र से वेष्टित है। वह कालोदक समुद्र भी बाह्य भाग मे अपने से दूने बिस्तार वाले सोलह योजन प्रमाण गोलाकार पुष्कर द्वीप से वेष्टित है। इस प्रकार यह दूना - विस्तार स्वयभूरमण द्वीप तथा स्वयंभूरमण समुद्र तक जानना चाहिये। जैसे जबू द्वीप एक लाख योजन और लवण समुद्र दो लाख योजन चौड़ा है, इन दोनो का समुदाय तीन लाख योजन है, उससे एक लाख योजन अधिक अर्थात् चार लाख योजन धातकी खण्ड है। इसी प्रकार असख्यात द्वीप समुद्रो का जो विष्कभ है उससे एक लाख योजन अधिक स्वयभूरमण समुद्र का विष्कम्भ जानना चाहिये। ऐसे पूर्वोक्त लक्षण के धारक असख्यात द्वीप समुद्रों मे पर्वत आदि के ऊपर व्यन्तर देवो के आवास, नीचे की पृथिवी के भाग मे भवन, और द्वीप तथा समुद्र आदि मे पुर हैं। इन आवास, भवन तथा पुरो के परमागमानुसार ये भिन्न २ लक्षण है। इसी प्रकार रत्नप्रभा भूमि के खर भाग और पङ्क- भाग मे स्थित प्रतर के असंख्यातवे भाग प्रमाण व्यतर देवो के आवास

द्वासप्ततिलक्षाधिककोटिसप्तप्रमितभवनवासिदेवसंबन्धिभवनानि अकृत्रिमजिनचैत्यालयसहितानि भवन्ति । एवमतिसक्षेपेण तिर्यग्लोको व्याख्यात ।

अथ तिर्यग्लोकमध्यस्थितो मनुष्यलोको व्याख्यायते--तन्मध्यस्थित-जम्बूद्वीपे सप्तक्षेत्राणि भण्यन्ते । दक्षिणदिग्विभागादारभ्य भरतहैमवतहरिविदेहरम्यक हैरण्यवतैरावतसंज्ञानि सप्तक्षेत्राणि भवन्ति । क्षेत्राणि कोऽर्थ. ? वर्षा वशादेशा जनपदा इत्यर्थः । तेषा क्षेत्राणा विभागकारका. षट् कुलपर्वता कथ्यन्ते–दक्षिणदिग्भागमादीकृत्य हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिसज्ञा भरतादिसप्तक्षेत्राणामन्तरेषु पूर्वापरायता षट् कुलपर्वता भवन्ति । पर्वता इति कोऽर्थ । वर्षधरपर्वता सीमापर्वता इत्यर्थ. । तेषा पर्वतानामुपरि क्रमेण ह्रदा कथ्यन्ते । पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेशरिमहापुण्डरीकपुण्डरीकसंज्ञा अकृत्रिमा षट् ह्रदा भवन्ति । ह्रदा इति कोऽर्थः ? सरोवराणीत्यर्थ । तेभ्य पद्मादिषड्ह्रदेभ्यः सकाशादागमकथितक्रमेण निर्गता याश्चतुर्दशमहानद्यस्ता कथ्यन्ते । तथाहि--हिमवत्पर्वतस्थपद्मनाममहाह्रदादर्धक्रोशावगाहक्रोशाधिकषट्योजन'१ प्रमाणविस्तारपूर्वतोरणद्वारेण निर्गत्य तत्पर्वतस्यैवोपरि पूर्वदिग्विभागेन योजनशतपञ्चकम् गच्छति ततो गङ्गाकूटसमीपे दक्षिणेन

(भवन) तथा सात करोड वहत्तर लाख भवनवासी देवो के भवन अकृत्रिम चैत्यालयो सहित है । इस प्रकार अत्यन्त सक्षेप से मध्यलोक का व्याख्यान किया ।

अव तिर्यग् लोक के बीच मे स्थित मनुष्य लोक का व्याख्यान करते है । उस मनुष्य लोक के वीच मे स्थित जम्बू द्वीप मे सात क्षेत्र हैं । दक्षिण दिशा से आरम्भ होकर भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत नामक सात क्षेत्र है । क्षेत्र का क्या अर्थ है ? यहा क्षेत्र शब्द से वर्ष, वश देश अथवा जनपद अर्थ का ग्रहण है । उन क्षेत्रो का विभाग करने वाले छह कुलाचल है । दक्षिण दिशा की ओर स उनके नाम हिमवत् १, महाहिमवत् २, निषध ३, नील ४, रुक्मी ५ और शिखरी ६ हैं । पूर्व-पश्चिम लम्बे ये पर्वत उन भरत आदि सप्त क्षेत्रो के बीच मे है । पर्वत का क्या अर्थ है ? पर्वत का अर्थ वर्षधर पर्वत अथवा सीमा पर्वत है । उन पर्वतो के ऊपर ह्रदो का क्रम से कथन करते है । पद्म १, महापद्म २, तिगिछ ३, केसरी ४, महापुण्डरीक ५ और पुण्डरीक ६ ये अकृत्रिम छ ह्रद है ह्रद का क्या अर्थ है ह्रद का अर्थ सरोवर है । उन पद्म आदि ह्रदोसे आगममे कहे क्रमानुसार जो चौदह महा नदिया निकली है उनका वर्णन करते है । तथा–हिमवत् पर्वत पर स्थित पद्म नामक महा ह्रद के पूर्वतोरण द्वार से, अर्ध कोस प्रमाण गहरी और एक कोस अधिक छ योजन प्रमाण चौडी गङ्गा नदी निकलकर, उसी हिमवत् पर्वत के ऊपर पूर्व दिशा मे पाच सौ योजन तक जाती है, फिर वहा से गङ्गाकूट के पास दक्षिण दिशा को मुडकर, भूमि मे स्थित कुण्ड मे गिरती हैं, वहा से दक्षिण द्वार से निकलकर, भरत क्षेत्र के मध्य भाग मे स्थित तथा अपनी लम्बाई से पूर्व पश्चिम समुद्र को छूने वाले विजयार्द्ध पर्वत की गुफा

१—'क्रोशर्धाधिक षट योजन' इति पाठान्तर ।

व्यावृत्य भूमिस्थकुण्डे पतति तस्माद् दक्षिणद्वारेण निर्गत्य भरतक्षेत्रमध्यभागस्थितस्य दीर्घत्वेन पूर्वापरसमुद्रस्पर्शिनो विजयार्द्धस्य गुहाद्वारेण निर्गत्य, तत आर्यखण्डार्द्धभागे पूर्वेण व्यावृत्य प्रथमावगाहापेक्षया दशगुणेन गव्यूतिपञ्चकावगाहेन तथैव प्रथमविष्कम्भापेक्षया दशगुणेन योजनार्द्धसहितद्विषष्टियोजनप्रमाणविस्तारेण च पूर्वसमुद्रे प्रविष्टा गङ्गा। तथा गङ्गावत्सिन्धुरपि तस्मादेव हिमवत्पर्वतस्थपद्मह्रदात्पर्वतस्यैवोपरि पश्चिमद्वारेण निर्गत्य पश्चाद्दक्षिणदिग्विभागेनागत्य विजयार्द्धगुहाद्वारेण निर्गत्यार्यखण्डार्द्धभागे पश्चिमेन व्यावृत्य पश्चिमसमुद्रे प्रविष्टेति। एवं दक्षिणदिग्विभागसमागतगङ्गासिन्धुभ्यां पूर्वापरायतेन विजयार्द्धपर्वतेन च षट्खण्डीकृतं भरतक्षेत्रम्।

अथ महाहिमवत्पर्वतस्थमहापद्मह्रदाद्दक्षिणदिग्विभागेन हैमवतक्षेत्रमध्ये समागत्य तत्रस्थनाभिगिरिपर्वतं योजनार्द्धेनास्पृशन्ती तस्यैवार्धे प्रदक्षिणं कृत्वा रोहित्पूर्वसमुद्रम् गता। तथैव हिमवत्पर्वतस्थितपद्मह्रदादुत्तरेणागत्य तमेव नाभिगिरि योजनार्धेनास्पृशन्ती तस्यैवार्द्धप्रदक्षिणं कृत्वा रोहितास्या पश्चिमसमुद्रं गता। इति रोहिद्रोहितास्यासंज्ञं नदीद्वन्द्वं हैमवतसंज्ञजघन्यभोगभूमिक्षेत्रे ज्ञातव्यम्। अथ निषधपर्वतस्थिततिगिञ्छनामह्रदाद्दक्षिणेनागत्य नाभिगिरिपर्वतं योजनार्धेनास्पृशन्ती तस्यैवार्धप्रदक्षिणं कृत्वा हरित्पूर्वसमुद्रम् गता। तथैव महाहिमवत्पर्वतस्थमहापद्मनामह्रदादुत्तरदिग्विभागेनागत्य तमेव नाभि-

---

के द्वार से निकलकर, आर्यखंड के अर्ध भाग मे पूर्व को घूमकर पहली गहराई की अपेक्षा दसगुणी अर्थात् ५ कोस गहराई और इसी प्रकार पहली चौडाई से दसगुणी अर्थात् साढे बासठ योजन चौडी गङ्गा नदी पूर्व समुद्र में प्रवेश करती है। इस गङ्गा की भाति सिधु नामक महानदी भी उसी हिमवत् पर्वत पर विद्यमान् पद्म ह्रद के पश्चिम द्वार से निकलकर पर्वत पर ही गमन करके फिर दक्षिण दिशा को आकर विजयार्द्ध की गुफा के द्वार के निकलकर आर्यखंड के अर्धभाग मे पश्चिम को मुडकर पश्चिम समुद्र मे प्रवेश करती है। इस प्रकार दक्षिण दिशा को आई हुई गगा और सिधु दो नदियो से और पूर्व पश्चिम लम्बे विजयार्द्ध पर्वत से भरत क्षेत्र छ खंड वाला किया गया अर्थात् भरत के छः खड हो जाते है।

महा हिमवत् पर्वत पर स्थित महा पद्म नामक ह्रद के दक्षिण दिशा की और से हैमवत् क्षेत्र के मध्य मे आकर, वहा पर स्थित नाभिगिरि पर्वत को आधा योजन से न छूती हुई (पर्वत से आधा योजन दूर रहकर), उसी पर्वत की आधी प्रदक्षिणा करती हुई रोहितनामा नदी पूर्व समुद्र को गई है। इसी प्रकार रोहिताग्या नदी हिमवत् पर्वत के पद्म ह्रद से उत्तर को आकर, उसी नाभिगिरि से आधा योजन दूर रहती हुई, उसी पर्वत की आधी प्रदक्षिणा करके पश्चिम समुद्र मे गई है। ऐसे रोहित और रोहितास्या नामक दो नदियां हैमवत नामक जघन्य भोग भूमि के क्षेत्र मे जाननी चाहिए। हरित नदी निषध पर्वत के तिगिंछ ह्रद से दक्षिण को आकर नाभिगिरि पर्वत से आधे योजन दूर रहकर उसी

गिरिं योजनार्धेनास्पृशन्ती तस्यैवार्धप्रदक्षिणं कृत्वा हरिकान्तानामनदी पश्चिमसमुद्रम् गता। इति हरिद्धरिकातासंज्ञं नदीद्वयं हरिसंज्ञमध्यमभोगभूमिक्षेत्रे विज्ञेयम्। अथ नील-पर्वतस्थितकेसरिनामह्रदाद्दक्षिणेनागत्योत्तरकुरुसंज्ञोत्कृष्टभोगभूमिक्षेत्रे मध्येन गत्वा मेरुस-मीपे गजदन्तपर्वतं भित्वा च प्रदक्षिणेन योजनार्धेन मेरुं विहाय पूर्वभद्रशालवनस्य मध्येन पूर्वविदेहस्य च मध्येन शीतानामनदी पूर्वसमुद्रं गता। तथैव निषधपर्वतस्थिततिगिञ्छ-ह्रदादुत्तरदिग्विभागेनागत्य देवकुरुसंज्ञोत्तमभोगभूमिक्षेत्रमध्येन गत्वा मेरुसमीपे गजदन्त-पर्वतं भित्वा च प्रदक्षिणेन योजनार्धेन मेरुं विहाय पश्चिमभद्रशालवनस्य मध्येन पश्चि-मविदेहस्य च मध्येन शीतोदा पश्चिमसमुद्रं गता। एवं शीताशीतोदासंज्ञं नदीद्वयं विदे-हाभिधाने कर्मभूमिक्षेत्रे ज्ञातव्यम्। यत्पूर्वं गङ्गासिन्धुनदीद्वयस्य विस्तारावगाहप्रमाणं भणितं तदेव क्षेत्रे क्षेत्रे नदीयुगलं प्रति विदेहपर्यन्तं द्विगुणं द्विगुणं ज्ञातव्यम्। अथ गङ्गा चतुर्दशसहस्रपरिवारनदीसहिता, सिन्धुरपि तथा, तद्द्विगुणसंख्यानं रोहिद्रोहितास्याद्वयम्, ततोऽपि द्विगुणसंख्यानं हरिद्धरिकान्ताद्वयम्, तद्द्विगुणं शीताशीतोदाद्वयमिति। तथा षड्विंशत्यधिकयोजनशतपञ्चकमेकोनविंशतिभागीकृतैकयोजनस्य भागषट्कं च यद्दक्षि-णोत्तरेण कर्मभूमिसंज्ञभरतक्षेत्रस्य विष्कम्भप्रमाणं, तद्द्विगुणं हिमवत्पर्वते, तस्माद्द्विगुणं

पर्वत की आधी प्रदक्षिणा करके पूर्व समुद्र मे गई है। इसी तरह हरिकान्ता नदी महा हिमवत् पर्वत के महा पद्म ह्रद से उत्तर दिशा की ओर आकर, उसी नाभिगिरि को आधे योजन तक न स्पर्शती हुई अर्ध प्रदक्षिणा देकर, पश्चिम समुद्र मे गई है। ऐसे हरित् और हरिकान्ता नामक दो नदिया हरि नामक मध्य-भोग-भूमि क्षेत्र मे है। शीता नदी नील पर्वत के केसरी ह्रद से दक्षिण को आकर, उत्तरकुरु नामक उत्कृष्ट भोगभूमि क्षेत्र के बीच मे होकर, मेरु के पास आकर, गजदन्त पर्वत को भेदकर और मेरु की प्रदक्षिणा से आधे योजन तक दूर रहकर, पूर्व भद्रशालवन और पूर्व विदेह के मध्य मे होकर, पूर्व समुद्र को गई है। इसी प्रकार शीतोदा नदी निषेध पर्वत से तिगिञ्छ ह्रद से उत्तर को आकर, देव-कुरु नामक उत्तम भोगभूमि क्षेत्र के बीच मे से जाकर, मेरु के पास गजदन्त पर्वत को भेद कर और मेरु की प्रदक्षिणा से आधे योजन दूर रह कर, पश्चिम भद्रशालवन के और पश्चिम विदेह के मध्य मे गमन करके, पश्चिम समुद्र को गई है। ऐसे शीता और शीतोदा नामक नदियो का युगल विदेह नामक कर्मभूमि के क्षेत्र मे जानना चाहिये। जो विस्तार और अवगाह का प्रमाण पहले गगा-सिधु नदियो का कहा है, उससे दूना दूना विस्तार आदि, प्रत्येक क्षेत्र मे, नदियो के युगलो का विदेह तक जानना चाहिये गङ्गा चौदह हजार परिवार की नदियो सहित है। इसी प्रकार सिंधु भी चौदह हजार नदियो की धारक है। इनसे दूनी परिवार नदियो की धारक रोहित व रोहितास्या है। हरित-हरिकान्ता का इससे भी दूना परिवार है। शीता-शीतोदा दोनो नदियो का इससे भी अधिक परिवार है। दक्षिण से उत्तर को छब्बीस योजन तथा एक योजन के उन्नीस भागो मे से ६ भाग प्रमाण कर्मभूमि भरत क्षेत्र

हैमवतक्षेत्रे, इत्यादि द्विगुणं द्विगुणं विदेहपर्यन्त ज्ञातव्यम् । तथा पद्मह्रदो योजनसहस्रायामस्तदर्द्ध विष्कम्भो दशयोजनावगाहो योजनैकप्रमाणपद्मविष्कम्भस्तस्मान्महापद्मे द्विगुणस्तस्मादपि तिगिछे द्विगुण इति ।

अथ यथा भरते हिमवत्पर्वतान्निर्गतं गङ्गासिन्धुद्वय, तथोत्तरे कर्मभूमिसञ्ज्ञैरावतक्षेत्रे शिखरिपर्वतान्निर्गतं रक्तारक्तोदानदीद्वयम् । यथा च हैमवतसञ्ज्ञे जघन्यभोगभूमिक्षेत्रे महाहिमवद्धिमवन्नामपर्वतद्वयात्क्रमेण निर्गतं रोहितरोहितास्यानदीद्वय, तथोत्तरे हैरण्यवतसञ्ज्ञजघन्यभोगभूमिक्षेत्रे शिखरिरुक्मिसंज्ञपर्वतद्वयात्क्रमेण निर्गत सुवर्णकूलारूप्यकूलानदीद्वयम् । तथैव यथा हरिसञ्ज्ञ मध्यमभोगभूमिक्षेत्रे निषधमहाहिमवन्नामपर्वतद्वयात्क्रमेण निर्गत हरिद्धरिकान्तानदीद्वयं, तथोत्तरे रम्यकसंज्ञमध्यमभोगभूमिक्षेत्रे रुक्मिनीलनामपर्वतद्वयात्क्रमेण निर्गत नारीनरकान्तानदीद्वयमिति विज्ञेयम् । सुषमसुषमादिषट्कालसबधिपरमागमोक्तायुरुत्सेधादिसहिता दशसागरोपमकोटिप्रमितावसर्पिणी तथोत्सर्पिणी च यथा भरते वर्त्तते तथैवैरावते च । अयन्तु विशेष, भरतैरावतम्लेच्छखण्डेषु विजयार्धनगेषु च चतुर्थकालसमयाद्यन्ततुल्यकालोऽस्ति नापर । किं बहुना, यथा खट्वाया एकभागे ज्ञाते

का निष्कम्भ है । उससे दूना हिमवत्पर्वत का, हिमवत् पर्वत से दूना हैमवत क्षेत्र का, ऐसे दूना—दूना विष्कम्भ विदेह क्षेत्र तक जानना चाहिये । पद्मह्रद एक हजार योजन लम्बा, उससे आधा (पांच सौ योजन (चौडा और दस योजन गहरा है, उसमे एक योजन का कमल है, उससे दूना महापद्म ह्रद में ओर उससे दूना तिगिछ ह्रद मे जानना ।

जैसे भरत क्षेत्र मे हिमवत् पर्वत से गङ्गा तथा सिधु ये दो नदिये निकलती है वैसे ही उत्तर दिशा मे कर्मभूमि सज्ञक ऐरावत क्षेत्र मे शिखरी पर्वत से निकली हुई रक्ता तथा रक्तोदा नामक दो नदिये है । जैसे हैमवत नामक जघन्य भोगभूमि क्षेत्र मे महाहिमवत् और हिमवत् नामक दो पर्वतो से क्रमश निकली हुई रोहित तथा रोहितास्या, ये दो नदिया है, इसी प्रकार उत्तर मे हैरण्यवत नामक जघन्य भोगभूमि मे, शिखरी और रुक्मी नामक पर्वतो से क्रमश निकली हुई सुवर्णकूला तथा रूप्यकूला ये दो नदियां है । जिस तरह हरि नामक मध्यम भोगभूमि मे, निषध और महाहिमवन पर्वतो से क्रमश. निकली हुई हरित—हरिकान्ता, ये दो नदिया है, उसी तरह उत्तर मे रम्यक नामक मध्यम भोगभूमि क्षेत्र मे रुक्मी और नील सज्ञक दो पर्वतो से क्रमश. निकली हुई नारी-नरकान्ता दो नदिया जाननी चाहिये । सुषमसुषमा आदि छहो कालो सम्बन्धी आयु तथा शरीर की ऊचाई आदि परमागम मे कही गई है, उन सहित, दसकोटाकोटि सागर प्रमाण, अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल भरत जैसे ही ऐरावत् मे भी होते है । इतना विशेष है, भरत ऐरावत के म्लेच्छ खण्डो मे और विजयार्द्ध पर्वत मे चतुर्थ काल की आदि तथा अन्त के समान काल वर्तता है, अन्य काल नहीं वर्तता । विशेष क्या कहे, जैसे खाट का एक भाग जान लेने पर उसका दूसरा भाग भी उसी प्रकार समझ लिया जाता है, उसी तरह जम्बूद्वीप

द्वितीयभागस्तथैव ज्ञायते तथैव जम्बूद्वीपस्य क्षेत्रपर्वतनदीह्रदादीनां यदेव दक्षिणविभागे व्याख्यानं तदुत्तरेऽपि विज्ञेयम्।

अथ देहममत्वमूलभूतमिथ्यात्वरागादिविभावरहिते केवलज्ञानदर्शनसुखाद्यनन्तगुणसहिते च निजपरमात्मद्रव्ये यया सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रभावनया कृत्वा विगतदेहा देहरहिता सन्तो मुनय प्राचुर्येण यत्र मोक्षं गच्छन्ति स विदेहो भण्यते। तस्य जम्बूद्वीपस्य मध्यवर्तिन किमपि विवरण क्रियते। तद्यथा—नवनवतिसहस्रयोजनोत्सेध एकसहस्रावगाह आदौ भूमितले दशयोजनसहस्रवृत्त विस्तार उपर्युपरि पुनरेकादशांशहानिक्रमेण हीयमानत्वे सति मस्तके योजनसहस्रविस्तार आगमोक्ताकृत्रिमचैत्यालयदेववनदेवावासाद्यागमकथितानेकाश्चर्यसहितो विदेहक्षेत्रमध्ये महामेरुर्नाम पर्वतोस्ति। स च गजो जातस्तस्मान्मेरुगजात्सकाशादुत्तरमुखे दन्तद्वयाकारेण यन्निर्गत पर्वतद्वयं तस्य गजदन्तद्वयसंज्ञेति, तथोत्तरे भागे नीलपर्वते लग्न तिष्ठति। तयोर्मध्ये यत्त्रिकोणाकारक्षेत्रमुत्तमभोगभूमिरूपं तस्योत्तरकुरुसज्ञा। तस्य च मध्ये मेरोरीशानदिग्विभागे शीतानीलपर्वतयोर्मध्ये परमागमवर्णितानाद्यकृत्रिमपार्थिवो जम्बूवृक्षस्तिष्ठति। तस्या एव शीताया उभयतटे यमकगिरिसंज्ञ पर्वतद्वय विज्ञेयम्। तस्मात्पर्वतद्वयाद्दक्षिणभागे कियन्तमध्वानं गत्वा शीतानदीमध्ये अन्त-

---

के क्षेत्र, नदी, पर्वत और ह्रद आदि का जो दक्षिण दिशा सम्बन्धी व्याख्यान है वही उत्तर दिशा सम्बन्धी जानना चाहिये।

अब शरीरमे ममत्वके कारणभूत मिथ्यात्व तथा राग आदि विभावोसे रहित और केवलज्ञान, केवल दर्शन, अनन्त सुख आदि अनन्त गुणो से सहित निज परमात्म द्रव्य मे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्ररूप भावना करके, मुनिजन जहा से विगतदेह अर्थात् देहरहित होकर अधिकता से मोक्ष प्राप्त करते हैं उसको विदेह कहते है। जम्बूद्वीप के मध्य मे स्थित विदेह क्षेत्रका कुछ वर्णन करते हैं। निण्यानवै हजार योजन ऊचा, एक हजार योजन गहरा और आदि मे भूमितल पर दस हजार योजन गोल विस्तार वाला तथा ऊपर ऊपर ग्यारहवे भाग हानि क्रम से घटते घटते शिखर पर एक हजार योजन विस्तार का धारक और शास्त्र मे कहे हुए अकृत्रिम चैत्यालय, देववन तथा देवो के आवास आदि नाना प्रकार के आश्चर्यो सहित ऐसा महामेरुनामक पर्वत विदेह क्षेत्र के मध्य मे है, वही मानो गज (हाथी) हुआ, इस मेरुरूप गज से उत्तर दिशा मे दो दन्तो के आकार से जो दो पर्वत निकले है, उनका नाम 'दो-गजदन्त' है और वे दोनो उत्तर भाग मे जो नील पर्वत है उसमे लगे हुए है। उन दोनों गजदन्तो के मध्य मे जो त्रिकोण आकारवाला उत्तम भोगभूमिरूप क्षेत्र है, उसका नाम 'उत्तरकुरु' है और उसके मध्य मे मेरु की ईशान दिशा मे शीता नदी और नील पर्वत के बीच मे परमागम-कथित अनादि—अकृत्रिम तथा पृथ्वीकायिक जम्बू वृक्ष है। उसी शीता नदी के दोनो किनारो पर यमकगिरि नामक दो पर्वत जानने चाहिये। उन यमकगिरि पर्वतो से दक्षिण दिशा मे कुछ मार्ग चलने पर शीता नदी के बीच मे कुछ-कुछ अन्तर मे पद्म आदि पांच ह्रद है। उन ह्रदो के दोनों पसवाडो में से प्रत्येक पार्श्व में, लोकानुयोग के

न्तरेण पश्चादिह्रदपञ्चकमस्ति । तेषां ह्रदानामुभयपार्श्वयोः प्रत्येकं सुवर्णरत्नमयजिन-गृहमण्डिता लोकानुयोगव्याख्यानेन दश दश सुवर्णपर्वता भवन्ति । तथैव निश्चयव्यवहार-रत्नत्रयाराधकोत्तमपात्रपरमभक्तिदत्ताहारदानफलेनोत्पन्नानां तिर्यग्मनुष्याणां स्वशुद्धात्म-भावनोत्पन्ननिर्विकारसदानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादविलक्षणस्य चक्रवर्त्तिभोगसुखादप्य-धिकस्य विविधपञ्चेन्द्रियभोगसुखस्य प्रदायका ज्योतिर्गृहप्रदीपतूर्यभोजनवस्त्रमाल्यभाजन-भूषणरागमदोत्पादकरसांगसंज्ञा दशप्रकारकल्पवृक्षाः भोगभूमिक्षेत्रं व्याप्य तिष्ठन्तीत्यादि-परमागमोक्तप्रकारेणानेकाश्चर्याणि ज्ञातव्यानि । तस्मादेव मेरुगजाद्दक्षिणदिग्विभागेन गजदन्तद्वयमध्ये देवकुरुसंज्ञमुत्तमभोगभूमिक्षेत्रमुत्तरकुरुवद्विज्ञेयम् ।

तस्मादेव मेरुपर्वतात्पूर्वस्यां दिशि पूर्वापरेण द्वाविंशतिसहस्रयोजनविष्कम्भं सवे-दिकं भद्रशालवनमस्ति । तस्मात्पूर्वदिग्भागे कर्मभूमिसंज्ञः पूर्वविदेहोऽस्ति । तत्र नीलकुल-पर्वताद्दक्षिणभागे शीतानद्या उत्तरभागे मेरोः प्रदक्षिणेन यानि क्षेत्राणि तिष्ठन्ति तेषां विभागः कथ्यते । तथाहि—मेरोः पूर्वदिशाभागे या पूर्वभद्रशालवनवेदिका तिष्ठति तस्याः पूर्वदिग्भागे प्रथमं क्षेत्रं भवति, तदनन्तरं दक्षिणोत्तरायतो वक्षारनामा पर्वतो भवति, तदनन्तरं क्षेत्रं तिष्ठति, ततोऽप्यनन्तरं विभङ्गा नदी भवति, ततोऽपि क्षेत्रं, तस्मादपि

व्याख्यान के अनुसार, सुवर्ण तथा रत्ननिर्मित जिनचैत्यालयो से भूषित दश दश सुवर्ण पर्वत हैं । इसी प्रकार निश्चय तथा व्यवहार रत्नत्रय की आराधना करने वाले उत्तम पात्रो को परम भक्ति से दिये हुए आहार-दान के फल से उत्पन्न हुए तिर्यंच और मनुष्यों को, निज शुद्ध आत्म—भावना से उत्पन्न होने वाला निर्विकार सदा आनन्दरूप सुखामृत रस के आस्वाद से विलक्षण और चक्रवर्ती के भोग-सुखों से भी अधिक, नाना प्रकार के पंचेन्द्रिय सम्बन्धी भोग—सुखो के देनेवाले ज्योतिरङ्ग, गृहाङ्ग, दीपाङ्ग, तूर्याङ्ग, भोजनाङ्ग, वस्त्राङ्ग, माल्याङ्ग, भाजनाङ्ग, भूषणाङ्ग तथा राग एव मद को उत्पन्न करने वाले रसाङ्ग नामक, ऐसे दस प्रकार के कल्पवृक्ष भोगभूमिया क्षेत्र मे स्थित हैं । इत्यादि परमागम-कथित प्रकार से अनेक आश्चर्य समझने चाहिये । उसी मेरुगज से निकले हुए दक्षिण दिशा मे जो 'दो गजदन्त' है उनके मध्य में उत्तर कुरु के समान देवकुरु नामक उत्तम भोगभूमि का क्षेत्र जानना चाहिये ।

उसी मेरु पर्वत से पूर्व दिशा मे, पूर्व—पश्चिम वाईस हजार योजन विस्तार वाला वेदी सहित भद्रशाल वन है । उससे पूर्व दिशा में कर्मभूमि नामक पूर्वविदेह है । वहां नील नामक कुलाचल से दक्षिण दिशा मे और शीता नदी के उत्तर मे मेरु की प्रदक्षिणा रूप से जो क्षेत्र है, उनके विभागो को कहते हैं । वह इस प्रकार है—मेरु से पूर्व दिशा मे जो पूर्वभद्रशाल वन की वेदिका है, उससे पूर्व दिशा में प्रथम क्षेत्र है, उसके पश्चात् दक्षिण-उत्तर लम्बा वक्षार पर्वत है, उसके वाद क्षेत्र है, उसके आगे विभङ्गा नदी है, उसके आगे क्षेत्र है, उसके अनन्तर वक्षार पर्वत है, फिर क्षेत्र फिर विभंगा नदी है, उसके अनन्तर क्षेत्र है, उसके पश्चात् वक्षार पर्वत है, उसके आगे क्षेत्र है, फिर विभंगा नदी है और फिर क्षेत्र है, उससे

वक्षारपर्वतस्तिष्ठति, ततश्च क्षेत्रं, ततोऽपि विभङ्गा नदी, तदनन्तरं क्षेत्रं, ततः परं वक्षारपर्वतोऽस्ति, तदनन्तरं क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततश्च क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतस्ततः क्षेत्रं, तदनन्तरं पूर्वसमुद्रसमीपे यद्देवारण्यं तस्य वेदिका चेति नवभित्तिभिरष्टक्षेत्राणि ज्ञातव्यानि। तेषां क्रमेण नामानि कथ्यन्ते कच्छा १ सुकच्छा २ महाकच्छा ३ कच्छावती ४ आवर्त्ता ५ लाङ्गलावर्त्ता ६ पुष्कला ७ पुष्कलावती ८ चेति। इदानीं क्षेत्रमध्यस्थितनगरीणां नामानि कथ्यन्ते। क्षेमा १ क्षेमपुरी २ रिष्टा ३ रिष्टपुरी ४ खड्गा ५ मञ्जूषा ६ औषधी ७ पुण्डरीकिणी ८ चेति।

अत ऊर्ध्वं शीताया दक्षिणविभागे निषधपर्वतादुत्तरविभागे यान्यष्टक्षेत्राणि तानि कथ्यन्ते। तद्यथा—पूर्वोक्ता या देवारण्यवेदिका तस्याः पश्चिमभागे क्षेत्रमस्ति, तदनन्तरं वक्षारपर्वतस्ततः परं क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततश्च क्षेत्रं, तस्माद्वक्षारपर्वतस्ततश्च क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततः क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतः, ततः क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, तदनन्तरं क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतस्ततः क्षेत्रं, ततो मेरुदिग्भागे पूर्वभद्रशालवनवेदिका भवतीति नवभित्तिमध्येऽष्टौ क्षेत्राणि ज्ञातव्यानि। इदानीं तेषां क्रमेण नामानि कथ्यन्ते-वच्छा १, सुवच्छा २, महावच्छा ३, वच्छावती ४, रम्या ५, रम्यका ६, रमणीया ७, मङ्गलावती ८ चेति। इदानीं तन्मध्यस्थितनगरीणां नामानि कथ्यन्ते—सुसीमा १, कुण्डला २, अपराजिता ३, प्रभाकरी ४, अङ्का ५, पद्मा ६, शुभा ७, रत्नसंचया ८ चेति, इति पूर्वविदेहक्षेत्रविभागव्याख्यानं समाप्तम्।

आगे फिर वक्षार पर्वत है, फिर क्षेत्र है, तदनन्तर पूर्व समुद्र के पास जो देवारण्य नामक वन है, उसकी वेदिका है। ऐसे नौ भित्तियों (दीवारों) से आठ क्षेत्र जानने चाहियें। क्रम से उनके नाम हैं—कच्छा १, सुकच्छा २, महाकच्छा ३, कच्छावती ४, आवर्त्ता ५, लाङ्गलावर्त्ता ६, पुष्कला ७ और पुष्कलावती ८। अब क्षेत्रों के मध्य में जो नगरियां है, उनके नाम कहते हैं—क्षेमा १, क्षेमपुरी २, रिष्टा ३, रिष्टपुरी ४, खड्गा ५, मंजूषा ६, औषधी ७ और पुण्डरीकणी ८।

इसके ऊपर शीता नदी से दक्षिण भाग में निषध पर्वत से उत्तर भाग में जो आठ क्षेत्र हैं उनको कहते हैं—पहले कही हुई जो देवारण्य की वेदी है उसके पश्चिम क्षेत्र है, तदनन्तर वक्षार पर्वत है, उसके आगे क्षेत्र है, फिर विभङ्गा नदी है, उसके बाद क्षेत्र है, फिर वक्षार पर्वत है, उसके आगे क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभङ्गा नदी है, फिर क्षेत्र है, पुन. फिर पर्वत है वक्षार क्षेत्र है, पश्चात् विभङ्गा नदी है, तदनन्तर क्षेत्र है, फिर वक्षार पर्वत है, फिर क्षेत्र है, उसके आगे मेरु के पूर्व दिशा वाले पूर्वभद्रशाल वन की है। ऐसे नौ भित्तियों के मध्य में आठ क्षेत्र जानने योग्य है। उन क्षेत्रों के नाम क्रम से कहते है [illegible], सुवच्छा २, महावच्छा ३, वच्छावती ४, रम्या ५, रम्यका ६, रमणीया ७ और मंगलावती [illegible] उन क्षेत्रों में स्थित नगरियों के नाम कहते है—सुसीमा १, कुण्डला २, अपराजिता ३, प्रभाकरी

अथ मेरोः पश्चिमविभागे पूर्वापरद्वाविंशतिसहस्रयोजनविष्कम्भो पश्चिमभद्रशाल-वनानन्तरं पश्चिमविदेहस्तिष्ठति । तत्र निषधपर्वतादुत्तरविभागे सीतोदानद्या दक्षिणभागे यानि क्षेत्राणि तेषां विभाग उच्यते । तथाहि—मेरोर्विभागे या पश्चिमभद्रशालवनवेदिका तिष्ठति तस्याः पश्चिमभागे क्षेत्रं भवति, ततो दक्षिणोत्तरायतो वक्षारपर्वतस्तिष्ठति, तदनन्तरं क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततश्च क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतस्ततः परं क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततः क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतस्ततः क्षेत्रं, ततः विभङ्गा नदी, ततः क्षेत्रं, ततः वक्षारपर्वतस्ततः क्षेत्रं, तदनन्तरं पश्चिमसमुद्रसमीपे यद्भूतारण्यवनं तिष्ठति तस्य वेदिका चेति नवभित्तिषु मध्येऽष्टौ क्षेत्राणि भवन्ति । तेषां नामानि कथ्यन्ते । पद्मा १, सुपद्मा २, महापद्मा ३, पद्मकावती ४, शंखा ५, नलिना ६, कुमुदा ७, सलिला ८ चेति । तन्मध्यस्थितनगरीणां नामानि कथ्यन्ति—अश्वपुरी १, सिंहपुरी २, महापुरी ३, विजयापुरी ४, अरजापुरी ५, विरजापुरी ६, अशोकापुरी ७, विशोकापुरी ८ चेति ।

अत ऊर्ध्वं शीतोदाया उत्तरभागे नीलकुलपर्वताद्दक्षिणे भागे यानि क्षेत्राणि तिष्ठन्ति तेषां विभागभेदं कथयति । पूर्वभणिता या भूतारण्यवनवेदिका तस्याः पूर्वभागे क्षेत्रं भवति । तदनंतरं वक्षारपर्वतस्तदनंतर क्षेत्रं ततो विभंगा नदी, ततः क्षेत्रं ततो वक्षार-

---

४, अंका ५, पद्मा ६ सुभा ७ और रत्नसचय ८ । इस प्रकार पूर्व विदेह क्षेत्र के विभागों का व्याख्यान समाप्त हुआ ।

अब मेरु पर्वत से पश्चिम दिशा मे पूर्व—पश्चिम बाईस हजार योजन विस्तार वाला पश्चिम भद्रशाल वन के बाद पश्चिम विदेह क्षेत्र है वहा निषध पर्वत से उत्तर मे और शीतोदा नदी के दक्षिण मे जो क्षेत्र है, उनका विभाग कहते हैं—मेरु की पश्चिम दिशा मे जो पश्चिम भद्रशाल वन की वेदिका है, उसके पश्चिम भाग मे क्षेत्र है, उससे आगे दक्षिण उत्तर लम्बा वक्षार पर्वत है तदनन्तर क्षेत्र फिर विभगा नदी है, उसके बाद क्षेत्र है, उसस आगे वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात क्षेत्र है, फिर विभगा नदी है, फिर क्षेत्र है, उसके आगे वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, फिर विभगा नदी है, उसके अनन्तर क्षेत्र है. उस के पश्चात् वक्षार पर्वत है, फिर क्षेत्र है, उसके अनतर पश्चिम समुद्र के समीप मे जो भूतारण्य नामक वन है उसकी वेदिका है । ऐसे नो भित्तियो के मध्यमे आठ क्षेत्र होते है । उनके नाम कहते है-पद्मा १, सुपद्मा २, महापद्मा ३, पद्मकावती ४, शखा ५, नलिना ६, कुमुदा ७ और सलिला ८ । उन क्षेत्रो के मध्य मे स्थित नगरियो के नाम कहते है—अश्वपुरी १, सिंहपुरी, २, महापुरी ३, विजयापुरी ४, अरजापुरी ५, विरजापुरी ६, अशोकपुरी ७ और विशोकापुरी ८ ।

अब शीतोदा के उत्तर मे और नील कुलाचल से दक्षिण मे जो क्षेत्र है, उनके विभाग-भेद का वर्णन करते है—पहले कही हुई जो भूतारण्य वन की वेदिका है उसके पूर्व मे क्षेत्र है, उसके बा

पर्वत, ततश्च क्षेत्र, ततश्च विभंगा नदी, ततोऽपि क्षेत्र, ततो वक्षारपर्वतस्तत क्षेत्रं, ततो विभगा नदी, तत क्षेत्र, ततश्च वक्षारपर्वतस्तत क्षेत्र, ततो मेरुदिशाभागे पश्चिमभद्रशालवनवेदिका चेति नवभित्तिषु मध्येऽष्टौ क्षेत्राणि भवन्ति। तेषा क्रमेण नामानि कथ्यन्ते—वप्रा १ सुवप्रा २ महावप्रा ३ वप्रकावती ४ गन्धा ५ सुगन्धा ६ गन्धिला ७ गन्धमालिनी ८ चेति। तन्मध्यस्थितनगरीणा नामानि कथ्यन्ते। विजया १ वैजयती २ जयती ३ अपराजिता ४ चक्रपुरी ५ खड्गपुरी ६ अयोध्या ७ अवध्या ८ चेति।

अथ यथा—भरतक्षेत्रे गङ्गासिधुनदीद्वयेन विजयार्धपर्वतेन च म्लेच्छखण्डपञ्चकमार्यखण्ड चेति षट् खण्डानि जातानि। तथैव तेषु द्वात्रिंशत्क्षेत्रेषु गङ्गासिधुसमाननदीद्वयेन विजयार्धपर्वतेन च प्रत्येक षट् खण्डानि ज्ञातव्यानि। अय तु विशेष। एतेषु क्षेत्रेषु सर्वदैव चतुर्थकालादिसमानकाल। उत्कर्षेण पूर्वकोटिजीवित, पञ्चशतचापोत्सेधश्चेति विज्ञेयम्। पूर्वप्रमाण कथ्यते। "पुव्वस्स हु परिमाण सदरि खलु सदसहस्सकोडीओ। छप्पण्ण च सहस्सा बोधव्वा वासगणनाओ॥ १॥" इति सक्षेपेण जम्बूद्वीपव्याख्यान समाप्तम्।

तदनन्तरं यथा सर्वद्वीपेषु सर्वसमुद्रेषु च द्वीपसमुद्रमर्यादाकारका योजनाष्टकोत्सेधा वज्रवेदिकास्ति तथा जम्बूद्वीपेप्यस्तीति विज्ञेयम्। यद्बहिर्भागे योजनलक्षद्वयवयविष्कम्भ

पर्वत, उसके अनंतर क्षेत्र, उसके बाद विभगा नदी, उसके पीछे क्षेत्र, उसके पश्चात् वक्षार पर्वत, उसके अनतर पुन क्षेत्र, इसके बाद पुन विभंगा नदी, उसके अनतर पुन क्षेत्र, उसके पश्चात् वक्षार पर्वत, उसके बाद क्षेत्र, तदनतर विभगा नदी, उसके अनतर क्षेत्र, उसके पश्चात् वक्षार पर्वत, उसके बाद क्षेत्र है। उसके अनतर मेरु की (पश्चिम) दिशा मे स्थित पश्चिमभद्र-शाल वन की वेदिका है। ऐसे नौ भित्तियो के बीच मे आठ क्षेत्र है। उनके नाम क्रम से कहते है—वप्रा १, सुवप्रा २, महावप्रा ३, वप्रकावती ४, गधा ५, सुगधा ६, गधिला ७ और गंधमालिनी ८। उन क्षेत्रो के मध्य मे वर्त्तमान नगरियो के नाम कहते है—विजया १, वैजयन्ती २, जयन्ती ३, अपराजिता ४, चक्रपुरी ५, खड्गपुरी ६, अयोध्या ७ और अवध्या ८।

अब जैसे भरत क्षेत्र मे गंगा और सिधु इन दोनो नदियो से तथा विजयार्ध पर्वत से पाच म्लेच्छ खंड और एक आर्य खंड ऐसे छ खड हुए है, उसी तरह पूर्वोक्त बत्तीस विदेह क्षेत्रो मे गगा सिधु समान दो नदियो और विजयार्ध पर्वत से प्रत्येक क्षेत्र के छ खंड जानने चाहिये। इतना विशेष है कि इन सब क्षेत्रो मे सदा चौथे काल की आदि जैसा काल रहता है। उत्कृष्टता से कोटि प्रमाण आयु है और पाच सौ धनुप प्रमाण शरीर का उत्सेध है। पूर्व का प्रमाण कहते है—"पूर्व का प्रमाण सत्तर लाख छप्पन हजार कोडि वर्ष जानना चाहिये।" ऐसे सक्षेप से जम्बू द्वीप का व्याख्यान समाप्त हुआ।

जैसे सब द्वीप और समुद्रो मे द्वीप और समुद्र की मर्यादा (सीमा) करने वाली आठ योजन ऊंची वेदिका (दीवार) है, उसी प्रकार से जम्बू द्वीप मे भी है, ऐसा जानना चाहिये। उस वेदिका

आगमकथितषोडशसहस्रयोजनजलोत्सेधाद्यनेकाश्चर्यसहितो लवणसमुद्रोऽस्ति । तस्मादपि बहिर्भागे योजनलक्षचतुष्टयवलयविष्कम्भो धातकीखण्डद्वीपोऽस्ति । तत्र च दक्षिणभागे लवणोदधिकालोदधिसमुद्रद्वयवेदिकास्पर्शी दक्षिणोत्तरायाम सहस्रयोजनविष्कम्भ शतचतुष्टयोत्सेध इष्वाकारनामपर्वत अस्ति । तथोत्तरविभागेऽपि । तेन पर्वतद्वयेन खण्डीकृत पूर्वापरधातकीखण्डद्वयं ज्ञातव्यम् । तत्र पूर्वधातकीखण्डद्वीपमध्ये चतुरशीतिसहस्रयोजनोत्सेध. सहस्रयोजनावगाहः क्षुल्लकमेरुरस्ति । तथा पश्चिमधातकीखण्डेऽपि । यथा जम्बूद्वीपमहामेरो भरतादिक्षेत्रहिमवदादिपर्वतगङ्गादिनदीपद्मादिह्रदानां दक्षिणोत्तरेण व्याख्यान कृत तथात्र पूर्वधातकीखण्डमेरौ पश्चिमधातकीखण्डमेरौ च ज्ञातव्यम् । अत एव जम्बूद्वीपापेक्षया संख्यां प्रति द्विगुणानि भवन्ति भरतक्षेत्राणि, न च विस्तारायामापेक्षया । कुलपर्वता पुनर्विस्तारापेक्षयैव द्विगुणा, नत्वायामं प्रति । तत्र धातकीखण्डद्वीपे यथा चक्रस्यारास्तथाकाराः कुलपर्वता भवन्ति । यथा चाराणां विवराणि छिद्राणि मध्यान्यभ्यन्तरे सङ्कीर्णानि बहिर्भागे विस्तीर्णानि तथा क्षेत्राणि ज्ञातव्यानि ।

इत्थंभूतं धातकीखण्डद्वीपमष्टलक्षयोजनवलयविष्कम्भः कालोदकसमुद्रः परिवेष्ट्य तिष्ठति । तस्माद्बहिर्भागे योजनलक्षाष्टकं गत्वा पुष्करवरद्वीपस्य अर्द्धे वलयाकारेण

के बाहर दो लाख योजन चौडा गोलाकार शास्त्रोक्त सोलह हजार योजन जल की ऊंचाई आदि अनेक आश्चर्यों सहित लवण समुद्र है, उसके बाहर चार लाख योजन गोल विस्तार वाला धातकी खंड द्वीप है। वहा पर दक्षिण भाग मे लवणोदधि और कालोदधि इन दोनो समुद्रों की वेदिका को छूने वाला, दक्षिण–उत्तर लम्बा, एक हजार योजन विस्तार वाला तथा चार सौ योजन ऊंचा इक्ष्वाकार नामक पर्वत है। इसी प्रकार उत्तर भाग मे भी एक इक्ष्वाकार पर्वत है। इन दोनो पर्वतो से विभाजित, पूर्व धातकी खड तथा पश्चिम धातकी खड ऐसे दो भाग जानने चाहिये। पूर्व धातकी खड द्वीप के मध्य मे चौरासी हजार योजन ऊचा और एक हजार योजन गहरा छोटा मेरु है। उसी प्रकार पश्चिम धातकी-खड मे भी एक छोटा मेरु है। जैसे जबू द्वीप के महामेरु मे भरत आदि क्षेत्र, हिमवत् आदि पर्वत, गंगा आदि नदी और पद्म आदि ह्रदों का दक्षिण व उत्तर दिशाओ सम्बन्धी व्याख्यान किया है, वैसे ही इस पूर्व धातकी खड के मेरु और पश्चिम धातकी खंडके मेरु सम्बन्धी जानना चाहिये। इसी कारण धातकीखड मे जबू द्वीप की अपेक्षा संख्या मे भरत क्षेत्र आदि दूने होते हैं, परन्तु लम्बाई चौड़ाई की अपेक्षा से दुगुने नही है। कुल पर्वत तो विस्तार की अपेक्षा ही दुगुने है, आयाम (लम्बाई) की अपेक्षा दुगुने नही है। उस धातकीखंड द्वीप मे, जैसे चक्र के आरे होते हैं, वैसे आकार के धारक कुलाचल है। जैसे चक्र के आरों के छिद्र अन्दर की ओर तो संकीर्ण (सुकड़े) होते है और बाहर की ओर विस्तीर्ण (फैले हुए) होते हैं, वैसा ही क्षेत्रों का आकार समझना चाहिये।

इस प्रकार जो धातकीखड द्वीप है उसको आठ लाख योजन विस्तार वाला कालोदक समुद्र

चतुर्दिशाभागे मानुषोत्तरनामा पर्वतस्तिष्ठति। तत्र पुष्करार्धेऽपि धातकीखण्डद्वीपवद्दक्षिणोत्तरेणेक्ष्वाकारनामपर्वतद्वय पूर्वापरेण क्षुल्लकमेरुद्वय च। तथैव भरतादिक्षेत्रविभागश्च बोधव्य। पर किन्तु जम्बूद्वीपभरतादिसख्यापेक्षया भरतक्षेत्रादिद्विगुणत्व, न च धातकीखण्डापेक्षया। कुलपर्वताना तु धातकीखण्डकुलपर्वतापेक्षया द्विगुणो विष्कम्भ आयामश्च। उत्सेधप्रमाण पुन दक्षिणभागे विजयार्धपर्वते योजनानि पञ्चविशति, हिमवति पर्वते शतं महाहिमवति द्विशत, निषधे चतु शतं, तथोत्तरभागे च। मेरुसमीपगजदन्तेषु शत पञ्चक, नील निषध पार्श्वे गजदन्तानि योजन चतु शतानि। नदीसमीपे वक्षारेषु चान्त्यनिषधनीलसमीपे चतु शत च। शेषपर्वताना च मेरु त्यक्त्वा यदेव जम्बूद्वीपे भणित तदेवार्धतृतीयद्वीपेषु च विज्ञेयम्। तथा नामानि च क्षेत्रपर्वतनदीदेशनगरादीनां तान्येव। तथैव क्रोशद्वयोत्सेधा पञ्चशतधनुर्विस्तारा पद्मरागरत्नमयी वनादीना वेदिका सर्वत्र समानेति। अत्रापि चक्राराकारवत्पर्वता आरविवरसस्थानानि क्षेत्राणि ज्ञातव्यानि। मानुषोत्तरपर्वतादभ्यन्तरभाग एव मनुष्यास्तिष्ठन्ति, न च बहिर्भागे। तेषा च जघन्यजीवितमन्तर्मुहूर्तप्रमाणम्, उत्कर्षेण पल्यत्रय, मध्ये मध्यमविकल्पा बहवस्तथा तिरश्चा च। एवम-

---

वेढे हुए है। उस कालोदक समुद्र के बाहर आठ लाख योजन चलकर पुष्करवर द्वीप के अर्ध भाग मे गोलाकार रूप से चारो दिशाओ मे मानुषोत्तर नामक पर्वत है। उस पुष्करार्ध द्वीप मे भी धातकीखड द्वीप के समान दक्षिण तथा उत्तर दिशा मे इक्ष्वाकार दो पर्वत है, पूर्व-पश्चिम मे दो छोटे मेरु है। इसी प्रकार (धातकीखंड के समान) भरत आदि क्षेत्रो का विभाग जानना चाहिए। परन्तु जबू द्वीप के भरत आदि की अपेक्षा से यहा पर सख्या मे दूने २ भरत आदि क्षेत्र है, धातकीखंड की अपेक्षा मे भरत आदि दूने नही है। कुल पर्वतो का विष्कम्भ तथा आयाम धातकीखड के कुल पर्वतो की अपेक्षा से दुगुना है। दक्षिण मे विजयार्ध पर्वत की ऊचाई का प्रमाण पच्चीस योजन, हिमवत् पर्वत की ऊचाई १०० योजन, महाहिमवान् पर्वत की दो सौ योजन, निषध की चार सौ योजन प्रमाण है। तथा उत्तर भाग मे भी इसी प्रकार उत्सेध प्रमाण है। मेरु के समीप मे गजदन्तो की ऊंचाई पाच सौ योजन है और नील निषध पर्वतो के पास चार सौ योजन है। वक्षार पर्वतो की ऊचाई नदी के निकट तथा अन्त मे नील और निषध पर्वतो के पास चार सौ योजन है। मेरु को छोडकर शेष पर्वतो की ऊंचाई जबू द्वीप मे कही है सो ही पुष्करार्द्ध तक द्वीपो मे जाननी चाहिये। तथा क्षेत्र, पर्वत, नदी, देश, नगर आदि के नाम भी वे ही है, जो कि जबू द्वीप मे है। इसी प्रकार दो कोश ऊची, पाचसौ धनुष चौडी पद्मराग रत्नमयी जो वन की आदि वेदिका है, वह सब द्वीपो मे समान है। इस पुष्करार्ध द्वीप मे भी चक्र के आरो के आकार समान पर्वत और आरो के छिद्रो के समान क्षेत्र जानने चाहिये। मानुषोत्तर पर्वत के भीतरी भाग मे ही मनुष्य निवास करते है बाहरी भाग मे नही। उन मनुष्यो की जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट आयु तीन पल्य के बराबर है। मध्य मे मध्यमविकल्प बहुत से हैं। तिर्यंचो की आयु

संख्येयद्वीपसमुद्रविस्तीर्णतिर्यग्लोकमध्येऽर्धतृतीयद्वीपप्रमाणः संक्षेपेण मनुष्यलोको व्याख्यातः ।

अथ मानुषोत्तरपर्वतसकाशाद्वहिर्भागे स्वयम्भूरमणद्वीपार्ध परिक्षिप्य योऽसौ नागेन्द्रनामा पर्वतस्तस्मात्पूर्वभागे ये सख्यातीता द्वीपसमुद्रास्तिष्ठन्ति तेषु यद्यपि 'व्यन्तरा निरन्तरा' इति बचनाद् व्यन्तरदेवावासास्तिष्ठन्ति तथापि पल्यप्रमाणायुषा तिरश्चां सम्बन्धिनी जघन्यभोगभूमिरिति ज्ञेयम् । नागेन्द्रपर्वताद्वहिर्भागे स्वयम्भूरमणद्वीपार्धे समुद्रे च पुनर्विदेहवत्सर्वदैव कर्मभूमिश्चतुर्थकालश्च । परं किन्तु मनुष्या न सन्ति । एवमुक्तलक्षणतिर्यग्लोकस्य तदभ्यन्तर मध्यभागवर्त्तिनो मनुष्यलोकस्य च प्रतिपादनेन संक्षेपेण मध्यमलोकव्याख्यान समाप्तम । अथ मनुष्यलोके द्विहीनशतचतुष्टयं तिर्यग्लोके तु नन्दीश्वरकुण्डलरुचकाभिधानद्वीपत्रयेषु क्रमेण द्विपञ्चाशच्चतुष्टयचतुष्टयसंख्याश्चाकृत्रिमाः स्वतन्त्रजिनगृहा ज्ञातव्या ।

अत ऊर्ध्व ज्योतिर्लोक कथ्यते । तद्यथा——चन्द्रादित्यग्रहनक्षत्राणि प्रकीर्णतारकाश्चेति ज्योतिष्कदेवा पञ्चविधा भवन्ति । तेषा मध्येऽस्माद्भूमितलादुपरि नवत्यधिकसप्तशतयोजनान्याकाशे गत्वा तारकविमाना. सन्ति, ततोऽपि योजनदशकं गत्वा सूर्यविमाना., ततः परमशीतियोजनानि गत्वा चन्द्रविमाना, ततोऽपि त्रैलोक्यसारकथितक्रमेण योजनच-

---

भी मनुष्यो की आयु के समान है । इस प्रकार असंख्यात द्वीप समुद्रो से विस्तरित तिर्यग्लोक के मध्य मे ढाई द्वीप प्रमाण मनुष्य लोक का संक्षेप से व्याख्यान हुआ ।

अब मानुषोत्तर पर्वत से बाहरी भाग मे, स्वयंभूरमण द्वीप के अर्धभाग को वेढकर जो नागेन्द्र नामक पर्वत है, उस पर्वत के पूर्व भाग मे जो असख्यात द्वीप समुद्र है, उनमे 'व्यन्तर देव निरन्तर रहते है' इस वचनानुसार, यद्यपि व्यन्तर देवो के आवास है, तथापि एक पल्यप्रमाण आयुवाले तिर्यचों की जघन्य भोगभूमि भी है, ऐसा जानना चाहिये । नागेन्द्र पर्वत से बाहर स्वयंभूरमण आधे द्वीप और पूर्णस्वयभूरमण समुद्र मे विदेह क्षेत्र के समान, सदा ही कर्मभूमि और चतुर्थ काल रहता है । परन्तु वहा पर मनुष्य नही है । इस प्रकार तिर्यग् लोक के मध्य मे विद्यमान मनुष्य-लोक के निरूपण द्वारा मध्य लोक का व्याख्यान समाप्त हुआ । मनुष्य लोक मे तीन सौ अट्ठानवे ३९८ और तिर्यक् लोक मे नन्दीश्वर द्वीप, कुण्डल द्वीप तथा रुचक द्वीप इन तीन द्वीपों सम्बन्धी क्रमश. बावन, चार, चार अकृत्रिम स्वतंत्र चैत्यालय जानने चाहिये । (मध्यलोक मे सब अकृत्रिम चैत्यालय ४५८ है) ।

इसके पश्चात् ज्योतिष्कलोक का वर्णन करते है । चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, प्रकीर्णकतारा ऐसे ज्योतिष्क देव पाच प्रकार के होते हैं । उनमे से इस मध्य लोक की पृथ्वीतल से सात सौ नव्वे योजन ऊपर आकाश मे तारो के विमान हैं, तारो से दस योजन ऊपर सूर्य के विमान है । उससे अस्सी योजन ऊपर चन्द्रमा के विमान है । उसके अनंतर, त्रैलोक्यसार कथित क्रमानुसार, चार योजन ऊपर

तुष्टय गते अश्विन्यादिनक्षत्रविमाना, तत पर योजनचतुष्टय गत्वा बुधविमाना, तत परं योजनत्रय गत्वा शुक्रविमाना, तत पर योजनत्रये गते वृहस्पतिविमाना, ततो योजनत्रयानन्तर मङ्गलविमाना, ततोऽपि योजनत्रयानन्तरं शनैश्चरविमाना इति। तथा चोक्त "णउदुत्तरसत्तसया दस सीदी चउदुग तु तिचउक्क। तारारविससिरिक्खा बुहभग्गवअगिरारसणी ॥ १ ॥" ते च ज्योतिष्कदेवा अर्धतृतीयद्वीपेषु निरतर मेरो प्रदक्षिणेन परिभ्रमणगति कुर्वन्ति। तत्र घटिकाप्रहरदिवसादिरूप स्थूलव्यवहारकाल समयनिमिषादिसूक्ष्मव्यवहारकालवत् यद्यप्यनादिनिधनेन समयघटिकादिविवक्षितविकल्परहितेन कालाणुद्रव्यरूपेण निश्चयकालेनोपादानभूतेन जन्यते तथापि चन्द्रादित्यादिज्योतिष्कदेवविमानगमनागमनेन कुम्भकारेण निमित्तभूतेन मृत्पिण्डोपादानजनितघट इव व्यज्यते प्रकटीक्रियते ज्ञायते तेन कारणेनोपचारेण ज्योतिष्कदेवकृत इत्यभिधीयते। निश्चयकालस्तु तद्विमानगतिपरिणतेर्वहिरङ्गसहकारिकारण भवति कुम्भकारचक्रभ्रमणस्याधस्तनशिलावदिति।

इदानीमर्धतृतीयद्वीपेषु चन्द्रादित्यसख्या कथ्यते। तथाहि—जम्बूद्वीपे चन्द्रद्वय सूर्यद्वय च, लवणोदे चतुष्टय, धातकीखण्डद्वीपे द्वादश चन्द्रादित्याश्च, कालोदकसमुद्रे द्विचत्वारिंशच्चन्द्रादित्याश्च, पुष्करार्धे द्वीपे द्वासप्ततिचन्द्रादित्या चेति। तत पर भरतैरावतस्थित-

---

अश्विनी आदि नक्षत्रो के विमान हे। उसके पश्चात् चार योजन ऊपर बुध के विमान है। उसके अनन्तर तीन योजन ऊपर शुक्र के विमान है। वहा से तीन योजन ऊपर वृहस्पति के विमान है। उसके पश्चात् तीन योजन पर मगल के विमान हैं। वहा से भी तीन योजन के अन्तर पर शनैश्चर के विमान हैं। सो ही कहा है—"सात सो नव्वे, दस, अस्सी, चार, चार तीन, तीन, और तीन योजन ऊपर क्रम से तारा, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, बुध, शुक्र, वृहस्पति, मगल और शनैश्चर के विमान है। १।" वे ज्योतिष्क देव ढाई द्वीप मे मेरु की प्रदक्षिणा देते हुए सदा परिभ्रमण करते है। समय निमिष आदि सूक्ष्म व्यवहार काल के समान घटिका प्रहर दिवस आदि स्थूल व्यवहार काल भी, समय–घटिका आदि विवक्षित भेदो से रहित तथा अनादिनिधन कालाणुद्रव्यमयी निश्चयकाल रूप उपादान से यद्यपि उत्पन्न होता है, तो भी, निमित्तभूत कुम्भकार के द्वारा उपादान रूप मृत्तिकापिंड से घट प्रगट होने की तरह, उन ढाई द्वीप मे चन्द्र सूर्य आदि ज्योतिष्क देवो के विमानो के गगनागमन से यह व्यवहार काल प्रकट किया जाता है तथा जाना जाता हे, इस कारण उपचार से 'व्यवहार काल ज्योतिष्क देवो का किया हुआ है' ऐसा कहा जाता है। कुम्भकार के चाक के भ्रमण मे वहिरग सहकारी कारण नीचे की कीली के समान, निश्चय काल तो, उन ज्योतिष्क देवो के विमानो के गमन रूप परिणमन मे वहिरग सहकारी कारण होता है।

अव ढाई द्वीपो मे जा चन्द्र और सूर्य है, उनकी संख्या वतलाते हैं। वह इस प्रकार है—जंबू [illegible] मे दो चन्द्रमा और दो सूर्य हैं, लवणोदक समुद्र मे चार चन्द्रमा और चार सूर्य है, धातकीखड द्वीप

जम्बूद्वीपचन्द्रसूर्ययोः किमपि विवरणं क्रियते । तद्यथा—जम्बूद्वीपाभ्यन्तरे योजनानामशीतिशतं बहिर्भागे लवणसमुद्रसम्बन्धे त्रिंशदधिकशतत्रयमिति समुदायेन दशोत्तरयोजनशतपञ्चकं चारक्षेत्रं भण्यते, तत् चन्द्रादित्ययोरेकमेव । तत्र भरतेन (सह) बहिर्भागे तस्मिश्चारक्षेत्रे सूर्यस्य चतुरशीतिशतसंख्या मार्गा भवन्ति, चन्द्रस्य पञ्चदशैव । तत्र जम्बूद्वीपाभ्यन्तरे कर्कटसंक्रान्तिदिने दक्षिणायनप्रारम्भे निषधपर्वतस्योपरि प्रथममार्गे सूर्यः प्रथमोदयं करोति । यत्र सूर्यविमानस्थं निर्दोषपरमात्मनो जिनेश्वरस्याकृत्रिम जिनबिम्बम् प्रत्यक्षेण दृष्ट्वा अयोध्यानगरीस्थितो निर्मलसम्यक्त्वानुरागेण भरतचक्री पुष्पाञ्जलिमुत्क्षिप्यार्घ्यं ददातीति । तन्मार्गस्थितभरतक्षेत्रादित्यस्यैरावतादित्येन सह तथापि चन्द्रस्यान्यचन्द्रेण सह यदन्तरं भवति तद्विशेषेणागमतो ज्ञातव्यम् ।

अथ "सदभिस भरणी अद्दा सादी असलेस्स जेट्ठमवर वरा । रोहिणि विसाह पुणव्वसु तिउत्तरा मज्झिमा सेसा ॥ १ ॥" इति गाथाकथितक्रमेण यानि जघन्योत्कृष्टमध्यमनक्षत्राणि तेषु मध्ये कस्मिन्नक्षत्रे कियन्ति दिनान्यादित्यस्तिष्ठतीति । "इंदुरवीदो रिक्खा सत्तट्ठि पंच गगणखंडहिया । अहियहिदरिक्खखडा रिक्खे इंदुरवीअत्थणमुहुत्ता ॥ १ ॥"

में बारह चन्द्रमा और बारह सूर्य है, कालोदक समुद्र मे ४२ चन्द्रमा और ४२ सूर्य है तथा पुष्करार्ध द्वीप मे ७२ चन्द्रमा और बहत्तर ही सूर्य है।

इसके अनंतर भरत और ऐरावत मे स्थित जंबूद्वीप के चन्द्र—सूर्य का कुछ थोड़ा-सा विवरण कहते है। वह इस तरह है—जबू द्वीप के भीतर एक सौ अस्सी और बाहरी भाग मे अर्थात् लवणसमुद्र के तीन सौ तीस योजन, ऐसे दोनो मिलकर पाच सौ दस योजन प्रमाण सूर्य का चार क्षेत्र (गमन का क्षेत्र) कहलाता है। सो चन्द्र तथा सूर्य इन दोनो का एक ही गमन क्षेत्र है। भरत क्षेत्र और बाहरी भाग के चार क्षेत्र मे सूर्य के एक सौ चौरासी मार्ग (गली) है और चन्द्रमा के पन्द्रह ही मार्ग है। उनमे जंबू द्वीप के भीतर कर्कट सक्रान्ति के दिन जब दक्षिणायन प्रारम्भ होता है, तब निषध पर्वत के ऊपर प्रथम मार्ग मे सूर्य प्रथम उदय करता है। वहा पर सूर्य विमान में स्थित निर्दोष-परमात्म-जिनेन्द्र के अकृत्रिम जिनबिम्ब को, अयोध्या नगरी मे स्थित भरत क्षेत्र का चक्रवर्ती प्रत्यक्ष देखकर निर्मल सम्यक्त्व के अनुराग से पुष्पाजलि उछालकर अर्घ देता है। उस प्रथम मार्ग मे स्थित भरत क्षेत्र के सूर्य का ऐरावत क्षेत्र के सूर्य के साथ तथा चन्द्रमा का चन्द्रमा के साथ और भरत क्षेत्र के सूर्य चन्द्रमाओ का मेरु के साथ जो अन्तर (फासला) रहता है, उसका विशेष कथन आगम से जानना चाहिए।

अब "शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, आश्लेषा, ज्येष्ठा, ये छः नक्षत्र जघन्य है। रोहिणी, विशाखा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद, ये छः नक्षत्र उत्कृष्ट हैं। इनके अतिरिक्त शेष नक्षत्र मध्यम है।" इस गाथा मे कहे हुए क्रमानुसार जो जघन्य उत्कृष्ट तथा मध्यम नक्षत्र हैं, उनमें किस नक्षत्र में कितने दिन सूर्य ठहरता है, सो कहते है—"एक मुहूर्त मे चन्द्र १७६८, सूर्य १८३०

इत्यनेन गाथासूत्रेणागमकथितक्रमेण पृथक् पृथगानीय मेलापके कृते सति षडधिकषष्टियुत-त्रिशतसख्यदिनानि भवन्ति । तस्य दिनसमूहार्धस्य यदा द्वीपाभ्यन्तराद्दक्षिणेन बहिर्भागेषु दिनकरो गच्छति तदा दक्षिणायनसज्ञा, यदा पुन समुद्रात्सकाशादुत्तरेणाभ्यन्तरमार्गेषु समायाति तदोत्तरायणसज्ञेति । तत्र यदा द्वीपाभ्यन्तरे प्रथममार्गपरिधौ कर्कटसक्रान्तिदिने दक्षिणायनप्रारम्भे तिष्ठत्यादित्यस्तदा चतुर्णवतिसहस्रपञ्चविशत्यधिकपञ्चयोजनशतप्रमाण उत्कर्षेणादित्यविमानस्य पूर्वापरेणातपविस्तारो ज्ञेय. । तत्र पुनरष्टादशमुहूर्तैर्दिवसो भवति द्वादशमुहूर्तै रात्रिरिति । तत क्रमेणातपहानौ सत्या मुहूर्तद्वयस्यैकषष्टिभागीकृतस्यैको भागो दिवसमध्ये दिन प्रति हीयते यावल्लवणसमुद्रेऽवसानमार्गे माघमासे मकरसक्रान्तावुत्तराय-णदिवसे त्रिषष्टिसहस्राधिकषोडशयोजनप्रमाणो जघन्येनादित्यविमानस्य पूर्वापरेणातपवि-स्तारो भवति । तथैव द्वादशमुहूर्तैर्दिवसो भवत्यष्टादशमुहूर्तै रात्रिश्चेति । शेष विशेषव्या-ख्यान लोकविभागादौ विज्ञेयम् ।

ये तु मनुष्यक्षेत्राद्बहिर्भागे ज्योतिष्कविमानास्तेषा चलन नास्ति । ते च मानुषो-त्तरपर्वताद्बहिर्भागे पञ्चाशत्सहस्राणि योजनाना गत्वा वलयाकारं पङ्क्तिक्रमेण पूर्वक्षेत्र

और नक्षत्र १८३५ गगनखडो मे गमन करते है, इसलिये ६७ व ५ (१८३५–१७६८–६७, १८३५–१८३० ५) अधिक भागो से नक्षत्रखडो को भाग देने से जो मुहूर्त प्राप्त होते है, उन मुहूर्त्तो को चन्द्र और सूर्य के आसन्न मुहूर्त जानने चाहिये । अर्थात् एक नक्षत्र पर उतने मुहूर्त्तो तक चन्द्रमा और सूर्य की स्थिति जाननी चाहिए । १ ।" इस प्रकार इस गाथा मे कहे हुए क्रम से भिन्न-भिन्न दिनो को जोडने से तीन सौ छयासठ दिन होते है । जब द्वीपके भीतर से दक्षिण दिशाके बाहरी मार्गो मे सूर्य गमन करता है, तब तीन सौ छयासठ दिनो के आधे एक सौ तिरासी दिनो की दक्षिणायन संज्ञा होती है और इसी प्रकार जब सूर्य समुद्र मे उत्तर दिशा को अभ्यन्तर मार्गो मे आता है तब शेष १८३ दिनो की उत्तरायण सज्ञा है । उनमे जब द्वीप के भीतर कर्कट सक्रान्ति के दिन दक्षिणायन के प्रारम्भ मे सूर्य प्रथम मार्ग की परिधि मे होता है, तब सूर्य विमान के आतप धूप) का पूर्व—पश्चिम फैलाव चौरानबे हजार पाच सौ पच्चीस योजन प्रमाण होता है, ऐसा जानना चाहिये । उस समय अठारह मुहूर्त्तो का दिन और बारह मुहूर्तो की रात्रि होती है । फिर यहा से क्रम—क्रम मे आताप की हानि होने पर दो मुहूर्त्तो के इकसठ भागो मे से एक भाग प्रति दिन दिवस घटता है । यह तब तक घटता है जब तक कि लवणसमुद्र के अन्तिम मार्ग मे माघ मास मे मकर संक्राति मे उत्तरायण दिवस के प्रारम्भ मे जघन्यता से सूर्य-विमान के आतप का पूर्व–पश्चिम विस्तार त्रेसठ हजार सोलह योजन प्रमाण होता है । उसी प्रकार इस समय बारह मुहूर्त्तो का दिन और अठारह मुहूर्त्तो की रात्रि होती है । अन्य विशेष वर्णन लोकविभाग आदि से जानना चाहिये ।

मनुष्य क्षेत्र से बाहर ज्योतिष्क-विमानो का गमन नही है । वे मानुषोत्तर पर्वत के बाहर

परिवेष्ट्य तिष्ठन्ति । तत्र प्रथमवलये चतुश्चत्वारिंशदधिकशतप्रमाणाश्चन्द्रास्तथादित्याश्चान्तरान्तरेण तिष्ठन्ति । ततः परं योजनलक्षे लक्षे गते तेनैव क्रमेण वलयं भवति । अयन्तु विशेष --वलये वलये चन्द्रचतुष्टयं सूर्यचतुष्टयं च वर्धते यावत्पुष्करार्धबहिर्भागे वलयाष्टकमिति । तत्र पुष्करसमुद्रप्रवेशे वेदिकायाः सकाशात्पंचाशत्सहस्रप्रमितयोजनानि जलमध्ये प्रविश्य यत्पूर्वं चतुश्चत्वारिंशदधिकशतप्रमाणं प्रथमवलयं व्याख्यातं तस्माद् द्विगुणसंख्यानं प्रथमवलयं भवति । तदनन्तरं पूर्ववद्योजनलक्षे गते वलयं भवति चन्द्रचतुष्टयस्य सूर्यचतुष्टयस्य च वृद्धिरित्यनेनैव क्रमेण स्वयम्भूरमणसमुद्रबहिर्भागवेदिकापर्यन्तं ज्योतिष्कदेवानामवस्थानं बोधव्यम् । एते च प्रतरासंख्येयभागप्रमिता असंख्येया ज्योतिष्कविमाना अकृत्रिमसुवर्णमयरत्नमयजिनचैत्यालयमण्डिता ज्ञातव्या । इति संक्षेपेण ज्योतिष्कलोकव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथानन्तरमूर्ध्वलोकः कथ्यते । तथाहि--सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्टशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारानतप्राणतारणाच्युतसंज्ञाः षोडश स्वर्गाः ततोऽपि नवग्रैवेयकसंज्ञास्ततश्च नवानुदिशसंज्ञं नवविमानसंख्यमेकपटलं ततोऽपि पंचानुत्तरसंज्ञं पंच-

---

पचास हजार योजन जाने पर, वलयाकार (गोलाकार) पंक्ति—क्रम से पहिले क्षेत्र को वेढ [घेर] कर रहते है। वहा प्रथम वलय मे एक सौ चवालीस चन्द्रमा तथा सूर्य परस्पर अन्तर [फासले] से तिष्ठते है। उसके आगे एक—एक लाख योजन जाने पर इसी क्रमानुसार एक-एक वलय होता है विशेष यह है-प्रत्येक वलय मे चार-चार चन्द्रमा तथा चार-चार सूर्यो की वृद्धि पुष्करार्ध के बाह्य भाग मे आठवे वलय तक होती है, उसके बाद पुष्करसमुद्र के प्रवेश मे स्थित वेदिका से पचास हजार योजन प्रमाण जलभाग मे जाकर, प्रथम वलय मे, एक सौ चवालीस चन्द्र तथा सूर्य का जो पहले कथन किया है, उससे दुगुने (दो सौ अट्ठासी) चन्द्रमा व सूर्यो वाला पहला वलय है। उसके पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार एक—एक लाख योजन जाने पर एक-एक वलय है। प्रत्येक वलय मे चार चन्द्रमा और चार सूर्यो की वृद्धि होती है । इसी क्रम से स्वयभूरमण समुद्र की अन्त की वेदिका तक ज्योतिष्क देवो का अवस्थान जानना चाहिए । जगप्रतर के असख्यातवे भाग प्रमाण असख्यात ये ज्योतिष्कविमान अकृत्रिम सुवर्ण तथा रत्नमय जिनचैत्यालयो से भूषित है, ऐसा समझना चाहिए। इस प्रकार सक्षेप से ज्योतिष्क लोक का वर्णन समाप्त हुआ।

अब इसके अनतर ऊर्ध्व लोक का कथन करते है। सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लातव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत नामक सोलह स्वर्ग है। वहा से आगे नव ग्रैवेयक विमान है। उनके ऊपर नवानुदिश नामक ९ विमानो का एक पटल है, इसके भी ऊपर पाच विमानो की संख्या वाला पचानुत्तर नामक एक पटल है, इस प्रकार

विमानसंख्यमेकपटलं चेत्युक्तक्रमेणोपर्युपरि वैमानिकदेवास्तिष्ठन्तीति वार्त्तिकं सङ्ग्रहवाक्यं समुदायकथनमिति यावत् । आदिमध्यान्तेषु द्वादशाष्टचतुर्योजनवृत्तविष्कम्भा चत्वारिंशत्प्रमितयोजनोत्सेधा या मेरुचूलिका तिष्ठति तस्या उपरि कुरुभूमिजमर्त्यबालाग्रान्तरित पुनर्ऋजुविमानमस्ति । तदादि कृत्वा चूलिकासहितलक्षयोजनप्रमाण मेरूत्सेधमानमर्द्धाधिकैकरज्जुप्रमाण यदाकाशक्षेत्र तत्पर्यन्त सौधर्मैशानसंज्ञ स्वर्गयुगल तिष्ठति । तत परमर्द्धाधिकैकरज्जूपर्यन्त सानत्कुमारमाहेन्द्रसंज्ञ स्वर्गयुगल भवति, तस्मादर्द्धरज्जुप्रमाणाकाशपर्यन्त ब्रह्मब्रह्मोत्तराभिधान स्वर्गयुगलमस्ति, ततोऽप्यर्द्धरज्जुपर्यन्तं लातवकापिष्टनामस्वर्गयुगलमस्ति, ततश्चार्द्धरज्जुपर्यन्त शुक्रमहाशुक्राभिधानं स्वर्गद्वय ज्ञातव्यम्, तदनतरमर्द्धरज्जुपर्यन्त शतारसहस्रारसंज्ञ स्वर्गयुगल भवति, ततोऽप्यर्द्धरज्जुपर्यन्तमानतप्राणतनाम स्वर्गयुगल, ततः परमर्द्धरज्जुपर्यन्तमाकाश यावदारणाच्युताभिधान स्वर्गद्वयं ज्ञातव्यमिति । तत्र प्रथमयुगलद्वये स्वकीयस्वकीयस्वर्गनामानश्चत्वार इन्द्रा विज्ञेया, मध्ययुगलचतुष्टये पुन स्वकीयस्वकीयप्रथमस्वर्गाभिधान एकैक एवेन्द्रो भवति, उपरितनयुगलद्वयेऽपि स्वकीयस्वकीयस्वर्गनामानश्चत्वार इन्द्रा भवन्ति; इति समुदायेन षोडशस्वर्गेषु द्वादशेन्द्रा ज्ञातव्या । षोडशस्वर्गादूर्ध्वमेक-

---

उक्त क्रम से वैमानिक देव तिष्ठित है । यह वार्तिक अर्थात् सग्रह वाक्य अथवा समुदाय से कथन है । आदि मे बारह, मध्य मे आठ और अन्त मे चार योजन प्रमाण गोल व्यासवाली चालीस योजन ऊची मेरु की चूलिका है, उसके ऊपर देवकुरु अथवा उत्तरकुरु नामक उत्तम भोगभूमि मे उत्पन्न हुए मनुष्य के बल के अग्रभाग प्रमाण के अन्तर से ऋजु विमान है । चूलिका सहित एक लाख योजन प्रमाण मेरु की ऊचाई का प्रमाण है, उस मान को आदि करके डेढ रज्जु प्रमाण जो आकाश क्षेत्र है वहा तक सौधर्म तथा ईशान नामक दो स्वर्ग है । इसके ऊपर डेढ रज्जुपर्यंत सानत्कुमार और माहेन्द्र नामक दो स्वर्ग है । वहा से अर्धरज्जु प्रमाण आकाश तक ब्रह्म तथा ब्रह्मोत्तर नामक स्वर्गो का युगल है । वहा से भी आधे रज्जु तक लातव और कापिष्ट नामक दो स्वर्ग है । वहा से आधे रज्जु प्रमाण आकाश मे शुक्र तथा महाशुक्र नामक स्वर्गो का युगल जानना चाहिए । उसके बाद आधे रज्जु तक शतार और सहस्रार नामक स्वर्गो का युगल है । उसके पश्चात् आधे रज्जु तक आनत व प्राणत दो स्वर्ग है । तदनन्तर आधे रज्जुपर्यत आकाश तक आरण और अच्युत नामक दो स्वर्ग जानने चाहिए । उनमे से पहले के दो युगलो (४ स्वर्गो) मे तो अपने २ स्वर्ग के नाम वाले (सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, महेन्द्र) चार इन्द्र है, बीच के चार युगलो (८ स्वर्गो) मे अपने २ प्रथम स्वर्ग के नाम का धारक एक-एक ही इन्द्र है । (अर्थात् ब्रह्म और ब्रह्मोतर स्वर्ग का एक इन्द्र है और वह ब्रह्म इन्द्र कहलाता है । ऐसे ही बारहवे स्वर्ग तक आठ स्वर्गो मे चार इन्द्र जानने), इनके ऊपर दो युगलो (४ स्वर्गो) मे भी अपने २ स्वर्ग के नाम के धारक चार इन्द्र होते हे । इस प्रकार समुदाय से सोलह स्वर्गो मे बारह इन्द्र जानने [illegible] । सोलह स्वर्गो से ऊपर एक राजु मे नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाच अनुत्तर विमान

रज्जुमध्ये नवग्रैवेयकनवानुदिशपञ्चानुत्तरविमानवासिदेवास्तिष्ठन्ति । ततः परं तत्रैव द्वादशयोजनेषु गतेष्वष्टयोजनबाहुल्या मनुष्यलोकवत्पञ्चाधिकचत्वारिंशल्लक्षयोजनविस्तारा मोक्षशिला भवति । तस्या उपरि घनोदधिघनवाततनुबातत्रयमस्ति । तत्र तनुवातमध्ये लोकान्ते केवलज्ञानाद्यनन्तगुणसहिता सिद्धा तिष्ठन्ति ।

इदानी स्वर्गपटलसंख्या कथ्यते—सौधर्मैशानयोरेकत्रिंशत्, सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त, ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोश्चत्वारि, लान्तवकापिष्टयोर्द्वयम्, शुक्रमहाशुक्रयो पटलमेकम्, शतारसहस्रारयोरेकम्, आनतप्राणतयोस्त्रयम्, आरणाच्युतयोस्त्रयमिति । नवसु ग्रैवेयकेषु नवकं, नवानुदिशेषु पुनरेकं, पञ्चानुत्तरेषु चैकमिति समुदायेनोपर्युपरि त्रिषष्टिपटलानि ज्ञातव्यानि । तथा चोक्तम्—"इगतीससत्तचत्तारिदोण्णिएक्केक्कछक्कचदुकप्पे । तित्तियएक्केकिदियणामा उडु आदि तेसट्ठी ।"

अतः परं प्रथमपटलव्याख्यानं क्रियते । ऋजु विमानं यदुक्तं पूर्वं मेरुचूलिकाया उपरि तस्य मनुष्यक्षेत्रप्रमाणविस्तारस्येन्द्रकसंज्ञा । तस्य चतुर्दिग्भागेष्वसंख्येययोजनविस्ताराणि पंक्तिरूपेण सर्वद्वीपसमुद्रेषूपरि प्रतिदिशं यानि त्रिषष्टिविमानानि तिष्ठन्ति तेषां श्रेणीबद्धसंज्ञा । यानि च पंक्तिरहितपुष्पप्रकरवद्विदिक्चतुष्टये तिष्ठन्ति तेषा संख्येयासं-

---

वासी देव है । उसके आगे वारह योजन जाने पर आठ योजन मोटी और ढाई द्वीप के वरावर पैंतालीस लाख योजन विस्तर वाली मोक्षशिला है । उस मोक्षशिला के ऊपर घनोदधि, घनवात तथा तनुवात नामक तीन वायु है । इनमे से तनुवात के मध्य मे तथा लोक के अन्त मे केवल ज्ञान आदि अनन्त गुणो सहित सिद्ध परमेष्ठी है ।

अव स्वर्ग के पटलो की सख्या वतलाते है । सौधर्म और ईशान इन दो स्वर्गो मे इकत्तीस, सानत्कुमार तथा माहेन्द्र मे सात, व्रह्म और व्रह्मोत्तर मे चार, लातव तथा कापिष्ट मे दो, शुक्र–महाशुक्र मे एक, शतार—सहस्रार मे एक आनत–प्राणत मे तीन और आरण–अच्युत मे भी तीन पटल है । नव ग्रैवेयको मे नौ, नव अनुदिशो मे एक व पंचानुत्तरो मे एक पटल हैं । ऐसे समुदाय से ऊपर–ऊपर ६३ पटल जानने चाहिये । सो ही कहा है–"सौधर्म युगल में ३१, सानत्कुमार युगल में ७ व्रह्म युगल मे ४, लातव युगल मे २, शुक्र युगल मे १, शतार युगल में १, आनत आदि चार स्वर्गो मे ७, प्रत्येक तीनों ग्रैवेयको मे तीन–तीन, नव अनुदिश मे १, पंचानुत्तरो मे एक, ऐसे समुदाय से ६३ इन्द्रक होते है ।

इसके आगे प्रथम पटल का व्याख्यान करते है । मेरु की चूलिका के ऊपर मनुष्य क्षेत्र प्रमाण विस्तार वाले पूर्वोक्त ऋजु विमान की इन्द्रक संज्ञा है । उसकी चारो दिशाओ मे से प्रत्येक दिशा मे, सव द्वीप समद्रो के ऊपर, असख्यात योजन विस्तार वाले पक्तिरूप ६३–६३ विमान हैं, उनकी 'श्रेणीवद्ध' सज्ञा है । पक्ति बिना पुष्पो के समान चारो विदिशाओं मे संख्यात व असंख्यात योजन विस्तार वाले जो विमान है, उन विमानो की 'प्रकीर्णक' संज्ञा है । इस प्रकार समुदाय मे प्रथम पटल का लक्षण

ख्येययोजनविस्ताराणा प्रकीर्णकसज्ञा। इति समुदायेन प्रथमपटललक्षण ज्ञातव्यम्। तत्र पूर्वापरदक्षिणश्रेणित्रयविमानानि, तन्मध्ये विदिग्द्वयविमानानि च सौधर्मसम्बधीनि भवन्ति, शेषविदिग्द्वयविमानानि तथोत्तरश्रेणिविमानानि च पुनरीशानसम्बन्धीनि। अस्मात्पटलादुपरि जिनदृष्टमानेन सख्येयान्यसख्येयानि योजनानि गत्वा तेनैव क्रमेण द्वितीयादिपटलानि भवन्ति। अय च विशेष--श्रेणीचतुष्टये पटले पटले प्रतिदिशमेकैकविमान हीयते यावत् पञ्चानुत्तरपटले चतुर्दिक्ष्वेकैकविमान तिष्ठति। एते सौधर्मादिविमानाश्चतुरशीतिलक्षसप्तनवतिसहस्त्रत्रयोविंगतिप्रमिता अकृत्रिमसुवर्णमयजिनगृहमण्डिता ज्ञातव्या इति।

अथ देवानामायु प्रमाण कथ्यते। भवनवासिषु जघन्येन दशवर्षसहस्राणि, उत्कर्षेण पुनरसुरकुमारेषु सागरोपम, नागकुमारेषु पल्यत्रय, सुपर्णे सार्धद्वय, द्वीपकुमारे द्वय, शेषकुलषट्के सार्धपल्यमिति। व्यन्तरे जघन्येन दशवर्षसहस्राणि, उत्कर्षेण पल्यमधिकमिति। ज्योतिष्कदेवे जघन्येन पल्याष्टमविभाग, उत्कर्षेण चन्द्रे लक्षवर्षाधिक पल्यम्, सूर्ये सहस्राधिक पल्य, शेषज्योतिष्कदेवानामागमानुसारेणेति। अथ सौधर्मैशानयोर्जघन्येन साधिकपल्य, उत्कर्षेण साधिकसागरोपमद्वय, सनत्कुमारमाहेन्द्रयो साधिकसागरोपमसप्तक, ब्रह्मब्रह्मोत्तरयो साधिकसागरोपमदशक, लान्तवकापिष्टयो साधिकानि चतुर्दशसागरोपमानि,

---

जानना चाहिए। उन विमानो मे से पूर्व, पश्चिम और दक्षिण इन तीन श्रेणियो के विमान और इन तीनो दिशाओ के बीच मे दो विदिशाओ के विमान, ये सब सौधर्म प्रथम स्वर्ग सम्बधी है। तथा शेष दो विदिशाओ के विमान और उत्तर श्रेणी के विमान, वे ईशान स्वर्ग सम्बन्धी है। भगवान् द्वारा देखे प्रमाण अनुसार, इस पटल के ऊपर असंख्यात तथा असख्यात योजन जाकर इसी क्रम से द्वितीय आदि पटल है। विशेष यह है-प्रत्येक पटल मे चारो दिशाओ मे से प्रत्येक दिशा मे एक-एक विमान घटता गया है, सो यहा तक घटता है कि पचानुत्तर पटल मे चारो दिशाओ मे एक एक ही विमान रह जाता है। सौधर्म स्वर्ग आदि सम्बन्धी ये सब विमान चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस अकृत्रिम सुवर्णमय जिन चैत्यालयो से मडित है, ऐसा जानना चाहिए।

अब देवो की आयु का प्रमाण कहते है—भवन वासियो मे दस हजार वर्ष की जघन्य आयु है। असुरकुमारो की एक सागर, नागकुमारो मे तीन पल्य, सुपर्णकुमारो मे ढाई पल्य, दीपकुमारो मे दो पल्य और शेष ६ प्रकार के भवनवासियो मे डेढ पल्य प्रमाण उत्कृष्ट आयु है। व्यन्तरो मे दश हजार वर्ष की जघन्य और कुछ अधिक एक पल्य की उत्कृष्ट आयु है। ज्योतिष्क देवो मे जघन्य आयु पल्य के आठवे भाग प्रमाण है। चन्द्रमा की एक लाख वर्ष अधिक एक पल्य और सूर्य की एक हजार वर्ष अधिक एक पल्य प्रमाण उत्कृष्ट आयु है। शेष ज्योतिष्क देवो की उत्कृष्ट आयु आगम के अनुसार जाननी चाहिए। सौधर्म तथा ईशान स्वर्ग के देवो की जघन्य आयु कुछ अधिक एक पल्य और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागर है। सानत्कुमार तथा माहेन्द्र देवो मे कुछ अधिक सात सागर, ब्रह्म और

शुक्रमहाशुक्रयोः षोडश साधिकानि, शतारसहस्रारयोरष्टादशसाधिकानि, आनतप्राणतयोर्विंशतिरेव, आरणाच्युतयोर्द्वाविंशतिरिति। अत परमच्युतादूर्ध्वं कल्पातीतनवग्रैवेयकेषु द्वाविंशतिसागरोपमप्रमाणादूर्ध्वमेकैकसागरोपमे वर्धमाने सत्येकत्रिंशत्सागरोपमान्यवसानग्रैवेयके भवन्ति। नवानुदिशपटले द्वात्रिंशत्, पञ्चानुत्तरपटले त्रयस्त्रिंशत्, उत्कृष्टायु प्रमाण ज्ञातव्यम्। तदायु सौधर्मादिषु स्वर्गेषु यदुत्कृष्ट तत्परस्मिन् परस्मिन् स्वर्गे सर्वार्थसिद्धि विहाय जघन्य चेति। शेष विशेषव्याख्यान त्रिलोकसारादौ बोद्धव्यम्।

किञ्च––आदिमध्यान्तमुक्ते शुद्धबुद्धैकस्वभावे परमात्मनि सकलविमलकेवलज्ञानलोचनेनादर्शे बिम्बानीव शुद्धात्मादिपदार्था लोक्यन्ते दृश्यन्ते ज्ञायन्ते परिच्छिद्यन्ते। यतस्तेन कारणेन स एव निश्चयलोकस्तस्मिन्निश्चयलोकाख्ये स्वकीयशुद्धपरमात्मनि अवलोकनं वा स निश्चयलोक। "सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदाय अट्टरुद्दाणि। णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदो होदि॥ १॥" इति गाथोदितविभावपरिणाममादि कृत्वा समस्तशुभाशुभसकल्पविकल्पत्यागेन निजशुद्धात्मभावनोत्पन्नपरमाह्लादैकसुखामृतरसास्वादानुभवनेन च या भावना सैव निश्चयलोकानुप्रेक्षा। शेषा पुनर्व्यवहारेणेत्येवं संक्षेपेण लोकानुप्रेक्षाव्याख्यान समाप्तम्॥ १०॥

ब्रह्मोत्तर मे कुछ अधिक दस सागर, लातव कापिष्ट मे कुछ अधिक चौदह सागर, शुक्र महाशुक्र मे कुछ अधिक सोलह सागर, शतार और सहस्रार मे किंचित् अधिक अठारह सागर, आनत तथा प्राणत मे पूरे बीस ही सागर और आरण अच्युत मे बाईस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है। इसके अनन्तर अच्युत स्वर्ग से ऊपर कल्पातीत नव ग्रैवेयको तक प्रत्येक ग्रैवेयक मे क्रमश बाईस सागर से एक-एक सागर अधिक उत्कृष्ट आयु है, तदनुसार अन्त के ग्रैवेयक मे इकतीस सागर की उत्कृष्ट आयु है। नव अनुदिश पटल मे बत्तीस सागर और पचानुत्तर पटल मे तेतीस सागर की उत्कृष्ट आयु जाननी चाहिये। तथा सौधर्म आदि स्वर्गो मे जो उत्कृष्ट आयु है, सर्वार्थसिद्धि के अतिरिक्त, वह उत्कृष्ट आयु अपने स्वर्ग से ऊपर ऊपर के स्वर्ग मे जघन्य आयु है। (अर्थात् जो सौधर्म ईशान स्वर्ग मे कुछ अधिक दो सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है, वह सानत्कुमार माहेन्द्र मे जघन्य है। इस क्रम से सर्वार्थसिद्धि के पहले २ जघन्य आयु है।) शेष विशेष व्याख्यान त्रिलोकसार आदि से जानना चाहिए।

विशेष –आदि मध्य तथा अन्तरहित, शुद्ध-बुद्ध-एक-स्वभाव परमात्मदेव मे पूर्ण विमल केवल ज्ञानमयी नेत्र है, उसके द्वारा जैसे दर्पण मे प्रतिबिम्बो का भान होता है उसी प्रकार से शुद्ध आत्मा आदि पदार्थ देखे जाते है, परिच्छिन्न किये जाते है। इस कारण वह निज शुद्ध आत्मा ही निश्चय लोक है, अथवा उस निश्चय लोक वाले निज शुद्ध परमात्मा में जो अवलोकन है वह निश्चय लोक है। 'संज्ञा, तीन लेश्या, इन्द्रियो के वश होना आर्त्त—रौद्र–ध्यान तथा दुष्प्रयुक्त ज्ञान और मोह ये सब पाप को देने वाले है।' इस गाथा मे कहे हुए विभाव परिणाम आदि सम्पूर्ण शुभ–अशुभ संकल्प विकल्पो के

अथ बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा कथयति । तथाहि एकेन्द्रियविकलेन्द्रियपंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्त-मनुष्यदेशकुलरूपेन्द्रियपटुत्वनिर्व्याध्यायुष्कवरबुद्धिसद्धर्मश्रवणग्रहणधारणश्रद्धानसयमविषय-सुखव्यावर्त्तनक्रोधादिकपायनिवर्त्तनेपु परं परं दुर्लभेपु कथचित् काकतालीयन्यायेन लब्धे-ष्वपि तल्लब्धिरूपबोधे फलभूतस्वशुद्धात्मसवित्त्यात्मकनिर्मलधर्मध्यानशुक्लध्यानरूप पर-मसमाधिर्दुर्लभ । कस्मादिति चेत्तत्प्रतिबन्धकमिथ्यात्वविषयकषायनिदानबन्धादिविभाव-परिणामाना प्रवलत्वादिति । तस्मात्स एव निरन्तरं भावनीय । तद्भावनारहिताना पुन-रपि संसारे पतनमिति । तथा चोक्तम्––"इत्यतिदुर्लभरूपा बोधि लब्ध्वा यदि प्रमादी स्यात् । ससृतिभीमारण्ये भ्रमति वराको नर सुचिरम् ॥ १ ॥" पुनश्चोक्तं मनुष्यभवदुर्ल-भत्वम्––"अशुभपरिणामबहुलता लोकस्य विपुलता, महामहती । योनिविपुलता च कुरुते सुदुर्लभा मानुपी योनिम् ॥ १ ॥" बोधिसमाधिलक्षण कथ्यते––सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रा-णामप्राप्तप्रापणं बोधिस्तेपामेव निर्विघ्नेन भवान्तरप्रापणं समाधिरिति । एवं सक्षेपेण दुर्लभानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ १ ॥

त्याग से और निज शुद्ध आत्मा की भावना से उत्पन्न परम आह्लाद सुख रूपी अमृत के आस्वाद के अनुभव से जो भावना होती है, वही निश्चय से लोकानुप्रेक्षा है, शेष व्यवहार से है। इस प्रकार सक्षेप से लोकानुप्रेक्षा का वर्णन समाप्त हुआ। १०।

वोधिदुर्लभ अनुप्रेक्षा—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय, संज्ञो, पर्याप्त, मनुष्य, उत्तम देश, उत्तम कुल, सुन्दर रूप, इन्द्रियो की पूर्णता, कार्य कुशलता, नीरोग, दीर्घ आयु, श्रेष्ठ बुद्धि, समीचीन धर्म का सुनना-ग्रहणकरना-धारण करना-श्रद्धान करना, सयय, विषय सुखो से पराङ्मुखता, क्रोध आदि कपायो से निवृत्ति, ये उत्तरोत्तर दुर्लभ है। कदाचित् काकतालीय न्याय से इन सबके प्राप्त हो जाने पर भी, इनकी प्राप्ति रूप बोधि के फलभूत जो निज शुद्ध आत्मा के ज्ञानस्वरूप निर्मल धर्मध्यान तथा शुक्ल ध्यान रूप परम समाधि है, वह दुर्लभ क्यो है ? समाधान—परम समाधि को रोकने वाले मिथ्यात्व, विपय, कपाय, निदानबंध आदि जो विभाव परिणाम है, उनकी जीवो मे प्रबलता है, इस-लिये परमसमाधि का होना दुर्लभ है। इस कारण उस परमसमाधि की ही निरन्तर भावना करनी चाहिये। क्योकि, उस भावना से रहित जीवो का फिर भी ससार मे पतन होता है। सो ही कहा है-"जो मनुष्य अत्यन्त दुर्लभरूप बोधि को प्राप्त होकर, प्रमादी होता है वह बेचारा ससाररूपी भयकर वन मे चिरकाल तक भ्रमण करता है। १।" मनुष्यभव की दुर्लभता के विषय मे भी कहा है-'अशुभ परिणामो की अधिकता, ससार की विशालता और बडी बड़ी योनियो की अधिकता, ये सब बातें मनुष्य योनि को दुर्लभ बनाती है।' बोधि व समाधि का लक्षण कहते है—पहले नही प्राप्त हुए सम्य-ग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र का प्राप्त होना तो बोधि कहलाती है, और उन्ही सम्यग्दर्शन आदि को निर्विघ्न अन्य भव मे साथ ले जाना सो समाधि है। इस प्रकार संक्षेप से दुर्लभ-अनुप्रेक्षा का कथन

अथ धर्मानुप्रेक्षां कथयति । तद्यथा--संसारे पतन्तं जीवमुद्धृत्य नागेन्द्रनरेन्द्रदेवेन्द्रादिवन्द्ये अव्याबाधानंतसुखाद्यनन्तगुणलक्षणे मोक्षपदे धरतीति धर्मः । तस्य च भेदाः कथ्यन्ते–अहिंसालक्षणः सागारानगारलक्षणो वा उत्तमक्षमादिलक्षणो वा निश्चयव्यवहाररत्नत्रयात्मको वा शुद्धात्मसंवित्त्यात्मकमोहक्षोभरहितात्मपरिणामो वा धर्मः । अस्य धर्मस्यालाभेऽतीतानन्तकाले "णिच्चिदरधाउसत्त य तरुदस वियलेंदियेसु छच्चेव । सुरणिरयतिरियचउरो चउदस मणुयेसु सदसहस्सा ॥ १ ॥" इति गाथाकथितचतुरशीतियोनिलक्षेषु मध्ये परमस्वास्थ्यभावनोत्पन्ननिर्व्याकुलपारमार्थिकसुखविलक्षणानि पञ्चेन्द्रियसुखाभिलाषजनितव्याकुलत्वोत्पादकानि दुःखानि सहमानः सन् भ्रमितोऽयं जीवः । यदा पुनरेवंगुणविशिष्टस्य धर्मस्य लाभो भवति तदा राजाधिराजार्द्धमाण्डलिकमहामण्डलिकबलदेववासुदेवकामदेवसकलचक्रवर्त्तिदेवेन्द्रगणधरदेवतीर्थंकरपरमदेवप्रथमकल्याणत्रयपर्यन्तं विविधाभ्युदयसुखं प्राप्य पश्चादभेदरत्नत्रयतभावनाबलेनाक्षयानन्तसुखादिगुणास्पदमर्हत्पदं सिद्धपदं च लभते । तेन कारणेन धर्म एव परमरसरसायनं निधिनिधानं कल्पवृक्षः कामधेनुश्चिन्तामणिरिति । किं बहुना, ये जिनेश्वरप्रणीतं धर्मं प्राप्य दृढमतयो जानास्त एव धन्याः । तथा चोक्तम् "धन्या

समाप्त हुआ । ११ ।

अब धर्मानुप्रेक्षा को कहते है। संसार मे गिरते हुए जीव को उठाकर, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती, देव, इन्द्र आदि द्वारा पूज्य अथवा बाधारहित अनन्त सुख आदि अनन्त—गुणरूप मोक्ष पद मे जो धारता है वह धर्म है। उस धर्म के भेद कहे जाते है–अहिसा लक्षणवाला, गृहस्थ और मुनि इन लक्षण वाला, उत्तम क्षमा आदि लक्षण वाला, निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय–स्वरूप अथवा शुद्ध आत्मानुभवरूप मोह--क्षोभरहित आत्म--परिणाम वाला धर्म है। परम-स्वास्थ्य-भावना से उत्पन्न व व्याकुलतारहित परमार्थिक सुख से विलक्षण तथा पाचो इन्द्रियो के सुखो की वाछा से उत्पन्न और व्याकुलता करने वाले दुःखो को सहते हुए, इस जीव ने ऐसे धर्म की प्राप्ति न होने से 'नित्यनिगोद वनस्पति मे सात लाख, इतर निगोद वनस्पति मे सात लाख, पृथ्वीकाय मे सात लाख, जलकाय में सात लाख, तेजकाय मे सात लाख, वायुकाय मे सात लाख, प्रत्येक वनस्पति मे दस लाख, वे इन्द्रिय व चौइन्द्रिय मे दो-दो लाख, देव नारकी व तिर्यच मे चार-चार लाख तथा मनुष्यो मे चौदह लाख योनि' इस गाथा मे कही हुई चौरासी लाख योनियों मे, अतीत अनन्त काल तक परिभ्रमण किया है। जब इस जीव को पूर्वोक्त प्रकार के धर्म की प्राप्ति होती है तब राजाधिराज, महाराज, अर्धमण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, बलदेव, नारायण, कामदेव, चक्रवर्ती, देवेन्द्र, गणधरदेव, तीर्थकरो के गर्भ–जन्म तप कल्याणक तक अनेक प्रकार के वैभव सुखो को पाकर, तदनन्तर अभेद रत्नत्रय की भावना के बल से अक्षय अनन्त गुणो के स्थानभूत अरहत पद को और सिद्ध पद को प्राप्त होता है। इस कारण धर्म ही परम रस के लिये रसायन, निधियों की प्राप्ति के लिये निधान, कल्प वृक्ष कामधेनु गाय और चिन्तामणि रत्न है।

ये प्रतिबुद्धा धर्मे खलु जिनवरै समुपदिष्टे । ये प्रतिपन्ना धर्म स्वभावनोपस्थितमनीषा ।।१।।"
इति संक्षेपेण धर्मानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ १२ ॥

इत्युक्तलक्षणा अनित्याशरणससारैकत्वान्यत्वाशुचित्वास्रवसवरनिर्जरालोकवोधिदुर्लभधर्मतत्वानुचिन्तनसंज्ञा निरास्रवशुद्धात्मतत्त्वपरिणतिरूपस्य सवरस्य कारणभूता द्वादशानुप्रेक्षा. समाप्ता ।

अथ परीषहजय कथ्यते---क्षुत्पिपासाशीतोष्णदशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्यागय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानीति द्वाविशतिपरीषहा विज्ञेया । तेषा क्षुधादिवेदनानां तीव्रोदयेऽपि सुखदु खजीवितमरणलाभालाभनिदाप्रशसादिसमतारूपपरमसामायिकेन नवतरशुभाशुभकर्मसवरणचिर तनशुभाशुभकर्मनिर्जरणसमर्थेनाय निजपरमात्मभावनासजात निर्विकारनित्यानदलक्षणसुखामृतसवित्तेरचलन स परीषहजय इति ।

अथ चारित्र कथयति । शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयरत्नत्रयपरिणते स्वशुद्धात्मस्वरूपे चरणमवस्थान चारित्रम् । तच्च तारतम्यभेदेन पञ्चविधम् । तथाहि—सर्वे जीवा केवलज्ञानमया इति भावनारूपेण समतालक्षणं सामायिकम्, अथवा परमस्वास्थ्यबलेन युगपत्सम-

---

विशेष क्या कहे, जो जिनेन्द्रदेव के कहे हुए धर्म को पाकर दृढ बुद्धिधारी (सम्यग्दृष्टि) हुए है वे ही धन्य हैं । सो ही कहा है--"जिनेन्द्र के द्वारा उपदिष्ट धर्म से जो प्रतिबोध को प्राप्त हुए वे धन्य है तथा जिन आत्मानुभव मे सलग्न बुद्धि वालो ने धर्म को ग्रहण किया वे सब धन्य है । १ ।" इस प्रकार सक्षेप से धर्मानुप्रेक्षा समाप्त हुई । १२ ।

इस प्रकार पूर्वोक्त लक्षण वाली, अनित्य, अशरण, ससार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव सवर, निर्जरा, लोक, वोधिदुर्लभ और धर्मतत्त्व के अनुचितन सज्ञा (नाम) वाली और आस्रवरहित शुद्ध-आत्मतत्व मे परिणतिरूप संवर की कारणभूत वारह अनुप्रेक्षा समाप्त हुई ।

अव परीषह--जय का कथन करते है--क्षुधा १ प्यास २, शीत ३, उष्ण ४, दशमशक (डास मच्छर) ५, नग्नता ६, अरति ७, स्त्री ८, चर्या ९, निषद्या (वैठना) १०, शय्या ११, आक्रोश १२, वध १३, याचना १४, अलाभ १५, रोग १६, तृणस्पर्श १७, मल १८, सत्कारपुरस्कार १९, प्रज्ञा [ज्ञान का मद) २०, अज्ञान २१ और अदर्शन २२ । ये वाईस परीषह जानने चाहिए । इन क्षुधा आदि वेदनाओ के तीव्र उदय होने पर भी सुख-दु ख, जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, निदा-प्रशंसा आदि मे समता रूप परम सामायिक के द्वारा तथा नवीन शुभ-अशुभ कर्मो के रुकने और पुराने शुभ-अशुभ कर्मो की निर्जरा की सामर्थ से इस जीव का, निज परमात्मा की भावना से उत्पन्न विकार रहित, नित्यानदरूप अनुभव से, जो नही चलना सो परीषहजय है ।

स्तशुभाशुभसङ्कल्पविकल्पत्यागरूपसमाधिलक्षणं वा, निर्विकारस्वसंवित्तिबलेन रागद्वेषपरिहाररूपं वा, स्वशुद्धात्मानुभूतिबलेनार्त्तरौद्रपरित्यागरूपं वा, समस्तसुखदुःखादिमध्यस्थरूपं चेति । अथ छेदोपस्थापनं कथयति—यदा युगपत्समस्तविकल्पत्यागरूपे परमसामायिके स्थातुमशक्तोऽयं जीवस्तदा समस्तहिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतमित्यनेन पञ्चप्रकारविकल्पभेदेन व्रतच्छेदेन रागादिविकल्परूपसावद्येभ्यो निवर्त्य निजशुद्धात्मन्यात्मानमुपस्थापयतीति छेदोपस्थापनं । अथवा छेदे व्रतखण्डे सति निर्विकारस्वसंवित्तिरूपनिश्चयप्रायश्चित्तेन तत्साधकबहिरङ्गव्यवहारप्रायश्चित्तेन वा स्वात्मन्युपस्थापनं छेदोपस्थापनमिति । अथ परिहारविशुद्धिं कथयति—"तीसं वासो जम्मे वासपुधत्तं च तित्थयरमूले । पच्चक्खाणं पढिदो संज्झूण दुगाउ य विहारो ॥ १ ॥" इति गाथाकथितक्रमेण मिथ्यात्वरागादिविकल्पमलानां प्रत्याख्यानेन परिहारेण विशेषेण स्वात्मनः शुद्धिर्नैर्मल्यं परिहारविशुद्धिश्चारित्रमिति । अथ सूक्ष्मसाम्परायचारित्रं कथयति । सूक्ष्मातीन्द्रियनिजशुद्धात्मसंवित्तिबलेन सूक्ष्मलोभाभिधानसाम्परायस्य कषायस्य यत्र निरवशेषोपशमनं क्षपणं वा तत्सूक्ष्मसाम्परा-

---

अब चारित्र का वर्णन करते है। शुद्ध उपयोग लक्षणात्मक निश्चय रत्नत्रयमयी परिणतिरूप आत्मस्वरूप मे जो आचरण या स्थिति, सो चारित्र है। वह तारतम्य भेद से पाच प्रकार का है। तथा—सब जीव केवलज्ञानमय है, ऐसी भावना से जो समता परिणाम का होना सो सामायिक है। अथवा परम स्वास्थ्य के बल से युगपत् समस्त शुभ, अशुभ, सकल्प विकल्पो के त्यागरूप जो समाधि (ध्यान), वह सामायिक है। अथवा निर्विकार आत्म-अनुभव के बल से राग द्वेष परिहार (त्याग) रूप सामायिक है। अथवा शुद्ध आत्म-अनुभव के बल मे आर्त्तरौद्र ध्यान के त्याग स्वरूप सामायिक है। अथवा समस्त सुख-दु.खो मे मध्यस्त भावरूप सामायिक है। अब छेदोपस्थापन का कथन करते है—जब एक ही साथ समस्त विकल्पो के त्यागरूप परम सामायिक मे स्थित होने मे यह जीव असमर्थ होता है, तब 'समस्त हिसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म तथा परिग्रह से विरति सो व्रत है' इन पाच प्रकार भेद विकल्प रूप व्रतो का छेद होने से राग आदि विकल्परूप सावद्यो से अपने आपको छुडा कर निज शुद्ध आत्मा मे अपने को उपस्थापन करना छेदोपस्थापना है। अथवा छेद अर्थात् व्रत का भग होने पर निर्विकार निज आत्मानुभवरूप निश्चय प्रायश्चित के बल से और उसके साधकरूप वहिरङ्ग व्यवहार प्रायश्चित्त से निज आत्मा मे स्थित होना, छेदोपस्थापन है। परिहार विशुद्धि को कहते है—'जो जन्म से ३० वर्ष सुख से व्यतीत करके वर्षपृथक्त्व (८ वर्ष) तक तीर्थकर के चरणो मे प्रत्याख्यान नामक नौवें पूर्व को पढकर तीनो संध्याकालो को छोडकर प्रतिदिन दो कोस गमन करता है।' इस गाथा मे कहे क्रम अनुसार मिथ्यात्व, राग आदि विकल्प मलो का प्रत्याख्यान अर्थात् त्याग करके विशेष रूप से जो आत्म शुद्धि अथवा निर्मलता, सो परिहार विशुद्धि चारित्र है। अब सूक्ष्म—सापराय चारित्र को कहते है—सूक्ष्म अतिन्द्रिय निज शुद्ध आत्म-अनुभव के बल से सूक्ष्म-लोभ नामक सापराय-कषाय का पूर्णरूप से उपशमन

यचारित्रमिति । अथ यथाख्यातचारित्रं कथयति––यथा सहजशुद्धस्वभावत्वेन निष्कम्पत्वेन निष्कषायमात्मस्वरूप तथैवाख्यात कथित यथाख्यातचारित्रमिति ।

इदानी सामायिकादिचारित्रपञ्चकस्य गुणस्थानस्वामित्व कथयति । प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वानिवृत्तिसज्ञगुणस्थानचतुष्टये सामायिकचारित्रं भवति छेदोपस्थापनंच, परिहारविशुद्धिस्तुप्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानद्वये, सूक्ष्मसापरायचारित्रं पुनरेकस्मिन्नेव सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थाने, यथाख्यातचारित्रमुपशान्तकषायक्षीणकषायसयोगिजिनायोगिजिनाभिधानगुणस्थानचतुष्टये भवतीति । अथ सयमप्रेतिपक्ष कथयति––सयमासयमसंज्ञ दार्शनिकाद्यैकादशभेदभिन्न देशचारित्रमेकस्मिन्नेव पञ्चमगुणस्थाने ज्ञातव्यम् । असयमस्तु मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्राविरतसम्यग्दृष्टिसज्ञगुणस्थानचतुष्टये । भवति । इति चारित्रव्याख्यान समाप्तम् ।

एव व्रतसमितिगुप्तिधर्मद्वादशानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्राणां भावसबरकारणभूताना यद्व्याख्यान कृत, तत्र निश्चयरत्नत्रयसाधकव्यवहाररत्नत्रयरूपस्य शुभोपयोगस्य प्रतिपादकानि यानि वाक्यानि तानि पापास्रवसबरणानि ज्ञातव्यानि । यानि तु व्यवहाररत्नत्रयसाध्यस्य शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयरत्नत्रयस्य प्रतिपादकानि तानि पुण्यपापद्वयसंवरकारणानिभवन्तीनि ज्ञातव्यम् । अत्राह सोमनामराजश्रेष्ठी––भगवन्नेतेषु व्रतादिसवरकारणेषु मध्ये

अथवा क्षपण (क्षय), सो सूक्ष्म-सापराय चारित्र है। अब यथाख्यात चारित्र को कहते है—जैसा निष्कप सहज शुद्ध-स्वभाव से कषाय रहित आत्मा का स्वरूप है, वैसा ही आख्यात अर्थात् कहा गया, सो यथाख्यात चारित्र है।

अब गुणस्थानो मे सामायिक आदि पाच प्रकार के चारित्र का कथन करते है—प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण नामक चार गुणस्थानो मे सामायिक छेदोपस्थापन ये दो चारित्र होते है। परिहार विशुद्धि चारित्र—प्रमत्त, अप्रमत्त इन दो गुणस्थानो मे होता है। सूक्ष्म-सापराय दसवे गुणस्थान मे ही होता है। यथाख्यात चारित्र—उपशात कषाय, सयोगिजिन और अयोगिजिन इन चार गुणस्थानो मे होता है। अब सयम के प्रतिपक्षी (संयमासयम और असयम को कहते है – दार्शनिक आदि ग्यारह प्रतिमारूप सयमासयम नाम वाला देश चारित्र, एक पंचम गुणस्थान मे ही जानना चाहिए । असयम मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र और अविरत–सम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानो मे होता है। इस प्रकार चारित्र का व्याख्यान समाप्त हुआ।

इस प्रकार भावसंवर के कारणभूत व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, द्वादश अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र, इन सबका जो व्याख्यान किया, उनमे निश्चय रत्नत्रय का साधक व्यवहार रत्नत्रय रूप शुभोपयोग के निरूपण करने वाले जो वाक्य हैं, वे पापास्राव के सवर मे कारण जानने चाहिए। जो व्यवहार रत्नत्रय से साध्य शुद्धोपयोग रूप निश्चय रत्नत्रय के प्रतिपादक वाक्य है, वे पुण्य–पाप इन दोनो के संवर के कारण होते है, ऐसा समझना चाहिये।

संवरानुप्रेक्षैव सारभूता, सा चैव संवरं करिष्यति किं विशेषप्रपञ्चेनेति। भगवानाह—त्रिगुप्तिलक्षणनिर्विकल्पसमाधिस्थाना यतीना तयैव पूर्यते तत्रासमर्थाना पुनर्बहुप्रकारेण संवरप्रतिपक्षभूतो मोहो विजृम्भते, तेन कारणेन व्रतादिविस्तरं कथयन्त्याचार्या. "असिदिसद किरियाणं अक्किरियाणं तु होइ चुलसीदी। सत्तट्ठी अण्णाणीणं वेणइयाणं हुंति वत्तीस ॥ १ ॥ जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कषायदो हुंति। अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंधो ठिदिकारणं णत्थि ॥ २ ॥' ॥ ३५ ॥ एव संवरतत्त्वव्याख्याने सूत्रद्वयेन तृतीयं स्थल गतम्।

अथ सम्यग्दृष्टि जीवस्य सवरपूर्वक निर्जरातत्त्व कथयति—

जह कालेण तवेण य भुत्तरस कम्मपुग्गल जेण।
भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥ ३६ ॥

यथाकालेन तपसा च भुक्तरसं कर्म्मपुद्गलं येन।
भावेन सडति ज्ञेया तत्सडनं चेति निर्जरा द्विविधा ॥ ३६ ॥

यहा सोम नामक राजसेठ कहता है कि भगवन्! इन व्रत, समिति आदिक संवर के कारणो मे संवरानुप्रेक्षा ही सारभूत है, वही सवर कर देगी फिर विशेष प्रपंच से क्या प्रयोजन ? भगवान् नेमिचन्द्र आचार्य उत्तर देते है—मन वचन काय इन तीनो की गुप्ति स्वरूप निर्विकल्प ध्यान मे स्थित मुनि के तो उस सवर अनुप्रेक्षा से ही संवर हो जाता है, किन्तु उसमे असमर्थ जीवों के अनेक प्रकार से संबर का प्रतिपक्षभूत मोह उत्पन्न होता है, इस कारण आचार्य व्रत आदि का कथन करते है।

क्रियावादियो के १८०, अक्रियावादियो के ८४, अज्ञानियो के ६७ और वैनयिकों के ३२, ऐसे कुल मिलाकर तीन सौ तिरेसठ भेद पाखडियो के है। १। योग से प्रकृति और प्रदेश तथा कषाय से स्थिति और अनुभाग बंध होना है और जिसके कषाय का उदय नही है तथा कषायो का क्षय हो गया है, ऐसे उपशात कषाय व क्षीण कषाय और सयोगकेवली है उनमे तत्काल (एक समय वाला) बंध स्थिति का कारण नही है। २।' ॥ ३५ ॥ इस प्रकार संवर तत्त्व के व्याख्यान मे दो सूत्रों द्वारा तृतीय स्थल समाप्त हुआ।

अब सम्यग्दृष्टि जीव के सवर-पूर्वक निर्जरा तत्त्व को कहते है—

गाथार्थ—आत्मा के जिस भाव से यथा समय (उदय काल मे) अथवा तप द्वारा फल देकर कर्म नष्ट होता है, वह भाव (परिणाम) भावनिर्जरा है और कर्म पुद्गलो का झड़ना, गलना द्रव्य निर्जरा है। भावनिर्जरा व द्रव्यनिर्जरा की अपेक्षा निर्जरा दो प्रकार है ॥ ३६ ॥

वृत्त्यर्थ:—'णेया' इत्यादि सूत्र का व्याख्यान करते है। 'णेया' जानना चाहिये। किसको ? 'णिज्जरा' भाव निर्जरा को। वह क्या है ? निर्विकार परम चैतन्य चित्-चमत्कार के अनुभव से उत्पन्न सहज-आनन्द-स्वभाव सुखामृत के आस्वाद रूप, वह भाव निर्जरा है। यहा 'भाव' शब्द का अध्याहार

व्याख्या --'णेया' इत्यादिव्याख्यान क्रियते--'णेया' ज्ञातव्या । का ? 'णिज्जरा' भाव निर्जरा । सा का ? निर्विकारपरमचैतन्यचिच्चमत्कारानुभूतिसञ्जातसहजानन्दस्वभाव-सुखामृतरसास्वादरूपो भाव इत्यध्याहार । 'जेण भावेण' येन भावेन जीवपरिणामेन । कि भवति 'सडदि' विशीर्यते पतति गलति विनश्यति । कि कर्तृ ? 'कम्मपुग्गल' कर्मारि-विध्वसकस्वकीयशुद्धात्मनो विलक्षण कर्मपुद्गलद्रव्यं । कथभूतं ? 'भुत्तरस' स्वोदयकाल प्राप्य सासारिकसुखदु खरूपेण भुक्तरसं दत्तफलं । केन कारणभूतेन गलति ? 'जहकालेण' स्वकालपच्यमानाम्रफलवत्सविपाकनिर्जरापेक्षया, अभ्यन्तरे निजशुद्धात्मसंवित्तिपरिणामस्य वहिरगसहकारिकारणभूतेन काललब्धिसज्ञेन यथाकालेन, न केवल यथाकालेन "तवेण य" अकालपच्यमानानामाम्रादिफलवदविपाकनिर्जरापेक्षया, अभ्यन्तरेण समस्तपरद्रव्येच्छानि-रोधलक्षणेन वहिरगेणान्तस्तत्त्वसवित्तिसाधकसभूतेनानशनादिद्वादशविधेन तपसा चेति । "तस्सडण" कर्मणो गलन यच्च सा द्रव्यनिर्जरा । ननु पूर्व यदुक्त 'सडदि' तेनैव द्रव्यनि-र्जरा लब्धा, पुनरपि 'सडण' किमर्थ भणितम् ? तत्रोत्तरम्--तेन सडदिशब्देन निर्मलात्मा-नुभूतिग्रहणभावनिर्जराभिधानपरिणामस्य सामर्थ्यमुक्तं, न च द्रव्यनिर्जरेति । 'इदि दुविहा' इति द्रव्यभावरूपेण निर्जरा द्विविधा भवति ।

अत्राह शिष्य --सविपाकनिर्जरा नरकादिगतिष्वज्ञानिनामपि दृश्यते सज्ञानिना-

---

(विवक्षा से ग्रहण) किया गया है । 'जेण भावेण' जीव के जिस परिणाम से क्या होता है ? 'सडदि' जीर्ण होता है, गिरता है, गलता है अथवा नष्ट होता है । कौन ? 'कम्मपुग्गल' कर्म शत्रुओ का नाश करने वाले निज शुद्धआत्मा से विलक्षण कर्म, रूपी पुद्गल द्रव्य । कैसा होकर ? 'भुत्तरस' अपने उदय-काल मे जीव को सासारिक सुख तथा दु ख रूप रस देकर । किस कारण गलता है ? 'जहकालेण' अपने समय पर पकने वाले आम के फल के समान सविपाक निर्जरा की अपेक्षा, अन्तरग मे निज-शुद्ध आत्म-अनुभव रूप परिणाम के वहिरंग सहकारी कारणभूत काललब्धि रूप यथा समय गलते है मात्र यथा काल से ही नही गलते किन्तु 'तवेण य' विना समय पके हुए आम आदि फलो के सदृश, अविपाक निर्जरा की अपेक्षा, समस्त परद्रव्यो मे इच्छा के रोकने रूप अभ्यंतर तप से और आत्म-तत्व के अनुभव को साधने वाले उपवास आदि बारह प्रकार के वहिरग तप से भी गलते है । 'तस्सडण' उस कर्म का गलना द्रव्य निर्जरा है । शका--आपने जो पहले 'सडदि' ऐसा कहा है उसी से द्रव्यनिर्जरा प्राप्त हो गई, फिर 'सडण' इस शब्द का दुवारा कथन क्यो किया ? समाधान--पहले जो 'सडदि' शब्द कहा गया है, उसने निर्मल आत्मा के अनुभव को ग्रहण करने रूप भाव निर्जरा नामक परिणाम की सामर्थ्य कही गई है, द्रव्य निर्जरा का कथन नही किया गया । 'इदि दुविहा' इस प्रकार द्रव्य और भाव स्वरूप से निर्जरा दो प्रकार की जाननी चाहिये ।

यहा शिष्य पूछता है कि जो सविपाक निर्जरा है, वह तो नरक आदि गतियो मे अज्ञानियो के

मेवेति नियमो नास्ति । तत्रोत्तरम्—अत्रैवमोक्षकारण या संवरपूर्विका निर्जरा सैव ग्राह्या । या पुनरज्ञानिना निर्जरा सा गजस्नानवन्निष्फला । यत स्तोक कर्म निर्जरयति वहुतरं बध्नाति, तेन कारणेन सा न ग्राह्या । या तु सरागसद्दृष्टीना निर्जरा सा यद्यप्यशुभकर्म-विनाश करोति तथापि संसारस्थिति स्तोका कुरुते । तद्भवे तीर्थकरप्रकृत्यादिविशिष्टपुण्य-बन्धकारण भवति पारम्पर्येण मुक्तिकारणं चेति । वीतरागसद्दृष्टीना पुन. पुण्यपापद्वयवि-नाशे तद्भवेऽपि मुक्तिकारणमिति । उक्तं च श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवैः 'जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसदसहस्सकोडीहि । तं णाणी तिहि गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण ॥ १ ॥' कश्चि-दाह—सद्दृष्टीना वीतरागविशेषणं किमर्थ, 'रागादयो हेयो' मदीया न भवन्ति' इति भेद-विज्ञाने जाते सति रागानुभवेऽपि ज्ञानमात्रेण मोक्षो भवतीति । तत्र परिहार । अन्धकारे पुरुषद्वयम् एकः प्रदीपहस्तस्तिष्ठति, अन्य. पुनरेक प्रदीपरहितस्तिष्ठति । स च कूपे पतनं सर्पादिक वा न जानाति, तस्य विनाशे दोषो नास्ति । यस्तु प्रदीपहस्तस्तस्य कूपपतनादि-विनाशे प्रदीपफलं नास्ति । यस्तु कूपपतनादिकं त्यजति तस्य प्रदीपफलमस्ति । तथा कोऽपि

भी होती हुई देखी जाती है । इसलिये सम्यग्ज्ञानियो के सविपाक निर्जरा होती है, यह नियम नही है । इसका उत्तर यह है—यहा (मोक्ष प्रकरण मे जो संवर-पूर्वक निर्जरा है उसी को ग्रहण करना चाहिए, क्योकि वही मोक्ष का कारण है । और जो अज्ञानियो के निर्जरा होती है वह तो गजस्नान (हाथी के स्नान) के समान निष्फल है । क्योकि अज्ञानी जीव थोडे कर्मो की तो निर्जरा करता है और वहुत से कर्मो को वाधता है । इस कारण अज्ञानियो की निर्जरा का यहा ग्रहण नही है । सराग सम्यग्दृष्टियो के जो निर्जरा है, वह यद्यपि अशुभ कर्मो का नाश करती है, (शुभ कर्मो का नाश नही करती) फिर भी ससार की स्थिति को थोडा करती है अर्थात् जीव के ससार भ्रमण को घटाती है । उसी भव मे तीर्थकर प्रकृति आदि विशिष्ट पुण्य बध का कारण हो जाती है और परम्परा से मोक्ष का कारण है । वीतराग सम्यग्दृष्टियो के पुण्य तथा पाप दोनो का नाश होने पर उसी भव मे वह निर्जरा मोक्ष का कारण होती है । सो ही श्री कुन्दकुन्द आचार्य देव ने कहा है—'अज्ञानी जिन कर्मो का एक लाख करोड वर्षो मे नाश करता है, उन्ही कर्मो को ज्ञानी जीव मन-वचन-काय की गुप्ति द्वारा एक उच्छ्वास मात्र मे नष्ट कर देता है । १ ।'

यहा कोई शका करता है कि सम्यग्दृष्टियो के 'वीतराग' विशेषण किस लिये लगाया है, क्योकि 'राग आदि भाव हेय है, ये मेरे नही हैं' ऐसा भेद-विज्ञान होने पर, उसके राग का अनुभव होते हुए भी ज्ञानमात्र से ही मोक्ष हो जाती है ? समाधान—अन्धकार मे दो मनुष्य है, एक के हाथ में दीपक है और दूसरा बिना दीपक के है । उस दीपक रहित पुरुष को, कुएं तथा सर्प आदि का ज्ञान नही होता, इसलिये कुए आदि मे गिरकर नाश होने मे उसका दोष नही । हाथ मे दीपक वाले मनुष्य का कुएं में गिरने आदि से नाश होने पर, दीपक का कोई फल नही हुआ । जो कूपपतन आदि से बचता है उसके दीपक का फल है । इसी प्रकार जो कोई मनुष्य 'राग आदि हेय हैं' मेरे नही है' इस भेद-विज्ञान को

रागादयो हेया मदीया न भवन्तीति भेदविज्ञान न जानाति स कर्मणा बध्यते तावत्, अन्य: कोऽपि रागादिभेदविज्ञाने जातेऽपि यावताशेन रागादिकमनुभवति तावताशेन सोऽपि बध्यत एव, तस्यापि रागादिभेदविज्ञानफलं नास्ति । यस्तु रागादिभेदविज्ञाने जाते सति रागादिक त्यजति तस्य भेदविज्ञानफलमस्तीति ज्ञातव्यम् । तथा चोक्त---'चक्खुस्स दसणस्स य सारो सप्पादिदोसपरिहरण । चक्खू होइ णिरत्थ दठ्ठूण विले पडतस्स' ॥ ३६ ॥ एव निर्जराव्याख्याने सूत्रेणैकेन चतुर्थस्थल गतम् ।

अथ मोक्षतत्त्वमावेदति --

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो ।
णेयो स भावमुक्खो दव्वविमुक्खो य कम्मपुहभावो ॥ ३७ ॥

सर्वस्य कर्मण: य. क्षयहेतु: आत्मन: हि परिणाम: ।
ज्ञेय: स: भावमोक्ष: द्रव्यविमोक्ष: च कर्मपृथग्भाव: ॥ ३७ ॥

व्याख्या---यद्यपि सामान्येन निरवशेषनिराकृतकर्ममलकलङ्कस्याशरीरस्यात्मन आत्यन्तिकस्वाभाविकाचिन्त्याद्‌भुतानुपमसकलविमलकेवलज्ञानाद्यनन्तगुणास्पदमवस्थान्तर

नही जानता, वह तो कर्मो से बंधता ही है। दूसरा कोई मनुष्य भेद-विज्ञान के होने पर भी जितने अंशो मे रागादिक का अनुभव करता है, उतने अशो से वह भेद-विज्ञानी भी बंधता ही हैं, उसके रागादि के भेद-विज्ञान का भी फल नही है। जो भेद-विज्ञान होने पर राग आदि का त्याग करता है उसके भेद-विज्ञान का फल है, ऐसा जानना चाहिए। सो ही कहा है-'मार्ग मे सर्प आदि से बचना, नेत्रो से देखने का यह फल है, देखकर भी सर्प के बिल मे पडने वाले नेत्र निरर्थक है।' ॥ ३६ ॥

इस प्रकार निर्जरा तत्त्व के व्याख्यान मे एक सूत्र द्वारा चौथा स्थल समाप्त हुआ।

अव मोक्षतत्त्व को कहते है —

गाथार्थ:—सव कर्मो के नाश का कारण जो आत्मा का परिणाम है, उसको भाव मोक्ष जानना चाहिए। कर्मो का आत्मा से सर्वथा पृथक होना, द्रव्यमोक्ष है। ३७।

वृत्त्यर्थ —यद्यपि सामान्य रूप से सम्पूर्णतया कर्ममल-कलक-रहित, शरीर रहित, आत्मा के आत्यन्तिक—स्वाभाविक-अचिन्त्य-अद्‌भुत तथा अनुपम सकल विमल केवलज्ञान आदि अनन्त गुणो का स्थान रूप जो अवस्थान्तर है वही मोक्ष कहा जाता है, फिर भी भाव और द्रव्य के भेद से, वह मोक्ष दो प्रकार का होता है, यह वार्त्तिक पाठ है। सो इस प्रकार है-'णेयो स भावमुक्खो' वह भाव-मोक्ष जानना चाहिए। वह कौन ? 'अप्पणो हु परिणामो' निश्चय रत्नत्रय रूप कारण समयसार रूप आत्म-परिणाम। वह आत्मा का परिणाम कैसा है ? 'सव्वस्स कम्मणणो जो खयहेदू' सब द्रव्य-भावरूप मोहनीय आदि चार घातियाकर्मो के नाश का जो कारण है। द्रव्यमोक्ष को कहते है-'दव्वविमुक्खो' [illegible] गुणस्थान के अन्त समय मे द्रव्यमोक्ष होता है। वह द्रव्यमोक्ष कैसा है ? 'कम्मपुहभावो' टका-

त्वेन स्वसवेद्यमात्मसुख तद्विशेषेणातीन्द्रियम् । यच्च भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहिताना सर्वप्रदेशाह्लादैकपारमार्थिकपरमानन्दपरिणताना मुक्तात्मनामतीन्द्रियसुख तदत्यन्तविशेषेण ज्ञातव्यम् । अत्राह शिष्य —संसारिणा निरन्तर कर्मबन्धोस्ति, तथैवोदयोऽप्यस्ति, शुद्धात्मभावनाप्रस्तावो नास्ति, कथ मोक्षो भवतीति ? तत्र प्रत्युत्तर—यथा शत्रो क्षीणावस्था दृष्ट्वा कोऽपि धीमान् पर्यालोचयत्यय मम हनने प्रस्तावस्तत पौरुष कृत्वा शत्रुं हन्ति । तथा कर्मणामप्येकरूपावस्था नास्ति, हीयमानस्थित्यनुभागत्वेन कृत्वा यदा लघुत्व क्षीणत्वं भवति तदा धीमान् भव्य आगमभाषया 'खयउवसमिय विसोही देसण पाउग्ग करणलद्धी य । चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होइ सम्मत्ते ॥ १ ॥' इति गाथाकथितलब्धिपञ्चकसज्ञेनाध्यात्मभाषया निजशुद्धात्माभिमुखपरिणामसंज्ञेन च निर्मलभावनाविशेषखड्गेन पौरुषं कृत्वा कर्मशत्रुं हन्तीति । यत्पुनरन्त कोटाकोटीप्रमितकर्मस्थितिरूपेण तथैव लतादारुस्थानीयानुभागरूपेण च कर्मलघुत्वे जाते अपि सत्यय जीव आगमभाषया अध प्रवृत्तिकरणापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसज्ञामध्यात्मभाषया स्वशुद्धात्माभिमुखपरिणतिरूपा कर्महननबुद्धि क्वापि काले न करिष्यतीति तदभव्यत्वगुणस्यैव लक्षणं ज्ञातव्यमिति । अन्यदपि दृष्टान्तनवक मोक्षविपये ज्ञातव्यम्—"रयण दीव दिणयर दहिउ दुद्धउ घीव । पहाणु । सुण्णुरुप्पफलिउ अगणि, णव दिट्ठंता जाणि ॥ १ ॥" नन्वनादिकाले मोक्षं गच्छता जीवाना जगच्छून्यं

उदय भी सदा होता रहता है, शुद्ध आत्म-ध्यान का प्रसग ही नही । तब मोक्ष कैसे होती है ? इसका उत्तर देते है—जैसे कोई बुद्धिमान्, शत्रु की निर्बल अवस्था देखकर विचार करता है कि 'यह मेरे मारने का अवसर है', इसलिये पुरुपार्थ करके शत्रु को मारता हे । इसी प्रकार कर्मो की भी सदा एक रूप अवस्था नही रहती, स्थिति और अनुभाग की न्यूनता होन पर जब कर्म लघु अर्थात् क्षीण होते है, तब बुद्धिमान् भव्य जीव, आगम भापा से 'क्षयोपशम, विशुद्धि, दशना, प्रायोग्य ओर करण ये पाच लव्धिया है, इनमे चार तो सामान्य हे (सभी जीवो को हो सकती है), करण लब्धि सम्यक्त्व होने के समय होती हे । १ ।' इस गाथा मे कही हुई पाच लब्धियो से और अध्यात्म भापा मे निज शुद्ध आत्मा के सम्मुख परिणाम नामक निर्बल भावना विशेप रूप खड्ग से पौरुप करके, कर्म शत्रु को नष्ट करता हे । अन्त.—कोटाकोटि—प्रमाण कर्मस्थिति रूप तथा लता व काष्ठ के स्थानापन्न अनुभाग रूप से कर्मभार हलका हो जाने पर भी यदि यह जीव आगम भापा से अध प्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण नामक और अध्यात्म भाषा से स्वशुद्ध-आत्मसन्मुख परिणाम रूप ऐसी कर्मनाशक बुद्धि को किसी भी समय नही करेगा, तो यह अभव्यत्व गुण का लक्षण जानना चाहिए । अन्य भी नौ दृष्टान्त मोक्ष के विपय मे जानने योग्य है ।

"रत्न, दीपक, सूर्य, दूध, दही, घी, पापाण, सोना, चादी, स्फटिकमणि और अग्नि इन नौ दृष्टातो से जानना चाहिये । १ ।" (१. रत्न—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपी रत्नत्रयमयी होने से आत्मा रत्न के समान है । २. दीपक—स्व पर प्रकाशक होने से आत्मा दीपक के समान है । ३. सूर्य

भविष्यतीति ? तत्र परिहारः—यथा भाविकालसमयानां क्रमेण गच्छतां यद्यपि भाविकालसमयराशेः स्तोकत्वं भवति तथाप्यवसानं नास्ति । तथा मुक्तिं गच्छतां जीवानां यद्यपि जीवराशेः स्तोकत्वं भवति तथप्यवसानं नास्ति । इति चेत्तर्हि पूर्वकाले बह्वोऽपि जीवा मोक्षं गता इदानी जगतः शून्यत्व किं न दृश्यते । किञ्चाभव्यानामभव्यसमानभव्यानां च मोक्षो नास्ति कथ शून्यत्वं भविष्यतीति ॥ ३७ ॥ एव संक्षेपेण मोक्षतत्त्वव्याख्यानेनैकसूत्रेण पञ्चमं स्थलं गतम् ।

अतः ऊर्ध्वं षष्ठस्थले गाथापूर्वार्धेन पुण्यपापपदार्थद्वयस्वरूपमुत्तरार्धेन च पुण्यपापप्रकृतिसंख्यां कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा भगवान् सूत्रमिदम् प्रतिपादयति ।

सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा ।
सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥३८॥

केवल-ज्ञानमयी तेज से प्रकाशमान होने से आत्मा सूर्य के समान है । ४. दूध दही घी—सार वस्तु होने से परमात्मा रूपी आत्मा घी के समान है । ससारी आत्मा मे परमात्मा शक्ति रूप से रहता है, जैसे दूध व दही मे घी रहता है । अत: ससारी आत्मा को अपेक्षा आत्मा दूध या दही के समान है । ५ पाषाण टंकोत्कीरण ज्ञायक स्वभाव होने से आत्मा पाषाण के समान है । ६. सुवर्ण—कर्म रूपी कालिमा से रहित होने मे आत्मा सुवर्ण के समान है । ७. चादी—स्वच्छ होने से आत्मा चादी के समान है । ८. स्फटिक, स्वभाव से निमल होने पर भी, हरी पीली काली डाक के निमित्त से हरी पीली काली रूप परिणम जाती है और डाक के अभाव मे शुद्ध निर्मल हो जाती है । इसी प्रकार आत्मा, स्वभाव से निर्मल होने पर भी, कर्मोदय के निमित्त से राग द्वेष मोह रूप परिणमती है और कर्म के अभाव मे शुद्ध निर्मल हो जाती है, अत: आत्मा स्फटिक के समान है । ९ अग्नि—जैसे अग्नि इंधन को जलाती है, इसी प्रकार आत्मा कर्म रूपी इधन को जलाती है, अतः आत्मा अग्नि के समान है ।]

शका—अनादि काल से जीव मोक्ष को जा रहे है, अत यह जगत् कभी जीवो से विलकुल शून्य हो जायेगा ? इसका परिहार–जैसे भविष्यत् काल सम्बन्धी समयो के क्रम से जाने पर यद्यपि भविष्यत्काल के समयो की राशि में कमी होती है फिर भी उसका अंत नही होगा । इसी प्रकार जीवों के मुक्ति में जाने से यद्यपि जगत् मे जीवराशि की न्यूनता होती है, तो भी उस जीवराशि का अन्त नही होगा । यदि जीवो के मोक्ष जाने मे शून्यता मानते हो तो पूर्वकाल मे बहुत जीव मोक्ष गये है, तब भी इस समय जगत् में जीवो की शून्यता क्यों नही दिखाई पडती ? अर्थात् शून्यता नहीं हुई । और भी अभव्य जीवो तथा अभव्यों के समान दूरानदूर भव्य जीवों का मोक्ष नही है । फिर जगत् की शून्यता कैसे होगी ॥ ३७ ॥ इस प्रकार सक्षेप मे मोक्षतत्त्व के व्याख्यान रूप एक सूत्र से पंचम स्थल समाप्त हुआ ।

शुभाशुभभावयुक्ता: पुण्य पाप भवन्ति खलु जीवा: ।
सात शुभायु: नाम गोत्रं पुण्यं पराणि पाप च ॥ ३८ ॥

व्याख्या---"पुण्ण पाव हवति खलु जीवा" चिदानन्दैकसहजशुद्धस्वभावत्वेन पुण्यपापबन्धमोक्षादिपर्यायरूपविकल्परहिता अपि सन्तानागतानादिकर्मबन्धपर्यायेण पुण्य पाप च भवन्ति खलु स्फुट जीवा । कथभूता सन्त ? "सुहअसुहभावजुत्ता" उद्वमिथ्यात्वविष भावय दृष्टि च कुरु परा भक्तिम् । भावनमस्काररतो ज्ञाने युक्तो भव सदापि ॥ १ ॥ पञ्चमहाव्रतरक्षा कोपचतुष्कस्य निग्रह परमम् । दुर्दान्तेन्द्रियविजय तप सिद्धिविधौ कुरूद्योगम् ॥ २ ॥' इत्यार्याद्वियकथितलक्षणेन शुभोपयोगभावेन परिणामेन तद्विलक्षणेनाशुभोपयोगपरिणामेन च युक्ता परिणता । इदानी पुण्यपापभेदान् कथयति "साद सुहाउ णाम गोद पुण्ण" सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्य भवति "पराणि पाव च" तस्मादपराणि कर्माणि पाप चेति । तद्यथा---सद्वेद्यमेक, तिर्यग्मनुष्यदेवायुस्त्रय, सुभगयश –कीर्त्तितीर्थकरत्वादिनामप्रकृतीना सप्तत्रिशत्, तथोच्चैर्गोत्रमिति समुदायेन द्विचत्वारिशत्सख्या पुण्यप्रकृतयो विज्ञेया । शेषा द्व्यशीतिपापमिति । तत्र 'दर्शनविशुद्धिर्विनयसपन्नता शीलव्रतेष्वनतिचा-

---

अव इसके आगे छठे स्थल मे "गाथा के पूर्वार्ध से पुण्य पाप रूप दो पदार्थो को और उत्तरार्ध से पुण्य प्रकृति तथा पाप प्रकृतियो की सख्या को कहता हू" इस अभिप्राय को मन मे रखकर, भगवान् इस सूत्र का प्रतिपादन करते है –

गाथार्थ –शुभ तथा अशुभ परिणामो से युक्त जीव, पुण्य–पाप रूप होते है। सातावेदनीय, शुभ–आयु, शुभ–नाम तथा उच्च—गोत्र, ये पुण्य प्रकृतिया हैं । शेष सब पाप प्रकृतिया है ॥ ३८ ॥

वृत्त्यर्थ --"पुण्ण पाव हवति खलु जीवा" चिदानन्द एक—सहज–शुद्ध–स्वभाव से यह जीव, पुण्य–पाप, बध–मोक्ष आदि पर्याय रूप विकल्पो से रहित है, तो भी परम्परा—अनादि कर्मबन्ध पर्याय से पुण्य–पाप रूप होते है । कैसे होते हुए जीव पुण्य–पाप को धारण करते है ? "सुहअसुहभावजुत्ता", "मिथ्यात्व रूपी विष का वमन करो, सम्यग्दर्शन की भावना करो, उत्कृष्ट भक्ति करो और भाव नमस्कार मे तत्पर होकर सदा ज्ञान मे लगे रहो । १ । पाच महाव्रतो का पालन करो, क्रोध आदि चार कषायो का पूर्णरूप से निग्रह करो, प्रवल इन्द्रियो को विजय करो तथा बाह्य–अभ्यन्तर तप को सिद्ध करने मे उद्योग करो । २ ।" इस प्रकार दोनो आर्याछन्दो मे कहे हुए लक्षण सहित शुभ उपयोग रूप परिणाम से तथा उसके विपरीत अशुभ उपयोग रूप परिणाम से युक्त जीव, पुण्य—पाप को धारण करते है अथवा स्वय पुण्य–पाप रूप हो जाते है । अव पुण्य तथा पाप के भेदो को कहते है । "साद सुहाउ णाम गोद पुण्ण" साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और उच्च गोत्र ये कर्म तो पुण्य रूप है । "पराणि पाव च" इनसे भिन्न शेष पाप कर्म है । इस प्रकार–साता वेदनीय एक, तिर्यच-मनुष्य-देव ये [illegible] आयु, सुभग-यशकीर्ति—तीर्थकर आदि नाम कर्म की सेंतीस और उच्च गोत्र ऐसे समुदाय से ४२ [illegible] जाननी चाहिये । शेष ८२ पाप प्रकृतिया है ।

रोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसीसाधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावन प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य' इत्युक्तलक्षणषोडशभावनोत्पन्नतीर्थकरनामकर्मैव विशिष्ट पुण्यम् । षोडशभावनासु मध्ये परमागमभाषया "मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथानायतनानि षट् । अष्टौ शङ्कादयश्चेति दृग्दोषा पञ्चविंशति ॥ १ ॥" इति श्लोककथितपञ्चविंशतिमलरहिता तथाध्यात्मभाषया निजशुद्धात्मोपादेयरुचिरूपा सम्यक्त्वभावनैव मुख्येति विज्ञेयम् । 'सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य पुण्यपापद्वयमपि हेयम्' कथ पुण्य करोतीति ? तत्र युक्तिमाह । यथा कोऽपि देशान्तरस्थमनोहरस्त्रीसमीपादागतपुरुषाणा तदर्थे दानसन्मानादिक करोति तथा सम्यग्दृष्टि अप्युपादेयरूपेण स्वशुद्धात्मानमेव भावयति चारित्रमोहोदयात्तत्रासमर्थ सन् निर्दोषपरमात्मस्वरूपाणामर्हत्सिद्धाना तदाराधकाचार्योपाध्यायसाधूना च परमात्मपदप्राप्त्यर्थ विषयकषायवञ्चनार्थ च दानपूजादिना गुणस्तवनादिना वा परमभक्ति करोति तेन भोगाकाङ्क्षादिनिदानरहितपरिणामेन कुटुम्बिनां (कृषकानां) पलालमिव अनीहितवृत्त्या विशिष्टपुण्यमास्रवति तेन च स्वर्गे देवेन्द्रलोकान्तिकादिविभूतिं प्राप्य विमानपरिवारादिसपदं जीर्णतृणमिव गणयन् पञ्चमहाविदेहेषु गत्वा

'दर्शनविशुद्धि १, विनयसपन्नता २, शील और व्रतो का अतिचार रहित आचरण ३ निरन्तर ज्ञान उपयोग ४ सवेग ५ शक्ति अनुसार त्याग ६, शक्ति अनुसार तप ७, साधु समाधि ८, वैयावृत्य करना ९, अर्हन्तभक्ति १०, आचार्य-भक्ति ११, बहुश्रुत-भक्ति १२, प्रवचन -भक्ति १३, आवश्यको मे हानि न करना १४, मार्ग-प्रभावना १५ और प्रवचनवात्सल्य १६ ये तीर्थकर प्रकृति के बंध के कारण है' इन सोलह भावनाओ से उत्पन्न तीर्थकर नामकर्म विशिष्ट पुण्य है । इन सोलह भावनाओ मे, परमागम भाषा से 'तीन मूढता, आठ मद, ६ अनायतन और आठ शका आदि दोष ये पच्चीस सम्यग्दर्शन के दोष है । १ । इस श्लोक से कहे हुए पच्चीस दोषो से रहित तथा अध्यात्म भाषा से निज शुद्ध-आत्मा मे उपादेयरूप रुचि, ऐसी सम्यक्त्व की भावना ही मुख्य है, ऐसा जानना चाहिये ।

शका----सम्यग्दृष्टि जीव के तो पुण्य तथा पाप ये दोनो हेय है, फिर वह पुण्य कैसे करता है ? युक्ति सहित समाधान–जैसे कोई मनुष्य अन्य देश मे विद्यमान किसी मनोहर स्त्री के पास से आये हुए मनुष्यो का, उस स्त्री की प्राप्ति के लिये दान-सम्मान आदि करता है, ऐसे ही सम्यग्दृष्टि जीव भी निज शुद्ध-आत्मा को ही भाता है, परन्तु जब चारित्र मोह के उदय से उस निज-शुद्धात्म-भावना भाने मे असमर्थ होता है, तब दोषरहित परमात्म स्वरूप अर्हन्त-सिद्धों की तथा उनके आराधक आचार्य-उपाध्याय साधु की, परमात्मपद की प्राप्ति के लिए और विषय कषायो से बचने के लिए, पूजा दान आदि से अथवा गुणो की स्तुति आदि से परम भक्ति करता है । उनसे और भोगो की वाछा आदि रूप निदान रहित परिणामो से तथा निःस्पृह वृत्ति से विशिष्ट पुण्य का आस्रव करता है, जैसे किसान [illegible] खेती करता है, तो भी बिना इच्छा बहुत सा पलाल मिल ही जाता है । उस पुण्य से [illegible]

पश्यति । किं पश्यतीति चेत्––तदिद समवसरणं, त एते वीतरागसर्वज्ञा., त एते भेदाभेद-रत्नत्रयाराधका गणधरदेवादयो ये पूर्वं श्रूयन्ते त इदानी प्रत्यक्षेण दृष्टा इति मत्वा विशेषेण दृढधर्ममतिर्भूत्वा चतुर्थगुणस्थानयोग्यामात्मनो भावनामपरित्यजन् भोगानुभवेऽपि सति धर्मध्यानेन काल नीत्वा स्वर्गादागत्य तीर्थकरादिपदे प्राप्तेऽपि पूर्वभवभावितविशिष्टभेदज्ञानवासनाबलेन मोह न करोति ततो जिनदीक्षा गृहीत्वा पुण्यपापरहितनिजपरमात्मध्यानेन मोक्ष गच्छतीति । मिथ्यादृष्टिस्तु तीव्रनिदानबन्धपुण्येन भोग प्राप्य पश्चादर्द्धचक्रवर्त्तिरावणादिवन्नरक गच्छतीति । एवमुक्तलक्षणपुण्यपापपदार्थद्वयेन सह पूर्वोक्तानि सप्ततत्त्वान्येव नव पदार्था भवन्तीति ज्ञातव्यम् ।

इति श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तिकदेवविरचिते द्रव्यसग्रहग्रन्थे "आसवबधण" इत्यादि एका सूत्रगाथा तदनन्तर गाथादशकेन स्थलषट्क चेति समुदायेनैकादशसूत्रै सप्ततत्त्वनवपदार्थप्रतिपादकनामा द्वितीयोमहाधिकार समाप्त ॥२॥

लोकान्तिक देव आदि की विभूति प्राप्त करके, विमान तथा परिवार आदि सपदा को जीर्ण तृण के समान गिनता हुआ पञ्च महाविदेहो मे जाकर देखता है। प्रश्न--क्या देखता है ? उत्तर----वह यह समवसरण है, वे ये वीतराग सर्वज्ञ भगवान् है, वे ये भेद-अभेद रत्नत्रय के आराधक गण धर देव आदि है, जो पहले सुने थे, वे आज प्रत्यक्ष देखे, ऐसा मानकर धर्म-बुद्धि को विशेष दृढ करके चौथे गुणस्थान के गुणस्थान के योग्य आत्मभावना को न छोडता हुआ, भोग भोगता हुआ भी धर्मध्यान से काल को पूर्ण कर, स्वर्ग से आकर, तीर्थकर आदि पद को प्राप्त होता है, तो भी पूर्व जन्म मे भावित विशिष्ट भेदज्ञान की वासना के बल से मोह नही करना, अत जिन-दीक्षा धारण कर पुण्य-पाप से रहित निज परमात्मध्यान के द्वारा मोक्ष जाता है। मिथ्यादृष्टि तो, तीव्र निदानबध वाले पुण्य से भोग प्राप्त करने के पश्चात् अर्ध-चक्रवर्त्ती रावण आदि के समान नरक को जाता है । एव उक्त लक्षण वाले पुण्य-पाप रूप दो पदार्थ सहित पूर्वोक्त सात तत्त्व ही ९ पदार्थ हो जाते है । ऐसा जानना चाहिए ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव-विरचित द्रव्यसग्रह ग्रन्थ मे 'आसव-बधण' आदि एक सूत्रगाथा, तदनतर १० गाथाओं द्वारा ६ स्थल, इस तरह समुदाय रूप से ११ गाथाओ द्वारा सात तत्त्व, नौ पदार्थ प्रतिपादन करने वाला दूसरा अधिकार समाप्त हुआ ॥ २ ॥

तृतीयः अधिकारः

अतः ऊर्ध्वं विंशतिगाथापर्यन्तं मोक्षमार्गं कथयति । तत्रादौ 'सम्मद्दंसण' इत्या-द्यष्टगाथाभिर्निश्चमोक्षमार्गव्यवहारमोक्षमार्गप्रतिपादकमुख्यत्वेन प्रथमः अन्तराधिकारस्ततः परम् 'दुविहं पि मुक्खहेउं' इति प्रभृतिद्वादशसूत्रैर्ध्यानध्यातृध्येयध्यानफलकथनमुख्यत्वेन द्वितीयोऽन्तराधिकारः । इति तृतीयाधिकारे समुदायेन पातनिका ।

अथ प्रथमतः सूत्रपूर्वार्धेन व्यवहारमोक्षमार्गमुत्तरार्धेन च निश्चयमोक्षमार्गं निरूपयति :—

सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ।
ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा ।। ३९ ।।

सम्यग्दर्शनं ज्ञानं चरणं मोक्षस्य कारणं जानीहि।
व्यवहारात् निश्चयतः तत्त्रिकमयः निजः आत्मा ।। ३९ ।।

व्याख्या—'सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ववहारा' सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं मोक्षस्य कारणं, हे शिष्य ! जानीहि व्यवहारनयात् । 'णिच्छयदो

तीसरा अधिकार

अब आगे बीस गाथाओं तक मोक्ष-मार्ग का कथन करते हैं। उसके प्रारम्भ में 'सम्मद्दंसणणाणं' इत्यादि आठ गाथाओं द्वारा प्रधानता से निश्चय मोक्ष-मार्ग और व्यवहार मोक्ष-मार्ग का प्रतिपादक प्रथम अन्तराधिकार है । उसके अनंतर 'दुविहं पि मुक्खहेउं' आदि बारह गाथाओं से ध्यान, ध्याता, ध्येय तथा ध्यान के फल को मुख्यता से कहने वाला द्वितीय अन्तराधिकार है। इस प्रकार इस तृतीय अधिकार की समुदाय से भूमिका है ।

अब प्रथम ही सूत्र के पूर्वार्ध से व्यवहार मोक्ष-मार्ग को और उत्तरार्ध से निश्चय मोक्ष-मार्ग कहते हैं :—

गाथार्थ :—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र (इन तीनों के समुदाय) को व्यवहारनय से मोक्ष का कारण जानो । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमयी निज आत्मा को निश्चय से मोक्ष का कारण जानो ।। ३९ ।।

वृत्त्यर्थ :—'सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ववहारा' हे शिष्य ! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र (इन तीनों के समुदाय) को व्यवहार नय से मोक्ष का कारण जानो।

तित्तियमइओ णिओ अप्पा' निश्चयस्तत्त्रितयमयो निजात्मेति । तथाहि—वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थसम्यक्श्रद्धानज्ञानव्रताद्यनुष्ठानविकल्परूपो व्यवहारमोक्षमार्ग । निजनिरञ्जनशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणैकाग्र्यपरिणतिरूपो निश्चयमोक्षमार्ग । अथवा स्वशुद्धात्मभावनासाधकवहिर्द्रव्याश्रितो व्यवहारमोक्षमार्ग । केवलस्वसंवित्तिसमुत्पन्नरागादिविकल्पोपाधिरहितसुखानुभूतिरूपोनिश्चय–मोक्षमार्ग । अथवा धातुपाषाणेऽग्निवत्साधको व्यवहारमोक्षमार्ग, सुवर्णस्थानीयनिर्विकारस्वोपलब्धिसाध्यरूपो निश्चयमोक्षमार्ग । एव सक्षेपेण व्यवहारनिश्चयमोक्षमार्गलक्षण ज्ञातव्यमिति ॥३९॥

अथाभेदेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि स्वशुद्धात्मैव तेन कारणेन निश्चयेनात्मैव निश्चयमोक्षमार्ग इत्याख्याति । अथवा पूर्वोक्तमेव निश्चयमोक्षमार्ग प्रकारान्तरेण दृढयति –

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियह्मि ।
तह्मा तत्तियमइउ होदि हु मुक्खस्स कारणं आदा ॥ ४० ॥

रत्नत्रय न वर्त्तते आत्मान मुक्त्वा अन्यद्रव्ये ।
तस्मात् तत्त्रिकमयः भवति खलु मोक्षस्य कारण आत्मा ॥४०॥

'णिच्छयदो तत्तिरमइओ णिओ अप्पा' सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र इन तीनमयी निज आत्मा ही निश्चय नय से मोक्ष का कारण है । तथा—श्री वीतराग सर्वज्ञदेव कथित छह द्रव्य, पाच अस्तिकाय, सात तत्त्व और नव पदार्थो का सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान और व्रत आदि रूप आचरण, इन विकल्पमयी व्यवहार मोक्ष-मार्ग है। निज निरजन शुद्ध-बुद्ध आत्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान, ज्ञान तथा आचरण मे एकाग्रपरिणति रूप निश्चय मोक्ष-मार्ग है। अथवा स्वशुद्धात्म-भावना का साधक व बाह्य पदार्थ के आश्रित व्यवहार मोक्ष-मार्ग है। मात्रस्वानुभव से उत्पन्न व रागादि विकल्पो से रहित सुख अनुभवन रूप निश्चय मोक्ष-मार्ग है। अथवा धातु-पाषाण से सुवर्ण मे प्राप्ति मे अग्नि के समान जो साधक है, वह तो व्यवहार मोक्ष-मार्ग है तथा सुवर्ण समान निर्विकार निज-आत्मा के स्वरूप की प्राप्ति रूप साध्य, वह निश्चय मोक्ष-मार्ग है । इस प्रकार सक्षेप से व्यवहार तथा निश्चय मोक्ष-मार्ग का लक्षण जानना चाहिए ॥ ३९ ॥

अब अभेद से सम्यग्दर्शन--ज्ञान--चारित्ररूप, निज शुद्ध-आत्मा ही है, इस कारण निश्चय मे आत्मा ही निश्चय मोक्षमार्ग है, इस प्रकार कथन करते है । अथवा पूर्वोक्त निश्चय मोक्ष-मार्ग को ही अन्य प्रकार से दृढ करते है ----

गाथार्थ .—आत्मा को छोडकर अन्य द्रव्य मे रत्नत्रय नही रहता, इस कारण उन रत्नत्रयमयी आत्मा ही निश्चय से मोक्ष का कारण हे ॥ ४० ॥

वृत्यर्थ —'रयणत्तय ण वट्टइ अप्पाण मुइत्तु अण्णदवियह्मि' निज शुद्ध-आत्मा को छोडकर चे द्रव्य मे रत्नत्रय नही रहता है। 'तह्मा तत्तियमइउ होदि हु मुक्खस्स कारणं आदा' इस

व्याख्या :—'रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियह्मि' रत्नत्रयं न वर्त्तते
कीयशुद्धात्मानं मुक्त्वा अन्याचेतने द्रव्ये । 'तह्मा तत्तियमइउ होदि हु मुक्खस्स कारणं
दा' तस्मात्तत्त्रितयमय आत्मैव निश्चयेन मोक्षस्य कारणं भवतीति जानीहि । अथ
स्तर.—रागादिविकल्पोपाधिरहितचिच्चमत्कारभावनोत्पन्नमधुररसास्वादसुखोऽहमिति
श्चयरुचिरूपं सम्यग्दर्शनं, तस्यैव सुखस्य समस्तविभावेभ्य स्वसंवेदनज्ञानेन पृथक् परि-
द्न सम्यग्ज्ञानं, तथैव दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाङ्क्षाप्रभृतिसमस्तापध्यानरूपमनोरथजनित-
ल्प–विकल्पजालत्यागेन तत्रैव सुखे रतस्य सन्तुष्टस्य तृप्तस्यैकाकारपरमसमरसीभावेन
ीभूतचित्तस्य पुन· पुनः स्थिरीकरणं सम्यक्चारित्रम् । इत्युक्तलक्षण निश्चयरत्नत्रय
द्धात्मान विहायान्यत्र घटपटादिवहिर्द्रव्ये न वर्त्तते यतस्तत· कारणादभेदनयेनानेकद्रव्या-
कैकपानकवत्तदेव सम्यग्दर्शनं, तदेव सम्यग्ज्ञानं, तदेव सम्यक्चारित्र, तदेव स्वात्मत-
मित्युक्तलक्षणं निजशुद्धात्मानमेव मुक्तिकारण जानीहि ॥ ४० ॥

एवं प्रथमस्थले सूत्रद्वयेन निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गस्वरूप संक्षेपेण व्याख्याय तदन-
रं द्वितीयस्थले गाथाषट्कपर्यन्त सम्यक्त्वादित्रयं क्रमेण विवृणोति । तत्रादौ सम्यक्त्व-
ह :—

जीवादीसद्दहणं सम्मत्त रूवमप्पणो तं तु ।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्म खु होदि सदि जह्मि ॥४१॥

रण इस रत्नत्रयमय आत्मा को ही निश्चय से मोक्ष का कारण जानो । इसका विस्तृत वर्णन—
आदि विकल्प रहित, चित्चमत्कार भावना से उत्पन्न, मधुर रस के आस्वाद रूप सुख का धारक
' इस प्रकार निश्चय रुचि सम्यग्दर्शन है और स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा उसी सुख का राग आदि समस्त
ावो से भिन्न जानना सम्यग्ज्ञान है । इसी प्रकार देखे, सुने तथा अनुभव किये हुए जो भोग आकाक्षा
दे समस्त दुर्ध्यानरूप मनोरथ से उत्पन्न हुए संकल्प–विकल्प जाल के त्याग द्वारा, उसी सुख मे रत
ुष्ट—तृप्त तथा एकाकार रूप परम समता भाव से द्रवीभूत (भीगे) चित्त का पुनः पुन. स्थिर करना
क्चारित्र है । इस प्रकार कहे हुए लक्षण वाले जो रत्नत्रय है वे शुद्ध आत्मा के सिवाय अन्य घट,
आदि वाह्य द्रव्यो मे नही रहते, इस कारण अभेद से अनेक द्रव्यमयी एक पेय (वादाम, सौंफ,
ी, मिरच आदि रूप ठंडाई) के समान, वह आत्मा ही सम्यग्दर्शन है, वह आत्मा ही सम्यग्ज्ञान है,
आत्मा ही सम्यक्चारित्र है तथा वही निज आत्मतत्त्व है । इस प्रकार कहे हुए लक्षण वाले निज
-आत्मा का ही मुक्ति को कारण जानो ॥ ४० ॥

इस प्रकार प्रथम स्थल मे दो गाथाओ द्वारा संक्षेप से निश्चय मोक्ष-मार्ग और व्यवहार मोक्ष
ं का स्वरूप व्याख्यान करके अव आचार्य दूसरे स्थल मे छ गाथाओ तक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान
ा सम्यकचारित्र को क्रम से वर्णन करते है । उनमे प्रथम ही सम्यग्दर्शन को कहते :—

जीवादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं रूपं आत्मनः तत् तु ।
दुरभिनिवेशविमुक्तं ज्ञानं सम्यक् खलु भवति सति यस्मिन् ॥४१॥

व्याख्या :—'जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं' वीतरागसर्वज्ञप्रणीतशुद्धजीवादितत्त्वविषये चलमलिनागाढरहितत्वेन श्रद्धानं रुचिर्निश्चय इदमेवेत्थमेवेति निश्चयबुद्धिः सम्यग्दर्शनम्। 'रूवमप्पणो त तु' तच्चाभेदनयेन रूप स्वरूप तु, पुन कस्य ? आत्मन आत्मपरिणाम इत्यर्थ । तस्य सामर्थ्य माहात्म्य दर्शयति । "दुरभिणिवेसविमुक्क णाणं सम्मं खु होदि सदि जह्मि" यस्मिन् सम्यक्त्वे सति ज्ञान सम्यग् भवति स्फुटं । कथम्भूत सम्यग्भवति ? "दुरभिणिवेसविमुक्क" चलितप्रतिपत्ति गच्छत्तृणस्पर्शशुक्तिकाशकलरजतविज्ञानशदृशै संशयविभ्रमविमो है—

इतो विस्तर —सम्यक्त्वे सति ज्ञान सम्यग्भवतीति यदुक्त तस्य विवरण क्रियते। तथाहि—गौतमाग्निभूतिवायुभूतिनामानो विप्रा पञ्चपञ्चशतब्राह्मणोपाध्याया वेदचतुष्टय, ज्योतिष्कव्याकरणादिषडङ्गानि, मनुस्मृत्याद्यष्टादशस्मृतिशास्त्राणि तथा भारताद्यष्टादशपुराणानि मीमासान्यायविस्तर इत्यादिलौकिकसर्वशास्त्राणि यद्यपि जानन्ति तथापि तेषा

गाथार्थ :—जीव आदि पदार्थों का श्रद्धान करना, सम्यक्त्व है। वह सम्यक्त्व आत्मा का स्वरूप है तथा इस सम्यक्त्व के होने पर (संशय, विपर्यय एवं अनध्यवसाय इन तीनो) दुरभिनिवेशो से रहित सम्यग्ज्ञान होता है ॥ ४१ ॥

वृत्त्यर्थ —'जीवादीसद्दहण सम्मत्त' वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कहे हुए शुद्ध जीव आदि तत्त्वो मे, चल-मलिन-अगाढ रहित श्रद्धान, रुचि, निश्चय अथवा 'जो जिनेन्द्र ने कहा वही है, जिस प्रकार से जिनेन्द्र ने कहा है उसी प्रकार है' ऐसी निश्चय रूप बुद्धि सम्यग्दर्शन है, 'रूवमप्पणो तं तु' वह सम्यग्दर्शन अभेद नय से स्वरूप है, किसका स्वरूप है ? आत्मा का, आत्मा का परिणाम है। उस सम्यग्दर्शन के सामर्थ्य अथवा महात्म्य को दिखाते है-'दुरभिणिवेसविमुक्कं णाण सम्म खु होदि सदि जह्मि' जिस सम्यक्त्व के होने पर ज्ञान सम्यक् हो जाता है। 'सम्यक' किस प्रकार होता है ? 'दुरभिणिवेसविमुक्क' (यह पुरुष है या काठ का ठूंठ है, ऐसे दो कोटि रूप) चलायमान संशयज्ञान, गमन करते हुए तृण आदिक के स्पर्श होने पर, यह निश्चिय न होना कि किसका स्पर्श हुआ—ऐसा विभ्रम (अनध्यवसाय) ज्ञान तथा सीप के टुकड़े मे चादी का ज्ञान—ऐसा विमोह (विपर्यय) ज्ञान, इन तीनो दोषो स (दूषित ज्ञानो से) रहित हो जाने से वह ज्ञान सम्यक् हो जाता है।

विस्तार से वर्णन—'सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है' यह जो कहा गया है, उसका विवरण कहते है—पाचसौ—पाचसौ ब्राह्मणो के पढाने वाले गौतम, अग्निभूति और वायुभूति नामक तीन ब्राह्मण विद्वान् चारो वेद—ज्योतिष्क—व्याकरण आदि छहो अंग, मनुस्मृति आदि अठारह स्मृति ग्रन्थ, महाभारत आदि अठारह पुराण तथा मीमासा न्यायविस्तर आदि समस्त लौकिक शास्त्रो [illegible] ये तो भी उनका ज्ञान, सम्यक्त्व के बिना मिथ्याज्ञान ही था। परन्तु जब वे प्रसिद्ध कथा के

हि ज्ञानं सम्यक्त्वं विना मिथ्याज्ञानमेव । यदा पुनः प्रसिद्धकथान्यायेन श्रीवीरवर्द्धमानस्वामितीर्थंकरपरमदेवसमवसरणे मानस्तम्भावलोकनमात्रादेवागमभाषया दर्शनचारित्रमोहनीयोपशमक्षयसञ्ज्ञेनाध्यात्मभाषया स्वशुद्धात्माभिमुखपरिणामसंज्ञेन च कालादिलब्धिविशेषेण मिथ्यात्वं विलयं गतं तदा तदेव मिथ्याज्ञानं सम्यग्ज्ञानं जातम् । ततश्च 'जयति भगवान्' इत्यादि नमस्कारं कृत्वा जिनदीक्षां गृहीत्वा कचलोचानन्तरमेव चतुर्ज्ञानसप्तर्द्धिसम्पन्नास्त्रयोऽपि गणधरदेवाः सजाताः । गौतमस्वामी भव्योपकारार्थं द्वादशाङ्गश्रुतरचनां कृतवान्; पश्चान्निश्चयरत्नत्रयभावनाबलेन त्रयोऽपि मोक्षं गता । शेषा पञ्चदशशतप्रमितब्राह्मणा जिनदीक्षां गृहीत्वा यथासम्भवं स्वर्गं मोक्षं च गताः । अभव्यसेनः पुनरेकादशाङ्गधारकोऽपि सम्यक्त्वं विना मिथ्याज्ञानो सञ्जात इति । एवं सम्यक्त्वमाहात्म्येन ज्ञानतपश्चरणव्रतोपशमध्यानादिकं मिथ्यारूपमपि सम्यग्भवति । तदभावे विषयुक्तदुग्धमिव सर्वं वृथेति ज्ञातव्यम् ।

तच्च सम्यक्त्वं पञ्चविंशतिमलरहितं भवति तद्यथा—देवतामूढलोकमूढसमयमूढभेदेन मूढत्रयं भवति । तत्र क्षुधाद्यष्टादशदोषरहितमनन्तज्ञानाद्यनन्तगुणसहितं वीतरागसर्वज्ञदेवतास्वरूपमजानन् ख्यातिपूजालाभरूपलावण्यसौभाग्यपुत्रकलत्रराज्यादिविभूतिनिमित्तं रागद्वे-

---

अनुसार श्री महावीर स्वामी तीर्थंकर परम देव के समवसरण मे मानस्तंभ के देखने मात्र से ही आगम भाषा मे दर्शन मोहनीय तथा चारित्र मोहनीय के उपशम, क्षय तथा क्षयोपशम से और अध्यात्म भाषा मे निज शुद्धआत्मा के सन्मुख परिणाम तथा काल आदि लब्धियो के विशेष से उनका मिथ्यात्व नष्ट हो गया, तब उनका वही मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान हो गया । सम्यग्ज्ञान होते ही 'जयति भगवान्' इत्यादि रूप से भगवान् को नमस्कार करके, श्री जिनेन्द्री दीक्षा धारण करके केशलोच के अनन्तर ही मति-श्रुत अवधि और मनःपर्यय इन चार ज्ञान तथा सात ऋद्धि से धारक होकर तीनो ही गणधर हो गये । गौतमस्वामी ने भव्यजीवो के उपकार के लिये द्वादशाङ्गश्रुत की रचना की, फिर वे तीनो ही निश्चयरत्नत्रय की भावना के बल से मोक्ष को प्राप्त हुए वे पद्रह सौ ब्राह्मण शिष्य मुनि-दीक्षा लेकर यथासम्भव स्वर्ग या मोक्ष मे गये । ग्यारह अङ्गो का पाठी भी अभव्यसेन मुनि सम्यक्त्व के विना मिथ्याज्ञानी ही रहा । इस प्रकार सम्यक्त्व के माहात्म्य से मिथ्याज्ञान, तपश्चरण, व्रत, उपशम, (समता, कषायो की मदता) ध्यान आदि वे सब सम्यक् हो जाते है । विष मिले हुए दुग्ध के समान, सम्यक्त्व के विना ज्ञान तपश्चरणादि सब वृथा है, ऐसा जानना चाहिए ।

वह सम्यक्त्व पच्चीस दोषो से रहित होता है । उन पच्चीस दोषो से देवमूढता, लोकमूढता तथा समयमूढता है । ये तीन मूढता है । क्षुधा तृषा आदि अठारह दोषरहित अनन्तज्ञान आदि अनन्तगुण सहित वीतराग सर्वज्ञ देव के स्वरूप को न जानता हुआ जो व्यक्ति ख्याति-पूजा-लाभ-रूप-लावण्य-सौभाग्य-पुत्र

घोपहतार्त्तरौद्रपरिणतक्षेत्रपालचण्डिकादिमिथ्यादेवाना यदाराधन करोति जीवस्तद्देवता-मूढत्व भण्यते । न च ते देवा किमपि फल प्रयच्छन्ति । कथमिति चेत् ? रावणेन राम-स्वामिलक्ष्मीधरविनाशार्थं बहुरूपिणी विद्या साधिता, कौरवैस्तु पाण्डवनिर्मूलनार्थं कात्या-यनी विद्या साधिता, कंसेन च नारायणविनाशार्थं बह्व्योऽपि विद्या समाराधितास्ताभि. कृतं न किमपि रामस्वामिपाण्डवनारायणानाम् । तैस्तु यद्यपि मिथ्यादेवता १नानुकूलिता-स्तथापि निर्मलसम्यक्त्वोपार्जितेन पूर्वकृतपुण्येन सर्व निर्विघ्न जातमिति । अथ लोकमूढ त्व कथयति । गङ्गादिनदीतीर्थस्नानसमुद्रस्नानप्रात स्नानजलप्रवेशमरणाग्निप्रवेशमरणगो-ग्रहणादिमरणभूम्यग्निवटवृक्षपूजादीनि पुण्यकारणानि भवन्तीति यद्वदन्ति तल्लोकमूढत्वं विज्ञेयम् । अन्यदपि लौकिकपारमार्थिकहेयोपादेयस्वपरज्ञानरहितानामज्ञानिजनाना प्रवाहेन यद्धर्मानुष्ठान तदपि लोकमूढत्व विज्ञेयमिति । अथ समयमूढत्वमाह । अज्ञानिजनचित्तचम-त्कारोत्पादक ज्योतिष्कमन्त्रवादादिक दृष्ट्वा वीतरागसर्वज्ञप्रणीतसमय विहाय कुदेवागमलि-ङ्गिना भयाशास्नेहलोभैर्धर्मार्थं प्रणामविनयपूजापुरस्कारादिकरण समयमूढत्वमिति । एव-मुक्तलक्षण मूढत्रय सरागसम्यग्दृष्ट्यवस्थाया परिहरणीयमिति । त्रिगुप्तावस्थालक्षण-वीत-

---

स्त्री-राज्य आदि सम्पदा की प्राप्ति के लिये, रागद्वेष युक्त तथा आर्त्त रौद्र ध्यानरूप परिणामो वाले क्षेत्रपाल चडिका आदि मिथ्यादृष्टि देवो की, आराधना करता है, उस आराधना को 'देवमूढता' कहते है। वे देव कुछ भी फल नही देते। प्रश्न—फल कैसे नही देते ? उत्तर—रामचन्द्र और लक्ष्मण के विनाश के लिये रावण ने बहुरूपिणी विद्या सिद्ध की, कौरवो ने पाडवो का सत्तानाश करने के लिये कात्यायनी विद्या सिद्ध की, तथा कंस ने कृष्ण नारायण के नाश के लिये बहुत सी विद्याओ की आरा-धना की, परन्तु उन विद्याओ द्वारा रामचन्द्र, पाडव और कृष्णनारायण का कुछ भी अनिष्ट नही हुआ रामचन्द्र आदि ने मिथ्यादृष्टि देवो की आराधना नही की, तो भी निर्मल सम्यग्दर्शन से उपार्जित पूर्व भव के पुण्य द्वारा उनके सब विघ्न दूर हो गये । अब लोकमूढता को कहते है—'गंगा आदि नदीरूप तीर्थों मे स्नान, समुद्र मे स्नान, प्रात काल मे स्नान, जल मे प्रवेश करके मरना, अग्नि मे जलकर मरना गाय की पूंछ आदि को ग्रहण करके मरना, पृथिवी—अग्नि और वड वृक्ष आदि की पूजा करना, ये सब पुण्य के कारण हैं' इस प्रकार जो कहते हैं उसको लोकमूढता जानना चाहिए। लौकिक-पारमार्थिक, हेय उपादेय व स्वपरज्ञान रहित अज्ञानी जनो के कुल परिपाटी से आया हुआ और अन्य भी जो धर्म आचरण है उसको भी लोकमूढता जाननी चाहिए। अब समयमूढता (शास्त्रमूढता या धर्ममूढता) को कहते है—अज्ञानी लोगो को चित्त-चमत्कार (आश्चर्य) उत्पन्न करने वाले ज्योतिष, मत्रवाद आदि को देखकर, वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कहे हुए धर्म को छोडकर, मिथ्यादेवो को, मिथ्या-आगम को खोटा तप करने वाले कुलिंगियो को भय-वाछा—स्नेह और लोभ से धर्म के लिये प्रणाम,

---

१ 'आराधना न कृता' इतिपाठान्तरं ।

रागसम्यक्त्वप्रस्तावे पुनर्निजनिरञ्जननिर्दोषपरमात्मैव देव इति निश्चयबुद्धिर्देवतामूढरहितत्वं विज्ञेयम् । तथैव च मिथ्यात्वरागादिमूढभावत्यागेन स्वशुद्धात्मन्येवावस्थानं लोकमूढरहितत्व विज्ञेयम् । तथैव च समस्तशुभाशुभसङ्कल्पविकल्परूपपरभावत्यागेन निर्विकारतात्त्विकपरमानन्दैकलक्षणपरमसमरसीभावेन तस्मिन्नेव सम्यग्रूपेणायनं गमन परिणमनं समयमूढरहितत्वं बोद्धव्यम् । इति मूढत्रयं व्याख्यातम् ।

अथ मदाष्टस्वरूपं कथ्यते । विज्ञानैश्वर्यज्ञानतप कुलबलजातिरूपसंज्ञं मदाष्टक सरागसम्यग्दृष्टिभिस्त्याज्यमिति । वीतरागसम्यग्दृष्टीना पुनर्मानकषायादुत्पन्नमदमात्सर्यादिसमस्तविकल्पजालपरिहारेण ममकाराहङ्काररहिते स्वशुद्धात्मनि भावनैव मदाष्टकत्याग इति । ममकाराहङ्कारलक्षण कथयति । कर्मजनितदेहपुत्रकलत्रादौ ममेदमिति ममकारस्तत्रैवाभेदेन गौरस्थूलादिदेहोऽहं राजाहमित्यहङ्कारलक्षणमिति ।

अथानायतनषट्कं कथयति । मिथ्यादेवो, मिथ्यादेवाराधका, मिथ्यातपो, मिथ्यातपस्वी, मिथ्यागमो, मिथ्यागमधराः पुरुषाश्चेत्युक्तलक्षणमनायतनषट्कं सरागसम्यग्दृष्टीनां त्याज्य भवतीति । वीतरागसम्यग्दृष्टीनां पुन. समस्तदोषायतनभूतानां मिथ्यात्वविषयकषायरूपायतनानां परिहारेण केवलज्ञानाद्यनन्तगुणायतनभूते स्वशुद्धात्मनि निबास एवानायतनसेवापरिहार इति । अनायतनशब्दस्यार्थः कथ्यते । सम्यक्त्वादिगुणानामायतनं गृहमावास

पूजा, सत्कार आदि करना, सो 'समयमूढता' है। इन उक्त तीन मूढताओ को सरागसम्यग्दृष्टि अवस्था मे त्यागना चाहिए । मन—वचन—काय—गुप्ति रूप अवस्था वाले वीतराग सम्यक्त्व के प्रकरण मे, अपना निरजन तथा निर्दोष परमात्मा ही देव है' ऐसी निश्चय बुद्धि ही देवमूढता का अभाव जानना चाहिए। तथा मिथ्यात्व राग आदि रूप मूढभावो का त्याग करने से जो निज शुद्ध-आत्मा मे स्थिति है, वही लोकमूढता से रहितता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण शुभ-अशुभ सकल्प-विकल्प रूप परभावो के त्याग से तथा निर्विकार—वास्तविक—परमानन्दमग्र परम—समता-भाव से निज शुद्ध-आत्मा मे ही जो सम्यक् प्रकार से अयन, गमन अथवा परिणमन है उसको समयमूढता का त्याग समझना चाहिए। इस प्रकार तीन मूढता का व्याख्यान हुआ।

अब आठ मदो का स्वरूप कहते हैं—विज्ञान (कला) १, ऐश्वर्य (धनसम्पत्ति) २, ज्ञान ३, तप ४, कुल ५, बल ६, जाति ७ और रूप ८; इन आठो सबंधी मदो का त्याग सरागसम्यग्दृष्टियो को करना चाहिए। मान कषाय से उत्पन्न होने वाले मद मात्सर्य (ईर्ष्या) आदि समस्त विकल्प-समूह उनके त्याग द्वारा, ममकार-अहंकार से रहित निज शुद्ध-आत्मा मे भावना, वीतराग सम्यग्दृष्टियो के आठ मदो का त्याग है। ममकार तथा अहंकार का लक्षण हैं—कर्मजनित देह, पुत्र–स्त्री आदि मे 'यह मेरा शरीर है, यह मेरा पुत्र' इस प्रकार की जो बुद्धि है वह ममकार है और उन शरीर आदि मे अपनी

आश्रय आधारकरणं निमित्तमायतनं भण्यते तद्विपक्षभूतमनायतनमिति ।

अत्र पर शङ्काद्यष्टमलत्याग कथयति । नि शङ्काद्यष्टगुणप्रतिपालनमेव शङ्काद्यष्टमलत्यागो भण्यते । तद्यथा——रागादिदोषा अज्ञान वाऽसत्यवचनकारणं तदुभयमपि वीतरागसर्वज्ञाना नास्ति, तत कारणात्तत्प्रणीते हेयोपादेयतत्त्वे मोक्षे मोक्षमार्गे च भव्यै शङ्का सशय सन्देहो न कर्त्तव्य । तत्र शङ्कादिदोषपरिहारविषये पुनरञ्जनचौरकथा प्रसिद्धा । तत्रैव विभीषणकथा । तथाहि——सीताहरणप्रघट्टके रावणस्य रामलक्ष्मणाभ्या सह सग्रामप्रस्तावे विभीषणेन विचारितं रामस्तावदष्टमबलदेवो लक्ष्मणश्चाष्टमो वासुदेवो रावणश्चाष्टम प्रतिवासुदेव इति । तस्य च प्रतिवासुदेवस्य वासुदेवहस्तेन मरणमिति जैनागमे कथितमास्ते, तन्मिथ्या न भवतीति नि शङ्को भूत्वा, त्रैलोक्यकण्टक रावणं स्वकीयज्येष्ठभ्रातर त्यक्त्वा, त्रिशदक्षौहिणीप्रमितचतुरङ्गबलेन सह स रामस्वामिपार्श्वे गत इति । तथैव देवकीवसुदेवद्वयं नि शङ्कं ज्ञातव्यम् । तथाहि——यदा देवकीबालकस्य मारणनिमित्तं कसेन प्रार्थना कृता तदा ताभ्यां पर्यालोचितं मदीय. पुत्रो नवमो वासुदेवो भविष्यति तस्य हस्तेन जरासिन्धुनाम्नो नवमप्रतिवासुदेवस्य कसस्यापि मरणं भविष्यतीति जैनागमे भणित ति ष्ठ-

---

आत्मा से भेद न मानकर जो 'मैं गोरा हू, मोटा हूँ, राजा हू' इस प्रकार मानना सो अहकार का लक्षण है ।

अब छ अनायतनो का कथन करते है–मिथ्यादेव १, मिथ्यादेवो के सेवक २, मिथ्यातप ३, मिथ्यातपस्वी ४, मिथ्याशास्त्र ५ और मिथ्याशास्त्रो के धारक ६, इस प्रकार के छ अनायतन सरागसम्यग्दृष्टियो को त्याग करने चाहिये । वीतराग सम्यग्दृष्टी जीवो के तो, सम्पूर्ण दोषो के स्थानभूत मिथ्यात्व-विषय-कषायरूप आयतनो के त्यागपूर्वक, केवल ज्ञान आदि अनन्त गुणो के स्थानभूत निज शुद्ध-आत्मा मे निवास ही, अनायतनो की सेवा का त्याग है । अनायतन शब्द के अर्थ को कहते है-सम्यक्त्व आदि गुणो का आयतन घर-आवास-आश्रय (आधार) करने का निमित्त, उसको 'आयतन' कहते है और उससे विपरीत 'अनायतन' है ।

अब इसके अनन्तर शका आदि आठ दोषो के त्याग का कथन करते है—नि शक आदि आठ गुणो का जो पालन करना है, वही शकादि आठ दोषो का त्याग कहलाता है । वह इस प्रकार है—राग आदि दोष तथा अज्ञान ये दोनो असत्य बोलने मे कारण है और ये दोनो ही वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव मे नही है, इस कारण श्री जिनेन्द्र देव से निरूपित हेयोपादेयतत्त्व मे (यह त्याज्य है, यह ग्राह्य है, इस प्रकार के तत्त्व मे), मोक्ष मे और मोक्षमार्ग मे भव्य जीवो को शका, सशय या सदेह नही करना चाहिए यहा शंका दोष के त्याग के विषय मे अजन चोर की कथा शास्त्रो मे प्रसिद्ध है विभीषण की कथा भी इस प्रकरण मे प्रसिद्ध है । तथा—सीता के हरण के प्रसंग मे जब रावण का राम लक्ष्मण के साथ युद्ध करने का अवसर आया, तब विभीषण ने विचार किया कि रामचन्द्र तो आठवे बलदेव है और

तीति, तथैवातिमुक्तभट्टारकैरपि कथितमिति निश्चित्य कंसाय स्वकीय बालकं दत्तम् । तथा शेषभव्यैरपि जिनागमे शका न कर्तव्येति । इदं व्यवहारेण नि शकितत्व व्याख्यानम् । निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारनि·शकागुणस्य सहकारित्वेनेहलोकपरलोकात्राणागुप्तिमरण-व्याधिवेदनाकस्मिक अभिधानभयसप्तकं मुक्त्वा घोरोपसर्गपरीषहप्रस्तावेऽपि शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयरत्नत्रयभावनैव निशंकगुणो ज्ञातव्य इति ॥ १ ॥

अथ निष्कांक्षितागुणं कथयति । इहलोकपरलोकाशारूपभोगाकांक्षानिदानत्यागेन केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिरूपमोक्षार्थ दानपूजातपश्चरणाद्यनुष्ठानकरणं निष्काक्षागुणो भण्यते । तथानन्तमतीकन्याकथा प्रसिद्धा । द्वितीया च सीतामहादेवीकथा । सा कथ्यते । सीता यदा लोकापवादपरिहारार्थ दिव्ये शुद्धा जाता तदा रामस्वामिना दत्तं पट्टमहादेवी-विभूतिपदं त्यक्त्वा सकलभूषणानगारकेवलिपादमूले कृतान्तवक्रादिराजभिस्तथा बहुराज्ञी-भिश्च सह जिनदीक्षां गृहीत्वा शशिप्रभाधार्मिकासमुदायेन सह ग्रामपुरखेटकादिविहारेण भेदाभेदरत्नत्रयभावनया द्विषष्टिवर्षाणि जिनसमयप्रभावना कृत्वा पश्चादवसाने त्रयस्त्रिंश-द्दिवसपर्यन्तं निर्विकारपरमात्मभावनासहितं सन्यासं कृत्वाऽच्युताभिधानषोडशस्वर्गे प्रती-

---

लक्ष्मण आठवें नारायण है तथा रावण आठवा प्रतिनारायण है। प्रतिनारायण का मरण नारायण के हाथ से होता है, ऐसा जैन शास्त्रो मे कहा गया है, वह मिथ्या नही हो सकता, इस प्रकार नि शङ्क होकर अपने बडे भाई तीनलोक के ककट 'रावण' को छोडकर, अपनी तीस अक्षौहिणी चतुरंग (हाथी घोडा, रथ, पयादे) सेना सहित रामचन्द्र के समीप चला गया। इसी प्रकार देवकी तथा वसुदेव भी नि शंक जानने चाहिये।

जब कस ने देवकी के बालक को मारने के लिये प्रार्थना की, तव देवकी और वसुदेव ने विचार किया कि हमारा पुत्र नवमा नारायण होगा और उसके हाथ से जरासिंधु नामक नवमे प्रतिनारायण का और कस का भी मरण होगा, यह जैनागम मे कहा है और श्री भट्टारक अतिमुक्त स्वामी ने भी ऐसा ही कहा है, इस प्रकार निश्चय करके कस को अपना बालक देना स्वीकार किया। इसी प्रकार अन्य भव्य जीवो को भी जैन—आगम मे शंका नही करनी चाहिये। यह व्यवहार नय से नि.शङ्कित अङ्ग का व्याख्यान किया । निश्चय नय से व्यवहार नि.शंक गुण की सहायता से, इस लोक का भय १, परलोक का भय २, अरक्षा का भय ३, अगुप्ति (रक्षा स्थान के अभाव का) भय, ४, मरण भय ५, व्याधि-वेदना भय ६, आकस्मिक भय ७ । इन सात भयो को छोडकर घोर उपसर्ग तथा परीषहो के आजाने पर भी, शुद्ध उपयोग रूप निश्चय रत्नत्रय की भावना को ही निशंकित गुण जानना चाहिये।

अब निष्कांक्षित गुण को कहते है—इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी आशारूप भोगाकांक्षा-निदान के त्याग द्वारा केवल ज्ञान आदि अनन्त गुणो की प्रकटतारूप मोक्ष के लिये दान-पूजा-तपश्चरण आदि करना, वही निष्कांक्षित गुण कहलाता है। इस गुण मे अनन्तमती की कथा प्रसिद्ध है। दूसरी

न्द्रता याता । ततश्च निर्मलसम्यक्त्वफल दृष्ट्वा धर्मानुरागेण नरके रावणलक्ष्मणयो' संबोधनं कृत्वेदानी स्वर्गे तिष्ठति । अग्रे स्वर्गादागत्य सकलचक्रवर्ती भविष्यति । तौ च रावणलक्ष्मीधरौ तस्य पुत्रौ भविष्यत । ततश्च तीर्थकरपादमूले पूर्वभवान्तर दृष्ट्वा पुत्रद्वयेन सह परिवारेण च सह जिनदीक्षा गृहीत्वा भेदाभेदरत्नत्रयभावनया पञ्चानुत्तरविमाने त्रयोप्यहमिन्द्रा भविष्यन्ति। तस्मादागत्य रावणस्तीर्थकरो भविष्यति, सीता च गणधर इति, लक्ष्मीधरो धातकीखण्डद्वीपे तीर्थकरो भविष्यति । इति व्यवहारनिष्कांक्षितागुणो विज्ञातव्य । निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारनिष्काङ्क्षागुणस्य सहकारित्वेन दृष्ट-ुतानुभूतपञ्चेन्द्रियभोगत्यागेन निश्चयरत्नत्रयभावनोत्पन्नपारमार्थिकस्वात्मोत्थसुखामृतरसे चित्तसन्तोष स एव निष्काक्षा गुण इति ॥ २ ॥

अथ निर्विचिकित्सागुण कथयति । भेदाभेदरत्नत्रयाराधकभव्यजीवाना दुर्गन्धबीभत्सादिक दृष्ट्वा धर्मबुद्ध्या कारुण्यभावेन वा यथायोग्य विचिकित्सापरिहरण द्रव्यनिर्विचिकित्सागुणो भण्यते । यत्पुनर्जैनसमये सर्व समीचीन पर किन्तु वस्त्रा[1]प्रावरण जलस्ना-

---

सीतादेवी की कथा है। उसको कहते हैं–लोक की निन्दा को दूर करने के लिये सीता अग्नि–कुण्ड मे प्रविष्ट होकर जब निर्दोष सिद्ध हुई, तब भी रामचन्द्र द्वारा दिए गए पट्ट-महारानी पद को छोडकर केवलज्ञानी श्री सकलभूषण मुनि के पादमूल मे, कृतान्तवक्ष आदि राजाओ तथा बहुत सी रानियो के साथ, जिनदीक्षा ग्रहण करके शशिप्रभा आदि आर्यिकाओ के समूह सहित ग्राम, पुर, खेटक आदि मे विहार द्वारा भेदाभेदरूप रत्नत्रय की भावना मे वासठ वर्ष तक जिनमत की प्रभावना करके, अन्त्य समय मे तैंतीस दिन तक निर्विकार परमात्मा के ध्यानपूर्वक समाधि-मरण करके अच्युत नामक सोहलवे स्वर्ग मे प्रतीन्द्र हुई। वहा निर्मल सम्यग्दर्शन के फल को देखकर धर्म के अनुराग से नरक मे जाकर सीता ने रावण लक्ष्मण को सम्बोधिता। सीता अब स्वर्ग मे है। आगे सीता का जीव स्वर्ग से आकर सकल चक्रवर्त्ती होगा और वे दोनो रावण तथा लक्ष्मण के जीव उसके पुत्र होगे। पश्चात् तीर्थकर के पादमूल मे अपने पूर्वभवो को देखकर, परिवार सहित दोनो पुत्र तथा सीता के जीव जिनदीक्षा ग्रहण करके, भेदाभेदरत्नत्रय की भावना से वे तीनो पच-अनुत्तर विमान मे अहमिन्द्र होगे। वहा से आकर रावण तीर्थकर होगा और सीता का जीव गणधर होगा। लक्ष्मण धातकीखण्ड द्वीप मे तीर्थंकर होगे। इस प्रकार व्यवहार निष्काक्षितगुण का स्वरूप जानना चाहिये। उसी व्यवहार निष्काक्षा गुण की सहायता से देखे-सुने-अनुभव किये हुए पाचो इंद्रिय-सम्बन्धी भोगो के त्याग से तथा निश्चय-रत्नत्रय की भावना से उत्पन्न हुए पारमार्थिक व निज-आत्मिक सुखरूपी अमृतरस मे चित्त का संतोष होना, वही निश्चय से निष्काक्षागुण है ॥ २ ॥

अब निर्विचिकित्सा गुण को कहते हैं। भेद–अभेदरूप रत्नत्रय के आराधक भव्य जीवो की दुर्गन्धि तथा बुरी आकृति आदि देखकर धर्मबुद्धि से अथवा करुणाभाव से यथा योग्य विचिकित्सा

[1] 'वस्त्राआवरण' इत्यादि पाठः

नादिकं च न कुर्वन्ति तदेव दूषणमित्यादिकुत्सितभावस्य विशिष्टविवेकबलेन परिहरणं सा भावनिर्विचिकित्सा भण्यते । अस्य व्यवहारनिर्वि चिकित्सागुणस्य विषय उद्दायनमहाराज-कथा रुक्मिणीमहादेवीकथा चागमप्रसिद्धा ज्ञातव्येति । निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारनिर्वि-चिकित्सागुणस्य बलेन समस्तद्वेषादिविकल्परूपकल्लोलमालात्यागेन निर्मलात्मानुभूतिल-क्षणे निजशुद्धात्मनि व्यवस्थानं निर्विचिकित्सागुण इति ॥३॥

इत. परं अमूढदृष्टिगुणं कथयति । वीतरागसर्वज्ञप्रणीतागमार्थाद्बहिर्भूतैः कुदृष्टिभि-र्यत्प्रणीतं धातुवादखन्यवादहरमेखलक्षुद्रविद्याव्यन्तरविकुर्वणादिकमज्ञानिजनचित्तचमत्का-रोत्पादकं दृष्ट्वा श्रुत्वा च योऽसौ मूढभावेन धर्मबुद्ध्या तत्र रुचि भक्ति न कुरुते स एव व्यव-हारोऽमूढदृष्टिरुच्यते । तत्र चोत्तरमथुरायां उदुरुलिभट्टारकरेवतीश्राविकाचन्द्रप्रभनामविद्या-धरब्रह्मचारिसम्बन्धिनीकथा प्रसिद्धेति । निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारामूढदृष्टिगुणस्य प्रसादेनान्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्वनिश्चये जाते सति समस्तमिथ्यात्वरागादिशुभाशुभसंकल्पविकल्पे-ष्टात्मबुद्धिमुपादेयबुद्धि हितबुद्धि ममत्वभाव त्यक्त्वा त्रिगुप्तिरूपेण विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निजात्मनि यन्निश्चलावस्थानं तदेवामूढदृष्टित्वमिति । सङ्कल्पविकल्पलक्षणं कथ्यते । पुत्र-कलत्रादौ बहिर्द्रव्ये ममेदमिति कल्पना सङ्कल्पः, अभ्यन्तरे सुख्यहं दुःख्यहमिति हर्षविषाद-

---

(ग्लानि) को दूर करना द्रव्य निर्विचिकित्सा गुण है । जैन मत मे सब अच्छी २ बाते है, परन्तु वस्त्र के आवरण से रहितता अर्थात् नग्नपना और जलस्नान आदि का न करना यही दूषण है' इत्यादि बुरे भावो को विशेष ज्ञान के बल से दूर करना वह भाव—निर्विचिकित्सा कहलाती है । इस व्यवहार निर्विचिकित्सा गुण को पालने के विषय मे उद्दायन राजा तथा रुक्मिणी (कृष्ण की पट्टराणी) की कथा शास्त्र मे प्रसिद्ध जाननी चाहिये । इसी व्यवहार निर्विचिकित्सा गुण के बल से समस्त राग-द्वेष आदि विकल्परूप तरङ्गो का त्याग करके, निर्मल आत्मानुभव रूप निजशुद्ध—आत्मा मे जो स्थिति वही निश्चय निर्विचिकित्सागुण है ॥ ३ ॥

अब अमूढदृष्टि गुण को कहते है । वीतराग सर्वज्ञ देव-कथित शास्त्र से बहिरभूत कुदृष्टियो के द्वारा बनाये हुए तथा अज्ञानियो के चित्त मे विस्मय को उत्पन्न करने वाले रसायन शास्त्र, खन्यवाद (खानिविद्या), हरमेखल, क्षुद्रविद्या, व्यन्तर विकुर्वणादि शास्त्रो को देखकर तथा सुनकर, जो कोई मूढभाव द्वारा धर्म-बुद्धि से उनमें प्रतीति तथा भक्ति नही करता, उसी को व्यवहार से 'अमूढदृष्टि' कहते है । इस विषय मे, उत्तर मुथरा मे उदुरुलि भट्टारक तथा रेवती श्राविका और चन्द्रप्रभ नामक विद्याधर ब्रह्मचारी सम्बन्धी कथाये शास्त्रो मे प्रसिद्ध है । इसी व्यवहार अमूढ दृष्टि गुण के प्रसाद से आत्म-तत्त्व और शारीरादिक बहिर्तत्त्व का निश्चय हो जाने पर सम्पूर्ण मिथ्यात्व-राग आदि तथा शुभ-अशुभ संकल्प-विकल्पो से इष्टबुद्धि-आत्मबुद्धि-उपादेयबुद्धि-हितबुद्धि और ममत्वभाव को छोड़कर, मन-वचन-काय-गुप्ति के द्वारा विशुद्धज्ञानदर्शन स्वभावमयी निज आत्मा मे निश्चल ठहरना, निश्चय

कारण विकल्प इति । अथवा वस्तुवृत्या सङ्कल्प इति कोऽर्थो विकल्प इति तस्यैव पर्यायः ।४।

अथोपगूहनगुणं कथयति । भेदाभेदरत्नत्रयभावनारूपो मोक्षमार्गः स्वभावेन शुद्ध एव तावत्, तत्राज्ञानिजननिमित्तेन तथैवाशक्तजननिमित्तेन च धर्मस्य पैशुन्यं दूषणमपवादो दुष्प्रभावना यदा भवति तदागमाविरोधेन यथाशक्त्यार्थेन धर्मोपदेशेन वा यद्धर्मार्थ दोषस्य झम्पन निवारण क्रियते तद्व्यवहारनयेनोपगूहन भण्यते । तत्र मायाब्रह्मचारिणा पार्श्वभट्टारकप्रतिमालग्नरत्नहरणे कृते सत्युपगूहनविषये जिनदत्तश्रेष्ठिकथा प्रसिद्धेति । अथवा रुद्रजनन्या ज्येष्ठासंज्ञाया लोकापवादे जाते सति यद्दोषझम्पन कृत तत्र चेलिनीमहादेवीकथेति । तथैव निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारोपगूहनगुणस्य सहकारित्वेन निजनिरञ्जननिर्दोषपरमात्मन प्रच्छादका ये मिथ्यात्वरागादिदोषास्तेषा तस्मिन्नेव परमात्मनि सम्यग्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूप यद्ध्यान तेन प्रच्छादनं विनाशन गोपन झम्पनं तदेवोपगूहनमिति ॥ ५ ॥

अथ स्थितीकरण कथयति । भेदाभेदरत्नत्रयधारकस्य चातुर्वर्णसङ्घस्य मध्ये यदा कोऽपि दर्शनचारित्रमोहोदयेन दर्शन ज्ञान चारित्र वा परित्यक्तु वाञ्छति तदागमाविरोधेन यथाशक्त्या धर्मश्रवणेन वा अर्थेन वा सामर्थ्येन वा केनाप्युपायेन यद्धर्मे स्थिरत्वं क्रियते

अमूढदृष्टि गुण है । सकल्प-विकल्प के लक्षण कहते है—पुत्र, स्त्री आदि बाह्य पदार्थों मे 'ये मेरे है' ऐसी कल्पना, सकल्प है । अंतरङ्ग मे 'मै सुखी हू, मै दु खी हू', इस प्रकार हर्ष-विषाद करना, विकल्प है । अथवा सकल्प का वास्तव मे क्या अर्थ है ? वह विकल्प ही है अर्थात् सकल्प विकल्पकी ही पर्याय है ।

अव उपगूहन गुण को कहते है । भेद–अभेद रत्नत्रय की भावनारूप मोक्षमार्ग स्वभाव से ही शुद्ध है तथापि उसमे जव कभी अज्ञानी मनुष्य के निमित्त से अथवा धर्मपालन मे असमर्थ पुरुषो के निमित्त से जा धर्म की चुगली, निन्दा, दूपण तथा अप्रभावना हो तब शास्त्र के अनुकूल, शक्ति के अनुसार, धन से अथवा धर्मोपदेश से, धर्म के लिये जो उसके दोषो का ढकना तथा दूर करना है, उसको व्यवहारनय से उपगूहन गुण कहते है । इस विषय मे कथा—एक कपटी ब्रह्मचारी ने पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा मे लगे हुए रत्न को चुराया । तब जिनदत्त सेठ ने जो उपगूहन किया, वह कथा शास्त्रो मे प्रसिद्ध है । अथवा रुद्र की ज्येष्ठा नामक माता की लोकनिन्दा होने पर, उसके दाष ढकन मे मे चेलिनी महारानी की कथा शास्त्र प्रसिद्ध है । इस प्रकार व्यवहार उपगूहन गुण की सहायता स अपने निरजन निर्दोप परमात्मा को आच्छादन करने वाले मिथ्यात्व–राग आदि दोषो को, उसी परमात्मा मे सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप ध्यान के द्वारा ढकना, नाशकरना, छिपाना तथा झम्पन वही निश्चय से उपगूहन है ॥ ५ ॥

अव स्थितिकरण गुण का कहते है । भेद अभेद रत्नत्रय के धारक (मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) चार प्रकार के सघ मे से यदि कोई दर्शन मोहनीय के उदय से दशन-ज्ञान को या चारित्र ने की इच्छा करे तो यथाशक्ति शास्त्रानुकूल धर्मोपदेश से, धन से या सामर्थ्य से या अन्य किसी

तद्व्यवहारेण स्थितीकरणमिति । तत्र च पुष्पडालतपोधनस्य स्थिरीकरणप्रस्तावे वारिषेणकुमारकथागमप्रसिद्धेति । निश्चयेन पुनस्तेनैव व्यवहारेण स्थितीकरणगुणेन धर्मदृढत्वे जाते सति दर्शनचारित्रमोहोदयजनितसमस्तमिथ्यात्वरागादिविकल्पजालत्यागेन निजपरमात्मस्वभावभावनोत्पन्नपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादेन तल्लयतन्मयपरमसमरसीभावेन चित्तस्थितीकरणमेव स्थितीकरणमिति ॥ ६ ॥

अथ वात्सल्याभिधानं सप्तमाङ्गं प्रतिपादयति । बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयाधारे चतुर्विधसंघे वत्से धेनुवत्पञ्चेन्द्रियविषयनिमित्तं पुत्रकलत्रसुवर्णादिस्नेहवद्वा यदकृत्रिमस्नेहकरणं तद्व्यवहारेण वात्सल्यं भण्यते । तत्र च हस्तिनागपुराधिपतिपद्मराजसंबन्धिना बलिनामदुष्टमन्त्रिणा निश्चयव्यवहाररत्नत्रयाराधकाकम्पनाचार्यप्रभृतिसप्तशतयतीनामुपसर्गे क्रियमाणे सति विष्णुकुमारनाम्ना निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गाराधकपरमयतिना विकुर्वणर्द्धिप्रभावेण वामनरूपं कृत्वा बलिमन्त्रिपार्श्वे पादत्रयप्रमाणभूमिप्रार्थनं कृत्वा पश्चादेकः पादो मेरुमस्तके दत्तो द्वितीयो मानुषोत्तरपर्वते तृतीयपादस्यावकाशो नास्तीति वचनछलेन मुनिवात्सल्यनिमित्तं बलिमन्त्री बद्ध इत्येका तावदागमप्रसिद्धा कथा । द्वितीया च दशपुरनगराधिपतेर्वज्र-

---

उपाय से उस को धर्म में स्थिर कर देना, वह व्यवहार से स्थितीकरण है । पुष्पडाल मुनि को धर्म में स्थिर करने के प्रसंग में वारिषेण की कथा आगम-प्रसिद्ध है । उसी व्यवहार स्थितीकरण गुण से धर्म मे दृढता होने पर दर्शन–चारित्र–मोहनीय–उदय जनित समस्त मिथ्यात्व–राग आदि विकल्पो के त्याग द्वारा निज–परमात्म–स्वभाव भाव की भावना से उत्पन्न परम–आनन्द सुखामृत के आस्वादरूप परमातमा मे लीन अथवा परमात्मस्वरूप मे समरसी भाव से चित्त का स्थिर करना, निश्चय से स्थितीकरण है ॥ ६ ॥

अब वात्सल्य नामक सप्तम अंग का प्रतिपादन करते है । गाय बछडे की प्रीति के सदृश अथवा पाचो इन्द्रियो के विषयो के निमित्तभूत पुत्र स्त्री, सुवर्ण आदि मे स्नेह की भांति, बाह्य–आभ्यन्तर रत्नत्रय के धारक चारो प्रकार के सघ मे स्वभाविक स्नेह करना, वह व्यवहारनय से वात्सल्य कहा जाता है ।

हस्तिनागपुर के राजा पद्मराज के बलि नामक दुष्ट मत्री ने जब निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय के आराधक श्री अकंपनाचार्य आदि सातसौ मुनियो को उपसर्ग किया तब निश्चय तथा व्यवहार मोक्षमार्ग के आराधक विष्णुकुमार महामुनीश्वर ने विक्रिया ऋद्धि के प्रभाव से वामन रूप को धारण करके बलि नामक दुष्ट मत्री के पास से तीन पग प्रमाण पृथ्वी की याचना की, और जब बलि ने देना स्वीकार किया, तब एक पग तो मेरु के शिखर पर दिया, दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर दिया और तीसरे पग को रखने के लिये स्थान नही रहा तब वचनछल मे मुनियों के वात्सल्य निमित्त बलि मन्त्री को बांध लिया । इस विषय में यह एक आगम–प्रसिद्ध कथा है । दशपुर नगर वज्रकर्ण नामक राजा की दूसरी कथा

कर्णनाम्न उज्जयिनीनगराधिपतिना सिंहोदरमहाराजेन जैनोऽयं, मम नमस्कारं न करोतीति मत्वा दशपुरनगरं परिवेष्ट्य घोरोपसर्गे क्रियमाणे भेदाभेदरत्नत्रयभावनाप्रियेण रामस्वामिना वज्रकर्णवात्सल्यनिमित्तं सिंहोदरो बद्ध इति रामायणमध्ये प्रसिद्धेयं वात्सल्यकथेति । निश्चयवात्सल्य पुनस्तस्यैव व्यवहारवात्सल्यगुणस्य सहकारित्वेन धर्मे दृढत्वे जाते सति मिथ्यात्वरागादिसमस्तशुभाशुभबहिर्भावेषु प्रीतिं त्यक्त्वा रागादिविकल्पोपाधिरहितपरमस्वास्थ्यसंवित्तिसञ्जातसदानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादं प्रति प्रीतिकरणमेवेति सप्तमाङ्गं व्याख्यातम् ॥ ७ ॥

अथाष्टमाङ्गं नाम प्रभावनागुणं कथयति । श्रावकेन दानपूजादिना तपोधनेन च तपश्रुतादिना जैनशासनप्रभावना कर्त्तव्येति व्यवहारेण प्रभावनागुणो ज्ञातव्यः । तत्र पुनरुत्तरमथुरायां जिनसमयप्रभावनशीलायां उर्विल्लामहादेव्या प्रभावननिमित्तमुपसर्गे जाते सति वज्रकुमारनाम्ना विद्याधरश्रमणेनाकाशे जैनरथभ्रमणेन प्रभावना कृतेत्येका आगमप्रसिद्धा कथा । द्वितीया तु जिनसमयप्रभावनाशीलवप्रामहादेवीनामस्वकीयजनन्या निमित्तं स्वस्य धर्मानुरागेण च हरिषेणनामदशमचक्रवर्तिना तद्भवमोक्षगामिना जिनसमयप्रभावनार्थमुत्तुङ्गतोरणजिनचैत्यालयमण्डितं सर्वभूमितलं कृतमिति रामायणे प्रसिद्धेयं कथा ।

इस प्रकार है—उज्जयिनी के राजा सिंहोदर ने 'वज्रकर्ण जैन है और मुझको नमस्कार नही करता है' ऐसा विचार करके, वज्रकर्ण से नमस्कार कराने के लिये दशपुर नगर को घेर कर घोर उपसर्ग किया । तब भेदाभेद रत्नत्रय भावना के प्रेमी श्री रामचन्द्र ने वज्रकर्ण से वात्सल्य के लिये सिंहोदर को बाध लिया। यह वात्सल्य सबंधी कथा रामायण (पद्मपुराण) मे प्रसिद्ध है। इसी व्यवहार-वात्सल्यगुण के सहकारीपने से धर्म मे दृढता हो जाने पर मिथ्यात्व राग आदि समस्त शुभ–अशुभ बाह्य पदार्थो मे प्रीति छोड़कर रागादि विकल्पो की उपाधिरहित परमस्वास्थ्य के अनुभव से उत्पन्न सदा आनन्द रूप सुखमय अमृत के आस्वाद के प्रति प्रीति का करना ही निश्चय वात्सल्य है। इस प्रकार सप्तम 'वात्सल्य' अङ्ग का व्याख्यान हुआ । ७ ।

अब अष्टम प्रभावनागुण को कहते है । श्रावक को तो दान पूजा आदि द्वारा और मुनि को तप, श्रुत आदि से जैन धर्म की प्रभावना करनी चाहिये । यह व्यवहार से प्रभावना गुण जानना चाहिये इस गुण के पालने मे, उत्तर मथुरा मे जिनमत की प्रभावना करने की अनुरागिणी उरविला महादेवी को प्रभावना सबधी उपसर्ग होने पर, वज्रकुमार नामक विद्याधर श्रमण ने आकाश मे जैन रथ को फिराकर प्रभावना की, यह एक आगम प्रसिद्ध कथा है। दूसरी कथा यह है—उसी भव से मोक्ष जाने हरिषेण नामक दशवे चक्रवर्ती ने जिनमत की प्रभावनाशील अपनी माता वप्रा महादेवी के निमित्त से धर्मानुराग से जिनमत की प्रभावना के लिये ऊंचे तोरण वाले जिनमंदिरो से समस्त पृथ्वीतल

निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारप्रभावनागुणस्य बलेन मिथ्यात्वविषयकषायप्रभृतिसमस्तविभावपरिणामरूपपरसमयानां प्रभावं हत्वा शुद्धोपयोगलक्षणस्वसंवेदनज्ञानेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजशुद्धात्मनः प्रकाशनमनुभवनमेव प्रभावनेति ॥ ८ ॥

एवमुक्तप्रकारेण मूढत्रयमदाष्टकषडनायतनशङ्काद्यष्टमलरहितं शुद्धजीवादितत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं सरागसम्यक्त्वाभिधानं व्यवहारसम्यक्त्वं विज्ञेयम्। तथैव तेनैव व्यवहारसम्यक्त्वेन पारम्पर्येण साध्यं शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयरत्नत्रयभावनोत्पन्नपरमाह्लादैकरूपसुखामृतरसास्वादनमेवोपादेयमिन्द्रियसुखादिकं च हेयमिति रुचिरूप वीतरागचारित्राविनाभूत वीतरागसम्यक्त्वाभिधानं निश्चयसम्यक्त्वं च ज्ञातव्यमिति। अत्र व्यवहारसम्यक्त्वमध्ये निश्चयसम्यक्त्वं किमर्थ व्याख्यातमिति चेत् ? व्यवहारसम्यक्त्वेन निश्चयसम्यक्त्वं साध्यत इति साध्यसाधकभावज्ञापनार्थमिति।

इदानीं येषां जीवानां सम्यग्दर्शनग्रहणात्पूर्वमायुर्बन्धो नास्ति तेषां व्रताभावेऽपि नरनारकादिकुत्सितस्थानेषु जन्म न भवतीति कथयति। 'सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि। दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥ १ ॥' इत पर मनुष्यगतिसमुत्पन्नसम्यग्दृष्टेः प्रभावं कथयति। 'ओजस्तेजोविद्यावीर्ययशोवृद्धिविजयविभव-

---

को भूषित कर दिया। यह कथा रामायण (पद्मपुराण) मे प्रसिद्ध है। इसी व्यवहार प्रभावना गुण के बल से मिथ्यात्व–विषय–कषाय आदि सम्पूर्ण विभाव परिणाम रूप पर समय के प्रभाव को नष्ट करके शुद्धोपयोग लक्षण वाले स्वसंवेदन ज्ञान से, निर्मल ज्ञान–दर्शनरूप स्वभाव–वाली निज शुद्ध–आत्मा का जो प्रकाशन अथवा अनुभवन, वह निश्चय से प्रभावना है ॥ ८ ॥

इस प्रकार तीन मूढता, आठ मद, छः अनायतन और शंका आदि रूप आठ दोषो से रहित तथा शुद्ध जीव आदि तत्त्वार्थो के श्रद्धानरूप सराग–सम्यक्त्व नामक व्यवहारसम्यक्त्व जानना चाहिए। इसी प्रकार उसी व्यवहार-सम्यक्त्व द्वारा परम्परा मे साधने योग्य, शुद्ध–उपयोग रूप निश्चय रत्नत्रय की भावना मे उत्पन्न परम आह्लाद रूप सुखामृत रस का आस्वादन ही उपादेय है, इन्द्रियजन्य सुख आदिक हेय है, ऐसी रुचि रूप तथा वीतराग चारित्र का अविनाभावि वीतराग-सम्यक्त्व नामक निश्चय-सम्यक्त्व जानना चाहिए। प्रश्न-यहां इस व्यवहार-सम्यक्त्व के व्याख्यान मे निश्चय-सम्यक्त्व का वर्णन क्यों किया गया ? उत्तर-व्यवहार सम्यक्त्व से निश्चय-सम्यक्त्व साधा सिद्ध किया) जाता है, (व्यवहार-सम्यक्त्व साधक और निश्चय-सम्यक्त्व साध्य) इस साध्यसाधक भाव को बतलाने के लिये किया गया है।

अब जिन जीवो के सम्यग्दर्शन ग्रहण होने से पहले आयु का बंध नही हुआ है, व्रत के अभाव मे भी निंदनीय नर नारक आदि खोटे स्थानो मे उनका जन्म नही होता, ऐसा कथन करते है। 'जिनके शुद्ध सम्यग्दर्शन है किन्तु अव्रति है वे भी नरकगति, तिर्यचगति, नपुंसक, स्त्री, नीचकुल, अंगहीन-शरीर, अल्प-आयु और दरिद्रीपने को प्राप्त नही होते।' इसके आगे मनुष्य गति में उत्पन्न होने वाले सम्यग्दृष्टि

सनाथा । महाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥ १ ॥' अथ देवगतौ पुनः प्रकीर्णकदेववाहनदेवकिल्विषदेवनीचदेवत्रयं विहायान्येषु महर्द्धिकदेवेषूत्पद्यते सम्यग्दृष्टि । इदानी सम्यक्त्वग्रहणात्पूर्वं देवायुष्क विहाय ये बद्धायुष्कास्तान् प्रति सम्यक्त्वमाहात्म्य कथयति । "हेट्ठिमछप्पुढवीण जोइसवणभवणसव्वइत्थीण । पुण्णिदरे ण हि सम्मो ण सासणो णारयापुण्णे ।" तमेवार्थं प्रकारान्तरेण कथयति । 'ज्योतिर्भावनभौमेषु षट्स्वध श्वभ्रभूमिषु । तिर्यक्षु नृसुरस्त्रीषु सद्दृष्टिर्नैव जायते[१] ॥ १ ॥' अथौपशमिकवेदकक्षायिकाभिधानसम्यक्त्वत्रयमध्ये कस्या गतौ कस्य सम्यक्त्वस्य सम्भवोऽस्तीति कथयति—"[२]सौधर्मादिष्वसख्याब्दायुष्कतिर्यक्षु नृष्वपि । रत्नप्रभावनौ च स्यात्सम्यक्त्वत्रयमङ्गिनाम् ॥२॥" कर्मभूमिजपुरुषे च त्रयं सम्भवति बद्धायुष्के लब्धायुष्केऽपि । किन्त्वौपशमिकमपर्याप्तावस्थाया महर्द्धिकदेवेष्वेव । "[३]शेषेषु देवतिर्यक्षु षट्स्वध श्वभ्रभूमिषु । द्वौ वेदकोपशमकौ स्याता पर्याप्तदेहिनाम् ॥३॥" इति निश्चयव्यवहाररत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गावयविन प्रथमावयवभूतस्य सम्यक्त्वस्य व्याख्यानेन गाथा गता ॥४१॥

जोवो का वर्णन करते है—'जो दर्शन से पवित्र है वे उत्साह, प्रताप, विद्या, वीर्य, यश, वृद्धि, विजय और विभव से सहित उत्तम कुल वाले विपुल धनशाली तथा मनुष्य शिरोमणि होते है ।' प्रकीर्णक देव, वाहन देव, किल्विष देव तथा व्यन्तर–भवनवासी–ज्योतिषी तीन नीच देवो के अतिरिक्त महाऋद्धि धारक देवो मे सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होते है । जिन्होने सम्यक्त्व ग्रहणसे पूर्व देव आयु को छोडकर अन्य आयु बाध ली है, अब उनके प्रति सम्यक्त्व का महात्म्य कहते है—'नीचे के ६ नरको मे ज्योतिषी व्यन्तर–भवनवासी देवो मे, सब स्त्रियो मे और लब्ध्यपर्याप्तको मे सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नही होता । नरक अपर्याप्तको मे सासादन नही होते ।' इसी आशय को अन्य प्रकार से कहते है—'ज्योतिषी, भवनवासी और व्यतर देवो मे, नीचे की ६ नरक पृथिवियो मे, तिर्यचो (कर्मभूमि तिर्यच, भोगभूमि तिर्यचनियो मे, मनुष्यनियो मे तथा देवागनाओ मे सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नही होते । १ ।' औपशमिक, वेदक और क्षायिक नामक तीन सम्यक्त्वो मे से किस गति मे कौन सा सम्यक्त्व हो सकता है, सो कहते है—'सौधर्म आदि स्वर्गों मे, असख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यचो मे, मनुष्यो मे और रत्नप्रभा प्रथम नरक मे (उपशम, वेदक, क्षायिक) तीनो सम्यक्त्व होते है । २ ।' जिसने आयु बाध ली है या नही बाधी ऐसे कर्मभूमि—मनुष्यो के तीनो सम्यक्त्व होते है परन्तु अपर्याप्त अवस्था मे औपशमिक सम्यक्त्व महर्द्धिक देवो मे ही होता है । 'शेष देवो व तिर्यचो मे और नीचे की नरकभूमियो मे पर्याप्त जीवो के वेदक और उपशम ये दो ही सम्यक्त्व होते हैं । ३ ।' इस प्रकार निश्चय—व्यवहार रूप रत्नत्रय-आत्मक मोक्षमार्ग अवयवी का प्रथम अवयवभूत सम्यग्दर्शन का व्याख्यान करने वाली गाथा समाप्त हुई ॥ ४१ ॥

---

१. निकायत्रितये पूर्वे श्वभ्रभूमिषु षट्स्वधः । वनितासु समस्तासु सम्यग्दृष्टिर्न जायते ॥ २९८ ॥
२. नृभोगभूमितिर्यक्षु सौधर्मादिषु नाकिषु । आद्यायां श्वभ्रभूमौ च सम्यक्त्वत्रयमिष्यते ॥ ३०० ॥
३. शेष त्रिदशतिर्यक्षु षट्स्वधः श्वभ्रभूमिषु । पर्याप्तेषु द्वय ज्ञेय क्षायिकेण विनांगिषु ॥ ३०१ ॥
(अमितगति) पचसग्रह प्रथम परिच्छेद

अथ रत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गद्वितीयावयवरूपस्य सम्यग्ज्ञानस्य स्वरूपं प्रतिपादयति–

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ।

गहणं सम्मण्णाणं सायारमणेयभेयं तु ॥४२॥

संशयविमोहविभ्रमविवर्जितं आत्मपरस्वरूपस्य ।

ग्रहणं सम्यक्ज्ञानं साकारं अनेकभेदं च ॥४२॥

व्याख्या –"संसयविमोहविब्भमविवज्जियं" 'संशय:' शुद्धात्मतत्त्वादिप्रतिपादकमागमज्ञानं किं वीतरागसर्वज्ञप्रणीतं भविष्यति परसमयप्रणीतं वेति, संशय: । तत्र दृष्टान्त:– स्थाणुर्वा पुरुषो वेति । 'विमोह:' परस्परसापेक्षनयद्वयेन द्रव्यगुणपर्यायादिपरिज्ञानाभावो विमोह: । तत्र दृष्टान्त:-गच्छत्तृणस्पर्शवद्दिग्मोहवद्वा । 'विभ्रम:' अनेकान्तात्मकवस्तुनो नित्यक्षणिकैकान्तादिरूपेण ग्रहणं विभ्रम: । तत्र दृष्टान्त:–शुक्तिकायां रजतविज्ञानवत् । 'विवज्जियं' इत्युक्तलक्षणसंशयविमोहविभ्रमैर्वर्जितं, "अप्पपरसरूवस्स गहणं" सहजशुद्धकेवलज्ञानदर्शनस्वभावस्वात्मरूपस्य ग्रहणं परिच्छेदनं परिच्छित्तिस्तथा परद्रव्यस्य च भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरूपस्य जीवसम्बन्धिनस्तथैव पुद्गलादिपञ्चद्रव्यरूपस्य परकीयजीवरूपस्य च परिच्छेदनं यत्तत् 'सम्मण्णाणं' सम्यग्ज्ञानं भवति । तच्च कथंभूतं ? 'सायारं' घटोऽयं पटोऽयमि-

---

अब रत्नत्रय-आत्मक मोक्षमार्ग के द्वितीय अवयव रूप सम्यग्ज्ञान के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं :–

गाथार्थ :—आत्मा का और परपदार्थों के स्वरूप का संशय, विमोह और विभ्रम रहित जानना सम्यग्ज्ञान है । वह साकार और अनेक भेदों वाला है ॥ ४२ ॥

वृत्त्यर्थ –'संसयविमोहविब्भमविवज्जियं' संशय–शुद्ध आत्मतत्त्व आदि का प्रतिपादक शास्त्र ज्ञान, क्या वीतराग–सर्वज्ञ द्वारा कहा हुआ सत्य है या अन्य–मतियों द्वारा कहा हुआ सत्य है, यह संशय है । इसका दृष्टान्त–स्थाणु (ठूंठ) है या मनुष्य । विमोह–परस्पर सापेक्ष द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक इन दो नयों के अनुसार द्रव्य-गुण-पर्याय आदि का नहीं जानना, विमोह है इसका दृष्टान्त–गमन करते हुए पुरुष के पैर में तृण आदि का स्पर्श होने पर स्पष्ट ज्ञात नहीं होता क्या लगा, अथवा जंगल में दिशा का भूल जाना । विभ्रम–अनेकान्तात्मक वस्तु को 'यह नित्य ही है, यह अनित्य ही है, ऐसे एकान्त रूप जानना, विभ्रम है । इसका दृष्टान्त—सीप में चांदी और चांदी में सीप का ज्ञान । 'विवज्जियं' इन पूर्वोक्त लक्षणों वाले संशय, विमोह और विभ्रम से रहित, 'अप्पपरसरूवस्स गहणं' सहज-शुद्ध-केवल-ज्ञान-दर्शन-स्वभाव निज-आत्म-स्वरूप का जानना और परद्रव्य का अर्थात् जीव सम्बन्धी भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म का एवं पुद्गल आदि पांच द्रव्यों का और परजीव के स्वरूप का जानना, सो 'सम्मण्णाणं' सम्यक् ज्ञान है । वह कैसा है ? 'सायारं' यह घट है, यह वस्त्र है इत्यादि जानने रूप व्यापार से साकार, विकल्प **सहित,**

त्यादिग्रहणव्यापाररूपेण साकार सविकल्पं व्यवसायात्मकं निश्चयात्मकमित्यर्थः । पुनश्च कि विशिष्ट ? 'अणेयभेय तु' अनेकभेद तु पुनरिति ।

तस्य भेदा कथ्यन्ते । मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानभेदेन पञ्चधा । अथवा श्रुतज्ञानापेक्षया द्वादशाङ्गमङ्गबाह्यं चेति द्विभेदम् । द्वादशाङ्गाना नामानि कथ्यन्ते । आचार, सूत्रकृत, स्थानं, समवायनामधेय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृकथा, उपासकाध्ययन, अन्तकृतदश, अनुत्तरोपपादिकदश, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र, दृष्टिवादश्चेति । दृष्टिवादस्य च परिकर्मसूत्रप्रथमानुयोगपूर्वगतचूलिकाभेदेन पञ्चभेदा कथ्यन्ते । तत्र चन्द्रसूर्यजम्बूद्वीप द्वीपसागरव्याख्याप्रज्ञप्तिभेदेन परिकर्म पञ्चविध भवति । सूत्रमेकभेदमेव । प्रथमानुयोगोऽप्येकभेद । पूर्वगात पुनरुत्पादपूर्व, अग्रायणीयं, वीर्यानुप्रवाद, अस्तिनास्तिप्रवादं, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुवाद, कल्याणनामधेय, प्राणानुवाद, क्रियाविशाल, लोकसज्ञ, पूर्व चेति चतुर्दशभेदम् । जलगतस्थलगताकाशगतहरमेखलादिमायास्वरूपशाकिन्यादिरूपपरावर्त्तनभेदेन चूलिका पञ्चविधा चेति सक्षेपेण द्वादशाङ्गव्याख्यानम् । अङ्गबाह्य पुन सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिकं, कृतिकर्म, दश-

---

व्यवसायात्मक तथा निश्चय रूप ऐसा 'साकार' का अर्थ है । और फिर कैसा है ? 'अणेयभेयं तु' अनेक भेदो वाला है ।

सम्यग्ज्ञान के भेद कहे जाते है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान इन भेदो से वह सम्यग्ज्ञान पाच प्रकार का है । अथवा श्रुतज्ञान की अपेक्षा द्वादशाङ्ग और अङ्गबाह्य से दो प्रकार का है । उनमे द्वादश (१२) अङ्गो के नाम कहते है-आचाराङ्ग १, सूत्रकृताङ्ग २, स्थानाङ्ग ३, समवायोग ४, व्याख्याप्रज्ञप्त्यग ५, ज्ञातृकथाग ६, उपासकाध्ययनाग ७, अन्तकृद्दशाग ८, अनुत्तरोपपादिकदशाग ९, प्रश्नव्याकरणाग १०, विपाकसूत्राग ११ और दृष्टिवाद १२, ये द्वादश अङ्गो के नाम है । अव दृष्टिवाद नामक वारहवे अङ्ग के परिकर्म १, सूत्र २, प्रथमानुयोग ३, पूर्वगत ४ तथा चूलिका ५, ये पाच भेद है । उनका वर्णन करते है-उनमे चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जबू-द्वीपप्रज्ञप्ति. द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, व्याख्याप्रज्ञप्ति, इस तरह परिकर्म पाच प्रकार का है । सूत्र एक ही प्रकार का है । प्रथमानुयोग भी एक हो प्रकार का है । पूर्वगत—उत्पादपूर्व १, अग्रायणीयपूर्व २, वीर्यानुप्रवादपूर्व , अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व ४, ज्ञानप्रवादपूर्व ५, सत्यप्रवादपूर्व ६, आत्मप्रवादपूर्व ७, कर्मप्रवादपूर्व ८, प्रत्याख्यानपूर्व ९, विद्यानुवादपूर्व १०, कल्याणपूर्व ११, प्राणानुवादपूर्व १२, क्रियाविशालपूर्व १३, लोकबिन्दुसारपूर्व १४, इन भेदो मे चौदह प्रकार का है । जलगत चूलिका १, स्थलगत चूलिका २, आकाशगत चूलिका ३, हरमेखला आदि मायास्वरूप चूलिका ४, और शाकिन्यादिरूप परावर्त्तन चूलिका ५, इन भेदो से पंच प्रकारकी है । इस प्रकार संक्षेप से द्वादशाग का व्याख्यान है । और जो अङ्गबाह्य श्रुतज्ञान ायिक १, चतुर्विंशतिस्तव २, वंदना ३, प्रतिक्रमण ४, वैनयिक ५, कृतिकर्म ६, दशवैकालिक ७,

वैकालिकम्, उत्तराध्ययनं, कल्पव्यवहार:, कल्पाकल्पं, महाकल्पं, पुण्डरीकं, महापुण्डरीक, अशीतिकं चेति चतुर्दशप्रकीर्णकसंज्ञं बोद्धव्यमिति ।

अथवा वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थङ्करभरतादिद्वादशचक्रवर्त्तिविजयादिनवबलदेव त्रिपृष्ठादिनववासुदेवसुग्रीवादिनवप्रतिवासुदेवसम्बन्धित्रिषष्ठिपुरुषपुराणभेदभिन्न प्रथमानुयोगो भण्यते । उपासकाध्ययनादौ श्रावकधर्मम्, आचाराराधनादौ यतिधर्म च यत्र मुख्यत्वेन कथयति स चरणानुयोगो भण्यते । त्रिलोकसारे जिनान्तरलोकविभागादिग्रन्थव्याख्यानं करणानुयोगो विज्ञेय: । प्राभृततत्त्वार्थसिद्धान्तादौ यत्र शुद्धाशुद्धजीवादिषड्द्रव्यादीना मुख्यवृत्त्या व्याख्यानं क्रियते स द्रव्यानुयोगो भण्यते । इत्युक्तलक्षणानुयोगचतुष्टयरूपेण चतुर्विध श्रुतज्ञान ज्ञातव्यम् । अनुयोगोऽधिकार: परिच्छेद: प्रकरणमित्याद्येकोऽर्थ । अथवा षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु (मध्ये) निश्चयनयेन स्वकीय शुद्धात्मद्रव्यं, स्वशुद्धजीवास्तिकायो निजशुद्धात्मतत्त्वं निजशुद्धात्मपदार्थ उपादेय । शेषं च हेयमिति संक्षेपेण हेयोपादेय भेदेन द्विधा व्यवहारज्ञानमिति ।

इदानी तेनैव विकल्परूपव्यवहारज्ञानेन साध्यं निश्चयज्ञान कथ्यते । तथाहि-- रागात् परकलत्रादिवाञ्छारूप, द्वेषात् परबधबन्धच्छेदादिवाञ्छारूपं, च मदीयापध्यानं

उत्तराध्ययन ८, कल्प-व्यवहार ९, कल्पाकल्प १०, महाकल्प ११, पुण्डरीक १२, महापुंडरीक १३, और अशीतिक १४, इन प्रकीर्णकरूप भेदो से चौदह प्रकार का जानना चाहिये ।

अथवा श्री ऋषभनाथ आदि चौबीस तीर्थकरों, भरत आदि बारह चक्रवर्ती विजय आदि नौ बलदेव, त्रिपृष्ठ आदि नौ नारायण, और सुग्रीव आदि नौ प्रतिनारायण सम्बन्धी तिरेसठ शलाका पुरुषो का पुराण भिन्न-भिन्न प्रथमानुयोग कहलाता है । उपासकाध्ययन आदि मे श्रावक का धर्म और आचार आराधना आदि मे मुनि का धर्म मुख्यता से कहा गया है, वह दूसरा चरणानुयोग कहा जाता है । त्रिलोकसार मे जिनान्तर (तीर्थकरो का अन्तरकाल) व लोकविभाग आदि का व्याख्यान है, ऐसे ग्रन्थ करणानुयोग जानना चाहिये । प्राभृत (पाहुड) और तत्त्वार्थ सिद्धान्त आदि मे मुख्यता से शुद्ध-अशुद्ध जीव आदि छ: द्रव्यो आदि का वर्णन किया गया है, वह द्रव्यानुयोग कहलाता है । इस प्रकार उक्त लक्षण वाले चार अनुयोग रूप चार प्रकार का श्रुतज्ञान जानना चाहिये । अनुयोग, अधिकार, परिच्छेद और प्रकरण इत्यादि शब्दों का एक ही अर्थ है । अथवा छह द्रव्य, पच अस्तिकाय, सात तत्त्व और नौ पदार्थो में निश्चयनय से मात्र अपना शुद्ध आत्मद्रव्य, अपना शुद्ध जीव अस्तिकाय, निज—शुद्ध-आत्मतत्त्व तथा निज—शुद्ध-आत्म पदार्थ उपादेय है। शेप हेय है । इस प्रकार सक्षेप से हेय–उपादेय भेद वाला व्यवहार-ज्ञान दो प्रकार का है ।

अब विकल्परूप व्यवहारज्ञान से साध्य निश्चयज्ञान का कथन करते है । तथा—राग के उदय से परस्त्री आदि की वाछारूप, और द्वेप से अन्य जीवों के मारने, बाधने अथवा छेदने आदि की वाछा

कोऽपि न जानातीति मत्वा स्वशुद्धात्मभावनासमुत्पन्नसदानन्दैकलक्षणसुखामृतरसनिर्मलजलेन चित्तशुद्धिमकुर्वाण सन्नय जीवो बहिरङ्गबकवेषेण यल्लोकरञ्जनं करोति तन्मायाशल्य भण्यते। निजनिरञ्जननिर्दोषपरमात्मैवोपादेय इति रुचिरूपसम्यक्त्वाद्विलक्षण मिथ्याशल्य भण्यते। निर्विकारपरमचैतन्यभावनोत्पन्नपरमाह्लादैकरूपसुखामृतरसास्वादमलभमानोऽय जीवो दृष्टश्रुतानुभूतभोगेषु यन्नियतम् निरन्तरम् चित्तम् ददाति तन्निदानशल्यमभिधीयते। इत्युक्तलक्षणशल्यत्रयविभावपरिणामप्रभृतिसमस्तशुभाशुभसङ्कल्पविकल्परहितेन परमस्वास्थ्यसवित्तिसमुत्पन्नतात्त्विकपरमानन्दैकलक्षणसुखामृततृप्तेन स्वेनात्मना स्वस्य सम्यग्निर्विकल्परूपेण वेदन परिज्ञानमनुभवनमिति निर्विकल्पस्वसवेदनज्ञानमेव निश्चयज्ञान भण्यते।

अत्राह शिष्य.। इत्युक्तप्रकारेण प्राभृतग्रन्थे यन्निर्विकल्पस्वसवेदनज्ञान भण्यते, तन्न घटते। कस्मादितिचेत् तदुच्यते। सत्तावलोकरूपं चक्षुरादिदर्शनं यथा जैनमते निर्विकल्पं कथ्यते, तथा बौद्धमते ज्ञानं निर्विकल्पक भण्यते, पर किन्तु तन्निर्विकल्पमपि विकल्पजनक भवति। जैनमते तु विकल्पस्योत्पादक भवत्येव न, किन्तु स्वरूपेणैव सविकल्पमिति। तथैव

रूप मेरा दुर्ध्यान है, उसको कोई भी नही जानता है, ऐसा मानकर, निज-शुद्ध-आत्म-भावना से उत्पन्न निरन्तर आनन्दरूप एक लक्षण वाला सुख-अमृतरसरूप निर्मल जल से अपने चित्त की शुद्धि को न करता हुआ, यह जीव बाहर मे बगुले जैसे वेष को धारण कर, लोक को प्रसन्न करता है, वह माया शल्य कहलाती है। 'अपना निरजन दोष रहित परमात्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचि रूप सम्यक्त्व से विलक्षण, मिथ्या-शल्य कहलाती है। निर्विकार-परम-चैतन्य-भावना से उत्पन्न एक परम-आनन्द-स्वरूप सुखामृत-रस के स्वाद को प्राप्त न करता हुआ, यह जीव, देखे-सुने और अनुभव मे आये हुए भोगो मे जो निरन्तर चित्त को देता है, वह निदान-शल्य है। इस प्रकार उक्त लक्षण वाले माया, मिथ्या और निदान-शल्य रूप विभाव परिणाम आदि समस्त शुभ-अशुभ सकल्प-विकल्प से रहित, परम निज-स्वभाव के अनुभव से उत्पन्न यथार्थ परमानन्द एक लक्षण स्वरूप सुखामृत के रस-आस्वादन से तृप्त ऐसी अपनी आत्मा द्वारा जो निजस्वरूप का संवेदन, जानना व अनुभव करना है, वही निर्विकल्प-स्वसवेदन-ज्ञान-निश्चयज्ञान कहा जाता है।

यहा शिष्य की शका—उक्त प्रकार से प्राभृत (पाहुड) शास्त्र मे जो विकल्परहित स्वसंवेदन ज्ञान कहा गया है, वह घटित नही होता। (यदि कहो) क्यो नही घटित होता, तो कहता हूँ--जैनमत मे सत्तावलोकनरूप चक्षु-आदि-दर्शन, जैसे निर्विकल्प कहा जाता है, वैसे ही बौद्धमत मे 'ज्ञान निर्विकल्प कहलाता है, किन्तु निर्विकल्प होते हुए भी विकल्प को उत्पन्न करने वाला कहा गया है'। जैनमत मे तो ज्ञान विकल्प को उत्पन्न करने वाला ही नही है।

स्वरूप (स्वभाव) से ही विकल्प-सहित है और इसी प्रकार स्व-पर-प्रकाशक है। शका का परि-

स्वपरप्रकाशकं चेति । तत्र परिहारः । कथंचित् सविकल्पकं निर्विकल्पकं च । तथाहि-यथा विषयानन्दरूपं स्वसंवेदनं रागसम्वित्तिविकल्परूपेण सविकल्पमपि शेषानीहितसूक्ष्मविकल्पानां सद्भावेऽपि सति तेषां मुख्यत्वं नास्ति तेन कारणेन निर्विकल्पमपि भण्यते । तथा स्वशुद्धात्मसम्वित्तिरूपं वीतरागस्वसम्वेदनज्ञानमपि स्वसवित्त्याकारैकविकल्पेन सविकल्पमपि बहिर्विषयानीहितसूक्ष्मविकल्पानां सद्भावेऽपि सति तेषां मुख्यत्वं नास्ति तेन कारणेन निर्विकल्पमपि भण्यते । यत एवेहापूर्वस्वसम्वित्त्याकारान्तर्मुखप्रतिभासेऽपि बहिर्विषयानीहितसूक्ष्मा विकल्पा अपि सन्ति तत एव कारणात् स्वपरप्रकाशकं च सिद्धम् । इदं तु सविकल्पकर्निर्विकल्पकस्य तथैव स्वपरप्रकाशकस्य ज्ञानस्य च व्याख्यानं यद्यागमाध्यात्मतर्कशास्त्रानुसारेण विशेषेण व्याख्यायते तदा महान् विस्तारो भवति । स चाध्यात्मशास्त्रत्वान्न कृत इति ।

एवं रत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गावयविनो द्वितीयावयवभूतस्य ज्ञानस्य व्याख्यानेन गाथा गता ॥ ४२ ॥

अथ निर्विकल्पसत्ताग्राहकं दर्शनं कथयति :—

हार जैन सिद्धान्तमे ज्ञानको कथचित् सविकल्प और कथंचित् निर्विकल्प माना गया है । सो ही दिखाते है जैसे विषयो मे आनन्दरूप जो स्वसवेदन है, वह राग के जानने रूप विकल्प-स्वरूप होने से सविकल्प है, तो भी शेष अनिच्छित जो सूक्ष्म विकल्प है, उनका सद्भाव होने पर भी उन विकल्पो की मुख्यता नही इस कारण से उस ज्ञान को निर्विकल्प भी कहते है । इसी प्रकार निज-शुद्ध-आत्मा के अनुभवरूप वीतराग स्वसवेदन ज्ञान, आत्मसवेदन के आकाररूप एक विकल्पमयी होने से यद्यपि सविकल्प है, तथापि उस ज्ञान मे बाह्य विषयो के अनिच्छित (नही चाहे हुए) विकल्पो का, सद्भाव होने पर भी उनकी मुख्यता नही है, इस कारण उस स्वसवेदन ज्ञान को निर्विकल्प भी कहते है । यहा अपूर्व स्वसंवित्ति के आकाररूप अन्तरंग में मुख्य प्रतिभास के होने पर भी, क्योकि बाह्य विषय सम्बन्धी अनिच्छित सूक्ष्म विकल्प भी है, अत: ज्ञान स्व-पर-प्रकाशक भी सिद्ध हो जाता है । यदि इस सविकल्प–निर्विकल्प तथा स्व-पर-प्रकाशक ज्ञान का व्याख्यान आगमशास्त्र–अध्यात्मशास्त्र--तर्कशास्त्र के अनुसार विशेषरूप से किया जाता तो महान् विस्तार होजाता । किन्तु यह द्रव्यसंग्रह अध्यात्मशास्त्र है, इस कारण ज्ञान का विशेष व्याख्यान यहा नही किया गया ।

इस प्रकार रत्नत्रय-आत्मक मोक्षमार्ग रूप अवयवी के दूसरे अवयवरूप ज्ञान के व्याख्यान द्वारा गाथा समाप्त हुई ।। ४२ ।।

अब विकल्प रहित सत्ता को ग्रहण करने वाले दर्शन को कहते है .—

गाथार्थ .—पदार्थों में विशेषता (भेद) न करके और विकल्प न करके पदार्थो के

ज सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णए समए ।।४३।।

यत् सामान्य ग्रहणं भावानां नैव कृत्वा आकारम् ।
अविशेषयित्वा अर्थान् दर्शन इति भण्यते समये ॥ ४३ ॥

व्याख्या--'ज सामण्णं गहण भावाण' यत् सामान्येन सत्तावलोकनेन ग्रहणं परिच्छेदन, केषा ? भावाना पदार्थाना, कि कृत्वा ? "णेव कट्टुमायारं" नैव कृत्वा, क ? आकार विकल्पं, तदपि कि कृत्वा ? "अविसेसिदूण अट्ठे" अविशेष्याविभेद्यार्थान्, केन रूपेण ? शुक्लोऽय, कृष्णोऽय, दीर्घोऽय, ह्रस्वोऽय, घटोऽयं, पटोऽयमित्यादि । "दंसणमिदि भण्णए समए" तत्सत्तावलोक दर्शनमिति भण्यते समये परमागमे । नेदमेव तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण सम्यग्दर्शन वक्तव्यम् । कस्मादितिचेत् ? तत्र श्रद्धान विकल्परूपमिद तु निर्विकल्प यत । अयमत्र भाव --यदा कोऽपि किमप्यवलोकयति पश्यति, तदा यावत् विकल्पं न करोति तावत् सत्तामात्रग्रहण दर्शनं भण्यते, पश्चाच्छुक्लादिविकल्पे जाते ज्ञानमिति ।।४३।।

अथ छद्मस्थाना ज्ञान सत्तावलोकनदर्शनपूर्वक भवति, मुक्तात्मना युगपदिति प्रतिपादयति --

दंसणपुव्वं णाण छदमत्थाणं ण दोण्णि उवउग्गा ।
जुगवं जह्मा केवलिणाहे जुगव तु ते दो वि ।।४४।।

से जो (सत्तावलोकनरूप) ग्रहण करना है, वह परमागम मे दर्शन कहा गया है ।। ४३ ।।

वृत्त्यर्थ --"ज सामण्ण गहण भावाण" जो सामान्य से अर्थात् सत्तावलोकन से ग्रहण करना किसका ग्रहण करना ? पदार्थो का ग्रहण करना । क्या करके ? "णेव कट्टुमायारं" नही करके, किस को नही करके ? आकार अथवा विकल्प को नही करके । वह भी क्या करके ? "अविसेसिदूण अट्ठे" पदार्थो को विशेपित या भेद न करके । किस रूप से ? यह शुक्ल है, यह कृष्ण है, यह वडा है, यह छोटा, यह घट है और यह पट है, इत्यादि रूप से भेद न करके । "दसणमिदि भण्णए समए" वह परमागम मे सत्तावलोकनरूप दर्शन कहा जाता है इसी दर्शन को तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण वाला सम्यग्दर्शन नही कहना चाहिये । क्यो नही कहना चाहिये ? क्योकि वह श्रद्धान (सम्यग्दर्शन) तो विकल्परूप है और यह दर्शन-उपयोग विकल्प रहित है । तात्पर्य यह है--जव कोई भी किसी पदार्थ को देखता है, वह देखने वाला जव तक विकल्प न करे तव तक तो सत्तामात्र ग्रहणको दर्शन कहते है । पश्चात् शुक्ल आदि का विकल्प होजाने पर 'ज्ञान' कहा जाता है ।। ४३ ।।

छद्मस्थो के सत्तावलोकनरूप दर्शन ज्ञान होता है, और मुक्त जीवो के दर्शन और ज्ञान एक ही ने हैं, अव ऐसा वतलाते है :--

दर्शनपूर्वं ज्ञानं छद्मस्थानां न द्वौ उपयोगौ ।
युगपत् यस्मात् केवलिनाथे युगपत् तु तौ द्वौ अपि ॥४४॥

व्याख्या––"दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं" सत्तावलोकनदर्शनपूर्वकं ज्ञानं भवति छद्मस्थानां संसारिणां । कस्मात् ? 'ण दोण्णि उवउग्गा जुगवं जह्मा' ज्ञानदर्शनोपयोगद्वय युगपन्न भवति यस्मात् । 'केबलिणाहे जुगवं तु ते दो वि' केवलिनाथे तु युगपत्तौ ज्ञानदर्शनोपयोगौ द्वौ भवत इति ।

अथ विस्तरः––चक्षुरादीन्द्रियाणा स्वकीयस्वकीयक्षयोपशमानुसारेण तद्योग्यदेशस्थितरूपादिविषयाणां ग्रहणमेव सन्निपात· सम्बन्ध· सन्निकर्षो भण्यते । न च नैयायिकमतवच्चक्षुरादीन्द्रियाणां रूपादिस्वकीयस्वकीयविषयपार्श्वे गमनं इति सन्निकर्षो वक्तव्य । स एव सम्बन्धो लक्षणं यस्य तल्लक्षणं यन्निर्विकल्पं सत्तावलोकनदर्शनं तत्पूर्व शुक्लमिदमित्याद्यवग्रहादिविकल्परूपमिन्द्रियानिन्द्रियजनितं मतिज्ञानं भवति । इत्युक्तलक्षणमतिज्ञानपूर्वकं तु धूमादग्निविज्ञानवदर्थादर्थान्तरग्रहणरूपं लिङ्गज, तथैव घटादिशब्दश्रवणरूप शब्दजं चेति द्विविधं श्रुतज्ञानं भवति । अथावधिज्ञानं पुनरवधिदर्शनपूर्वकमिति । ईहामतिज्ञानपूर्वकं तु मनःपर्ययज्ञान भवति ।

गाथार्थ––:छद्मस्थ जीवो के दर्शन पूर्वक ज्ञान होता है । क्योकि, छद्मस्थो के ज्ञान और दर्शन ये दोनो उपयोग एक साथ नही होते । केवली भगवान् के ज्ञान और दर्शन ये दोनो ही उपयोग एक साथ होते है ।। ४४ ।।

वृत्त्यर्थ :––"दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाण" छद्मस्थ––संसारी जीवो के सत्तावलोकनरूप दर्शन पूर्वक ज्ञान होता है । क्यो ? 'ण दोण्णि उवउग्गा जुगवं जह्मा" क्योकि छद्मस्थो के ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग ये दोनो एक साथ नही होते । "केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि" और केवली भगवान् के ज्ञान दर्शन दोनो उपयोग एक ही साथ होते है ।

इसका विस्तार––चक्षु आदि इन्द्रियो के अपने अपने क्षयोपशम के अनुसार अपने योग्य देश मे विद्यमान रूप आदि अपने विषयो का ग्रहण करना ही सन्निपात, सम्बन्ध अथवा सन्निकर्ष कहा गया है । यहा नैयायिक मत के समान चक्षु आदि इन्द्रियों का जो अपने अपने रूप आदि विषयो के पास जाना है, उसको 'सन्निकर्ष' न कहना चाहिये । इन्द्रिय पदार्थ का वह सम्बन्ध अथवा सन्निकर्ष जिसका लक्षण है, ऐसे लक्षणवाला निर्विकल्प-सत्तावलोकन दर्शन है, उस दर्शनपूर्वक 'यह सफेद है' इत्यादि अवग्रह आदि विकल्परूप तथा पाचो इन्द्रियों व अनिन्द्रिय मन के उत्पन्न होने वाला मतिज्ञान है । उक्त लक्षण वाले मतिज्ञान पूर्वक, धुयें से अग्नि के ज्ञान के समान, एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ को ग्रहण करनेरूप लिंगज (चिन्ह से उत्पन्न होनेवाला) तथा इसी प्रकार घट आदि शब्दों के सुननेरूप शब्दज (शब्द से उत्पन्न होनेवाला), ऐसे दो प्रकार का श्रुतज्ञान होता है (श्रुतज्ञान दो तरह का है––लिंगज और

अत्र श्रुतज्ञानमनःपर्ययज्ञानजनकं यदवग्रहेहादिरूपं मतिज्ञानं भणितम्, तदपि दर्शनपूर्वकत्वादुपचारेण दर्शनं भण्यते, यतस्तेन कारणेन श्रुतज्ञानमनःपर्ययज्ञानद्वयमपि दर्शनपूर्वकं ज्ञातव्यमिति । एवं छद्मस्थानां सावरणक्षयोपशमिकज्ञानसहितत्वात् दर्शनपूर्वकं ज्ञानं भवति । केवलिनां तु भगवतां निर्विकारस्वसम्वेदनसमुत्पन्ननिरावरणज्ञायिकज्ञानसहितत्वान्निर्मेघादित्ये युगपदातपप्रकाशवद्दर्शनं ज्ञानं च युगपदेवेति विज्ञेयम् । छद्मस्था इति कोऽर्थः ? छद्मशब्देन ज्ञानदर्शनावरणद्वयं भण्यते, तत्र तिष्ठन्तीति छद्मस्थाः । एवं तर्काभिप्रायेण सत्तावलोकनदर्शनं व्याख्यातम् ।

अत ऊर्ध्वं सिद्धान्ताभिप्रायेण कथ्यते । तथाहि—उत्तरज्ञानोत्पत्तिनिमित्तं यत् प्रयत्नं तद्रूपं यत् स्वस्यात्मनः परिच्छेदनमवलोकनं तद्दर्शनं भण्यते । तदनन्तरं यद्बहिर्विषये विकल्परूपेण पदार्थग्रहणं तद्ज्ञानमिति वार्त्तिकम् । यथा कोऽपि पुरुषो घटविषयविकल्पं कुर्वन्नास्ते, पश्चात् पटपरिज्ञानार्थं चित्ते जाते सति घ विकल्पाद्व्यावर्त्य यत् स्वरूपे प्रयत्नमवलोकनं परिच्छेदनं करोति तद्दर्शनमिति । तदनन्तरं पटोऽयमिति निश्चयं यद्बहिर्विषयरूपेण पदार्थग्रहणविकल्पं करोति तद् ज्ञानं भण्यते ।

शब्दज । उनमे से एक पदार्थ को जानकर उसके द्वारा दूसरे पदार्थ को जानना, वह लिंगज श्रुतज्ञान हैं । शब्दो को सुनने से जो पदार्थ का ज्ञान होता है वह शब्दज श्रुतज्ञान है । अवधि-दर्शन पूर्वक अवधिज्ञान होता है । ईहा मतिज्ञान पूर्वक मनःपर्यय ज्ञान होता है ।

यहा श्रुतज्ञान को और मनःपर्ययज्ञान को उत्पन्न करनेवाला अवग्रह, ईहा आदिरूप मतिज्ञान कहा है मतिज्ञान भी दर्शनपूर्वक होता है, इसलिये वह मतिज्ञान भी उपचार से दर्शन कहलाता है । इस कारण श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान, इन दोनो को भी दर्शनपूर्वक जानना चाहिये । इस प्रकार छद्मस्थ जीवो के सावरण क्षायोपशमिक-ज्ञान होने से, दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है । केवली भगवान् के निर्विकार स्वसंवेदन से उत्पन्न निरावरण क्षायिक ज्ञान होने से, बदल हट जाने पर सूर्य के युगपत् आतप और प्रकाश के समान, दर्शन और ज्ञान ये दोनो युगपत् होते हैं ऐसा जानना चाहिये । प्रश्न—'छद्मस्थ' शब्द का क्या अर्थ है ? उत्तर—'छद्म' शब्द से ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण ये दोनो कर्म कहे जाते है, उस छद्म मे जो रहते हैं वे छद्मस्थ है । इस प्रकार तर्क के अभिप्राय से सत्तावलोकनरूप दर्शन का व्याख्यान किया ।

इसके आगे सिद्धान्त के अभिप्राय से कहते हैं । तथा—आगे होने वाले ज्ञान की उत्पत्ति के लिये जो प्रयत्न, उस रूप अथवा निज-आत्मा का जो परिच्छेदन अर्थात् अवलोकन, वह दर्शन कहलाता है । उसके अनन्तर बाह्य विषय मे विकल्परूप से जो पदार्थ का ग्रहण है, वह ज्ञान है, यह वार्त्तिक है । जैसे कोई पुरुष पहले घट विषयक विकल्प करता हुआ स्थित है, पश्चात् उसका चित्त पट को जानने के लिये होता है तब वह पुरुष घट के विकल्प से हट कर स्वरूप मे जो प्रयत्न—अवलोकन—परिच्छेदन करता है, उसको दर्शन कहते है । इसके अनन्तर 'यह पट है' ऐसा निश्चय अथवा बाह्य विषयरूप से

अत्राह शिष्यः—यद्यात्मग्राहकं दर्शनं, परग्राहकं ज्ञानं भण्यते, तर्हि यथा नैयायिकमते ज्ञानमात्मानं न जानाति, तथा जैनमतेऽपि ज्ञानमात्मान न जानातीति दूषण प्राप्नोति । अत्र परिहार' । नैयायिकमते ज्ञान पृथग्दर्शन पृथगिति गुणद्वय नास्ति, तेन कारणेन तेपामात्मपरिज्ञानाभावदूषण प्राप्नोति । जैनमते पुनर्ज्ञानगुणेन परद्रव्य जानाति दर्शनगुणेनात्मानं च जानातीत्यात्मपरिज्ञानाभावदूषण न प्राप्नोति । कस्मादिति चेत् ? यथैकोऽप्यग्निर्दहतीति दाहक', पचतीति पाचकः, विषयभेदेन द्विधा भिद्यते । तथैवाभेदनयेनैकमपि चैतन्यं भेदनयविवक्षाया यदात्मग्राहकत्वेन प्रवृत्तं तदा तस्य दर्शनमिति सज्ञा, पश्चात् यच्च परद्रव्यग्राहकत्वेन प्रवृत्त तस्य ज्ञानसंज्ञेति विषयभेदेन द्विधा भिद्यते । कि च, यदि सामान्यग्राहक दर्शनं विशेपग्राहकं ज्ञान भण्यते, तदा ज्ञानस्य प्रमाणत्वं न प्राप्नोति । कस्मादिति चेत्—वस्तुग्राहक प्रमाणं, वस्तु च सामान्यविशेषात्मकं, ज्ञानेन पुनर्वस्त्वेकदेशो विशेप एव गृहीतो, न च वस्तु । सिद्धान्तेन पुनर्निश्चयेन गुणगुणिनोरभिन्नत्वात् सशयविमोहविभ्रमरहितवस्तुज्ञानस्वरूपात्मैव प्रमाणम् । स च प्रदीपवत् स्वपरगत सामान्यं विशेष च जानाति । तेन कारणेनाभेदेन तस्यैव प्रमाणत्वमिति ।

पदार्थ के ग्रहणरूप जो विकल्प होता है उस विकल्प को ज्ञान कहते है ।

प्रश्न—यहा शिष्य पूछता है, यदि अपने को ग्रहण करनेवाला दर्शन और पर-पदार्थ को ग्रहण करनेवाला ज्ञान है, तो नैयायिको के मत मे जैसे ज्ञान अपने को नही जानता है वैसे ही जैनमत मे भी ज्ञान आत्मा का नही जानता है, ऐसा दूषण आता है ? शङ्का का परिहार—नैयायिक मत में ज्ञान और दर्शन अलग-अलग दो गुण नही है- इस कारण उन नैयायिको के मत मे 'आत्मा को जानने के अभावरूप' दूषण आता है । किन्तु जैन सिद्धान्त मे, आत्मा ज्ञान गुण से पर पदार्थ को जानता है तथा दर्शन गुण से आत्मा स्व को जानता है, इस कारण जैनमत मे 'आत्मा को न जानने का' दूपण नही आता । यह दूषण क्यो नही आता ? उत्तर—जैसे एक ही अग्नि जलाती है, अत वह दाहक है और पकाती है इस कारण पाचक है; विषय के भेद से दाहक पाचक रूप अग्नि दो प्रकार की है । उसी प्रकार अभेदनय से चैतन्य एक ही है, भेदनय की अपेक्षा मे जब आत्मा को ग्रहण करने मे प्रवृत्त होता है, तब उसका नाम दर्शन' है, और फिर जब पर पदार्थ को ग्रहण करने मे प्रवृत्त होता है, तव उस चैतन्य का नाम 'ज्ञान' है, इस प्रकार विषयभेद मे चैतन्य दो प्रकार का होता है । विशेष वात यह है यदि सामान्य के ग्रहण करने वाले को दर्शन और विशेष के ग्रहण करने वाले को ज्ञान कहा जावे तो ज्ञान को प्रमाणता नही आती । शङ्का—ज्ञान को प्रमाणता क्यो नही आती ? समाधान—वस्तु को ग्रहण करने वाला प्रमाण है । वस्तु सामान्य—विशेष स्वरूप है । ज्ञान ने वस्तु का एक देश जो विशेष उस विशेष को ही ग्रहण किया, न कि सम्पूर्ण वस्तु को ग्रहण किया । सिद्धान्त से निश्चयनय की अपेक्षा गुण-गुणी अभिन्न है; अत' संशय-विमोह-विभ्रम से रहित जो वस्तु का ज्ञान है उस ज्ञान स्वरूप आत्मा ही प्रमाण है । जैसे प्रदीप स्व-पर प्रकाशक है, उसी प्रकार आत्मा भी स्व और पर के

अथ मतं—यदि दर्शनं बहिर्विषये न प्रवर्त्तते तदान्धवत् सर्वजनानामन्धत्वं प्राप्नोतीति ? नैवं वक्तव्यम् । बहिर्विषये दर्शनाभावेऽपि ज्ञानेन विशेषेण सर्वं परिच्छिनत्तीति । अयं तु विशेष.—दर्शनेनात्मनि गृहीते सत्यात्माविनाभूत ज्ञानमपि गृहीतं भवति, ज्ञाने च गृहीते सति ज्ञानविषयभूत बहिर्वस्त्वपि गृहीतं भवति इति । अथोक्तं भवता यद्यात्मग्राहकं दर्शनं भण्यते, तर्हि 'जं सामण्णं गहण भावाण तद्दर्शनम्' इति गाथार्थ. कथं घटते ? तत्रोत्तरं सामान्यग्रहणमात्मग्रहणं तद्दर्शनम् । कस्मादिति चेत् ? आत्मा वस्तुपरिच्छित्ति कुर्वन्निदं जानामीदं न जानामीति विशेषपक्षपातं न करोति, किन्तु सामान्येन वस्तु परिच्छिनत्ति तेन कारणेन सामान्यशब्देनात्मा भण्यत इति गाथार्थः ।

कि बहुना, यदि कोऽपि तर्कार्थ सिद्धान्तार्थ च ज्ञात्वैकान्तदुराग्रहत्यागेन नयविभागेन मध्यस्थवृत्त्या व्याख्यान करोति, तदा द्वयमपि घटत इति । कथमिति चेत् ? तर्के मुख्यवृत्त्या परसमयव्याख्यानं, तत्र यदा कोऽपि परसमयी पृच्छति जैनागमे दर्शन ज्ञानं चेति गुणद्वय जीवस्य कथ्यते तत्कथं घटत इति । तदा तेषामात्मग्राहक दर्शनमिति कथिते सति ते न जानन्ति । पश्चादाचार्यैस्तेषा प्रतीत्यर्थ स्थूलव्याख्यानेन बहिर्विषये यत् सामान्यपरि-

---

सामान्य-विशेष को जानता है, इस कारण अभेद मे आत्मा के ही प्रमाणता है ।

आशङ्का—यदि दर्शन बाह्य विषय को ग्रहण नही करता तो अंधे की तरह सब मनुष्यों के अन्धेपने का प्रसङ्ग प्राप्त हो जायेगा ? समाधान—ऐसा न कहना चाहिये, क्योकि बाह्य विषय मे दर्शनाभाव होने पर भी आत्मा ज्ञान द्वारा विशेष रूप से सब पदार्थो को जानता है । विशेष यह है—जब दर्शन से आत्मा का ग्रहण होता है, तब आत्मा मे व्याप्त ज्ञान का भी दर्शन द्वारा ग्रहण हो जाता है, ज्ञान के ग्रहण होजाने पर ज्ञान के विषयभूत बाह्य वस्तु का भी ग्रहण हो जाता है । शङ्का—जो आत्मा को ग्रहण करता है, यदि आप उसको दर्शन कहते हो, तो 'जो पदार्थो का सामान्य ग्रहण है वह दर्शन है" यह गाथा—अर्थ आपके कथन मे कैसे घटित होता है ? उत्तर—वहा पर 'सामान्य-ग्रहण' शब्द का अर्थ 'आत्मा का ग्रहण करना' है । 'सामान्य ही आत्मा है', ऐसा अर्थ क्यो है ? उत्तर—वस्तु का ज्ञान करता हुआ आत्मा, 'मै इसको जानता हू, इसको नही जानता हू, इस प्रकार का विशेष पक्षपात नही करता है, किन्तु सामान्यरूप से पदार्थ को जानता है । इस कारण 'सामान्य' शब्द से 'आत्मा' कहा जाता है । यह गाथा का अर्थ है ।

बहुत कहने से क्या—यदि कोई भी तर्क और सिद्धान्त के अर्थ को जानकर, एकान्त दुराग्रह को त्याग करके, नयो के विभाग से मध्यस्थता धारण करके, व्याख्यान करता है तब तो तर्क-अर्थ व सिद्धान्त-अर्थ ये दोनो ही सिद्ध होते है । कैसे सिद्ध होते है ? उत्तर—तर्क मे मुख्यता मे अन्य-मतो का व्याख्यान है । इसलिये उसमे यदि कोई अन्य-मतावलम्वी पूछे कि, जैन-सिद्धान्त मे जीव के दर्शन व ज्ञान, जो दो गुण कहे है, वे कैसे घटित होते है ? तब इसके उत्तर मे उन अन्य मतियो को कहा , 'जो आत्मा को ग्रहण करने वाला है, वह दर्शन है' तो वे अन्य मती इसको नही समझते ।

च्छेदनं तस्य सत्तावलोकनदर्शसंज्ञा स्थापिता, यच्च शुक्लमिदमित्यादिविशेषपरिच्छेदनं तस्य ज्ञानसंज्ञा स्थापितेति दोषो नास्ति । सिद्धान्ते पुन. स्वसमयव्याख्यानं मुख्यवृत्त्या । तत्र सूक्ष्मव्याख्याने क्रियमाणे सत्याचार्यैरात्मग्राहकं दर्शनं व्याख्यातमित्यत्रापि दोषो नास्ति ।

अत्राह शिष्य:---सत्तावलोकनदर्शनस्य ज्ञानेन सह भेदो ज्ञातस्तावदिदानीं यत्तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शन वस्तुविचाररूपं सम्यग्ज्ञानं तयोर्विशेषो न ज्ञायते । कस्मादितिचेत् । सम्यग्दर्शने पदार्थनिश्चयोऽस्ति, तथैव सम्यग्ज्ञाने च, को विशेष इति ? अत्र परिहार:–अर्थग्रहणपरिच्छित्तिरूप: क्षयोपशमविशेषो ज्ञान भण्यते, तत्रैव भेदनयेन वीतरागसर्वज्ञप्रणीतशुद्धात्मादितत्त्वेष्विदमेवेत्थमेवेति निश्चयसम्यक्त्वमिति । अविकल्परूपेणाभेदनयेन पुनर्यदेव सम्यग्ज्ञान तदेव सम्यक्त्वमिति । कस्मादिति चेत्---अतत्त्वे तत्त्वबुद्धिरदेवे देवबुद्धिरधर्मे धर्मबुद्धिरित्यादिविपरीताभिनिवेशरहितस्य ज्ञानस्यैव सम्यग्विशेषणवाच्योऽवस्थाविशेष: सम्यक्त्वं भण्यते यत: कारणात् ।

यदि भेदो नास्ति तर्हि कथमावरणद्वयमिति चेत् ? तत्रोत्तरम्–येन कर्मणार्थपरिच्छित्तिरूप: क्षयोपशम: प्रच्छाद्यते तस्य ज्ञानावरणसंज्ञा, तस्यैव क्षयोपशमविशेषस्य यत् कर्म पूर्वोक्तलक्षणं विपरीताभिनिवेशमुत्पादयति तस्य मिथ्यात्वसंज्ञेति भेदनयेनावरणभेद: ।

तब आचार्यों ने उनको प्रतीति कराने के लिये स्थूल व्याख्यान से बाह्य विषय में जो सामान्य का ग्रहण है उसका नाम 'दर्शन' स्थापित किया, 'यह सफेद है' इत्यादि रूप से बाह्य विषय मे जो विशेष का जानना है, उसका नाम 'ज्ञान' स्थापित किया, अत. दोष नही है । सिद्धान्त में मुख्यता से निजसमय का व्याख्यान है, इसलिये सिद्धान्त मे सूक्ष्म व्याख्यान करने पर आचार्यो ने 'जो आत्मा का ग्राहक है' उसको 'दर्शन' कहा है । अत: इसमें भी दोष नही ।

यहां शिष्य शङ्का करता है---सत्ता-अवलोकनरूप-दर्शन का ज्ञान के साथ भेद जाना, किन्तु तत्त्वार्थ-श्रद्धानरूप-सम्यग्दर्शन और वस्तु-विचाररूप-सम्यग्ज्ञान इन दोनो मे भेद नहीं जाना । यदि कहो कि कैसे नही जाना, तो पदार्थ का जो निश्चय सम्यग्दर्शन मे है वही सम्यग्ज्ञान मे है । इसलिये सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान मे क्या भेद है ? समाधान–पदार्थके ग्रहणमें जाननेरूप क्षयोपशम विशेष 'ज्ञान' कहलाता है । उस ज्ञान मे ही, वीतराग सर्वज्ञ श्री जिनेन्द्र द्वारा कहे हुए शुद्ध आत्मा आदि तत्त्वो मे 'यह ही तत्त्व है, ऐसा ही तत्त्व है', इस प्रकार का जो निश्चय है, भेदनय से वह सम्यक्त्व है । निर्विकल्परूप अभेदनय से तो जो सम्यग्ज्ञान है, वही सम्यग्दर्शन है । ऐसा क्यो है ? उत्तर-'अतत्त्वमे तत्त्व-बुद्धि, अदेव (देव नही) मे देव-बुद्धि और अधर्म मे धर्म-बुद्धि' इत्यादि विपरीताभिनिवेश से रहित ज्ञान की, ही, 'सम्यक्' विशेषण से कहे जाने वाली अवस्था-विशेष 'सम्यक्त्व' कहलाती है ।

शंका—यदि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान मे भेद नही है तो उन दोनो गुणो के घातक ज्ञानावरण और मिथ्यात्व दो कर्म कैसे कहे गये है ? समाधान—जिस कर्म से पदार्थ के जानने रूप क्षयोपशम ढका जाता है; उसकी 'ज्ञानावरण' संज्ञा है और उस क्षयोपशम विशेष मे जो कर्म, पूर्वोक्त लक्षण वाले

निश्चयनयेन पुनरभेदविवक्षायां कर्मत्वं प्रत्यावरणद्वयमप्येकमेव विज्ञातव्यम् । एवं दर्शनपूर्वक ज्ञानं भवतीति व्याख्यानरूपेण गाथा गता ॥ ४४ ॥

अथ सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वकं रत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गतृतीयावयवभूतं स्वशुद्धात्मानुभूतिरूपशुद्धोपयोगलक्षणवीतरागचारित्रस्य पारम्पर्येण साधकं सरागचारित्रं प्रतिपादयति —

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ।

वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणयादु जिणभणियम् ॥४५॥

अशुभात् विनिवृत्तिः शुभे प्रवृत्तिः च जानीहि चारित्रम् ।

व्रतसमितिगुप्तिरूपं व्यवहारनयात् तु जिनभणितम् ॥४५॥

व्याख्या—अस्यैव सरागचारित्रस्यैकदेशावयवभूतं देशचारित्रं तावत्कथ्यते । तद्यथा—मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृत्युपशमक्षयोपशमक्षये सति, अध्यात्मभाषया निजशुद्धात्माभिमुखपरिणामे वा सति शुद्धात्मभावनोत्पन्ननिर्विकारवास्तवसुखामृतमुपादेयं कृत्वा संसारशरीरभोगेषु योऽसौ हेयबुद्धिः सम्यग्दर्शनशुद्धः स चतुर्थगुणस्थानवर्त्ती व्रतरहितो दार्शनिको भण्यते । यश्चाप्रत्याख्यानावरणसंज्ञद्वितीयकषायक्षयोपशमे जाते सति पृथिव्यादिपञ्चस्थावरवधे प्रवृत्तोऽपि यथाशक्त्या त्रसवधे निवृत्तः स पञ्चमगुणस्थानवर्त्ती श्रावको भण्यते ।

विपरीत—अभिनिवेश को उत्पन्न करता है, उस कर्म की 'मिथ्यात्व' संज्ञा है । इस प्रकार भेद नय से आवरण मे भेद है । निश्चय नय से अभेद की विवक्षा मे कर्मपने की अपेक्षा उन दो आवरणो को एक ही जानना चाहिए । इस प्रकार दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है, ऐसा व्याख्यान करने वाली गाथा समाप्त हुई ॥ ४४ ॥

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान—पूर्वक होने वाला रत्नत्रय-स्वरूप मोक्षमार्ग का तीसरा अवयवरूप और स्व-शुद्ध-आत्मा के अनुभवरूप-शुद्धोपयोग लक्षणवाले वीतराग चारित्र को परम्परा से साधने वाला, ऐसे सराग-चारित्र को कहते है —

गाथार्थ :—अशुभ कार्य मे निवृत्ति (दूर होना) और शुभ कार्य मे प्रवृत्ति, उसको (व्यवहार) चारित्र जानो । श्री जिनेन्द्रदेव ने व्यवहार नय से उस चारित्र को ५ व्रत, ५ समिति और ३ गुप्तिस्वरूप कहा है ॥ ४५ ॥

वृत्त्यर्थ :—इसी सराग-चारित्र के एक देश अवयवरूप देशचारित्र को कहते है । वह इस प्रकार है-मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियो के उपशम, क्षयोपशम या क्षय होने पर अथवा अध्यात्म भाषा के अनुसार निज-शुद्ध आत्मा के सन्मुख परिणाम होने पर, शुद्ध-आत्म-भावना से उत्पन्न निर्विकार वा[illegible] सुखरूपी अमृत को उपादेय करके, संसार शरीर और भोगो मे जो हेयबुद्धि है, वह सम्यग्दर्शन [illegible] चतुर्थ गुणस्थानवाला व्रतरहित दार्शनिक है । जो अप्रत्याख्यानावरण द्वितीयकषाय के क्षयोपशम [illegible], पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति इन पाच स्थावरो के वध मे प्रवृत्त होते हुए भी अपनी

तस्यैकादशभेदाः कथ्यन्ते । तथाहि—सम्यक्त्वपूर्वकत्वेन मद्यमांसमधुत्यागोदुम्बर-पञ्चकपरिहाररूपाष्टमूलगुणसहितः सन् संग्रामादिप्रवृत्तोऽपि पापद्धर्यादिभिर्निष्प्रयोजनजीव-घातादौ निवृत्तः प्रथमो दार्शनिकश्रावको भण्यते । स एव सर्वथा त्रसवधे निवृत्तः सन् पञ्चा-णुव्रतत्रयगुणव्रतशिक्षाव्रतचतुष्टयसहितो द्वितीयव्रतिकसंज्ञो भवति । स एव त्रिकालसामायिके प्रवृत्तः तृतीयः, प्रोषधोपवासे प्रवृत्तश्चतुर्थः, सचित्तपरिहारेण पञ्चमः, दिवा ब्रह्मचर्येण षष्ठः, सर्वथा ब्रह्मचर्येण सप्तमः, आरम्भादिसमस्तव्यापारनिवृत्तोऽष्टमः, वस्त्रप्रावरणं विहा-यान्यसर्वपरिग्रहनिवृत्तो नवमः, गृहव्यापारादिसर्वसावद्यानुमतनिवृत्तो दशमः, उद्दिष्टाहारनि-वृत्त एकादशम इति । एतेष्वेकादशश्रावकेषु मध्ये प्रथमषट्कं तारतम्येन जघन्यम्, ततश्च त्रयं मध्यमम्, ततो द्वयमुत्तममिति संक्षेपेण दार्शनिकश्रावकाद्येकादशभेदाः ज्ञातव्याः ।

अथैकदेशचारित्रव्याख्यानानन्तरं सकलचारित्रमुपदिशति । "असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं" अशुभान्निवृत्तिः शुभे प्रवृत्तिश्चापि जानीहि चारित्रम् । तच्च

शक्ति अनुसार त्रसजीवो के वध से निवृत्त होता है (अर्थात् यथाशक्ति त्रसजीवो की हिंसा नही करता है), उसको पंचम गुणस्थानवर्त्ती श्रावक कहते है ।

उस पंचम गुणस्थानवर्त्ती श्रावक के ११ भेद कहते है। सम्यग्दर्शन-पूर्वक मद्य, मांस, मधु और पांच उदम्बर फलो के त्यागरूप आठ मूलगुणो को पालता हुआ जो जीव युद्धादि मे प्रवृत्त होने पर भी, पाप को बढाने वाले शिकार आदि के समान बिना प्रयोजन जीवघात नही करता, उसको प्रथम दार्श-निक श्रावक कहते है । वही दार्शनिक श्रावक जब त्रसजीव की हिंसा से सर्वथा रहित होकर पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतो का आचरण करता है तब 'व्रती' नामक दूसरा श्रावक होता है। वही जब त्रिकाल सामायिक मे प्रवृत्त होता है तब तीसरी प्रतिमाधारी, प्रोषध-उपवास मे प्रवृत्त होने पर चौथी प्रतिमाधारी, सचित्त के त्याग से पांचवी प्रतिमा, दिन मे ब्रह्मचर्य धारण करने से छठी प्रतिमा, सर्वथा ब्रह्मचर्य को धारण करने से सप्तम प्रतिमा, आरम्भ आदि सम्पूर्ण व्यापार के त्याग से अष्टम प्रतिमा, पहनने-ओढ़ने के वस्त्रो के अतिरिक्त अन्य सब परिग्रहो को त्यागने से नवमी प्रतिमा, घर-व्यापार आदि सम्बन्धी समस्त सावद्य (पापजनक) कार्यो मे सम्मति (सलाह) देने के त्याग से दशमी प्रतिमा, और उद्दिष्ट आहार के त्याग से ग्यारहवी प्रतिमा का धारक श्रावक होता है । इन ग्यारह प्रकार के श्रावको मे, पहली छः प्रतिमा वाले तारतम्यता से जघन्य श्रावक है; सातवी, आठवी और नवमी इन तीन प्रतिमा वाले मध्यम श्रावक है, दसवी और ग्यारहवी प्रतिमाओ के धारक उत्तम श्रावक है। इस प्रकार संक्षेप से देशचारित्र के दार्शनिक आदि ग्यारह भेद जानने चाहियें ।

अब इस एक देश चारित्र के व्याख्यान के अनन्तर सकलचारित्र को कहते है—"विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्त" हे शिष्य ! अशुभ कार्यो से निवृत्ति और शुभ मे जो

कथम्भूत ? 'वदसमिदिगुत्तिरूव ववहारणयादु जिणभणियं' व्रतसमितिगुप्तिरूपं व्यवहारनयाज्जिनैरुक्तमिति । तथाहि प्रत्याख्यानावरणसञ्ज्ञतृतीयकषायक्षयोपशमे सति "विसयकसाओगाढो दुस्सुदिदुच्चित्तदुट्ठगोट्ठिजुदो । उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो ॥ १ ॥" इति गाथाकथितलक्षणादशुभोपयोगान्निवृत्तिस्तद्विलक्षणे शुभोपयोगे प्रवृत्तिश्च हे शिष्य चारित्र जानीहि । तच्चाचाराराधनादिचरणशास्त्रोक्तप्रकारेण पञ्चमहाव्रतपञ्चसमितित्रिगुप्तिरूपमप्यपहृतसयमाख्य शुभोपयोगलक्षण सरागचारित्राभिधान भवति । तत्र योऽसौ बर्हिविषये पञ्चेन्द्रियविषयादिपरित्याग स उपचरितासद्भूतव्यवहारेण यश्चाभ्यन्तरे रागादिपरिहार स पुनरशुद्धनिश्चयेनेति नयविभागो ज्ञातव्य । एव निश्चयचारित्रसाधक व्यवहारचारित्र व्याख्यातमिति ॥ ४५ ॥

अथ तेनैव व्यवहारचारित्रेण साध्य निश्चयचारित्र निरूपयति —

बहिरब्भतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठ ।
णाणिस्स जं जिणुत्तं त परम सम्मचारित्त ॥४६॥

बहिरभ्यन्तरक्रियारोधः भवकारणप्रणाशार्थम् ।
ज्ञानिनः यत् जिनोक्तम् तत् परम सम्यक्चारित्रम् ॥४६॥

उसको चारित्र जानो । वह कैसा है ? "वदसमिदिगुत्तिरूव ववहारणादु जिणभणिय" व्रत-समिति-गुप्तिरूप है, व्यवहार नय से श्री जिनेन्द्र ने ऐसा कहा है । वह इस प्रकार है—प्रत्याख्यानावरण नामक तीसरी कपाय के क्षयोपशम होने पर "जिसका उपयोग विषय-कषायो मे मग्न है, दु श्रुति (विकथा), दुष्टचित्त और दुष्ट गोष्ठी (बुरी सगति), उग्र तथा उन्मार्ग (बुरे मार्ग) मे तत्पर है, वह जीव अशुभ मे स्थित है । १ ।" "इस गाथा मे कहे हुए अशुभोपयोग से छूटना और उक्त अशुभोपयोग से विलक्षण (उल्टा) शुभोपयोग मे प्रवृत्त होना" हे शिष्य ! उसको तुम चारित्र जानो । आचार-आराधना आदि चरणानुयोग के शास्त्रो मे कहे अनुसार वह चारित्र पाच महाव्रत, पाच समिति व तीन गुप्तिरूप है, तो भी अपहृतसंयम नामक शुभोपयोग लक्षणवाला सरागचारित्र होता है । उसमे भी बाह्य मे जो पाचो इन्द्रियो के विषय आदि का त्याग है, वह उपचरित—असद्भूत-व्यवहार नय से चारित्र है और अतरंग मे जो राग आदि का त्याग है, वह अशुद्ध निश्चय नय से चारित्र है । इस तरह नय-विभाग जानना चाहिये । ऐसे निश्चयचारित्र को साधने वाले व्यवहारचारित्र का व्याख्यान किया ॥ ४५ ॥

अब उसी व्यवहारचारित्र से साध्य निश्चयचारित्र का निरूपण करते है :—

गाथार्थ —ससार के कारणो को नष्ट करने के लिये ज्ञानी जीव के जो बाह्य और अन्तरङ्ग क्रिया का निरोध है, श्री जिनेन्द्र का कहा हुआ वह उत्कृष्ट सम्यक्चारित्र है ॥ ४६ ॥

वृत्त्यर्थ —'त' वह 'परम' परम उपेक्षा लक्षण वाला (ससार, शरीर, असयम आदि मे

व्याख्या—'तं' तत् 'परमं' परमोपेक्षालक्षणं निर्विकारस्वसंवित्त्यात्मकशुद्धोपयोगाविनाभूतं परमं 'सम्मचारित्त' सम्यक्चारित्रं ज्ञातव्यम् । तत्कि—'बहिरब्भंतरकिरियारोहो' निष्क्रियनित्यनिरञ्जनविशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावस्य निजात्मन प्रतिपक्षभूतस्य बहिर्विषये शुभाशुभवचनकायव्यापाररूपस्य तथैवाभ्यन्तरे शुभाशुभमनोविकल्परूपस्य च क्रियाव्यापारस्य योऽसौ निरोधस्त्याग:, स च किमर्थं ? 'भवकारणप्पणासट्ठं' पञ्चप्रकारभवातीतनिर्दोषपरमात्मनो बिलक्षणस्य भवस्य संसारस्य व्यापारकारणभूतो योऽसौ शुभाशुभकर्मास्रवस्तस्य प्रणाशार्थं विनाशार्थमिति । इत्युभयक्रियानिरोधलक्षणचारित्रं कस्य भवति ? "णाणिस्स" निश्चयरत्नत्रयात्मकाभेदज्ञानिनः । पुनरपि किं विशिष्टं ? "जं जिणुत्तं" यज्जिनेन वीतरागसर्वज्ञेनोक्तमिति । एवं वीतरागसम्यक्त्वज्ञानाविनाभूत निश्चयरत्नत्रयात्मकनिश्चयमोक्षमार्गं तृतीयावयवरूपं वीतरागचारित्रं व्याख्यातम् ॥ ४६ ॥
इति द्वितीयस्थले गाथाष्टकं गतम् ।

एवं मोक्षमार्गप्रतिपादकतृतीयाधिकारमध्ये निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गसंक्षेपकथनेन सूत्रद्वयम्, तदनन्तरं तस्यैव मोक्षमार्गस्यावयवभूतानां सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां विशेषविवरणरूपेण सूत्रषट्कं चेति स्थलद्वयसमुदायेनाष्टगाथाभिः प्रथमोऽन्तराधिकार: समाप्त: ।

अनादर) तथा निर्विकार स्वसंवेदनरूप शुद्धोपयोग का अविनाभूत उत्कृष्ट 'सम्मचारित्त' सम्यक्चारित्र जानना चाहिए । वह क्या ? 'बहिरब्भंतरकिरियारोहो' निष्क्रिय-नित्य-निरंजन-निर्मल ज्ञानदर्शन स्वभाव वाली निज-आत्मा से प्रतिपक्षभूत (प्रतिकूल), बाह्य मे वचन काय के शुभाशुभ व्यापाररूप, अतरङ्ग मे मन के शुभाशुभ विकल्परूप, ऐसी क्रियाओ के व्यापार का निरोध (त्याग), चारित्र है । वह चारित्र किस लिए है ? 'भवकारणप्पणासट्ठं' पाच प्रकार के ससार से रहित निर्दोष परमात्मा से विलक्षण जो ससार, उस संसार के व्यापार का कारणभूत शुभ-अशुभ कर्म-आस्रव, उस आस्रव के विनाश के लिये चारित्र है । ऐसा बाह्य, अन्तरङ्ग क्रियाओ के त्यागरूप चारित्र किसके होता है ? 'णाणिस्स' निश्चय रत्नत्रय स्वरूप अभेदज्ञानी जीव के ऐसा चारित्र होता है । वह चारित्र फिर कैसा है ? 'जं जिणुत्त' वह चारित्र जिनेन्द्रदेव वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कहा हुआ है । इस प्रकार वीतराग सम्यक्त्व व ज्ञान का अविनाभूत तथा निश्चयरत्नत्रय स्वरूप निश्चय मोक्षमार्ग का तीसरा अवयवरूप वीतराग चारित्र का व्याख्यान हुआ । ४६ । ऐसे दूसरे स्थल मे छ गाथायें समाप्त हुई ।

इस प्रकार मोक्षमार्ग को प्रतिपादन करने वाले तीसरे अधिकार मे निश्चय व्यवहार रूप मोक्षमार्ग के सक्षेप कथन से दो सूत्र और तदनन्तर उसी मोक्षमार्ग के अवयवरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के विशेष व्याख्यान रूप से छः सूत्र है । इस प्रकार दो स्थलो के समुदायरूप आठ गाथाओ द्वारा प्रथम अन्तराधिकार समाप्त हुआ ।

अत, पर ध्यानध्यातृध्येयध्यानफलकथनमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथात्रयं, तत परं पञ्चपरमेष्ठिव्याख्यानरूपेण द्वितीयस्थले गाथापञ्चक, ततश्च तस्यैव ध्यानस्योपसंहाररूपविशेषव्याख्यानेन तृतीयस्थले सूत्रचतुष्टयमिति स्थलत्रयसमुदायेन द्वादशसूत्रेषु द्वितीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका ।

तथाहि--निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गसाधकध्यानाभ्यास कुरुत यूयमित्युपदिशति --

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा ।

तह्मा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह ॥४७॥

द्विविध अपि मोक्षहेतु ध्यानेन प्राप्नोति यत् मुनिः नियमात् ।

तस्मात् प्रयत्नचित्ताः यूय ध्यान समभ्यसत ॥४७॥

व्याख्या--"दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा" द्विविधमपि मोक्षहेतु ध्यानेन प्राप्नोति यस्मात् मुनिर्नियमात् । तद्यथा--निश्चयरत्नत्रयात्मक निश्चयमोक्षहेतु निश्चयमोक्षमार्ग तथैव व्यवहाररत्नत्रयात्मक व्यवहारमोक्षहेतुं व्यवहारमोक्षमार्ग च य साध्यसाधकभावेन कथितवान् पूर्व, तद् द्विविधमपि निर्विकारस्वसंवित्त्यात्मकप मध्यानेन मुनि प्राप्नोति यस्मात्कारणात् "तह्मा पयत्तचित्ता जूय झाण समब्भसह" तस्मात्

अब इसके आगे ध्यान, ध्याता (ध्यान करने वाला), ध्येय (ध्यान करनेयोग्य पदार्थ) और ध्यान का फल इनके वर्णन की मुख्यता मे प्रथम स्थल मे तीन गाथाये, तदनन्तर पचपरमेष्ठियो के व्याख्यान रूप से दूसरे स्थल मे पाच गाथाये, और इसके पश्चात् उसी ध्यान के उपसहाररूप विशेष व्याख्यान द्वारा तीसरे स्थल मे चार गाथाये, इस प्रकार तीन स्थलो के समुदाय मे बारह गाथासूत्रमयी दूसरे अतराधिकार की समुदाय रूप भूमिका है ।

तथाहि--निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग को साधने वाले ध्यान का अभ्यास करो ऐसा उपदेश देते है --

गाथार्थ --ध्यान करने मे मुनि नियम से निश्चय और व्यवहार रूप मोक्षमार्ग को पाते है। इस कारण तुम चित्त को एकाग्र करके उस ध्यान का भले पकार अभ्यास करो । ४७ ।

वृत्त्यर्थ --'दुविहं पि मोक्खहेउ झाणे पाउणदि ज मुणी णियमा' क्योकि मुनि नियम से ध्यान द्वारा दोनो के मोक्ष-कारणो का प्राप्त होते है । विशेष--निश्चय-रत्नत्रय-स्वरूप निश्चय-मोक्ष कारण अर्थात् निश्चय मोक्ष-मार्ग और इसी प्रकार व्यवहार-रत्नत्रय-स्वरूप व्यवहार-मोक्षहेतु अर्थात् व्यवहार-मोक्षमार्ग, जिनको साध्यसाधक भाव मे (निश्चय-साध्य और व्यवहार-साधक है) पहले कहा है, उन दोनो प्रकार के मोक्षमार्गो को, क्योकि मुनि निर्विकार स्वसवेदन स्वरूप परमध्यान द्वारा प्राप्त होते है, 'तह्मा पयत्तचित्ता जूय झाण समब्भसह' इसी कारण एकाग्रचित्त होकर हे भव्यजनो ! तुम इस प्रकार मे ध्यान का अभ्यास करो, अथवा इसी कारण देखे-सुने और अनुभव किये हुए अनेक मनो-

प्रयतनचित्ता. सन्तो हे भव्या यूयं ध्यानं सम्यगभ्यासत । तथा हि——तस्मात्कारणात् दृष्टश्रु-तानुभूतनानामनोरथरूपसमस्तशुभाशुभरागादिविकल्पजाल त्यक्त्वा, परमस्वास्थ्यसमुत्पन्नस-हजानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादानुभवे स्थित्वा च ध्यानाभ्यास कुरुत यूयमिति ॥ ४७ ॥

अथ ध्यातृ-पुरुषलक्षण कथयति —

मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठअट्ठेसु ।
थिरमिच्छहि जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥४८॥

मा मुह्यत मा रज्यत मा द्विष्यत इष्टानिष्टार्थेषु ।
स्थिरं इच्छत यदि चित्तं विचित्रध्यानप्रसिद्ध्यै ॥४८॥

व्याख्या——"मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह" समस्तमोहरागद्वेषजनितविकल्पजा-लरहितनिजपरमात्मतत्त्वभावनासमुत्पन्नपरमानन्दैकलक्षणसुखामृत रसात्सकाशादुद्गता सं-जाता तत्रैव परमात्मसुखास्वादे लीना तन्मया या तु परमकला परमसंवित्तिस्तत्र स्थित्वा हे भव्या मोहरागद्वेषान्मा कुरुत । केषु विषयेषु ? "इट्ठणिट्ठअट्ठेसु" स्रग्वनिताचन्दनताम्बूला-दय इष्टेन्द्रियार्था, अहिविषकण्टकशत्रुव्याधिप्रभृतय पुनरनिष्टेन्द्रियार्थास्तेषु । यदि किम् ? "थिरमिच्छहि जइ चित्त" तत्रैव परमात्मानुभवे स्थिरं निश्चलं चित्तं यदीच्छत यूयं । किमर्थम् ? "विचित्तझाणप्पसिद्धीए" विचित्रं नानाप्रकार यद्ध्यानं तत्प्रसिद्ध्यै निमित्तं ।

रथ रूप शुभाशुभ राग आदि विकल्प समूह का त्याग करके तथा परम-निज-स्वरूप मे स्थित होने से उत्पन्न हुए सहज-आनन्दरूप एक-लक्षण वाले सुखरूपी अमृतरस के आस्वाद के अनुभव मे स्थित हो कर, तुम ध्यान का अभ्यास करो ।। ४७ ।।

अब ध्यान करने वाले पुरुष का लक्षण कहते हैं :–

गाथार्थ :——यदि तुम नाना प्रकार के ध्यान की सिद्धि के लिये चित्त को स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट तथा अनिष्ट इन्द्रियो के विषयो राग-द्वेष और मोह मत करो ॥ ४८ ॥

वृत्यर्थ :——"मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह" समस्त मोह, राग-द्वेष से उत्पन्न विकल्प समूह से रहित निज परमात्मस्वरूप की भावना मे उत्पन्न हुआ एक परमानन्दरूप सुखामृतरस से उत्पन्न हुई और उसी परमात्मा के सुख के आस्वाद मे लीनरूप जो परम कला अर्थात् परमसंवित्ति (आत्मस्वरूप का अनुभव), उसमे स्थित होकर, हे भव्य जीवो ! मोह, राग द्वेष को मत करो । किनमे मोह-राग द्वेष मत करो ? "इट्ठणिट्ठअट्ठेसु" माला, स्त्री, चन्दन, ताम्बूल आदिरूप इन्द्रियो के इष्ट विषयो मे सर्प विष, कांटा, शत्रु तथा रोग आदि इन्द्रियों के अनिष्ट विषयों में राग–द्वेष मत करो, "थिर-मिच्छहि जइ चित्तं" यदि उसी परमात्मा के अनुभव मे तुम निश्चल चित्त को चाहते हो । किसलिये स्थिर चित्त को चाहते हो ? "विचित्तझाणप्पसिद्धीए" विचित्र अर्थात् अनेक तरह के ध्यान की सिद्धि

अथवा विगत चित्तं चित्तोद्भवशुभाशुभविकल्पजाल यत्र तद्विचित्त ध्यानम् तदर्थमिति ।

इदानी तस्यैव ध्यानस्य तावदागमभाषया विचित्रभेदा कथ्यन्ते । तथाहि—इष्टवियोगानिष्टसयोगव्याधिप्रतीकारभोगनिदानेषु वाञ्छारूप चतुर्विधमार्त्तध्यानम् । तच्च तारतम्येन मिथ्यादृष्ट्यादिषट्गुणस्थानवर्तिजीवसम्भवम् । यद्यपि मिथ्यादृष्टीना तिर्यग्गतिकारण भवति तथापि बद्धायुष्क विहाय सम्यग्दृष्टीना न भवति । कस्मादिति चेत् ? स्वशुद्धात्मैवोपादेय इति विशिष्टभावनाबलेन तत्कारणभूतसक्लेशाभावादिति ।

अथ रौद्रध्यान कथ्यते—हिसानन्दमृपानन्दस्तेयानन्दविषयसंरक्षणानन्दप्रभव रौद्रं चतुर्विधम् । तारतम्येन मिथ्यादृष्ट्यादिपञ्चमगुणस्थानवर्त्तिजीवसम्भवम् । तच्च मिथ्यादृष्टीना नरकगतिकारणमपि बद्धायुष्क विहाय सम्यग्दृष्टीनां तत्कारण न भवति । तदपि कस्मादिति चेत् ? निजशुद्धात्मतत्त्वमेवोपादेयमिति विशिष्टभेदज्ञानबलेन तत्कारणभूततीव्रसंक्लेशाभावादिति ।

के लिये। अथवा जहा पर चित्त से उत्पन्न होने वाला शुभ-अशुभ विकल्प समूह दूर हो गया है, सो 'विचित्त ध्यान' है, उस विचित्त ध्यान की सिद्धि के लिये।

अव प्रथम ही आगमभाषा के अनुसार उसी ध्यान के नानाप्रकार के भेदो का कथन करते है वह इस प्रकार है इष्ट-वियोग, अनिष्ट-सयोग और रोग इन तीनो को दूर करने मे तथा भोगो व भोगो के कारणो मे वाछारूप चार प्रकार का आर्त्तध्यान है (इष्ट का वियोग १, अनिष्ट का सयोग २, रोग ३, इनके होने पर इनके दूर करने की इच्छा करना और भोगनिदानो की वाछा करना ४)। वह आर्त्तध्यान तारतमता से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से प्रमत्तगुणस्थान तक के जीवो के होता है। वह आर्त्तध्यान यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीवो के तिर्यच गति के बंध का कारण होता है तथापि जिस जीव के सम्यक्त्व से पहले तिर्यच-आयु वंध चुकी, उसको छोडकर अन्य सम्यग्दृष्टि के वह आर्त्तध्यान तिर्यचगति का कारण नही है। शङ्का—क्यो नही है ? उत्तर—'निज शुद्ध आत्मा ही ग्रहण करने योग्य है' ऐसी भावना के कारण सम्यग्दृष्टि जीवोके तिर्यचगति का कारणरूप सक्लेश नही होता।

अव रौद्रध्यान को कहते है। रौद्रध्यान—हिसानन्द (हिसा करने मे आनद मानना) १, मृपानन्द (झूठ बोलने मे आनन्द मानना) २, स्तेयानन्द (चोरी करने मे प्रसन्न होना) ३, विपयसरक्षणानन्द (परिग्रह की रक्षा मे आनन्द मानना) ४ के भेद से चार प्रकार का है। वह मिथ्यादृष्टि से पचम गुणस्थान तक के जीवो के तारतमता से होता है। रौद्रध्यान मिथ्यादृष्टि जीवो के नरकगति का कारण है, तो भी जिस जीव ने सम्यक्त्व से पूर्व नरकायु बाध ली है उसके अतिरिक्त अन्य सम्यग्दृष्टियो के वह रौद्रध्यान नरकगति का कारण नही होता। प्रश्न—ऐसा क्यो है ? उत्तर—सम्यग्दृष्टियो के 'निजशुद्ध-आत्म-तत्त्व ही उपा-देय है' इस प्रकार के विशिष्ट भेदज्ञान के बल से नरकगति का कारण भूत तीव्र संक्लेश नही होता।

अत: परम् आर्त्तरौद्रपरित्यागलक्षणमाज्ञापायविपाकसंस्थानविचयसंज्ञचतुर्भेदभिन्नं, तारतम्यवृद्धिक्रमेणासंयतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्तसंयताप्रमत्ताभिधानचतुर्गुणस्थानवर्त्तिजीवसम्भवं, मुख्यवृत्त्या पुण्यबन्धकारणमपि परम्परया मुक्तिकारणं चेति धर्मध्यानं कथ्यते। तथाहि——स्वयं मन्दबुद्धित्वेऽपि विशिष्टोपाध्यायाभावे अपि शुद्धजीवादिपदार्थाना सूक्ष्मत्वेऽपि सति "सूक्ष्मं जिनोदितं वाक्यं हेतुभिर्यन्न हन्यते। आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिना: ॥ १ ॥" इति श्लोककथितक्रमेण पदार्थनिश्चयकरणमाज्ञाविचयध्यान भण्यते। तथैव भेदाभेदरत्नत्रयभावनाबलेनास्माकं परेषा वा कदा कर्मणामपायो विनाशो भविष्यतीति चिन्तनमपायविचयं ज्ञातव्यम्। शुद्धनिश्चयेन शुभाशुभकर्मविपाकरहितोऽप्यय जीव पश्चादनादिकर्मबन्धवशेन पापस्योदयेन नारकादिदुःखविपाकफलमनुभवति, पुण्योदयेन देवादिसुखविपाकमनुभवतीति विचारणं विपाकविचयं विज्ञेयम्। पूर्वोक्तलोकानुप्रेक्षाचिन्तनं संस्थानविचयम्। इति चतुर्विधं धर्मध्यानं भवति।

अथ पृथक्त्ववितर्कवीचारं एकत्ववितर्कावीचारं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिसंज्ञं व्युपरतक्रियानिवृत्तिसंज्ञं चेति भेदेन चतुर्विधं शुक्लध्यान कथयति। तद्यथा—पृथक्त्ववितर्कवीचार

इसके आगे आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यान के त्यागरूप, १, आज्ञाविचय, २, अपायविचय, ३, विपाकविचय और ४, संस्थानविचय इन चार भेदवाला तारतम वृद्धि के क्रम से असयतसम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तसयत और अप्रमत्त इन चार गुणस्थान वाले जीवो के होनेवाला, और प्रधानता से पुण्यबंध का कारण होने पर भी परम्परा से मोक्ष का कारणभूत, ऐसा धर्मध्यान कहा जाता है। वह इस प्रकार है—स्वय अल्पबुद्धि हो तथा विशेष ज्ञानी गुरु की प्राप्ति न हो तब शुद्ध जीव आदि पदार्थों की सूक्ष्मता होने पर, 'श्री जिनेन्द्र का कहा हुआ जो सूक्ष्म तत्त्व है वह हेतुओ से खण्डित नही हो सकता अत. जो सूक्ष्म तत्व है उसको जिनेन्द्रदेव की आज्ञानुसार ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि श्रीजिनेन्द्र अन्यथावादी (झूठा उपदेश देनेवाले) नही हैं।' १ ।।' इस श्लोक के अनुसार पदार्थ का निश्चय करना 'आज्ञाविचय' प्रथम धर्मध्यान कहलाता है। उसी प्रकार भेद—अभेद–रत्नत्रय की भावना के बल से हमारे अथवा अन्य जीवो के कर्मों का नाश कब होगा, इस प्रकार का चिन्तवन 'अपायविचय' दूसरा धर्मध्यान जानना चाहिये। शुद्ध निश्चयनय से यह जीव शुभ–अशुभ कर्मो के उदय से रहित है, फिर भी अनादि कर्म-बन्ध के कारण पाप के उदय से नारक आदि के दु.खरूप फल का अनुभव करता है और पुण्य के उदय से देव आदि के सुखरूप विपाक को भोगता है, इस प्रकार विचार करना सो 'विपाकविचय' तीसरा धर्मध्यान जानना चाहिये। पहले कही हुई लोकानुप्रेक्षा का चितवन करना, 'संस्थानविचय' चौथा धर्मध्यान है। इस तरह चार प्रकार का धर्मध्यान होता है।

अब १. पृथक्त्ववितर्कवीचार, २ एकत्ववितर्क अवीचार, ३ सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति. ४ व्युपरतक्रियानिवृत्ति, ऐसे चार प्रकार के शुक्लध्यान को कहते हैं। 'पृथक्त्ववितर्कवीचार' प्रथम शुक्लध्यान

तावत्कथ्यते । द्रव्यगुणपर्यायाणा भिन्नत्वं पृथक्त्व भण्यते, स्वशुद्धात्मानुभूतिलक्षण भावश्रुत तद्वाचकमन्तर्जल्पवचन वा वितर्को भण्यते, अनीहितवृत्त्यार्थान्तरपरिणमनम् वचनाद्वचनान्तरपरिणमनम् मनोवचनकाययोगेषु योगाद्योगान्तरपरिणमन वीचारो भण्यते । अयमत्रार्थः—यद्यपि ध्याता पुरुष स्वशुद्धात्मसवेदन विहाय बहिश्चिन्ता न करोति तथापि यावताशेन स्वरूपे स्थिरत्वं नास्ति तावताशेनानीहितवृत्त्या विकल्पा स्फुरन्ति, तेन कारणेन पृथक्त्ववितर्कवीचारं ध्यान भण्यते । तच्चोपशमश्रेणिविवक्षायामपूर्वोपशमकानिवृत्त्युपशमकसूक्ष्मसाम्परायोपशमकोपशान्तकषायपर्यन्तगुणस्थानचतुष्टये भवति । क्षपकश्रेण्या पुनरपूर्वकरणक्षपकानिवृत्तिकरणक्षपकसूक्ष्मसाम्परायक्षपकाभिधानगुणस्थानत्रये चेति प्रथम शुक्लध्यान व्याख्यातम् ।

निजशुद्धात्मद्रव्ये वा निर्विकारात्मसुखसंवित्तिपर्याये वा निरुपाधिस्वसंवेदनगुणे वा यत्रैकस्मिन् प्रवृत्त तत्रैव वितर्कसज्ञेन स्वसवित्तिलक्षणभावश्रुतवशेन स्थिरीभूयावीचार गुणद्रव्यपर्यायपरावर्त्तनं न करोति यत्तदेवकत्ववितर्कावीचारसंज्ञ क्षीणकषायगुणस्थानसम्भवं द्वितीयं शुक्लध्यानं भण्यते । तेनैव केवलज्ञानोत्पत्ति इति । अथ सूक्ष्मकायक्रियाव्यापाररूपं च तदप्रतिपाति च सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिसंज्ञ तृतीय शुक्लध्यानम् । तच्चोपचारेण सयोगिकेव-

---

का कथन करते है । द्रव्य, गुण और पर्याय के भिन्नपने को 'पथक्त्व' कहते है। निज-शुद्ध-आत्मा का अनुभवरूप भावश्रुत को और निज-शुद्ध-आत्मा को कहनेवाले अन्तरजल्परूप वचन को 'वितर्क' कहते है । इच्छा विना ही एक अर्थ से दूसरे अर्थ मे, एक वचन से दूसरे वचन मे, मन वचन काय इन तीनो योगो मे से किसी एक योग से दूसरे योग मे, जो परिणमन (पलटन) है, उसको 'वीचार' कहते है। इसका यह अर्थ है—यद्यपि ध्यान करने वाला पुरुष निज-शुद्ध-आत्मसंवेदन को छोडकर वाह्य पदार्थो की चिन्ता नही करता, तथापि जितने अंशो से अनिच्छितवृत्ति से विकल्प उत्पन्न होते है, इस कारण इस ध्यान को 'पृथक्त्ववितर्कवीचार' कहते है। यह प्रथम शुक्लध्यान उपशम श्रेणी की विवक्षा मे अपूर्वकरण–उपशमक, अनिवृत्तिकरणउपशमक, सूक्ष्मसाम्पराय-उपशमक और उपशान्तकषाय, इन (८, ९, १०, ११) चार गुणस्थानो मे होता है। क्षपकश्रेणी की विवक्षा मे अपूर्वकरणक्षपक, अनिवृत्तिकरणक्षपक और सूक्ष्मसाम्परायक्षपक नामक, (८, ९, १०) इन तीन गुणस्थानो मे होता है। इस प्रकार प्रथम शुक्लध्यान का व्याख्यान हुआ ।

निज-शुद्ध-आत्मद्रव्य मे या विकार रहित आत्मसुख-अनुभवरूप पर्याय मे, या उपाधिरहित स्वसवेदन गुण मे, इन तीनो मे से जिस एक द्रव्य, गुण या पर्याय मे (जो ध्यान) प्रवृत्त होगया और उसी मे वितर्क नामक निजात्मानुभवरूप भावश्रुत के वल से स्थिर होकर अवीचार अर्थात् द्रव्य, गुण, पर्याय मे परावर्त्तन नही करता, वह "एकत्ववितर्क अवीचार" नामक, क्षीणकषाय (१२ वे) गुण- होनेवाला, दूसरा शुक्लध्यान कहलाता है। इस दूसरे शुक्लध्यान से ही केवलज्ञान मे उत्पत्ति अब सूक्ष्म काय की क्रिया के व्यापाररूप और अप्रतिपाति (कभी न गिरे) ऐसा "सूक्ष्म-

लिजिने भवतीति । विशेषेणोपरता निवृत्ता क्रिया यत्र तद् व्युपरतक्रियं च तदनिवृत्ति चानिवर्तकं च तद्व्युपरतक्रियानिवृत्तिसंज्ञं चतुर्थं शुक्लध्यानं । तच्चोपचारेणायोगिकेवलि जिने भवतीति । इति संक्षेपेणागमभाषया विचित्रध्यानं व्याख्यातम् ।

अध्यात्मभाषया पुनः सहजशुद्धपरमचैतन्यशालिनि निर्भरानन्दमालिनि भगवति निजात्मन्युपादेयबुद्धिं कृत्वा पश्चादनन्तज्ञानोऽहमनन्तसुखोऽहमित्यादिभावनारूपमभ्यन्तरधर्मध्यानमुच्यते । पञ्चपरमेष्ठिभक्त्यादितदनुकूलशुभानुष्ठानं पुनर्बहिरङ्गधर्मध्यानं भवति । तथैव स्वशुद्धात्मनि निर्विकल्पसमाधिलक्षणं शुक्लध्यानम् इति । अथवा "पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनम् । रूपस्थं सर्वचिद्रूपं रूपातीतं निरञ्जनम् ॥१॥" इति श्लोककथितक्रमेण विचित्रध्यानं ज्ञातव्यमिति ।

अथ ध्यानप्रतिबन्धकानां मोहरागद्वेषाणां स्वरूपं कथ्यते । शुद्धात्मादितत्त्वेषु विपरीताभिनिवेशजनको मोहो दर्शनमोहो मिथ्यात्वमिति यावत् । निर्विकारस्वसंवित्तिलक्षणवीतरागचारित्रप्रच्छादकचारित्रमोहो रागद्वेषौ भण्येते । चारित्रमोहो शब्देन रागद्वेषौ कथं भण्येते ? इति चेत्—कषायमध्ये क्रोधमानद्वयं द्वेषाङ्गम्, मायालोभद्वयं च रागाङ्गम्, नोक-

---

क्रियाप्रतिपाति" नामक तीसरा शुक्लध्यान है। वह उपचार से सयोगिकेवलिजिन (१३ वें) गुणस्थान में होता है। विशेषरूप से उपरत अर्थात् दूर होगई है क्रिया जिसमें वह व्युपरतक्रिय है, व्युपरतक्रिय हो और अनिवृत्ति अर्थात् निवृत्ति न हो (मुक्त न हुआ हो), वह "व्युपरतक्रियानिवृत्ति" नामा चतुर्थ शुक्लध्यान है। वह उपचार से अयोगि केवली जिन के (१४ वें गुणस्थान में) होता है। आगम भाषा से नाना प्रकार के ध्यानों का संक्षेप से कथन हुआ।

अध्यात्म भाषा में, सहज-शुद्ध-परम-चैतन्यशाली तथा परिपूर्ण आनन्द का धारी भगवान निज आत्मा में उपादेयबुद्धि (निज-शुद्ध-आत्मा ही ग्राह्य है) करके, फिर 'मैं अनन्त ज्ञानमयी हूं, मैं अनन्त सुखरूप हूं' इत्यादि भावनारूप अन्तरङ्ग धर्मध्यान है। पंचपरमेष्ठियों की भक्ति आदि तथा उसके अनुकूल शुभ अनुष्ठान का करना बहिरङ्ग धर्मध्यान है। उसी प्रकार निज-शुद्ध-आत्मा में विकल्परहित समाधिरूप शुक्लध्यान है अथवा "मन्त्रवाक्यों में स्थित 'पदस्थध्यान' है, निज आत्मा का चिन्तवन 'पिण्डस्थध्यान' है, सर्वचिद्रूप का चिन्तवन 'रूपस्थध्यान' है और निरंजन का ध्यान 'रूपातीत' ध्यान है।१।' इस श्लोक में कहे हुए क्रम के अनुसार अनेक प्रकार का ध्यान जानना चाहिये।

अब ध्यान के प्रतिबन्धक (रोकनेवाले) मोह, राग तथा द्वेष का स्वरूप कहते हैं। शुद्ध आत्मा आदि तत्त्वों में विपरीत अभिप्राय को उत्पन्न करनेवाला मोह, दर्शनमोह अथवा मिथ्यात्व है। निर्विकार निज-आत्मानुभवरूप वीतराग चारित्र को ढकने वाला चारित्रमोह अथवा राग-द्वेष कहलाता है। प्रश्न—चारित्रमोह शब्द से राग द्वेष कैसे कहे गये ? उत्तर—कषायों में क्रोध-मान ये दो द्वेष अङ्ग हैं [illegible]

षायमध्ये तु स्त्रीपुंनपुंसकवेदत्रयं हास्यरतिद्वयं च रागाङ्गम्, अरतिशोकद्वयं भयजुगुप्साद्वयं च द्वेषाङ्गमिति ज्ञातव्यम् । अत्राह शिष्यः—रागद्वेषादयः किं कर्मजनिताः किं जीवजनिता इति ? तत्रोत्तरम्—स्त्री-पुरुषसंयोगोत्पन्नपुत्र इव सुधाहरिद्रासंयोगोत्पन्नवर्णविशेष इवोभयसंयोगजनिता इति । पश्चान्नयविवक्षावशेन विवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयेन कर्मजनिता भण्यन्ते । तथैवाशुद्धनिश्चयेन जीवजनिता इति । स चाशुद्धनिश्चयः शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव । अथ मतम्—साक्षाच्छुद्धनिश्चयनयेन कस्येति पृच्छामो वयम् । तत्रोत्तरम्—साक्षाच्छुद्धनिश्चयेन स्त्रीपुरुषसंयोगरहितपुत्रस्येव, सुधाहरिद्रासंयोगरहितरङ्गविशेषस्येव तेषामुत्पत्तिरेव नास्ति कथमुत्तरं प्रयच्छाम इति । एवं ध्यातृव्याख्यानमुख्यत्वेन तद्व्याजेन विचित्रध्यानकथनेन च सूत्रं गतम् ॥ ४८ ॥

अत ऊर्ध्वं पदस्थं ध्यानं मन्त्रवाक्यस्थं यदुक्तं तस्य विवरणं कथयति—

पणतीससोलछप्पणचउदुगमेगं च जवह ज्झाएह ।
परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेण ॥४९॥

माया-लोभ ये दोनो राग अंश है । नोकषायो मे स्त्रीवेद, पुंवेद नपुंसकवेद ये तीन तथा हास्य-रति ये दो, ऐसी पांच नोकषाय राग के अंश, अरति—शोक ये दो, भय तथा जुगुप्सा ये दो, इन चार नोकषायो को द्वेष का अंश जानना चाहिये ।

शिष्य पूछता है—राग-द्वेष आदि, कर्मो से उत्पन्न हुए है या जीव से ? इसका उत्तर—स्त्री और पुरुष इन दोनो के संयोग से उत्पन्न हुए पुत्र के समान, चूना तथा हल्दी इन दोनो के मेल से उत्पन्न हुए लाल रङ्ग की तरह, राग द्वेष आदि जीव और कर्म इन दोनो के संयोग से उत्पन्न हुए है। नय की विवक्षा के अनुसार, विवक्षित एकदेश शुद्ध-निश्चयनय से तो राग-द्वेष कर्मजनित कहलाते हैं। अशुद्ध-निश्चयनय से जीवजनित कहलाते है । यह अशुद्ध-निश्चयनय, शुद्ध-निश्चयनय, की अपेक्षा से व्यवहारनय ही है । शङ्का—साक्षात् शुद्ध-निश्चयनय से ये राग-द्वेष किसके है, ऐसा हम पूछते है ? समाधान—स्त्री और पुरुष के संयोग बिना पुत्र की अनुत्पत्ति की भांति और चूना व हल्दी के संयोग बिना लाल रङ्ग की अनुत्पत्ति के समान, साक्षात् शुद्ध-निश्चयनय की अपेक्षा से इन राग द्वेषादि की उत्पत्ति ही नही होती । इसलिये हम तुम्हारे प्रश्न का उत्तर ही कैसे देवे । (जैसे पुत्र न केवल स्त्री से ही होता है और न केवल पुरुष से ही होता है, किन्तु स्त्री व पुरुष दोनो के संयोग से उत्पन्न होता है, इसी प्रकार राग द्वेष आदि न केवल कर्मजनित ही है और न केवल जीवजनित ही है किन्तु जीव और कर्म इन दोनो के संयोगजनित है । साक्षात् शुद्ध-निश्चयनय की दृष्टि मे जीव और पुद्गल दोनो शुद्ध है और इनके संयोग का अभाव है । इसलिये साक्षात् शुद्ध-निश्चयनय की अपेक्षा राग द्वेष आदि की उत्पत्ति ही नही है) । इस प्रकार ध्याता (ध्यान करनेवाले) के व्याख्यान की प्रधानता से तथा उसके बहाने से विचित्र ध्यान के कथन से यह गाथासूत्र समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥

पञ्चत्रिंशत् षोडश षट् पञ्च चत्वारि द्विक एकं च जपत ध्यायत ।
परमेष्ठिवाचकाना अन्यत् च गुरूपदेशेन ॥ ४९ ॥

व्याख्या—"पणतीस" 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाण, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं' एतानि पञ्चत्रिंशदक्षराणि सर्वपदानि भण्यन्ते । "सोल" 'अरिहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-साहू' एतानि षोडशाक्षराणि नामपदानि भण्यन्ते । "छ" 'अरिहन्तसिद्ध' एतानि षडक्षराणि अर्हत्सिद्धयोर्नामपदे द्वे भण्येते । 'पण' 'अ सि आ उ सा' एतानि पञ्चाक्षराणि आदिपदानि भण्यन्ते । 'चउ' 'अरिहंत' इदमक्षर-चतुष्टयमर्हतो नामपदम् । 'दुगं' 'सिद्ध' इत्यक्षरद्वय सिद्धस्य नामपदम् । 'एग च' 'अ' इत्येकाक्षरमर्हत आदिपदम् । अथवा 'ओं' एकाक्षरं पञ्चपरमेष्ठिनामादिपदम् । तत्कथमिति चेत् ? 'अरिहंता असरीरा आयरिया तह उवज्झाया मुणिणो । पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंच परमेट्ठी ॥१॥' इति गाथाकथितप्रथमाक्षराणा 'समान' सवर्णे दीर्घीभवति' 'परश्चलोपम्' 'उवर्णे ओ' इति स्वरसन्धिविधानेन 'ओं' शब्दो निष्पद्यते । कस्मादिति ? 'जवह

अब आगे 'मन्त्रवाक्यो मे स्थित जो पदस्थ ध्यान कहा गया है, उसका वर्णन करते है—

गाथार्थ —पंच परमेष्ठियो को कहनेवाले पैंतीस, सोलह, छः, पाच, चार, दो और एक अक्षर-रूप मन्त्रपद है, उनका जाप्य करो और ध्यान करो, इनके अतिरिक्त अन्य मन्त्र—पदो को भी गुरु के उपदेशानुसार जपो और ध्यावो ॥ ४९ ॥

वृत्त्यर्थ :—"पणतीस" णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाण णमो आयरियाण णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूण' ये पैंतीस अक्षर 'सर्वपद' कहलाते है । "सोल" 'अरिहत सिद्ध आयरिय उवज्झाय साहू' ये १६ अक्षर पंचपरमेष्ठियो के नाम पद कहलाते है । 'छ' 'अरिहंतसिद्ध' ये छः अक्षर—अर्हन्त सिद्ध इन दो परमेष्ठियो के नाम पद कहे जाते है । 'पण' 'अ सि आ उ सा' ये पंच अक्षर पंच परमेष्ठियो के आदि पद कहलाते है । 'चउ' 'अरिहंत ये चार अक्षर अर्हन्त परमेष्ठी के नामपद है । "दुग" 'सिद्ध' ये दो अक्षर सिद्ध परमेष्ठी के नामपद है । "एग च" 'अ' यह एक अक्षर अर्हत्परमेष्ठी का आदिपद है, अथवा 'ओं' यह एक अक्षर पाचो परमेष्ठियो के आदि—पदस्वरूप है। प्रश्न—'ओं' यह पच—परमेष्ठियो के आदिपद रूप कैसे है ? उत्तर—"अरिहत का प्रथम अक्षर 'अ' अशरीर (सिद्ध) का प्रथम अक्षर 'अ', आचार्य का प्रथम अक्षर 'आ', उपाध्याय का प्रथम अक्षर 'उ', मुनि का प्रथम अक्षर 'म्' इस प्रकार इन पाचो परमेष्ठियो के प्रथम अक्षरो से वना हुआ 'ओंकार' है, वही पचपरमेष्ठियो के नाम का आदि-पद है।" इस प्रकार गाथा मे कहे हुए जो प्रथम अक्षर (अ अ आ उ म) है, इनमे पहले 'समान सवर्णे दीर्घी भवति' इस सूत्र से 'अ अ आ' मिलकर दीर्घ 'आ' वनाकर 'परश्च लोपम्' इससे पर अक्षर 'आ' का लोप करके अ अ आ इन तीनो के स्थान मे एक 'आ' सिद्ध किया फिर "उवर्णे ओ ' इस सूत्र से 'आउ' के स्थान मे 'ओ' वनाया ऐसे स्वरसधि करनेसे 'ओम्' यह शब्द निस्पन्न हुआ । किस कारण ?

ज्झाएह' एतेषा पदाना सर्वमत्रवादपदेषु मध्ये सारभूताना इहलोकपरलोकेष्टफलप्रदानामर्थ ज्ञात्वा पश्चादनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपेण वचनोच्चारणेन च जाप कुरुत । तथैव शुभोपयोगरूपत्रिगुप्तावस्थाया मौनेन ध्यायत । पुनरपि कथम्भूताना ? 'परमेट्ठिवाचयाण' 'अरिहत' इति पदवाचकमनन्तज्ञानादिगुणयुक्तोऽर्हद्वाच्योऽभिधेय इत्यादिरूपेण पञ्चपरमेष्ठिवाचकाना । 'अण्ण च गुरूवएसेण' अन्यदपि द्वादशसहस्रप्रमितपञ्चनमस्कारग्रन्थकथितक्रमेण लघुसिद्धचक्र, वृहत्सिद्धचक्रमित्यादिदेवार्चनविधान भेदाभेदरत्नत्रयाराधकगुरुप्रसादेन ज्ञात्वा ध्यातव्यम् । इति पदस्थध्यानस्वरूप व्याख्यातम् ॥४९॥

एवमनेन प्रकारेण 'गुप्तेन्द्रियमना ध्याता ध्येयं वस्तु यथास्थितम् । एकाग्रचिन्तन ध्यानं फल सवरनिर्जरौ ॥१॥' इति श्लोककथितलक्षणाना ध्यातृध्येयध्यानफलाना सक्षेपव्याख्यानरूपेण गाथात्रयेण द्वितीयान्तराधिकारे प्रथम स्थल गतम् ।

अत परं रागादिविकल्पोपाधिरहितनिजपरमात्मपदार्थभावनोत्पन्नसदानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादतृप्तिरूपस्य निश्चयध्यानस्य परम्परया कारणभूतम् यच्छुभोपयोगलक्षण व्यवहारध्यानं तद्ध्येयभूताना पंचपरमेष्ठिना मध्ये तावदर्हत्स्वरूप कथयामीत्येका पातनिका ।

"जवह ज्झाएह' सव मन्त्रशास्त्र के पदो मे सारभूत इस लोक तथा तथा परलोक मे इष्ट फल को देने वाले इन पदो का अर्थ जानकर फिर अनन्त-ज्ञान आदि गुणो के स्मरण रूप वचन का उच्चारण करके जाप करो। इसी प्रकार शुभोपयोगरूप त्रिगुप्त (मन वचन काय इन तीनो की गुप्ति) अवस्था मे मौन पूर्वक (इन पदो का) ध्यान करो। फिर किन पदो को जपे, ध्यावे ? "परमेठिठवाचयाण" 'अरिहत' पद वाचक है और अनन्त ज्ञान आदि गुणो से युक्त 'श्रीअर्हत्' इस पद का वाच्य व अभिधेय (कहा जानेवाला) है, आदि प्रकार से पचपरमेष्ठियो के वाचको को जपो। "अण्ण च गुरूवएसेण" पूर्वोक्त पदो से अन्य का भी तथा बारह हजार श्लोक प्रमाण पचनमस्कारमहात्म्य नामक ग्रन्थ मे कहे हुए क्रम से लघुसिद्धचक्र, वृहत्सिद्धचक्र इत्यादि देवो के पूजन के विधान का, भेदाभेद–रत्नत्रयके आराधक गुरु के प्रसाद से जानकर, ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार पदस्थ ध्यान के स्वरूप का कथन किया । ४९ ॥

इस प्रकार "पाचो इन्द्रियो और मन को रोकने वाला ध्याता (ध्यान करने वाला) है, यथास्थित पदार्थ, ध्येय है, एकाग्र चिन्तन ध्यान है, संवर तथा निर्जरा ये दोनो ध्यान के फल है ॥१॥" इस श्लोक मे कहे हुए लक्षणवाले ध्याता, ध्येय, ध्यान और फल का संक्षेप से कथन करने वाली तीन गाथाओ से द्वितीय अन्तराधिकार मे प्रथम स्थल समाप्त हुआ।

अब इसके आगे राग आदि विकल्प रूप उपाधि से रहित निज-परमात्म-पदार्थ की भावना से उत्पन्न होने वाले सदानन्द एक लक्षण वाले सुखामृत रसास्वाद से तृप्ति रूप निश्चय-ध्यान का परम्परा से कारणभूत जो शुभोपयोग लक्षण वाला व्यवहार ध्यान है उसके ध्येयभूत पच–परमेष्ठियों मे से प्रथम

द्वितीया तु पूर्वसूत्रोदितसर्वपदनामपदादिपदानां वाचकभूतानां वाच्या ये पञ्चपरमेष्ठिनस्तद्व्याख्याने क्रियमाणे प्रथमतस्तावज्जिनस्वरूपं निरूपयामि । अथवा तृतीया पातनिका पदस्थपिण्डस्थरूपस्थध्यानत्रयस्य ध्येयभूतमर्हत्सर्वज्ञस्वरूपं दर्शयामीति पातनिकात्रयं मनसि धृत्वा भगवान् सूत्रमिदं प्रतिपादयति :—

णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥

नष्टचतुर्घातिकर्मा दर्शनसुखज्ञानवीर्यमयः ।
शुभदेहस्थः आत्मा शुद्धः अर्हन् विचिन्तनीयः ॥५०॥

व्याख्या—'णट्ठचदुघाइकम्मो' निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धोपयोगध्यानेन पूर्वं घातिकर्ममुख्यभूतमोहनीयस्य विनाशनात्तदनन्तरं ज्ञानदर्शनावरणान्तरायसंज्ञयुगपद्घातित्रयविनाशकत्वाच्च प्रणष्टचतुर्घातिकर्मा । 'दंसणसुहणाणवीरियमईओ' तेनैव घातिकर्माभावेन लब्धानन्तचतुष्टयत्वात् सहजशुद्धाविनश्वरदर्शनज्ञानसुखवीर्यमयः । 'सुहदेहत्थो' निश्चयेनाशरीरोऽपि व्यवहारेण सप्तधातुरहितदिवाकरसहस्रभासुरपरमौदारिकशरीरत्वात् शुभदेहस्थः । 'सुद्धो' 'क्षुधा तृषा भयं द्वेषो रागो मोहश्च चिन्तनम् । जरा रुजा च मृत्युश्च खेदः स्वेदो मदो-

---

ही जो अर्हत् परमेष्ठी है उनके स्वरूप को कहता हूं, यह एक पातनिका है। पूर्व गाथा मे कहे हुए सर्वपद नामपद-आदिपदरूप वाचकों के वाच्य जो पंच-परमेष्ठी, उनका व्याख्यान करने मे प्रथम ही श्री जिनेन्द्र के स्वरूप को निरूपण करता हू, यह दूसरी पातनिका है। अथवा पदस्थ, पिंडस्थ तथा रूपस्थ इन तीन ध्यानो के ध्येयभूत श्री अर्हत सर्वज्ञ के स्वरूप को दिखलाता हू, यह तीसरी पातनिका है। इस प्रकार इन पूर्वोक्त तीनो पातनिकाओ को मन मे धारण करके सिद्धान्तदेव श्री नेमिचन्द्र आचार्य इस अग्रिम गाथासूत्र का प्रतिपादन करते है :—

गाथार्थ :—चार घातिया कर्मो को नष्ट करने वाले, अनन्त-दर्शन-सुख-ज्ञान और वीर्य के धारक, उत्तम देह मे विराजमान और शुद्ध-आत्मस्वरूप अरिहंत का ध्यान करना चाहिये ॥ ५० ॥

वृत्त्यर्थ :—"णट्ठचदुघाइकम्मो" निश्चयरत्नत्रय स्वरूप शुद्धोपयोगमयी ध्यान के द्वारा पहले घातिया कर्मो मे प्रधान मोहनीय कर्म का नाश करके, पश्चात् ज्ञानावरण-दर्शनावरण तथा अन्तराय इन तीनो ही घातिया कर्मो का एक ही साथ नाश करने से, जो चारों घातिया कर्मो का नष्ट करने वाले हो गये है । "दंसणसुहणाणवीरियमईओ" उन घातिया कर्मो के नाश से उत्पन्न अनन्त चतुष्टय (अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य) के धारक होने से स्वभाविक-शुद्ध-अविनाशी ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यमयी है । 'सुहदेहत्थो' निश्चयनय से शरीर रहित है तो भी व्यवहारनय की अपेक्षा सात धातुओ (कुधातु) से रहित व हजारों सूर्यो के समान दैदीप्यमान ऐसे परम औदारिक शरीर वाले है, इस कारण शुभदेह में विराजमान है । "सुद्धो"—'क्षुधा १, तृषा २, भय ३, द्वेष ४, राग ५, मोह

ऽरति ॥१॥ विस्मयो जनन निद्रा विषादोऽष्टादश स्मृता । एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्त सो अयमाप्तो निरञ्जन ॥२॥' इति श्लोकद्वयकथिताष्टादशदोषरहितत्वात् शुद्ध । 'अप्पा' एवं गुणविशिष्ट आत्मा । 'अरिहो' अरिशब्दवाच्यमोहनीयस्य, रज शब्दवाच्यज्ञानदर्शनावरणद्वयस्य, रहस्य-शब्दवाच्यान्तरायस्य च हननाद्विनाशात् सकाशात् इन्द्रादिविनिर्मिता गर्भावतरणजन्माभि-षेकनि क्रमणकेवलज्ञानोत्पत्तिनिर्वाणाभिधानपञ्चमहाकल्याणरूपा पूजामर्हति योग्यो भवति तेन कारणेन अर्हन् भण्यते । 'विचिन्तिज्जो' इत्युक्तविशेषणैर्विशिष्टमाप्तागमप्रभृतिग्रन्थक-थितवीतरागसर्वज्ञाद्यष्टोत्तरसहस्रनामानमर्हतं जिनभट्टारकं पदस्थपिडस्थरूपस्थध्याने स्थित्वा विशेषेण चिन्तयत ध्यायत हे भव्या यूयमिति ।

अत्रावसरे भट्टचार्वाकमत गृहीत्वा शिष्य पूर्वपक्ष करोति । नास्ति सर्वज्ञोऽनुप-लब्धे । खरविषाणवत् ? तत्र प्रत्युत्तरम्--किमत्र देशेऽत्र काले अनुपलब्धि, सर्वदेशे काले वा । यदत्र देशेऽत्र काले नास्ति तदा सम्मत एव । अथ सर्वदेशकाले नास्तीति भण्यते तज्जगत्त्रय कालत्रयं सर्वज्ञरहित कथं ज्ञातं भवता । ज्ञात चेत्तर्हि भवानेव सर्वज्ञ । अथ न ज्ञातं तर्हि निषेध कथ क्रियते । तत्र दृष्टान्त --यथा कोऽपि निषेधको घटस्याधारभूतं घटरहित भूतल चक्षुषा दृष्ट्वा पश्चाद्वदत्यत्र भूतले घटो नास्तीति युक्तम्, यस्तु चक्षु रहित-

---

६, चिता ७. जरा ८ रुजा (रोग) ९, मरण १०, स्वेद (पसीना) ११, खेद १२, मद १३, अरति १४, विस्मय १५, जन्म १६, निद्रा १७ और विषाद १८, इन १८ दोषो से रहित निरजन आप्त श्री जिनेन्द्र है, ।२।' इस प्रकार इन दो श्लोको मे कहे हुए अठारह दोषो से रहित होने के कारण 'शुद्ध' है । 'अप्पा' पूर्वोक्त गुणो की धारक आत्मा है । 'अरिहो'—'अरि' शब्द से कहे जाने वाले मोहनीय कर्म का, 'रज' शब्द से वाच्य ज्ञानावरण और दर्शनवरण इन दोनो कर्मो का तथा 'रहस्य' शब्द का वाच्य अन्तरायकर्म, इन चारो कर्मो का नाश करने से इन्द्र आदि द्वारा रची हुई गर्भावतार-जन्माभिषेक—तपकल्याण—केवलज्ञानोत्पति और निर्वाण समय मे होने वाली पाच महाकल्याण रूप पूजा के योग्य होते है, इस कारण 'अर्हन्' कहलाते है । 'विचितिज्जो' हे भव्यो ! तुम पदस्थ, पिडस्थ व रूपस्थ ध्यान मे स्थित होकर, आप्त—उपदिष्ट आगम आदि ग्रन्थ मे कहे हुए तथा इन उक्त विशेषणो सहित वीतराग-सर्वज्ञ आदि एक हजार आठ नाम वाले अर्हन्त जिन—भट्टारक का विशेष रूप मे चिन्तवन करो ।

इस अवसर पर भट्ट और चार्वक मत का आश्रय लेकर शिष्य पूर्व पक्ष करता है-सर्वज्ञ नही है, क्योकि, उसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि नही होती, जैसे गधे के सीग ? उत्तर-सर्वज्ञ की प्राप्ति क्या इस देश और इस काल मे नही है या सब देश और सब काल मे नही है । यदि कहो कि, इस देश और इस काल मे सर्वज्ञ नही है, तब तो ठीक ही है, क्योकि हम भी ऐसा मानते है । यदि कहो सर्वदेश और सर्व कालो मे सर्वज्ञ नही है, तो तुमने यह कैसे जाना कि तीनो लोक और तीनो काल मे सर्वज्ञ का अभाव है । यदि कहो

स्तस्य पुनरिद वचनमयुक्तम् । [1]तथैव यस्तु जगत्त्रयं कालत्रयं सर्वज्ञरहितं जानाति तस्य जगत्त्रये कालत्रयेऽपि सर्वज्ञो नास्तीति वक्तुं युक्तं भवति, यस्तु जगत्त्रय कालत्रय [2]जानाति स सर्वज्ञ निषेधं कथमपि न करोति । कस्मादिति चेत् ? [3]जगत्त्रयकालत्रयपरिज्ञानेन स्वयमेव सर्वज्ञत्वादिति ।

अथोक्तमनुपलब्धेरिति हेतुवचनं तदप्ययुक्तम् । कस्मादिति चेत्—किं भवतामनुपलब्धिः, किं जगत्त्रयकालत्रयवर्त्तिपुरुषाणा वा ? यदि भवतामनुपलब्धिस्तावता सर्वज्ञाभावो न सिध्यति, भवद्भिरनुपलभ्यमानानां परकीयचित्तवृत्तिपरमाण्वादिसूक्ष्मपदार्थानामिव । अथवा जगत्त्रयकालत्रयवर्त्तिपुरुषाणामनुपलब्धिस्तत्कथ ज्ञातं भवद्भिः । ज्ञात चेत्तर्हि भवन्त एव सर्वज्ञा इति पूर्वमेव भणित तिष्ठति । इत्यादिहेतुदूषणं ज्ञातव्यम् । यथोक्तं खरविषाणवदिति दृष्टान्तवचनम् तदप्यनुचितम् । खरे विषाण नास्ति गवादौ तिष्ठतीत्यत्यन्ताभावो नास्ति यथा तथा सर्वज्ञस्यापि नियतदेशकालादिष्वभावेऽपि सर्वथा नास्तित्वं न भवति इति दृष्टान्तदूषणं गतम् ।

कि–अभाव जान लिया, तो तुम ही सर्वज्ञ हो गये (जो तीन लोक तथा तीन काल के पदार्थों को जानता है वही सर्वज्ञ है सो तुमने यह जान लिया है कि तीनों लोक और तीनो कालो मे सर्वज्ञ नही है, इसलिये तुम ही सर्वज्ञ सिद्ध हुए)। 'तीन लोक व तीनो काल मे सर्वज्ञ नही' इसको यदि नही जाना तो 'सर्वज्ञ नही है' ऐसा निषेध कैसे करते हो ? दृष्टान्त—जैसे कोई निषेध करने वाला, घट की आधारभूत पृथ्वी को नेत्रो से घट रहित देख कर, फिर कहे कि 'इस पृथ्वी पर घट नही है' तो उसका यह कहना ठीक है, परन्तु जो नेत्रहीन है, उसका ऐसा वचन ठीक नही है। इसी प्रकार जो तीन जगत्, तीन काल को सर्वज्ञ रहित जानता है, उसका यह कहना कि तीन काल मे सर्वज्ञ नही, उचित हो सकता है, किंतु जो तीन जगत् तीन काल को जानता है, वह सर्वज्ञ का निषेध किसी भी प्रकार नही कर सकता। क्यो नही कर सकता ? तीन जगत् तीन काल को जानने से वह स्वयं सर्वज्ञ होगया, अतः वह सर्वज्ञ का निषेध नही कर सकता।

सर्वज्ञ के निषेध मे 'सर्वज्ञ की अनुपलब्धि' जो हेतु वाक्य है, वह भी ठीक नही। क्यो ठीक नही ? उत्तर यह है—क्या आपके ही सर्वज्ञ की अनुपलब्धि (अप्राप्ति) है या तीन जगत् तीन काल के पुरुषो के अनुपलब्धि है । यदि आपके ही सर्वज्ञ को अनुपलब्धि है, तो इतने मात्र से सर्वज्ञ का अभाव सिद्ध नही होता, क्योकि, जैसे पर के मनोविचार तथा परमाणु आदि की आपके अनुपलब्धि है, तो भी

---

१ तथा योसौ जगत्त्रय कालत्रय सर्वज्ञरहितं प्रत्यक्षेण जानाति स एव सर्वज्ञनिषेधे समर्थो, न चान्योन्ध इव, यस्तु जगत्त्रय कालत्रय जानाति स सर्वज्ञनिषेध कथमपि न करोति। कस्मात् ? जगत्त्रयकालत्रयविषयपरिज्ञान सहितत्वेन स्वमेव सर्वज्ञत्वादिति। (पञ्चास्तिकाय तात्पर्य वृत्ति. गा०२८)
२ 'न जानाति' इति पाठान्तर। ३ 'किं भवतामनुपलब्धेः जगत्त्रय' इति पाठान्तरं।

अथ मतं—सर्वज्ञविषये बाधकप्रमाणं निराकृतं भवद्भिस्तर्हि सर्वज्ञसद्भावसाधकं प्रमाणं किम् ? इति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह—कश्चित् पुरुषो धर्मी, सर्वज्ञो भवतीति साध्यते धर्म, एवं धर्मिधर्मसमुदायेन पक्षवचनम् । कस्मादिति चेत्, पूर्वोक्तप्रकारेण बाधकप्रमाणाभावादिति हेतुवचनम् । किंवत्, स्वयमनुभूयमानसुखदुःखादिवदिति दृष्टान्तवचनम् । एवं सर्वज्ञसद्भावे पक्षहेतुदृष्टान्तरूपेण त्र्यङ्गमनुमानं विज्ञेयम् । अथवा द्वितीयमनुमानं कथ्यते—रामरावणादयः कालान्तरिता, मेर्वादयो देशान्तरिता भूतादयो भवान्तरिता परचेतोवृत्तयः परमाण्वादयश्च सूक्ष्मपदार्था धर्मिणः कस्यापि पुरुषविशेषस्य प्रत्यक्षा भवन्तीति साध्यो धर्म इति धर्मिधर्मसमुदायेन पक्षवचनम् । कस्मादिति चेत्, अनुमानविषयत्वादिति हेतुवचनम् । किंवत्, यद्यदनुमानविषयं तत्तत्कस्यापि प्रत्यक्षं भवति, यथाग्न्यादि, इत्यन्वयदृष्टान्तवचनं । अनुमानेन विषयाश्चेति, इत्युपनयवचनम् । तस्मात् कस्यापि प्रत्यक्षा भवन्तीति निगमनवचनं । इदानीं व्यतिरेकदृष्टान्तं कथ्यते—यन्न कस्यापि प्रत्यक्षं तदनुमानविषयमपि न भवति, यथा खपुष्पादि, इति व्यतिरेकदृष्टान्तवचनम् । अनुमानविषयाश्चेति पुनरप्युपनयवचनम् ।

उनका अभाव सिद्ध नही होता। यदि तीन जगत् तीन काल के पुरुषो के 'सर्वज्ञ' की अनुपलब्धि है, तो इसको आपने कैसे जाना यदि कहो 'जान लिया' तो आप ही सर्वज्ञ हुए, ऐसा पहले कहा जा चुका है। इस प्रकार से 'हेतु' मे दूषण जानना चाहिए। सर्वज्ञ के अभाव को सिद्धि मे जो 'गधे के सींग' का दृष्टान्त दिया था, वह भी ठीक नही है। गधे के सींग नही है, किन्तु गौ आदि के सींग है। सींग का जैसे अत्यन्त (सर्वथा) अभाव नही, वैसे ही 'सर्वज्ञ' का विवक्षित देश व काल मे अभाव होने पर भी सर्वथा अभाव नही है। इस प्रकार दृष्टान्त मे दूषण आया।

प्रश्न—आपके द्वारा सर्वज्ञ के सम्बन्ध मे बाधक प्रमाण का तो खडन हुआ, किन्तु सर्वज्ञ के सद्भाव को सिद्ध करने वाला क्या प्रमाण है ? ऐसा पूछे जाने पर उत्तर देते है—'कोई पुरुष (आत्मा) सर्वज्ञ है', इसमे 'पुरुष' धर्मी है और 'सर्वज्ञता', जिसको सिद्ध करना है, वह धर्म है, इस प्रकार 'धर्मी धर्म समुदाय' को पक्ष कहते है (जिसको सिद्ध करना वह साध्य अर्थात् धर्म है। जिसमे धर्म पाया जावे या रहे वह धर्मी है। धर्म और धर्मी दोनो मिलकर 'पक्ष' कहलाते है)। इसमे हेतु क्या है ? पूर्वोक्त अनुसार 'बाधक प्रमाण का अभाव' यह हेतु है। किसके समान ? अपने अनुभव मे आते हुए सुख-दुख आदि के समान, यह दृष्टान्त है। इस प्रकार सर्वज्ञ के सदभाव मे पक्ष, हेतु तथा दृष्टान्त रूप से तीन अङ्गो का धारक अनुमान जानना चाहिये। अथवा सर्वज्ञ के सद्भाव का साधक दूसरा अनुमान कहते है। राम और रावण आदि काल से दूर व ढके पदार्थ, मेरु आदि देश से अन्तरहित पदार्थ, भूत आदि भव से ढके हुए पदार्थ, तथा पर पुरुषो के चित्तो के विकल्प और परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थ, ये धर्मी 'किसी भी विशेष-पुरुष के प्रत्यक्ष देखने मे आते है', यह उन राम रावणादि धर्मियो मे सिद्ध करने योग्य धर्म है, इस प्रकार धर्मी और धर्म के समुदाय से पक्षवचन (प्रतिज्ञा) है। राम रावणादि किसी के प्रत्यक्ष क्यो है ? 'अनुमान का विषय होने से' यह हेतु-वचन है। किसके समान ? 'जो-जो अनुमान का विषय

तस्मात् प्रत्यक्षा भवन्तीति पुनरपि निगमनवचनमिति । किन्त्वनुमानविषयत्वादित्ययं हेतुः, सर्वज्ञस्वरूपे साध्ये सर्वप्रकारेण सम्भवति यतस्ततः कारणात्स्वरूपासिद्धभावासिद्धविशेषणादसिद्धो[1] न भवति । तथैव सर्वज्ञस्वरूपं स्वपक्षं विहाय सर्वज्ञाऽभाव विपक्षं न साधयति तेन कारणेन विरुद्धो न भवति । तथैव च यथा सर्वज्ञसद्भावे स्वपक्षे वर्तते तथा सर्वज्ञाभावेऽपि विपक्षेऽपि न वर्तते तेन कारणेनाऽनैकान्तिको न भवति । अनैकान्तिकः कोऽर्थो ? व्यभिचारीति । तथैव प्रत्यक्षादिप्रमाणबाधितो न भवति, तथैव च प्रतिवादिनां प्रत्यसिद्धं सर्वज्ञसद्भाव साधयति, तेन कारणेनाकिंचित्करोऽपि न भवति । एवमसिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्करहेतुदोषरहितत्वात्सर्वज्ञसद्भावं साधयत्येव । इत्युक्तप्रकारेण सर्वज्ञसद्भावे पक्षहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनरूपेण पञ्चाङ्गमनुमानम् ज्ञातव्यमिति ।

कि च यथा लोचनहीनपुरुषस्यादर्शे विद्यमानेऽपि प्रतिबिम्बाना परिज्ञानं न भवति,

---

है, वह-वह किसी के प्रत्यक्ष होता है, जैसे—अग्नि आदि', यह अन्वय दृष्टान्त का वचन है । 'देश काल आदि से अन्तिरित पदार्थ भी अनुमान के विषय है' यह उपनय का वचन है । इसलिये 'राम रावण आदि किसी मे प्रत्यक्ष होते हैं' यह निगमन वाक्य है । अब व्यतिरेक दृष्टान्त को कहते हैं—'जो किसी के भी प्रत्यक्ष नही होते, वे अनुमान के विषय भी नही होते जैसे कि अकाश के पुष्प आदि' यह व्यतिरेक दृष्टान्त का वचन है । 'राम रावण आदि अनुमान के विषय हें' यह उपनय का वचन है । इसलिये 'राम रावणादि किसी के प्रत्यक्ष होते है, यह निगमन वाक्य है ।

राम रावणादि किसीके प्रत्यक्ष होते है, 'अनुमान के विषय होने से' यहां पर 'अनुमान के विषय होने से' यह हेतु है । सर्वज्ञ रूप साध्य मे यह हेतु सब तरह से सम्भव है, इस कारण यह हेतु स्वरूपासिद्ध, भावासिद्ध, इन विशेषणो से असिद्ध नही है । तथा उक्त हेतु, सर्वज्ञ रूप अपने पक्ष को छोडकर सर्वज्ञ के अभाव रूप विपक्ष को सिद्ध नही करता, इस कारण विरुद्ध भी नही है । और जैसे 'सर्वज्ञ के सद्भाव रूप अपने पक्ष मे रहता है, वैसे सर्वज्ञ के अभाव रूप विपक्ष मे नही रहता, इस कारण उक्त हेतु अनैकान्तिक भी नही है । अनैकान्तिक का क्या अर्थ है ? व्यभिचारी' । प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से बाधित भी नही है, तथा सर्वज्ञ को न मानने वाले भट्ट और चार्वाक के लिये सर्वज्ञ के सद्भाव को सिद्ध करता है अत. इन दोनो कारणो से अकिंचित् कर भी नहा है इस प्रकार से 'अनुमान का विषय होने से' यह हेतु-वचन असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक, अकिंचित्कर रूप हेतु के दूषणो से रहित है, इस कारण सर्वज्ञ से सद्भाव को सिद्ध करता ही है । इस प्रकार सर्वज्ञ के सद्भाव पक्ष, हेतु, दृष्टान्त, उपनय और निगमन रूप से पाचो अगो वाला अनुमान जानना चाहिये ।

विशेष :—जैसे नेत्रहीन पुरुष को दर्पण के विद्यमान रहने पर भी प्रतिबिम्बो का ज्ञान नही

---

१ 'विशेषणाद्यसिद्धो' इति पाठान्तरं ।

तथा लोचनस्थानीयसर्वज्ञतागुणरहितपुरुषस्यादर्शस्थानीयवेदशास्त्रे कथितानां प्रतिबिम्बस्थानीयपरमाण्वाद्यनन्तसूक्ष्मपदार्थाना क्वापिकाले परिज्ञानं न भवति । तथाचोक्तं 'यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्र तस्य करोति किम् । लोचनाभ्या विहीनस्य दर्पण कि करिष्यति ॥१॥' इति संक्षेपेण सर्वज्ञसिद्धिरत्र बोद्धव्या । एव पदस्थपिण्डस्थरूपस्थध्याने ध्येयभूतस्य सकलात्मनो जिनभट्टारकस्य व्याख्यानरूपेण गाथा गता ॥५०॥

अथ सिद्धसदृशनिजपरमात्मतत्त्वपरमसमरसीभावलक्षणस्य रूपातीतनिश्चयध्यानस्य पारम्पर्येण कारणभूत मुक्तिगतसिद्धभक्तिरूप 'णमो सिद्धाण' इति पदोच्चारणलक्षणं यत्पदस्थ ध्यानं तस्य ध्येयभूत सिद्धपरमेष्ठिस्वरूप कथयति —

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा ।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥ ५१ ॥

नष्टाष्टकर्मदेहः लोकालोकस्य ज्ञायकः द्रष्टा ।
पुरुषाकारः आत्मा सिद्धः ध्यायेत लोकशिखरस्थः ॥ ५१ ॥

व्याख्या—'णट्ठट्ठकम्मदेहो' शुभाशुभमनोवचनकायक्रियारूपस्य द्वैतशब्दाभिधेयक-

---

होता, इसी प्रकार नेत्रो के स्थानभूत सर्वज्ञतारूप गुण से रहित पुरुष को दर्पण के स्थानभूत वेदशास्त्र मे कहे हुए प्रतिबिम्बो के स्थानभूत परमाणु आदि अनन्त सूक्ष्म पदार्थोका किसी भी समय ज्ञान नही होता ऐसा कहा भी है कि—'जिस पुरुष के स्वय बुद्धि नही है उसका शास्त्र क्या उपकार कर सकता है ? क्योकि नेत्रो से रहित पुरुष का दर्पण क्या उपकार करेगा ? (अर्थात् कुछ उपकार नही कर सकता) । १ ।' इस प्रकार यहा सक्षेप से सर्वज्ञ की सिद्धि जाननी चाहिए । ऐसे पदस्थ, पिडस्थ और रूपस्थ इन तीनो ध्यानो मे ध्येयभूत सकल-परमात्म-श्रीजिन-भट्टारक के व्याख्यान से यह गाथा समाप्त हुई ।५०।

अब सिद्धो के समान निज-परमात्म-तत्त्व मे परमसमरसी-भाव वाले रूपातीत नामक निश्चय ध्यान के परम्परा से कारणभूत तथा मुक्ति को प्राप्त, ऐसे सिद्ध परमेष्ठी की भक्तिरूप 'णमो सिद्धाण' इस पद के उच्चारणरूप लक्षण वाला जो पदस्थ-ध्यान, उसके ध्येयभूत सिद्धपरमेष्ठी के स्वरूप को कहते है :—

गाथार्थ —अष्ट कर्म रूपी शरीर को नष्ट करने वाली, लोकालोक-आकाश को जानने-देखने वाली, पुरुषाकार, लोक-शिखर पर विराजमान, ऐसी आत्मा सिद्ध-परमेष्ठी है । अत. तुम सब उन सिद्ध-परमेष्ठी का ध्यान करो ॥ ५१ ॥

वृत्त्यर्थ —'णट्ठट्ठकम्मदेहो' शुभ-अशुभ मन-वचन और काय की क्रिया रूप तथा द्वैत शब्द के अभिधेयरूप कर्म समूह का नाश करने मे समर्थ, निज-शुद्ध-आत्म-स्वरूप की भावना से उत्पन्न रागादि विकल्परूप उपाधि से रहित, परम आनन्द एक लक्षण वाला, सुन्दर-मनोहर-आनन्द को वहाने वाला क्रियारहित और अद्वैत शब्द का वाच्य, ऐसे परमज्ञानकाड द्वारा ज्ञानावरण आदि कर्म एव ओदारिक

र्मकाण्डस्य निर्मूलनसमर्थेन स्वशुद्धात्मतत्त्वभावनोत्पन्नरागादिविकल्पोपाधिरहितपरमाह्लादेकलक्षणसुन्दरमनोहरानन्दस्यंदिनिःक्रियाद्वैतशब्दवाच्येन परमज्ञानकाण्डेन विनाशितज्ञानावरणाद्यष्टकर्मौदारिकादिपञ्चदेहत्वात् नष्टाष्टकर्मदेह । 'लोयालोयस्स जाणओदट्ठा' पूर्वोक्तज्ञानकाण्डभावनाफलभूतेन सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनद्वयेन लोकालोकगतत्रिकालवर्त्तिसमस्तवस्तुसम्बन्धिविशेषसामान्यस्वभावानामेकसमयज्ञायकदर्शकत्वात् लोकालोकस्य ज्ञाता द्रष्टा भवति । 'पुरिसायारो' निश्चयनयेनातीन्द्रियामूर्त्तपरमचिदुच्छलननिर्भरशुद्धस्वभावेन निराकारोऽपि व्यवहारेण भूतपूर्वनयेन किञ्चिदूनचरमशरीराकारेण गतसिक्थमूषागर्भाकारवच्छायाप्रतिमावद्वा पुरुषाकार । 'अप्पा' इत्युक्तलक्षण आत्मा । कि भण्यते ? 'सिद्धो' अञ्जनसिद्धपादुकासिद्धगुटिकासिद्धखड्गसिद्धमायासिद्धादिलौकिकसिद्धविलक्षण: केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिलक्षण. सिद्धो भण्यते । 'झाएह लोयसिहरत्थो' तमित्थंभूतं सिद्धपरमेष्ठिनं लोकशिखरस्थ दृष्टश्रुतानुभूतपञ्चेन्द्रियभोगप्रभृतिसमस्तमनोरथरूपनानाविकल्पजालत्यागेन त्रिगुप्तिलक्षणरूपातीतध्याने स्थित्वा ध्यायत हे भव्या यूयम् इति । एवं निष्कलसिद्धपरमेष्ठिव्याख्यानेन गाथा गता ॥ ५१ ॥

अथ निरुपाधिशुद्धात्मभावनानुभूत्यविनाभूतनिश्चयपञ्चाचारलक्षणस्य निश्चयध्यानस्य परम्परया कारणभूतं निश्चयव्यवहारपञ्चाचारपरिणताचार्यभक्तिरूपं 'णमो आयरियाण' इति पदोच्चारणलक्षणं यत्पदस्थध्यान तस्य ध्येयभूतमाचार्य परमेष्ठिनं कथयति

आदि पांच शरीरो को नष्ट करने से जो नष्ट-अष्ट कर्म देह है । 'लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा' पूर्वोक्त ज्ञानकाड की भावना के फलस्वरूप पूर्ण निर्मल केवलज्ञान और दर्शन दोनो द्वारा लोकालोक के तीन कालवर्ती सर्व पदार्थ सम्बन्धी विशेष तथा सामान्य भावो को एक ही समय मे जानने और देखने से, लोकालोक को जानने-देखने वाले है । "पुरिसायारो" निश्चयनय की दृष्टि से इन्द्रियगोचर-अमूर्त्तिक परमचैतन्य से भरे हुए शुद्ध स्वभाव की अपेक्षा आकार रहित है, तो भी व्यवहार से भूतपूर्व नय की अपेक्षा अन्तिमशरीर से कुछ कम आकार वाले होने के कारण, मोमरहित मूस के बीच के आकार की तरह अथवा छाया के प्रतिबिम्ब के समान, पुरुषाकार है । "अप्पा" पूर्वोक्त लक्षणवाली आत्मा; वह क्या कहलाती है ? 'सिद्धो' अञ्जनसिद्ध, पादुकासिद्ध गुटिकासिद्ध, खड्गसिद्ध और मायासिद्ध आदि लौकिक (लोक मे कहे जाने वाले) सिद्धोंसे विलक्षण केवलज्ञान आदि अनंत गुणो की प्रकटतारूप सिद्ध कहलाती है । "झाएह लोयसिरत्थो" हे भव्यजनो ! तुम देखे—सुने—अनुभव किये हुए जो पांचो इन्द्रियो के भोग आदि समस्त मनोरथ रूप अनेक विकल्प-समूह के त्याग द्वारा मन-वचन-काय की गुप्तिस्वरूप रूपातीत ध्यान मे स्थिर होकर, लोक के शिखर पर विराजमान पूर्वोक्त लक्षणवाले सिद्ध परमेष्ठी को ध्यावो ! इस प्रकार अशरीरी सिद्ध परमेष्ठी के व्याख्यानरूप यह गाथा समाप्त हुई ॥ ५१ ॥

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे ।
अप्पं परं च जुंजइ सो आयरिओ मुणी झेओ ॥५२॥

दर्शनज्ञानप्रधाने वीर्यचारित्रवरतप आचारे ।
आत्मानं परं च युनक्ति सः आचार्यः मुनिः ध्येयः ॥५२॥

व्याख्या—'दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे' सम्यग्दर्शनज्ञानप्रधाने वीर्यचारित्रवरतपश्चरणाचारेऽधिकरणभूते 'अप्प परं च जुंजइ' आत्मानं परं शिष्यजनं च योऽसौ योजयति सम्बन्धं करोति 'सो आयरिओ मुणी झेओ' स उक्तलक्षण आचार्यो मुनिस्तपोधनो ध्येयो भवति । तथाहि—भूतार्थनयविषयभूत शुद्धसमयसारशब्दवाच्यो भाव-कर्मद्रव्यकर्मनोकर्मादिसमस्तपरद्रव्येभ्यो भिन्न परमचैतन्यविलासलक्षणं स्वशुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूप सम्यग्दर्शनं तत्राचरणं परिणमनं निश्चयदर्शनाचार ॥१॥ तस्यैव शुद्धात्मनो निरुपाधिस्वसंवेदनलक्षणभेदज्ञानेन मिथ्यात्वरागादिपरभावेभ्य पृथक्परिच्छेदनं सम्यग्ज्ञान, तत्राचरणं परिणमनं निश्चयज्ञानाचार ॥२॥ तत्रैव रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वाभाविक-सुखास्वादेन निश्चलचित्तं वीतरागचारित्रं, तत्राचरणं परिणमनं निश्चयचारित्राचारः

अब उपाधि रहित शुद्ध-आत्मभावना की अनुभूति (अनुभव) का अविनाभूत निश्चय-पंच आचार-रूप-निश्चय-ध्यान का परम्परा से कारणभूत, निश्चय तथा व्यवहार इन दोनो प्रकार के पांच आचारो मे परिणत (तत्पर वा तल्लीन) ऐसे आचार्य परमेष्ठी की भक्तिरूप और "णमो आयरियाणं" इस पद के उच्चारण-रूप जो पदस्थ ध्यान, उस पदस्थ ध्यान के ध्येयभूत आचार्य परमेष्ठी के स्वरूप को कहते है —

गाथार्थ —दर्शनाचार १, ज्ञानाचार २, की मुख्यता सहित वीर्याचार ३, चारित्राचार ४ और तपाचार ५, इन पांचो आचारो मे जो आप भी तत्पर होते हैं और अन्य (शिष्यो) को भी लगाते हैं, वह आचार्यमुनि ध्यान करने योग्य है ॥ ५२ ॥

वृत्त्यर्थ —"दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे" सम्यग्दर्शनाचार और सम्यग्ज्ञाना-चार की प्रधानता सहित, वीर्याचार, चारित्राचार और तपश्चरणाचार मे "अप्प परं च जुंजइ" अपने को और अन्य अर्थात् शिष्य-जनो को लगाते है, "सो आयरिओ मुणी झेओ" वे पूर्वोक्त लक्षणवाले आचार्य तपोधन ध्यान करने योग्य है । विशेष—भूतार्थनय (निश्चयनय) का विषयभूत, 'शुद्धसमयसार' शब्द से वाच्य, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म आदि समस्त परपदार्थों से भिन्न और परम-चैतन्य का विला-सरूप लक्षण वाली, यह निज-शुद्ध-आत्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचि सम्यक्-दर्शन है, उस सम्यग्दर्शन मे जो आचरण अर्थात् परिणमन, वह निश्चयदर्शनाचार है । १ । उसी शुद्ध आत्मा को, उपाधि रहित स्वसंवेदनरूप भेदज्ञान द्वारा मिथ्यात्व-राग आदि परभावो से भिन्न जानना, सम्यग्ज्ञान है, उस सम्य-ग्ज्ञान मे आचरण अर्थात् परिणमन। यह निश्चयज्ञानाचार है । २ । उसी शुद्ध आत्मा मे राग आदि

॥३॥ समस्तपरद्रव्येच्छानिरोधेन तथैवानशनादिद्वादशतपश्चरणबहिरङ्गसहकारिकारणेन च स्वस्वरूपे प्रतपनं विजयनं निश्चयतपश्चरणं, तत्राचरणं परिणमनं निश्चयतपश्चरणाचार । ४ । तस्यैव निश्चयचतुर्विधाचारस्य रक्षणार्थं स्वशक्त्यनवगूहनं निश्चयवीर्याचार । ५ । इत्युक्तलक्षणनिश्चयपञ्चाचारे तथैव 'छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसन्दरिसे । सिस्साणुग्गहकुसले धम्मायरिए सदा वंदे । १ ।' इति गाथाकथितक्रमेणाचाराराधनादिचरणशास्त्रविस्तीर्णबहिरङ्गसहकारिकारणभूते व्यवहारपञ्चाचारे च स्वं परं च योजयत्यनुष्ठानेन सम्बन्धं करोति स आचार्यो भवति । स च पदस्थध्याने ध्यातव्य । इत्याचार्यपरमेष्ठिव्याख्यानेन सूत्रं गतम् ॥५२॥

अथ स्वशुद्धात्मनि शोभनमध्यायोऽभ्यासो निश्चयस्वाध्यायस्तल्लक्षणनिश्चयध्यानस्य पारम्पर्येण कारणभूतं भेदाभेदरत्नत्रयादितत्त्वोपदेशकं परमोपाध्यायभक्तिरूपं 'णमो उवज्झायाणं' इति पदोच्चारणलक्षणं यत् पदस्थध्यानं, तस्य ध्येयभूतमुपाध्यायमुनीश्वरं कथयति—

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो ।
सो उवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥५३॥

विकल्परूप उपाधि से रहित स्वाभाविक सुखास्वाद से निश्चल-चित्त होना, वीतरागचारित्र है, उसमे जो आचरण अर्थात् परिणमन, वह निश्चयचारित्राचार है । ३ । समस्त परद्रव्यो की इच्छा के रोकने से तथा अनशन आदि बारह-तप-रूप-बहिरंगसहकारीकारण से जो निज स्वरूप मे प्रतपन अर्थात् विजयन, वह निश्चयतपश्चरण है, उसमे जो आचरण अर्थात् परिणमन निश्चयतपश्चरणाचार है । ४ । इन चार प्रकार के निश्चय आचार की रक्षा के लिये अपनी शक्ति का न छिपाना, निश्चयवीर्याचार है । ५ । ऐसे उक्त लक्षणो वाले पाच प्रकार के निश्चय आचार मे और इसी प्रकार, "छत्तीस गुणो से सहित, पाच प्रकार के आचार को करने का उपदेश देने वाले तथा शिष्यों पर अनुग्रह (कृपा रखने मे चतुर जो धर्माचार्य है उनको मै सदा वंदना करता हू, । १ ।" इस गाथा मे कहे अनुसार आचार आराधना आदि चरणानुयोग के शास्त्रो मे विस्तार से कहे हुए बहिरङ्ग—सहकारीकारणरूप पाच प्रकार के व्यवहार आचार मे जो अपने को तथा अन्य को लगाते है (स्वय उस पचाचार को साधते है और दूसरो से सधाते है) वे आचार्य कहलाते है वे आचार्य परमेष्ठी पदस्थ मे ध्यान मे ध्यान करने योग्य है । इस प्रकार आचार्य परमेष्ठी के व्याख्यान से गाथासूत्र समाप्त हुआ ॥ ५२ ॥

अब निज शुद्ध आत्मा मे जो उत्तम अध्ययन अर्थात् अभ्यास करना है, उसको निश्चय स्वाध्याय कहते है । उस निश्चयस्वाध्यायरूप निश्चयध्यान के परम्परा से कारणभूत भेद-अभेद-रत्नत्रय आदि तत्त्वों का उपदेश करनेवाले, परम उपाध्याय की भक्तिस्वरूप "णमो उवज्झायाणं" इस पद के उच्चारणरूप जो पदस्थध्यान उसके ध्येयभूत, ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी के स्वरूप को कहते है :—

यः रत्नत्रययुक्तः नित्य धर्मोपदेशने निरतः ।
सः उपाध्यायः आत्मा यतिवरवृषभः नमः तस्मै ॥५३॥

व्याख्या--'जो रयणत्तयजुत्तो' योऽसौ बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयानुष्ठानेन युक्तः परिणत । 'णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो' षट्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु मध्ये स्वशुद्धात्मद्रव्य स्वशुद्धजीवास्तिकायं स्वशुद्धात्मतत्त्व स्वशुद्धात्मपदार्थमेवोपादेय शेष च हेय, तथैवोत्तमक्षमादिधर्म च नित्यमुपदिशति योऽसौ स नित्य धर्मोपदेशने निरतो भण्यते । 'सो उवज्झाओ अप्पा' स चेत्थंभूत आत्मा उपाध्याय इति । पुनरपि किं विशिष्टः ? 'जदिवरवसहो' पञ्चेन्द्रियविषयजयेन निजशुद्धात्मनि यत्नपराणा यतिवराणा मध्ये वृषभः प्रधानो यतिवरवृषभ । 'णमो तस्स' तस्मै द्रव्यभावरूपो नमो नमस्कारोऽस्तु । इत्युपाध्यायपरमेष्ठिव्याख्यानरूपेण गाथा गता ॥ ५३ ॥

अथ निश्चयरत्नत्रयात्मकनिश्चयध्यानस्य परम्परया कारणभूतं बाह्याभ्यन्तरमोक्षमार्गसाधक परमसाधुभक्तिरूपं 'णमो लोए सव्वसाहूण' इति पदोच्चारणजपध्यानलक्षण यत् पदस्थध्यान तस्य ध्येयभूत साधुपरमेष्ठिस्वरूप कथयति--

---

गाथार्थ —जो रत्नत्रय से सहित, निरन्तर धर्म का उपदेश देने मे तत्पर तथा मुनिश्वरो मे प्रधान है, वह आत्मा उपाध्याय है । उसके लिये नमस्कार हो ॥ ५३ ॥

वृत्त्यर्थ --"जो रयणत्तयजुत्तो" जो बाह्य, अभ्यन्तर रत्नत्रय के अनुष्ठान (साधन) मे युक्त है (निश्चय-व्यवहार-रत्नत्रय को साधने मे लगे हुए है) । "णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो" 'छ द्रव्य, पाच अस्तिकाय, सात तत्त्व व नव पदार्थो मे निज-शुद्ध-आत्म-द्रव्य, निज-शुद्ध-जीवास्तिकाय, निज शुद्ध-आत्मतत्व और निज-शुद्ध-आत्मपदार्थ ही उपादेय है, अन्य सब हेय है' इस विषय का तथा उत्तम क्षमा आदि दश धर्मो का जो निरन्तर उपदेश देते है, वे नित्य धर्मोपदेश देने मे तत्पर कहलाते है । "सो उवज्झाओ अप्पा" इस प्रकार की वह आत्मा उपाध्याय है । उसमे और क्या विशेषता है ? "जदिवरवसहो" पाचो इन्द्रियो के विषयो को जीतने मे निज-शुद्ध-आत्मा मे प्रयत्न करने मे तत्पर, ऐसे मुनीश्वरो मे वृषभ अर्थात् प्रधान होने से यतिवृषभ हैं । "णमो तस्स" उन उपाध्याय परमेष्ठी को द्रव्य तथा भावरूप नमस्कार हो । इस प्रकार उपाध्याय परमेष्ठी के व्याख्यान से गाथासूत्र पूर्ण हुआ ॥ ५३ ॥

अब निश्चयरत्नत्रयरूप-निश्चयध्यान का परम्परा मे कारणभूत, बाह्य-अभ्यन्तर-मोक्षमार्ग के साधनेवाले परमसाधु की भक्तिस्वरूप "णमो लोए सव्वसाहूण" पद के उच्चारणे, जपने और ध्यानेरूप जो पदस्थ ध्यान उसके ध्येयभूत, ऐसे साधु परमेष्ठी के स्वरूप को कहते है :—

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिच्चसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥५४॥

दर्शनज्ञानसमग्रं मार्गं मोक्षस्य यः हि चारित्रम् ।
साधयति नित्यशुद्धं साधुः सः मुनिः नमः तस्मै ॥५४॥

व्याख्या—'साहू स मुणी' स मुनिः साधुर्भवति । य किं करोति ? 'जो हु साधयदि' यः कर्त्ता हु स्फुटं साधयति । किं ? 'चारित्त' चारित्र । कथभूतं ? 'दंसणणाणसमग्ग' वीतरागसम्यग्दर्शनज्ञानाभ्या समग्रम् परिपूर्णम् । पुनरपि कथम्भूत ? 'मग्ग मोक्खस्स' मार्गभूत; कस्य ? मोक्षस्य । पुनश्च किम् रूप ? 'णिच्चसुद्ध' नित्यं सर्वकाल शुद्ध रागादिरहितम् । 'णमो तस्स' एव गुणविशिष्टो यस्तस्मै साधवे नमो नमस्कारोस्त्विति । तथाहि—'उद्योतनमुद्योगो निर्वहण साधनं च निस्तरणम् । दृगवगमचरणतपसामाख्याताराधना सद्भिः । १ । इत्यार्यकथितबहिरङ्गचतुर्विधाराधनाबलेन, तथैव "समत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं हि सत्तवो चेव । चउरो चिट्ठहि आदे तह्मा आदा हु मे सरणं । १ ।' इति गाथाकथिताभ्यन्तरनिश्चयचतुर्विधाराधनाबलेन च बाह्याभ्यन्तरमोक्षमार्गद्वितीयनामाभिधेयेन कृत्वा. यः कर्त्ता वीतरागचारित्राविनाभूतं स्वशुद्धात्मानं साधयति भावयति स साधुर्भवति । तस्यैव सहजशुद्धसदानन्दैकानुभूतिलक्षणो भावनमस्कारस्तथा 'णमो लोए सव्वसाहूणं' द्रव्यनमस्कारश्च भवत्विति ॥ ५४ ॥

गाथार्थ :—दर्शन और ज्ञान से पूर्ण, मोक्षमार्ग-स्वरूप, सदाशुद्ध, ऐसे चारित्र को जो साधते हैं, वे मुनि 'साधु परमेष्ठी' हैं, उनको मेरा नमस्कार हो ॥ ५४ ॥

वृत्त्यर्थ :—'साहू स मुणी' वह मुनि साधु होते है । वे क्या करते हैं ? 'जो हु साधयदि' जो प्रकट रूप से साधते है । किसको साधते है ? 'चारित्तं चारित्र को साधते है । किस प्रकार के चारित्र को साधते हैं ? 'दसणणाण समग्ग' वीतराग सम्यग्दर्शन व ज्ञान से परिपूर्ण चारित्र को साधते हैं । पुन. चारित्र कैसा है ? 'मग्गं मोक्खस्स' जो चारित्र मोक्षस्वरूप है । किसका मार्ग है । मोक्षका मार्ग है । वह चारित्र किस रूप है ? 'णिच्च सुद्ध' जो चारित्र नित्य सर्वकालशुद्ध अर्थात् रागादि रहित है । (वीतराग सम्यग्दर्शन-ज्ञान से परिपूर्ण, मोक्षमार्ग–स्वरूप, नित्य रागादि रहित, ऐसे चारित्र को अच्छी तरह पालनेवाले मुनि, साधु है) । 'णमो तस्स' पूर्वोक्त गुण सहित उस साधु परमेष्ठी को नमस्कार हो स्पष्टीकरण-"दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इनका जो उद्योतन. उद्योग, निर्वहण, साधन और निस्तरण है, उसको सत् पुरुषो ने आराधना कहा है । १ । इस आर्याछन्द मे कही हुई बहिरङ्ग–दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप आराधना के बल से, तथा "सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप, ये चारो आत्मा में निवास करते है, इस कारण आत्मा ही मेरे शरणभूत है । १ । इस प्रकार गाथा मे कहे अनुसार, अभ्यन्तर एवं निश्चय चार प्रकार की आराधना के बलसे अथवा बाह्य-अभ्यन्तर-मोक्षमार्ग दूसरा नाम

एवमुक्तप्रकारेण गाथापञ्चकेन मध्यमप्रतिपत्त्या पञ्चपरमेष्ठिस्वरूप ज्ञातव्यम् । अथवा निश्चयेन 'अरुहा सिद्धाइरिया उवज्झाया साहु पचपरमेट्ठी । ते वि हु चिट्ठदि आदे तह्मा आदा हु मे सरणं । १ ।' इति गाथाकथितक्रमेण संक्षेपेण, तथैव विस्तरेण पंचपरमेष्ठिकथितग्रन्थक्रमेण, अतिविस्तारेण तु सिद्धचक्रादिदेवार्चनाविधिरूपमन्त्रवादसबन्धिपञ्चनमस्कारग्रन्थे चेति । एव गाथापञ्चकेन द्वितीयस्थलं गतम् ।

अथ तदेव ध्यानं विकल्पितनिश्चयेनाविकल्पितनिश्चयेन प्रकारान्तरेणोपसहाररूपेण पुनरप्याह । तत्र प्रथमपादे ध्येयलक्षण, द्वितीयपादे ध्यातृलक्षणं, तृतीयपादे ध्यानलक्षण चतुर्थपादे नयविभाग कथयामीत्यभिप्राय मनसि धृत्वा भगवान् सूत्रमिद प्रतिपादयति —

ज किचिवि चिंततो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ।

लद्धूण य एयत्तं कदाहु तं तस्स णिच्छय ज्झाणं ।।५५।।

यत् किचित् अपि चिन्तयन् निरीहवृत्तिः भवति यदा साधुः ।

लब्ध्वा च एकत्व तदा आहुः तत् तस्य निश्चयं ध्यानम् ।।५५।।

व्याख्या — 'तदा' तस्मिन् काले । 'आहु' आहुब्रुवन्ति । 'तं तस्स णिच्छयं ज्झाण'

है जिसका ऐसी बाह्य–अभ्यन्तर आराधना करके जो वीतरागचारित्र के अविनाभूत निज–शुद्ध–आत्मा को साधते हे अर्थात् भावते है, वे साधु परमेष्ठी कहलाते है । उन्ही के लिये मेरा स्वाभाविकशुद्ध-सदानन्द की अनुभूति रूप भाव नमस्कार तथा "णमो लोए सव्वसाहूण" इस पद के उच्चारणरूप द्रव्यनमस्कार हो ।। ५४ ।।

उक्त प्रकार से पाच गाथाओ द्वारा मध्यमरूप से पञ्चपरमेष्ठी के स्वरूप का कथन किया गया है, यह जानना चाहिये । अथवा निश्चयनय से "अर्हत्' सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाचो परमेष्ठी है वे भी आत्मा मे स्थित है, इस कारण आत्मा ही मुझे शरण है । १ ।" इस गाथा मे कहे हुए क्रमानुसार सक्षेप से पञ्चपरमेष्ठियो का स्वरूप जानना चाहिये । विस्तार से पञ्चपरमेष्ठियो का कथन करनेवाले ग्रन्थ से क्रमानुसार जानना चाहिये । तथा सिद्धचक्र आदि देवो की पूजनविधिरूप जो मन्त्रवाद सम्बन्धी पञ्चनमस्कारमाहात्म्य नामक ग्रन्थ हैं, उससे पञ्चपरमेष्ठियो का स्वरूप अत्यन्त विस्तार पूर्वक जानना चाहिये । इस प्रकार पाच गाथाओ से दूसरा स्थल समाप्त हुआ ।

अब उसी ध्यान को विकल्पितनिश्चय और अविकल्पितनिश्चयरूप प्रकारान्तर से सक्षेपपूर्वक कहते है । 'गाथा के प्रथम पाद मे ध्येय का लक्षण' द्वितीय पाद मे ध्याता (ध्यान करनेवाले) का लक्षण, तीसरे पाद मे ध्यान का लक्षण और चौथे पाद मे नयो के विभाग को कहता हूँ ।' इस अभिप्राय को मन मे धारण करके भगवान् (श्री नेमिचद्र आचार्य) सूत्र का प्रतिपादन करते है :—

गाथार्थ .—ध्येय मे एकाग्रचित्त होकर जिस किसी पदार्थ का ध्यान करते हुए साधु जब -वृत्ति (समस्त इच्छारहित) होते है तब उनका वह ध्यान निश्चयध्यान होता है ।। ५५ ।।

तत्तस्य निश्चयध्यानमिति । यदा किम् ? 'णिरीहवित्ती हवे जदा साहू' निरीहवृत्तिर्निष्पृहवृत्तिर्यदा साधुर्भवति । किं कुर्वन् ? 'जं किंचिवि चिंतंतो' यत् किमपि ध्येयं वस्तुरूपेण विचिन्तयन्निति । किं कृत्वा पूर्वं ? 'लद्धूण य एयत्तं' तस्मिन् ध्येये लब्ध्वा । किं ? एकत्वं एकाग्रचिन्तानिरोधनमिति । अथ विस्तरः—यत् किंचिद् ध्येयमित्यनेन किमुक्तं भवति ? प्राथमिकापेक्षया सविकल्पावस्थायां विषयकषायवञ्चनार्थं चित्तस्थिरीकरणार्थं पंचपरमेष्ठ्यादिपरद्रव्यमपि ध्येयं भवति । पश्चादभ्यासवशेन स्थिरीभूते चित्ते सति शुद्धबुद्धैकस्वभावनिजशुद्धात्मस्वरूपमेव ध्येयमित्युक्तं भवति । निष्पृहवचनेन पुनर्मिथ्यात्वं वेदत्रय हास्यादिषट्कक्रोधादिचतुष्टयरूपचतुर्दशाऽभ्यन्तरपरिग्रहेण तथैव क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यभाण्डाऽभिधानदशविधबहिरङ्गपरिग्रहेण च रहित ध्यातृस्वरूपमुक्तं भवति । एकाग्रचिन्तानिरोधेन च १पूर्वोक्तविविधध्येयवस्तुनि स्थिरत्वं निश्चलत्वं ध्यानलक्षणं भणितमिति । निश्चयशब्देन तु प्राथमिकापेक्षया व्यवहाररत्नत्रयानुकूलनिश्चयो ग्राह्य, निष्प-

---

वृत्त्यर्थ :—'तदा' उस काल मे । 'आहु' कहते है । 'त तस्स णिच्छय ज्झाणं' उसको, उसका निश्चय ध्यान (कहते है) । जब क्या होता है ? 'णिरीहवित्ती हवे जदा साहु' जब निस्पृह वृत्तिवाला साधु होता है । क्या करता है ? 'ज किंचिवि चितंतो' जिस किसी ध्येय वस्तु स्वरूप का विशेष चिन्तवन करता है । पहले क्या करके ? 'लद्धूण य एयत्तं' उस ध्येय में प्राप्त होकर । क्या प्राप्त होकर ? एकपने को अर्थात् एकाग्र-चिन्ता-निरोध को प्राप्त होकर । ध्येय पदार्थ मे एकाग्र-चिन्ता का निरोध करके यानी एकचित्त होकर, जिस किसी ध्येय वस्तु का चिन्तवन करता हुआ साधु जब निस्पृह-वृत्तिवाला होता है, उस समय साधु के उस ध्यान को निश्चयध्यान कहते है) । विस्तार से वर्णन—गाथा मे 'यत् किंचित् ध्येयम्' (जिस किसी भी ध्येय पदार्थ को) इस पद से क्या कहा है ? प्रारम्भिक अवस्था की अपेक्षा से जो सविकल्प अवस्था है, उसमें विषय और कषायो को दूर करने के लिये तथा चित्त को स्थिर करने के लिये पञ्चपरमेष्ठी आदि परद्रव्य भी ध्येय होते हैं । फिर जब अभ्यास से चित्त स्थिर हो जाता है तब शुद्ध—बुद्ध एकस्वभाव निज-शुद्ध-आत्मा का स्वरूप ही ध्येय होता है । 'निस्पृह' शब्द से मिथ्यात्व, तीनो वेद हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया और लोभ इन चोदह अन्तरङ्ग परिग्रहों से रहित तथा क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य और भांड नामक दश बहिरङ्ग परिग्रहो से रहित, ध्यान करनेवाले का स्वरूप कहा गया है । 'एकाग्र-चिन्ता-निरोध' से पूर्वोक्त नाना प्रकार के ध्यान करने योग्य पदार्थो मे स्थिरता और निश्चलता को ध्यान का लक्षण कहा है । 'निश्चय' शब्द से, अभ्यास प्रारम्भ करने वाले की अपेक्षा व्यवहाररत्नत्रय के अनुकूल निश्चय ग्रहण

---

१ 'पूर्वोक्तद्विविधं' पाठान्तरम् ।

न्योगपुरुषापेक्षया तु शुद्धोपयोगलक्षणविवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयो ग्राह्यः। विशेषनिश्चयः पुनरग्रे वक्ष्यमाणस्तिष्ठतीति सूत्रार्थ ॥ ५५ ॥

अथ शुभाशुभमनोवचनकायनिरोधे कृते सत्यात्मनि स्थिरो भवति तदेव परमध्यान-मित्युपदिशति —

मा चिट्ठह मा जपह मा चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो।

अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥ ५६ ॥

मा चेष्टत मा जल्पत मा चिन्तयत किम् अपि येन भवति स्थिरः।

आत्मा आत्मनि रतः इदं एव परं ध्यानं भवति ॥ ५६ ॥

व्याख्या—'मा चिट्ठह मा जपह मा चिंतह किंवि' नित्यनिरञ्जननिष्क्रियनिजशुद्धात्मानुभूतिप्रतिबन्धकं शुभाशुभचेष्टारूपं कायव्यापारं, तथैव शुभाशुभान्तर्बहिर्जल्परूपं वचनव्यापारं, तथैव शुभाशुभविकल्पजालरूपं चित्तव्यापारं च किमपि मा कुरुत हे विवेकीजना! 'जेण होइ थिरो' येन योगत्रयनिरोधेन स्थिरो भवति। स कः ? 'अप्पा' आत्मा। कथम्भूतः स्थिरो भवति ? 'अप्पम्मि रओ' सहजशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकपरमसमाधिसमुद्भूतसर्वप्रदेशाह्लादजनकसुखास्वादपरिणतिसहिते निजात्मनि रतः परिणतस्तल्लीयमानस्तच्चित्तस्तन्मयो भवति। 'इणमेव परं हवे

करना चाहिये और ध्यान मे निष्पन्न पुरुष की अपेक्षा शुद्धोपयोगरूप विवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चय ग्रहण करना चाहिये। विशेष निश्चय आगे कहा जाने वाला है। इस प्रकार सूत्र का अर्थ है ॥ ५५ ॥

(ध्याता पुरुष) शुभ-अशुभ मन-वचन-काय का निरोध करने पर आत्मा मे स्थिर होता है। वह स्थिर होना ही परम ध्यान है, ऐसा उपदेश देते है :—

गाथार्थ — हे भव्यो! कुछ भी चेष्टा मत करो (काय की क्रिया मत करो), कुछ भी मत बोलो और कुछ भी मत चिन्तवन करो (संकल्प-विकल्प न करो) जिससे आत्मा निजात्मा मे तल्लीन होकर स्थिर होजावे, आत्मा मे लीन होना ही परमध्यान है ॥ ५६ ॥

वृत्त्यर्थ —"मा चिट्ठह मा जपह मा चिंतह किंवि" हे विवेकी पुरुषो! नित्य निरञ्जन और क्रियारहित निजशुद्ध-आत्मा के अनुभव को रोकनेवाली शुभ-अशुभ चेष्टारूप काय की क्रिया को तथा शुभ अशुभ-अन्तरङ्ग-बहिरङ्गरूप वचन को और शुभ-अशुभ विकल्प समूहरूप मन के व्यापार को कुछ भी मत करो। "जेण होइ थिरो" जिन तीनो योगो के रोकने से स्थिर होता है। वह कौन? "अप्पा" आत्मा। कैसा होकर स्थिर होता है? "अप्पम्मि रओ" स्वाभाविक शुद्ध-ज्ञान-दर्शन-स्वभाव जो परमात्मतत्त्व के सम्यक्-श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक परम-ध्यान के अनुभव से उत्पन्न, सर्व प्रदेशो को आनन्ददायक ऐसे सुख के अनुभवरूप परिणति सहित स्व-आत्मा मे रत, तल्लीन, तच्चित्त

ज्झाणं' इदमेवात्मसुखस्वरूपे तन्मयत्वं निश्चयेन परमुत्कृष्टं ध्यानं भवति ।

तस्मिन् ध्याने स्थितानां यद्वीतरागपरमानन्दसुख प्रतिभाति, तदेव निश्चयमोक्षमार्गस्वरूपम् । तच्च पर्यायनामान्तरेण कि कि भण्यते तदभिधीयते । तदेव शुद्धात्मस्वरूपं, तदेव परमात्मस्वरूपं, तदेवैकदेशव्यक्तिरूपविवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयनयेन स्वशुद्धात्मसम्वित्तिसमुत्पन्नसुखामृतजलसरोवरे रागादिमलरहितत्वेन परमहंसस्वरूपम् । इदमेकदेशव्यक्तिरूपं शुद्धनयव्याख्यानमत्र परमात्मध्यानभावनानाममालायां यथासम्भव सर्वत्र योजनीयमिति ।

तदेव परब्रह्मस्वरूपं, तदेव परमविष्णुस्वरूपं, तदेव परमशिवस्वरूपं, तदेव परमबुद्धस्वरूपं, तदेव परमजिनस्वरूपं, तदेव परमस्वात्मोपलब्धिलक्षण सिद्धस्वरूपं, तदेव निरञ्जनस्वरूपं, तदेव निर्मलस्वरूप, तदेव स्वसम्वेदनज्ञानम्, तदेव परमतत्त्वज्ञानं, तदेव शुद्धात्मदर्शन, तदेव परमावस्थास्वरूपम्, तदेव परमात्मन: दर्शन, तदेव परमात्मज्ञान, तदेव परमावस्थारूप-परमात्मस्पर्शनं, तदेव ध्येयभूतशुद्धपारिणामिकभावरूपं, तदेव ध्यानभावनास्वरूप तदेव शुद्धचारित्रं, तदेव परमपवित्रं, तदेवान्तस्तत्त्वं तदेव परमतत्त्व, तदेव शुद्धात्मद्रव्यं, तदेव परमज्योति, सैव शुद्धात्मानुभूति, सैवात्मप्रतीति, सैवात्मसवित्ति:, सैव स्वरूपोपलब्धि, स एव नित्योपलब्धि:, स एव परमसमाधि:, स एव परमानन्द, स एव

तथा तन्मय होकर स्थिर होता है। 'इणमेव पर हवे ज्झाण" यही जो आत्मा के सुखस्वरूप मे तन्मयपना है, वह निश्चय से परम उत्कृष्ट ध्यान है ।

उस परमध्यान मे स्थित जीवो को जो वीतरागपरमानन्द सुख प्रतिभासित होता है वही निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप है। वह अन्य पर्यायवाची नामो से क्या २ कहा जाता है, सो कहते है। वही शुद्ध आत्म—स्वरूप है, वही परमात्मा का स्वरूप है, वही एक देश मे प्रकटतारूप विवक्षित एक देश शुद्ध-निश्चयनय से निज-शुद्ध-आत्मानुभव से उत्पन्न सुखरूपी अमृत—जल के सरोवर मे राग आदि मलो से रहित होने के कारण परमहस—स्वरूप है। परमात्मध्यान के भावना की नाममाला मे इस एक देशव्यक्तिरूप शुद्धनय के व्याख्यान को यथासम्भव सब जगह लगा लेना चाहिये। (ये नाम एकदेशशुद्ध—निश्चयनय से अपेक्षित है)

वही परमब्रह्मस्वरूप है, वही परमविष्णुरूप है, वही परमशिवरूप, वही परमबुद्धस्वरूप है, वही परमनिजस्वरूप है, वही परम—निज—आत्मोपलब्धिरूप सिद्धस्वरूप है, वही निरजनस्वरूप है, वही निर्मलस्वरूप है, वही स्वसवेदनज्ञान है, वह परमतत्त्वज्ञान है, वही शुद्धात्मदर्शन है, वही परम अवस्था स्वरूप है, वही परमात्म दर्शन है, वही परमात्मज्ञान है, वह ही परमावस्थारूप परमात्मा का स्पर्शन है, वही ध्यान करने योग्य शुद्ध—पारिणामिक—भावरूप है, वही ध्यानभावनारूप है, वही शुद्ध—चारित्र है, वह ही परम-पवित्र है, वही अन्तरङ्ग तत्त्व है, वही परम—तत्त्व है, वही शुद्ध—आत्म—द्रव्य है, वही

नित्यानन्द:, स एव सहजानन्द:, स एव सदानंद: स एव शुद्धात्मपदार्थाध्ययनरूप, स एव परमस्वाध्याय, स एव निश्चयमोक्षोपाय, स एव चैकाग्रचिन्तानिरोध:, स एव परमबोध:, स एव शुद्धोपयोग:, स एव परमयोग:, स एव भूतार्थ, स एव परमार्थ, स एव निश्चयपञ्चाचार: स एव समयसार, स एवाध्यात्मसार, तदेव समतादिनिश्चयषडावश्यकस्वरूप, तदेवाभेद-रत्नत्रयस्वरूप, तदेव वीतरागसामायिकं, तदेव परमशरणोत्तममङ्गलं, तदेव केवलज्ञानोत्पत्तिकारण, तदेव सकलकर्मक्षयकारण, सैव निश्चयचतुर्विधाराधना, सैव परमात्मभावना, सैव शुद्धात्मभावनोत्पन्नसुखानुभूतिरूपपरमकला, सैव दिव्यकला, तदेव परमाद्वैत, तदेव परमामृतपरमधर्मध्यान, तदेव शुक्लध्यानं, तदेव रागादिविकल्पशून्यध्यानं, तदेव निष्कल-ध्यानं, तदेव परमस्वास्थ्य, तदेव परमवीतरागत्वं, तदेव परमसाम्यं, तदेव परमैकत्वं, तदेव परमभेदज्ञान, स एव परमसमरसीभाव, इत्यादि समस्तरागादिविकल्पोपाधिरहितपरमा-ह्लादैकसुखलक्षणध्यानरूपस्य निश्चयमोक्षमार्गस्य वाचकान्यन्यान्यपि पर्यायनामानि विज्ञे-यानि भवन्ति परमात्मतत्त्वविद्भिरिति ॥ ५६ ॥

अत पर यद्यपि पूर्व बहुधा भणितं ध्यातृपुरुषलक्षणं ध्यानसामग्री च तथापि चूलिकोपसहाररूपेण पुनरप्याख्याति --

---

परम--ज्योति है, वही शुद्धआत्मानुभूति है, वही आत्मा की प्रतीति है, वही आत्म—सवित्ति (आत्म संवेदन) है, वही निज-आत्मस्वरूप की प्राप्ति है, वही नित्य पदार्थ की प्राप्ति है, वही परम--समाधि है, वही परम—आनन्द है वही नित्य आनन्द है, वही स्वाभाविक आनन्द है, वही सदानद है, वही शुद्ध आत्म-पदार्थ के अध्ययन रूप है, वही परमस्वाध्याय है, वही निश्चय मोक्ष का उपाय है, वही एकाग्र चिता निरोध है, वही परमज्ञान है, वही शुद्ध-उपयोग है, वह ही परम-योग (समाधि) है, वही भूतार्थ है, वही परमार्थ है, वही निश्चय-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्यरूप निश्चय पंचाचार है, वही समयसार है, वह ही अध्यात्मसार है। वही समता आदि निश्चय-षट-आवश्यक स्वरूप है, वह ही अभेद रत्नत्रय--स्वरूप है, वह ही वीतराग सामायिक है, वह ही परमशरणरूप उत्तम मगल है, वही केवल ज्ञानोत्पत्ति का कारण है, वही समस्त कर्मो के क्षय का कारण है, वही निश्चय-दर्शन-ज्ञान-चरित्र-तप आराधना-स्वरूप है, वही परमात्मा—भावनारूप है वही शुद्धात्म—भावना से उत्पन्न सुख की अनुभूतिरूप परमकला है, वही दिव्य-कला है, वही परम—अद्वैत है, वही अमृतस्वरूप परम-धर्मध्यान है, वही शुक्लध्यान है, वही राग आदि विकल्परहित ध्यान है, वही निष्कल ध्यान है, वही परम-स्वास्थ्य है, वही परम-वीतरागता है, वही परम समता है, वही परम-एकत्व है, वही परम-भेदज्ञान है, वही परम-समरसी-भाव है, इत्यादि समस्त रागादि विकल्प-उपाधि रहित, परमआह्लाद एक-सुख-लक्षणमयी ध्यान-स्वरूप निश्चय मोक्ष-मार्ग को कहनेवाले अन्य वहुत से पर्यायवाची नाम परमात्मतत्त्व ज्ञानियो के द्वारा जानने योग्य होते है।

यद्यपि पहिले ध्यान करने वाले पुरुष का लक्षण और ध्यान की सामग्री का वहु प्रकार से

तवसुदवदवं चेदा ज्झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा ।

तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह ॥५७॥

तपःश्रुतव्रतवान् चेता ध्यानरथधुरन्धरः भवति यस्मात् ।

तस्मात् तत्त्रिकनिरताः तल्लब्ध्यै सदा भवत ॥ ५७ ॥

व्याख्या—'तवसुदवदवं चेदा ज्झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा' तपश्रुतव्रतवानात्मा चेतयिता ध्यानरथस्य धुरन्धरो समर्थो भवति, 'जम्हा' यस्मात् 'तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह' तस्मात् कारणात् तपश्रुतव्रतानां संबन्धेन यत् त्रितयं तत् त्रितये रताः सर्वकाले भवत हे भव्याः । किमर्थं ? तस्य ध्यानस्य लब्धिस्तल्लब्धिस्तदर्थमिति । तथाहि—अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशभेदेन बाह्यं षड्विधं, तथैव प्रायश्चित्तविनयवैय्यावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदेनाऽभ्यन्तरमपि षड्विधं चेति द्वादशविधं तपः । तेनैव साध्यं शुद्धात्मस्वरूपे प्रतपनं विजयनं निश्चयतपश्च । तथैवाचाराराधनादिद्रव्यश्रुतं, तदाधारेणोत्पन्नं निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानरूपं भावश्रुतं च । तथैव च हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहाणां द्रव्यभावरूपाणां परिहरणं व्रतपञ्चकं चेति । एवमुक्तलक्षणतपःश्रुत-

---

वर्णन कर चुके है, फिर भी चूलिका तथा उपसहार रूप से ध्याता पुरुष और ध्यानसामग्री को इसके आगे कहते है :—

गाथार्थ :—क्योकि तप, श्रुत और व्रत का धारक आत्मा ध्यान-रूपी रथ की धुरी धारण करने वाला होता है, इस कारण हे भव्य पुरुषों ! तुम उस ध्यान की प्राप्ति के लिये निरंतर तप, श्रुत और व्रत मे तत्पर होवो ॥ ५७ ॥

वृत्त्यर्थ .—'तवसुदव चेदा ज्झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा' क्योकि तप, श्रुत और व्रतधारी आत्मा ध्यानरूपी रथ की धुरा को धारण करने के लिये समर्थ होता है । 'तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह' हे भव्यो ! इस कारण से तप, श्रुत और व्रत, इन तीन मे सदा लीन हो जाओ । किस लिये ? उस ध्यान की प्राप्ति के लिए । विशेष वर्णन—१. अनशन (उपवास करना), २. अवमौदर्य्य (कम भोजन करना), ३ वृत्तिपरिसंख्यान (अटपटी आखडी करके भोजन करने जाना), ४. रस परित्याग (दूध, दही, घी, तेल, खांड व नमक; इन छह रसो मे से एक दो आदि रसो का त्याग करना), ५. विविक्तशय्यासन (निर्जन और एकान्त स्थल मे शयन करना, रहना, बैठना), ६. कायक्लेश (आत्मशुद्धि के लिये आतापन योग आदि करना), यह छह प्रकार का बाह्य तप; प्रायश्चित १, विनय २, वैयावृत्य ३, स्वाध्याय ४, व्युत्सर्ग (बाह्य अभ्यन्तर उपधि का त्याग) ५ और ध्यान ६, यह छह प्रकार का अन्तरङ्ग तप; ऐसे बाह्य तथा आभ्यन्तररूप बारह प्रकार का (व्यवहार) तप है । इसी (व्यवहार) तप से सिद्ध होने योग्य निज-शुद्ध-आत्म-स्वरूप मे प्रतपन अर्थात् विजय करने रूप निश्चय तप है । इसी प्रकार आचार व आराधना आदि द्रव्यश्रुत है तथा उस द्रव्य-श्रुत के आधार से उत्पन्न

व्रतसहितो ध्याता पुरुषो भवति । इयमेव ध्यानसामग्री चेति । तथाचोक्तम्—'वैराग्यं तत्वविज्ञान नैर्ग्रन्थ्य *समचित्तता । परीषहजयश्चेति पञ्चैते ध्यानहेतव. ॥ १ ॥'

भगवन् ! ध्यान तावन्मोक्षमार्गभूतम् । मोक्षार्थिना पुरुषेण पुण्यबन्धकारणत्वाद्व्रतानि त्याज्यानि भवन्ति, भवद्भि पुनर्ध्यानसामग्रीकारणानि तप श्रुतव्रतानि व्याख्यातानि, तत् कथ घटत इति ? तत्रोत्तरं दीयते—व्रतान्येव केवलानि त्याज्यान्येव न, किन्तु पापबन्धकारणानि हिसादिविकल्परूपाणि यान्यव्रतानि तान्यपि त्याज्यानि । तथाचोक्तम् पूज्यपादस्वामिभि —'अपुण्यमव्रतै पुण्य व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्यय । अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत् ॥ १ ॥ कित्वव्रतानि पूर्व परित्यज्य ततश्च व्रतेपु तन्निष्ठो भूत्वा निर्विकल्पसमाधिरूपं परमात्मपद प्राप्य पश्चादेकदेशव्रतान्यपि त्यजति । तदप्युक्तम् तैरेव—'अव्रतानि परित्यज्य व्रतेपु परिनिष्ठित । त्यजेत्तान्यपि सप्राप्य परम पदमात्मन ॥ १ ॥

अय तु विशेष —व्यवहाररूपाणि यानि प्रसिद्धान्येकदेशव्रतानि तानित्यक्तानि । यानि पुन सर्वशुभाशुभनिवृत्तिरूपाणि निश्चयव्रतानि तानि त्रिगुप्तिलक्षणस्वशुद्धात्मसम्वित्तिरूपनिर्विकल्पध्याने स्वीकृतान्येव, न च त्यक्तानि । प्रसिद्धमहाव्रतानि कथमेकदेशरूपाणि

व विकार रहित निज-शुद्ध-स्वसवेदनरूप ज्ञान, भावश्रुत है । तथा हिंसा, अनृत, स्तेय (चोरी), अब्रह्म (कुशील) और परिग्रह, इनका द्रव्य व भावरूप से त्याग करना, पाच व्रत है । ऐसे पूर्वोक्त तप श्रुत और व्रत मे सहित पुरुप ध्याता (ध्यान करने वाला) होता है । तप, श्रुत तथा व्रत ही ध्यान की सामग्री है । सो ही कहा है "वैराग्य, तत्त्वो का ज्ञान, परिग्रहो का त्याग, साम्यभाव और परिषहो का जीतना ये पाच ध्यान के कारण है । १ ।'

शका—भगवान् ! ध्यान तो मोक्ष का कारण है, मोक्ष चाहने वाले पुरुष को पुण्यबध के कारण होने से व्रत त्यागने योग्य है (व्रतो से पुण्य कर्म का बध होता है पुण्यबध ससार का कारण है, इस कारण मोक्षार्थी व्रतो का त्याग करता है), किन्तु आपने तप, श्रुत और व्रतो को ध्यान की सामग्री वतलाया है । सो यह आपका कथन कैसे सिद्ध होता है ? उत्तर-केवल व्रत ही त्यागने योग्य नही है, किन्तु पापबधके कारण हिसा आदि अव्रत भी त्याज्य हे । सो ही श्री पूज्यपादस्वामी ने कहा है 'अव्रतो से पाप का बंध और व्रतो से पुण्य का बध होता है, पाप तथा पुण्य इन दोनो का नाश होना मोक्ष है, इस कारण मोक्षार्थी पुरुप जैसे अव्रतो का त्याग करता है, वैसे ही अहिंसादि व्रतो का भी त्याग करे । १ ।' परन्तु मोक्षार्थी पुरुप पहले अव्रतो का त्याग करके पश्चात् व्रतो को धारण करके निर्विकल्प-समाधि (ध्यान) रूप आत्मा के परम पद को प्राप्त होकर तदनन्तर एकदेश व्रतो का भी त्याग कर देता है । यह भी श्री पूज्यपादस्वामी ने समाधिशतक मे कहा है, 'मोक्ष चाहने वाला पुरुष अव्रतों का त्याग करके व्रतो मे स्थित होकर परमात्मपद प्राप्त करे और परमपद पाकर उन व्रतो का भी त्याग करे । १ ।

---

* 'वशचित्तता' इत्यपि पाठः ।

जातानि ? इति चेत्तदुच्यते—जीवघातनिवृत्तौ सत्यामपि जीवरक्षणे प्रवृत्तिरस्ति । तथैवासत्यवचनपरिहारेऽपि सत्यवचनप्रवृत्तिरस्ति । तथैव चादत्तादानपरिहारेऽपि दत्तादाने प्रवृत्तिरस्तीत्याद्येकदेशप्रवृत्त्यपेक्षया देशव्रतानि तेषामेकदेशव्रतानां त्रिगुप्तिलक्षणनिर्विकल्पसमाधिकाले त्यागः; न च समस्तशुभाशुभनिवृत्तिलक्षणस्य निश्चयव्रतस्येति । त्यागः कोऽर्थः ? यथैव हिंसादिरूपाव्रतेषु निवृत्तिस्तथैकदेशव्रतेष्वपि । कस्मादिति चेत् ? त्रिगुप्तावस्थायां प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपविकल्पस्य स्वयमेवावकाशो नास्ति । अथवा वस्तुतस्तदेव निश्चयव्रतम् । कस्मात्—सर्वनिवृत्तित्वादिति । योऽपि घटिकाद्वयेन मोक्षं गतो भरतश्चक्री सोऽपि जिनदीक्षां गृहीत्वा विषयकषायनिवृत्तिरूपं क्षणमात्रं व्रतपरिणामं कृत्वा पश्चाच्छुद्धोपयोगत्वरूपरत्नत्रयात्मके निश्चयव्रताभिधाने वीतरागसामायिकसंज्ञे निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा केवलज्ञानं लब्धवानिति । परं किन्तु तस्य स्तोककालत्वाल्लोका व्रतपरिणामं न जानन्तीति । तदेव भरतस्य दीक्षाविधानं कथ्यते । हे भगवन् ! जिनदीक्षादानानन्तरं भरतचक्रिणः कियति काले केवलज्ञानं जातमिति श्रीवीरवर्द्धमानस्वामितीर्थंकरपरमदेवसमवसरणमध्ये श्रेणिकमहाराजेन पृष्टे सति गौतमस्वामी आह—'पञ्चमुष्टिभिरुत्पाट्य त्रोट्यन् वधस्थितीन् कचान् । लोचानंतरमेवापद्राजन् श्रेणिक केवलम् ॥ १ ॥'

विशेष यह है—जो व्यवहाररूप से प्रसिद्ध एकदेशव्रत है, ध्यान मे उनका त्याग किया है; किन्तु समस्त त्रिगुप्तिरूप स्व-शुद्ध-आत्म-अनुभवरुप निर्विकल्प ध्यान मे समस्त शुभ अशुभ की निवृत्तिरुप निश्चयव्रत ग्रहण किये है, उनका त्याग नही किया है। प्रश्न—प्रसिद्ध अहिसादि महाव्रत एकदेश रुप व्रत कैसे हो गये ? उत्तर—अहिसा महाव्रत मे यद्यपि जीवो के घात से निवृत्ति है, तथापि जीवो की रक्षा करने मे प्रवृत्ति है। इसी प्रकार सत्य महाव्रत मे यद्यपि असत्य वचन का त्याग है; तो भी सत्य वचन मे प्रवृत्ति है। अचौर्यमहाव्रत मे यद्यपि विना दिए पदार्थ के ग्रहण का त्याग है, तो भी दिए हुए पदार्थो (पीछी, कमण्डल, शास्त्र) के ग्रहण करने मे प्रवृत्ति है। इत्यादि एकदेश प्रवृत्ति की अपेक्षा से ये पाचो महाव्रत देशव्रत है।

इन एकदेश रुप व्रतो का, त्रिगुप्ति स्वरुप निर्विकल्प समाधि-काल मे त्याग है। किन्तु समस्त शुभ अशुभ की निवृत्तिरुप निश्चयव्रत का त्याग नही है। प्रश्न—त्याग शब्द का क्या अर्थ है ? उत्तर—जैसे हिसा आदि पाच अव्रतो की निवृत्ति है, उसी प्रकार अहिसा आदि पचमहाव्रतरुप एकदेशव्रतो की भी निवृत्ति है, यहा त्याग शब्द का यह अर्थ है। शंका—इन एकदेशव्रतो का त्याग किस कारण होता है ? उत्तर—त्रिगुप्तिरुप अवस्था मे प्रवृत्ति तथा निवृत्तिरुप विकल्प का स्वयं स्थान नही है। (ध्यान मे कोई विकल्प नही होता । अहिसादिक महाव्रत विकल्परुप हैं अत: वे ध्यान मे नही रह सकते)। अथवा वास्तव मे वह निर्विकल्प ध्यान ही निश्चयव्रत है क्योकि उसमे पूर्ण निवृत्ति है। दीक्षा के बाद दो घड़ी (४८ मिनट) काल मे ही भरतचक्रवर्ती ने जो मोक्ष प्राप्त किया है, उन्होंने भी जिन-दीक्षा ग्रहण करके थोड़े काल तक विषय-कषाय की निवृत्तिरुप व्रत का परिणाम करके, तदनन्तर शुद्धोपयोगरुप रत्नत्रय-

अत्राह शिष्य । अद्य काले ध्यानं नास्ति । कस्मादिति चेत्––उत्तमसंहननाभावा-द्दशचतुर्दशपूर्वगतश्रुतज्ञानाभावाच्च । अत्र परिहार. शुक्लध्यानं नास्ति धर्मध्यानमस्तीति । तथाचोक्त मोक्षप्राभृते श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवै. 'भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ णाणिस्स । त अप्पसहावठिए ण हु मण्णइ सो दु अण्णाणी ॥१॥ अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पा ज्झा-ऊण लहइ इंदत्तं । लोयतियदेवत्तं तत्थ चुदा णिव्वुदि जति ।२।' तथैव तत्त्वानुशासनग्रन्थे चोक्तं 'अत्रेदानी निषेधन्ति शुक्लध्यान जिनोत्तमा । धर्मध्यान पुन प्राहु श्रेणीभ्या प्राग्वि-वर्त्तिनाम् ।१।' यथोक्तमुत्तमसहननाभावात्त दुत्सर्गवचनम् । अपवादव्याख्यानेन, पुनरुपशम-क्षपकश्रेण्यो· शुक्लध्यानं भवति, तच्चोत्तमसहननेनैव, अपूर्वगुणस्थानादधस्तनेषु गुणस्थानेपु धर्मध्यान, तच्चादिमत्रिकोत्तमसहननाभावेऽप्यन्तिमत्रिकसहननेनापि भवति । तदप्युक्त तत्रैव तत्त्वानुशासने 'यत्पुनर्वज्रकायस्य ध्यानमित्यागमे वच । श्रेण्योर्ध्यानं प्रतीत्योक्तं तन्नाधस्ता-न्निषेधकम् ॥ १ ॥'

यथोक्त दशचतुर्दशपूर्वगतश्रुतज्ञानेन ध्यानं भवति तदप्युत्सर्गवचनम् । अपवादव्या-ख्यानेन पुन. पञ्चसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकसारभूतश्रुतेनापि ध्यान भवति केवलज्ञानञ्च । यद्येवमपवादव्याख्यान नास्ति तर्हि 'तुसमास घोसन्तो सिवभूदी केवली जादो' इत्यादिगन्ध-

---

मयी निश्चयव्रत नामक वीतरागसामायिक सज्ञा वाले निर्विकल्प ध्यान मे स्थित होकर केवलज्ञान को प्राप्त किया है। परतु व्रतपरिणाम के स्तोक काल के कारण लोग श्री भरत जी के व्रतपरिणाम को नही जानते , अब उन ही भरत जी के दीक्षा विधान का कथन करते है। श्री वर्द्धमान तीर्थकर परमदेव के समवसरण मे श्रेणिक महाराज ने प्रश्न किया कि हे भगवन् ! भरतचक्रवर्ती को जिनदीक्षा लेने के पीछे-कितने समय मे केवलज्ञान हुआ ? श्री गौतम गणधरदेव ने उत्तर दिया "हे श्रेणिक ! पच—मुठ्ठियो से बालो को उखाडकर (केश लोच करके) कर्मबध की स्थिति तोडते हुए, केशलोच के अनन्तर ही भरतज चक्रवर्ती ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। १।"

शिष्य का प्रश्न—इस पचमकाल मे ध्यान नही है। क्योकि इस काल मे उत्तमसंहनन (वज्र-ऋषभ नाराच संहनन) का अभाव है तथा दश एवं चौदहपूर्व श्रुतज्ञान भी नही पाया जाता ? उत्तर इस समय शुक्लध्यान नही है परन्तु धर्मध्यान है। श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने मोक्षप्राभृत मे कहा है "भरत-क्षेत्र विपय दु.पमा नामक पचमकाल मे ज्ञानी जीव के धर्मध्यान होय है। यह धर्मध्यान आत्म—स्वभाव मे स्थित के होय है। जो यह नही मानता, वह अज्ञानी है। १।" इस समय भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय से शुद्ध जीव आत्मा का ध्यान करके इन्द्रपद अथवा लोकातिकदेव पद को प्राप्त होते है और वहां से चयकर नरदेह ग्रहण करके मोक्ष को जाते है। २।" ऐसा ही तत्त्वानु-शासन ग्रन्थ मे भी कहा है–"इस समय (पचमकाल) मे जिनेन्द्रदेव शुक्लध्यान का निषेध करते है, [illegible] श्रेणी से पूर्व मे होने वाले धर्मध्यान का अस्तित्व वतलाया है। १।" तथा–जो यह कहा है कि

वराधनादिभणितं व्याख्यानम् कथम् घटते ? अथ मतम्——पञ्चसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकं द्रव्यश्रुतमिति जानाति । इदं भावश्रुतं पुनः सर्वमस्ति । नैवं वक्तव्यम् । यदि पञ्चसमिति-त्रिगुप्तिप्रतिपादक द्रव्यश्रुतं जानाति तर्हि 'मा रूसह मा तूसह' इत्येकं पदं कि न जानाति । तत एव ज्ञायतेऽष्टप्रवचनमातृप्रमाणमेव भावश्रुतं, द्रव्यश्रुतं पुनः किमपि नास्ति । इदन्तु व्याख्यानमस्माभिर्न कल्पितमेव । तच्चारित्रसारादिग्रन्थेष्वपि भणितमास्ते । तथाहि—अन्त-र्मुहूर्त्तादूर्ध्वं ये केवलज्ञानमुत्पादयन्ति ते क्षीणकषायगुणस्थानवर्त्तिनो निर्ग्रंथसंज्ञा ऋषयो भण्यन्ते । तेषा चोत्कर्षेण चतुर्दशपूर्वादिश्रुतं भवति, जघन्येन पुन. पञ्चसमितित्रिगुप्तिमा-त्रमेवेति ।

अथ मतं——मोक्षार्थं ध्यान क्रियते न चाद्य काले मोक्षोऽस्ति, ध्यानेन कि प्रयोज-नम् ? नैवं, अद्य कालेऽपि परम्परया मोक्षोऽस्ति । कथमिति चेत् ? स्वशुद्धात्मभावनाबलेन संसारस्थिति स्तोकां कृत्वा देवलोक गच्छति, तस्मादागत्य मनुष्यभवे रत्नत्रयभावनां लब्ध्वा शीघ्रं मोक्ष गच्छतीति । येऽपि भरतसगररामपाण्डवादयो मोक्षं गतास्तेपि पूर्वभवे भेदाभेद-रत्नत्रयभावनया संसारस्थिति स्तोका कृत्वा पश्चान्मोक्ष गताः । तद्भवे सर्वेषां मोक्षो भव-

---

'इस काल मे उत्तम सहनन का अभाव है इस कारण ध्यान नही होता' सो यह उत्सर्ग वचन है । अपवाद-रूप व्याख्यान से तो, उपशमश्रेणी क्षपकश्रेणी मे शुक्लध्यान होता है और वह उत्तमसहनन से ही होता है, किन्तु अपूर्वकरण (८ वे) गुणस्थान से नीचे के गुणस्थानो मे जो धर्मध्यान होता है वह धर्मध्यान पहले तीन उत्तम सहननो के अभाव होने पर भी अतिम के (अर्द्धनाराच, कीलक और सृपटिका) तीन सहननो से भी होता है । यह भी उसी तत्त्वानुशासन ग्रन्थ मे कहा है—"वज्रकाय (सहनन) वाले के ध्यान होता है, ऐसा आगम-वचन उपशम तथा क्षपक श्रेणी के ध्यान की अपेक्षा कहा है । यह वचन नीचे के गुणस्थानो मे धर्मध्यान का निषेधक नही है ।"

जो ऐसा कहा है कि, 'दश तथा चौदहपूर्व तक के श्रुतज्ञान से ध्यान होता है' वह भी उत्सर्ग वचन है । अपवाद व्याख्यान से तो पाच समिति और तीन गुप्ति को प्रतिपादन करने वाले सारभूत श्रुतज्ञान से भी ध्यान और केवलज्ञान होता है । यदि ऐसा अपवाद व्याख्यान न हो, तो 'तुष-माष का उच्चारण करते हुए श्री शिवभूति मुनि केवलज्ञानी होगये' इत्यादि गधर्वाराधनादि ग्रन्थो मे कहा हुआ कथन कैसे सिद्ध होवे । शका—श्री शिवभूति मुनि पाच समिति और तीन गुप्तियों का प्रतिपादन करने वाले द्रव्यश्रुत को जानते थे और भावश्रुत उनके पूर्णरूप से था । उत्तर—ऐसा नही है, क्योंकि, यदि शिवभूति मुनि पाच समिति और तीन गुप्तियो का कथन करने वाले द्रव्यश्रुत को जानते थे तो उन्होंने "मा तूसह मा रूसह" अर्थात् 'किसी मे राग और द्वेष मत कर' इस एक पद को क्यो नही जाना ।

अत्राह शिष्य । अद्य काले ध्यानं नास्ति । कस्मादिति चेत्——उत्तमसंहननाभावा-द्दशचतुर्दशपूर्वगतश्रुतज्ञानाभावाच्च । अत्र परिहार शुक्लध्यान नास्ति धर्मध्यानमस्तीति । तथाचोक्तं मोक्षप्राभृते श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवै 'भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ णाणिस्स । त अप्पसहावठिए ण हु मण्णइ सो दु अण्णाणी ॥१॥ अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पा ज्झा-ऊण लहइ इंदत्तं । लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुदा णिव्वुदि जंति ।२।' तथैव तत्त्वानुशासनग्रन्थे चोक्तं 'अत्रेदानी निषेधन्ति शुक्लध्यान जिनोत्तमा । धर्मध्यान पुन प्राहु श्रेणीभ्या प्राग्वि-वर्त्तिनाम् ।१।' यथोक्तमुत्तमसहननाभावात्तदुत्सर्गवचनम् । अपवादव्याख्यानेन, पुनरुपशम-क्षपकश्रेण्यो शुक्लध्यान भवति, तच्चोत्तमसहननेनैव, अपूर्वगुणस्थानादधस्तनेषु गुणस्थानेषु धर्मध्यान, तच्चादिमत्रिकोत्तमसंहननाभावेऽप्यन्तिमत्रिकसहननेनापि भवति । तदप्युक्तं तत्रैव तत्त्वानुशासने 'यत्पुनर्वज्रकायस्य ध्यानमित्यागमे वच । श्रेण्योर्ध्यानं प्रतीत्योक्तं तन्नाधस्ता-न्निषेधकम् ॥ १ ॥'

यथोक्तं दशचतुर्दशपूर्वगतश्रुतज्ञानेन ध्यानं भवति तदप्युत्सर्गवचनम् । अपवादव्या-ख्यानेन पुन पञ्चसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकसारभूतश्रुतेनापि ध्यान भवति केवलज्ञानञ्च । यद्येवमपवादव्याख्यान नास्ति तर्हि 'तुसमास घोसन्तो सिवभूदी केवली जादो' इत्यादिगन्ध-

---

मयी निश्चयव्रत नामक वीतरागसामायिक सज्ञा वाले निर्विकल्प ध्यान मे स्थित होकर केवलज्ञान को प्राप्त किया है। परतु व्रतपरिणाम के स्तोक काल के कारण लोग श्री भरत जी के व्रतपरिणाम को नही जानते, अब उन ही भरत जी के दीक्षा विधान का कथन करते है। श्री वर्द्धमान तीर्थकर परमदेव के समवसरण मे श्रेणिक महाराज ने प्रश्न किया कि हे भगवन्! भरतचक्रवर्ती को जिनदीक्षा लेने के पीछे कितने समय मे केवलज्ञान हुआ ? श्री गौतम गणधरदेव ने उत्तर दिया "हे श्रेणिक! पच—मुष्ठियो से वालो को उखाडकर (केश लोच करके) कर्मवध की स्थिति तोडते हुए, केशलोच के अनन्तर ही भरतज चक्रवर्ती ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। १।"

शिष्य का प्रश्न—इस पचमकाल मे ध्यान नही है। क्योकि इस काल मे उत्तमसंहनन (वज्र-ऋषभ नाराच संहनन) का अभाव है तथा दश एवं चौदहपूर्व श्रुतज्ञान भी नही पाया जाता ? उत्तर इस समय शुक्लध्यान नही है परन्तु धर्मध्यान है। श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने मोक्षप्राभृत मे कहा है "भरत-क्षेत्र विषय दु षमा नामक पचमकाल मे ज्ञानी जीव के धर्मध्यान होय है। यह धर्मध्यान आतम—स्वभाव मे स्थित के होय है। जो यह नही मानता, वह अज्ञानी है। १।" इस समय भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय से शुद्ध जीव आत्मा का ध्यान करके इन्द्रपद अथवा लोकातिकदेव पद को प्राप्त होते है और वहां से चयकर नरदेह ग्रहण करके मोक्ष को जाते है। २।" ऐसा ही तत्त्वानु-शासन ग्रन्थ मे भी कहा है—"इस समय (पंचमकाल) मे जिनेन्द्रदेव शुक्लध्यान का निषेध करते है; श्रेणी से पूर्व मे होने वाले धर्मध्यान का अस्तित्व वतलाया है। १।" तथा—जो यह कहा है कि

वराराधनादिभणितं व्याख्यानम् कथम् घटते ? अथ मतम्——पञ्चसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकं द्रव्यश्रुतमिति जानाति । इदं भावश्रुतं पुन सर्वमस्ति । नैवं वक्तव्यम् । यदि पञ्चसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादक द्रव्यश्रुतं जानाति तर्हि 'मा रूसह मा तूसह' इत्येकं पदं कि न जानाति । तत एव ज्ञायतेऽष्टप्रवचनमातृप्रमाणमेव भावश्रुत, द्रव्यश्रुतं पुनः किमपि नास्ति । इदन्तु व्याख्यानमस्माभिर्न कल्पितमेव । तच्चारित्रसारादिग्रन्थेष्वपि भणितमास्ते । तथाहि—अन्तर्मुहूर्त्तादूर्ध्व ये केवलज्ञानमुत्पादयन्ति ते क्षीणकषायगुणस्थानवर्त्तिनो निर्ग्रंथसंज्ञा ऋषयो भण्यन्ते । तेषा चोत्कर्षेण चतुर्दशपूर्वादिश्रुतं भवति, जघन्येन पुनः पञ्चसमितित्रिगुप्तिमात्रमेवेति ।

अथ मत——मोक्षार्थ ध्यान क्रियते न चाद्य काले मोक्षोऽस्ति, ध्यानेन कि प्रयोजनम् ? नैवं, अद्य कालेऽपि परम्परया मोक्षोऽस्ति । कथमिति चेत् ? स्वशुद्धात्मभावनाबलेन संसारस्थिति स्तोकां कृत्वा देवलोक गच्छति, तस्मादागत्य मनुष्यभवे रत्नत्रयभावनां लब्ध्वा शीघ्रं मोक्षं गच्छतीति । येऽपि भरतसगररामपाण्डवादयो मोक्षं गतास्तेपि पूर्वभवे भेदाभेदरत्नत्रयभावनया संसारस्थिति स्तोका कृत्वा पश्चान्मोक्ष गताः । तद्भवे सर्वेषां मोक्षो भव-

---

'इस काल मे उत्तम सहनन का अभाव है इस कारण ध्यान नही होता' सो यह उत्सर्ग वचन है । अपवादरूप व्याख्यान से तो, उशपमश्रेणी क्षपकश्रेणी मे शुक्लध्यान होता है और वह उत्तमसहनन से ही होता है, किन्तु अपूर्वकरण (८वे) गुणस्थान से नीचे के गुणस्थानो मे जो धर्मध्यान होता है वह धर्मध्यान पहले तीन उत्तम सहननो के अभाव होने पर भी अंतिम के (अर्द्धनाराच, कीलक और सृपटिका) तीन सहननो से भी होता है । यह भी उसी तत्त्वानुशासन ग्रन्थ मे कहा है—"वज्रकाय (सहनन) वाले के ध्यान होता है, ऐसा आगम-वचन उपशम तथा क्षपक श्रेणी के ध्यान की अपेक्षा कहा है । यह वचन नीचे के गुणस्थानो मे धर्मध्यान का निषेधक नही है ।"

जो ऐसा कहा है कि, 'दश तथा चौदहपूर्व तक के श्रुतज्ञान से ध्यान होता है' वह भी उत्सर्ग वचन है । अपवाद व्याख्यान से तो पाच समिति और तीन गुप्ति को प्रतिपादन करने वाले सारभूत श्रुतज्ञान से भी ध्यान और केवलज्ञान होता है । यदि ऐसा अपवाद व्याख्यान न हो, तो 'तुष-माष का उच्चारण करते हुए श्री शिवभूति मुनि केवलज्ञानी होगये' इत्यादि गधर्वाराधनादि ग्रन्थो मे कहा हुआ कथन कैसे सिद्ध होवे । शका—श्री शिवभूति मुनि पाच समिति और तीन गुप्तियो को प्रतिपादन करने वाले द्रव्यश्रुत को जानते थे और भावश्रुत उनके पूर्णरूप से था । उत्तर—ऐसा नही है, क्योकि, यदि शिवभूति मुनि पाच समिति और तीन गुप्तियो का कथन करने वाले द्रव्यश्रुत को जानते थे तो उन्होने "मा तूसह मा रूसह" अर्थात् 'किसी में राग और द्वेष मत कर' इस एक पद को क्यो नही जाना ।

तीति नियमो नास्ति। एवमुक्तप्रकारेण अल्पश्रुतेनापि ध्यानं भवतीति ज्ञात्वा कि कर्तव्यम्– 'वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादे । आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदा ।१। सकल्पकल्पतरुसश्रयणात्त्वदीय चेतो निमज्जति मनोरथसागरेऽस्मिन् । तत्रार्थतस्तव चकास्ति न किंचनापि पक्षेऽपर भवति कल्पपसश्रयस्य । २ । दौर्विध्यदग्धमनसोऽन्तरुपात्तभुक्तेश्चित्तं यथोल्लसति ते स्फुरितोत्तरङ्गम् । धाम्नि स्फुरेद्यदि तथा परमात्मसज्ञे कौतस्कुती तव भवेद्विफला प्रसूति । ३ । कखिद कलुसिदभूतो कामभोगेहि मुच्छिदो जीवो । ण य भुंजतो भोगे वधदि भावेण कम्माणि । ४ ।' इत्याद्यपध्यानत्यक्त्वा–'ममत्ति परिवज्जामि णिम्म-मत्तिमुवट्ठिदो । आलवण च मे आदा अवसेसाइं वोसरे । १ । आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दसणे चरित्ते य । आदा पच्चक्खाणे आदा मे सवरे जोगे । २ । एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदसणलक्खणो । सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे सजोगलक्खणा । ३ । इत्यादि-सारपदानि गृहीत्वा च ध्यानं कर्त्तव्यमिति ।

इसी कारण से जाना जाता है कि पाच समिति और तीन गुप्ति रूप आठ प्रवचन मातृका प्रमाण ही उनके भावश्रुत था और द्रव्यश्रुत कुछ भी नही था। यह व्याख्यान मैने ही कल्पित नही किया है, किंतु 'चारित्रसार' आदि शास्त्रो मे भी यह वर्णन हुआ है। तथाहि—अतर्मुहूर्त्त मे जो केवलज्ञान को प्राप्त करते है वे क्षीणकपाय गुणस्थान मे रहने वाले 'निर्ग्रंथ' नामक ऋषि कहलाते है और उनके उत्कृष्टता से ग्यारह अग चौदह पूर्व पर्यत श्रुतज्ञान होता है, जघन्य से पाच समिति तीन गुप्ति मात्र ही श्रुतज्ञान होता है।

शका—मोक्ष के लिये ध्यान किया जाता है और इस पञ्चम काल मे मोक्ष होता नही, अत ध्यान करने से क्या प्रयोजन ? ऐसा नही है, क्योकि इस पचम काल मे भी परपरा से मोक्ष है। प्रश्न—परम्परा से मोक्ष कैसे है ? उत्तर—(ध्यानी पुरुष) निज-शुद्ध-आत्म-भावना के बल से ससार-स्थिति को अल्प करके स्वर्ग मे जाते है। वहा से आकर मनुष्य भव मे रत्नत्रय की भावना को प्राप्त होकर शीघ्र ही मोक्ष जाते है। जो भरतचक्रवर्ती, सगरचक्रवर्त्ती, रामचंद्र, पाण्डव (युधिष्टर, अर्जुन, भीम) आदि मोक्ष गये है, वे भी पूर्वभव मे भेदाभेदरत्नत्रय की भावना से ससार—स्थिति को स्तोक करके फिर मोक्ष गये । उसी भव मे सब को मोक्ष हो जाती है, ऐसा नियम नही। उपरोक्त कथनानुसार अल्प–श्रुतज्ञान मे भी ध्यान होता है। यह जानकर क्या करना चाहिये ? 'द्वेष से किसी को मारने, बाधने व अङ्ग काटने आदि का और राग मे परस्त्री आदि का जो चिंतवन करना है, निर्मल बुद्धि के धारक आचार्य जिनमत मे उसको अपध्यान कहते हैं। १। हे जीव ! सकल्परूपी कल्पवृक्ष का आश्रय करने से तेरा चचल चित्त इस मनोरथरूपी सागर मे डूब जाता है, वैसे उन सकल्पो मे जीव का वास्तव मे कुछ प्रयोजन नही सधता, प्रत्युत कलुपता मे समागम करने वालो का अर्थात् कलुपित चित्त वालो का अकल्याण होता । २। जिस प्रकार दुर्भाग्य से दुखित मन वाले तेरे अन्तरङ्ग मे भोग भोगने की

अथ मोक्षविषये पुनरपि नयविचार कथ्यते । तथाहि मोक्षस्तावत् बधपूर्वकः । तथाचोक्तं—'मुक्तश्चेत् प्राक्भवेद्बन्धो नो बंधो मोचनं कथम् । अबधे मोचनं नैव मुञ्चेरर्थो निरर्थकः । १ ।' बंधश्च शुद्धनिश्चयनयेन नास्ति, तथा बधपूर्वको मोक्षोऽपि । यदि पुनः शुद्धनिश्चयेन बधो भवति तदा सर्वदैव बध एव, मोक्षो नास्ति । किंच—यथा शृङ्खलाबद्धपुरुषस्य बंधच्छेदकारणभूतभावमोक्षस्थानीयं बधच्छेदकारणभूतं पौरुष पुरुषस्वरूपं न भवति, तथैव शृङ्खलापुरुषयोर्यद्द्रव्यमोक्षस्थानीय पृथक्करणं तदपि पुरुषस्वरूप न भवति । किंतु ताभ्यां भिन्नं यद्दृष्टं हस्तपादादिरूप तदेव पुरुषस्वरूपम् । तथैव शुद्धोपयोगलक्षणं भावमोक्षस्वरूपं शुद्धनिश्चयेन जीवस्वरूप न भवति, तथैव तेन साध्यं यज्जीवकर्मप्रदेशयोः पृथक्करणं द्रव्यमोक्षरूपं तदपि जीवस्वभावो न भवति, किंतु ताभ्या भिन्नं यदनन्तज्ञानादिगुणस्वभाव फलभूतं तदेव शुद्धजीवस्वरूपमिति । अयमत्रार्थः—यथा विवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयेन पूर्व मोक्षमार्गो व्याख्यातस्तथा पर्यायमोक्षरूपो मोक्षोऽपि, न च शुद्धनिश्चयनयेनेति । यस्तु शुद्धद्रव्यशक्तिरूप शुद्धपारिणामिकपरमभावलक्षणपरमनिश्चयमोक्ष, स च पूर्वमेव जीवे तिष्ठतीदानी भविष्यतीत्येवं न । स एव रागादिविकल्परहिते मोक्षकारणभूते ध्यानभावनापर्याये ध्येयो भवति, न च ध्यानभावनापर्यायिरूपः । यदि पुनरेकान्तेन द्रव्यार्थिकन-

---

इच्छा से व्यर्थ तरंगे उठती रहती है । उसी प्रकार यदि वह मन परमात्मरूप स्थान मे स्फुरायमान हो तो तेरा जन्म कैसे निष्फल हो सकता है ? अर्थात् तेरा जन्म सफल हो जावे । ३ । आकाक्षा से कलुषित हुआ और काम भोगो मे मूर्च्छित, यह जीव भोगो को नही भोगता हुआ भी भावो से कर्मो को बांधता है । ४ ।" इत्यादि रूप दुर्ध्यान को छोडकर "निर्ममत्त्व मे स्थित होकर अन्य पदार्थो मे ममत्व बुद्धि का त्याग करता हू, मेरे आत्मा का ही आलंबन है, अन्य सबको मै त्यागता हूँ । १ । मेरा-आत्मा ही दर्शन है, आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही चारित्र है, आत्मा ही प्रत्याख्यान है, आत्मा ही सवर है और आत्मा ही योग है । २ । ज्ञान-दर्शन का धारक अविनाशी एक मेरा आत्मा है, और शेष सब सयोग लक्षण वाले बाह्य भाव है । ३ ।" इत्यादि सारभूत पदों को ग्रहण करके ध्यान करना चाहिए ।

अव मोक्ष के विषय मे फिर भी नय-विचार को कहते है—मोक्ष बंध पूर्वक है । सो ही कहा है—"यदि जीव मुक्त है तो पहले इस जीव के बध अवश्य होना चाहिये । क्योकि यदि बंध न हो तो मोक्ष (छूटना) कैसे हो सकता है । इसलिये अबंध न बधे हुए) की मुक्ति नही हुआ करती, उसके तो मुंच् धातु (छूटने की वाचक) का प्रयोग ही व्यर्थ है" (कोई मनुष्य पहले बधा हुआ हो, फिर छूटे, तब वह मुक्त कहलाता है । ऐसे ही जो जीव पहले कर्मो से बंधा हो उसी को मोक्ष होती है) । शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा से बंध है ही नही । इस प्रकार शुद्ध-निश्चयनय से बध पूर्वक मोक्ष भी नही

येनापि स एव मोक्षकारणभूतो ध्यानभावना पर्यायो भण्यते तर्हि द्रव्यपर्यायरूपधर्मद्वयाधारभूतस्य जीवधर्मिणो मोक्षपर्याये जाते सति यथा ध्यानभावनापर्यायरूपेण विनाशो भवति, तथा ध्येयभूतस्य जीवस्य शुद्धपारिणामिकभावलक्षणद्रव्यरूपेणापि विनाशं प्राप्नोति, न च द्रव्यरूपेण विनाशोऽस्ति । ततः स्थितं शुद्धपारिणामिकभावेन बन्धमोक्षौ न भवत इति ।

अथात्मशब्दार्थः कथ्यते । 'अत' धातुः सातत्यगमनेऽर्थे वर्तते । गमनशब्देनात्र ज्ञानं भण्यते, 'सर्वे गत्यर्था ज्ञानार्था' इतिवचनात् । तेन कारणेन यथासंभवं ज्ञानसुखादिगुणेषु आसमन्तात् अतति वर्तते यः स आत्मा भण्यते । अथवा शुभाशुभमनोवचनकायव्यापारैर्यथासम्भवं तीव्रमन्दादिरूपेण आसमन्तादतति वर्तते यः स आत्मा । अथवा उत्पादव्ययध्रौव्यैरासमन्तादतति वर्तते यः स आत्मा ।

किञ्च--यथैकोऽपि चन्द्रमा नानाजलघटेषु दृश्यते तथैकोऽपि जीवो नानाशरीरेषु तिष्ठतीति वदन्ति तत्तु न घटते । कस्मादिति चेत्--चन्द्रकिरणोपाधिवशेन घटस्थजलपुद्-

---

है । यदि शुद्ध-निश्चयनय की अपेक्षा बंध होवे तो सदा ही बंध होता रहे, मोक्ष ही न हो । जैसे जंजीर से बंधे हुए पुरुष के, बंधनाश के कारणभूत जो भावमोक्ष है उसकी जगह जो जंजीर के बंधन को छेदने का कारणभूत उद्यम है, वह पुरुष का स्वरूप नहीं है और इसी प्रकार द्रव्यमोक्ष के स्थान में जो जंजीर और पुरुष इन दोनों का अलग होना है, वह भी पुरुष का स्वरूप भी नहीं है, किन्तु उन उद्यम और जंजीर के छुटकारे से जुदा जो देखा हुआ हस्तपाद आदि रूप आकार है, वही पुरुष का स्वरूप है । उसी प्रकार शुद्धोपयोगरूप जो भाव मोक्ष का स्वरूप है, वह शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा में जीव का स्वरूप नहीं है और उसी तरह उस भावमोक्ष से साध्य जो जीव और कर्म के प्रदेशों के पृथक् होने रूप द्रव्य मोक्ष का स्वरूप है, वह भी जीव का स्वभाव नहीं है, किंतु उन भाव व द्रव्यमोक्ष से भिन्न तथा उनका फलभूत जो अनन्त ज्ञान आदि गुणरूप स्वभाव है, वही शुद्ध जीव का स्वरूप है । यहां तात्पर्य यह है कि, जैसे विवक्षित-एकदेश शुद्ध-निश्चयनय में पहले मोक्षमार्ग का व्याख्यान है, उसी प्रकार पर्यायमोक्ष रूप जो मोक्ष है, वह भी एकदेश शुद्ध-निश्चयनय में है, किन्तु शुद्ध-निश्चयनय से नहीं है । जो शुद्ध-द्रव्य की शक्ति रूप शुद्ध-पारिणामिक परमभाव रूप परमनिश्चय मोक्ष है, वह तो जीव में पहले ही विद्यमान है, वह परमनिश्चय मोक्ष जीव में अब होगी, ऐसा नहीं है । राग आदि विकल्पों से रहित मोक्ष का कारणभूत ध्यान-भावना-पर्याय में, वही परमनिश्चय मोक्ष ध्येय होता है, वह निश्चय मोक्ष ध्यान भावना-पर्यायरूप नहीं है । यदि एकांत में द्रव्यार्थिक नय से भी उसी (परमनिश्चय मोक्ष) को मोक्ष का कारणभूत ध्यान-भावना-पर्याय कहा जावे, तो द्रव्य और पर्याय रूप दो धर्मों के आधारभूत जीव धर्मी का, मोक्षपर्याय प्रकट होने पर, जैसे ध्यानभावना-पर्याय रूप से विनाश होता है, उसी प्रकार शुद्धपारिणामिक-भाव स्वरूप द्रव्य रूप से भी ध्येयभूत जीव का विनाश प्राप्त होगा, किन्तु द्रव्य रूप

गला एव नानाचन्द्राकारेण परिणता, नचैकश्चन्द्रः । तत्र दृष्टान्तमाह—यथा देवदत्तमुखोपाधिवशेन नानादर्पणस्थपुद्गला एव नानामुखाकारेण परिणता, न चैक देवदत्तमुखं नानारूपेण परिणतम् । परिणमतीति चेत्—तर्हि दर्पणस्थप्रतिबिम्बं चैतन्यं प्राप्नोतीति, न च तथा । किन्तु यद्येक एव जीवो भवति, तदैकजीवस्य सुखदु:खजीवितमरणादिके प्राप्ते तस्मिन्नेव क्षणे सर्वेषां जीवितमरणादिकं प्राप्नोति, न च तथा दृश्यते । अथवा ये वदन्ति यथैकोपि समुद्रः क्वापि क्षारजलः क्वापि मिष्टजलस्तथैकोऽपि जीवः सर्वदेहेषु तिष्ठतीति । तदपि न घटते । कथमिति चेत्—जलराश्यपेक्षया तत्रैकत्व, न च जलपुद्गलापेक्षया तत्रैकत्वम् । यदि जलपुद्गलापेक्षया भवत्येकत्व तर्हि स्तोकजले गृहीते शेषजलं सहैव किन्नायाति । ततः स्थितं षोडशवर्णिकासुवर्णराशिवदनन्तज्ञानादिलक्षण प्रत्येकं जीवराशि प्रति, न चैकजीवापेक्षयेति ।

अध्यात्मशब्दस्यार्थ कथ्यते । मिथ्यात्वरागादिसमस्तविकल्पजालरूपपरिहारेण स्वशुद्धात्मन्यधि यदनुष्ठान तदध्यात्ममिति । एवं ध्यानसामग्रीव्याख्यानोपसंहाररूपेण गाथा गता ॥ ५७ ॥

मे जीव का विनाश नही है। इस कारण, 'शुद्धपारिणामिक भाव से जीव के बध और मोक्ष नहीं है' यह कथन सिद्ध हो गया।

अब 'आत्मा' शब्द का अर्थ कहते है। 'अत' धातु निरतर गमन करने रूप अर्थ मे है और 'सब गमनार्थक धातु ज्ञानार्थक होती है' इस बचन मे यहा पर 'गमन' शब्द से ज्ञान कहा जाता है। इस कारण जो यथासंभव ज्ञान सुख आदि गुणो मे सर्व प्रकार वर्त्तता है, वह आत्मा है। अथवा शुभ अशुभ मन-वचन-काय की क्रिया के द्वारा यथासंभव तीव्र-मद आदि रूप से जो पूर्णरूपेण वर्त्तता है, वह आत्मा है, अथवा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनो धर्मो के द्वारा जो पूर्णरूप से वर्त्तता है, वह आत्मा है।

आशका—जैसे एक ही चन्द्रमा अनेक जल के भरे हुए घटो में देखा जाता है, इसी प्रकार एक ही जीव अनेक शरीरो मे रहता है। उत्तर—यह कथन घटित नही होता। प्रश्न—क्यों नही घटित होता? उत्तर—चंद्रकिरणरूप उपाधि-वश से घटो मे स्थित जल-रूपी पुद्गल ही नाना-चन्द्र-आकार रूप परिणत हुआ है, एक चंद्रमा अनेक रूप नही परिणमा है। दृष्टान्त कहते है—जैसे देवदत्त के मुख रूप उपाधि के वश से अनेक दर्पणो मे स्थित पुद्गल ही अनेक मुख रूप परिणमते है, एक देवदत्त का मुख अनेक रूप नही परिणमता। यदि कहो कि देवदत्त का मुख ही अनेक मुख रूप परिणमता है, तो दर्पणस्थित देवदत्त के मुख के प्रतिबिम्ब भी, देवदत्त के मुख की तरह, चेतन (सजीव) हो जायेंगे, परन्तु ऐसा नही है (दर्पणों मे मुख-प्रतिबिम्ब चेतन नही है), यदि अनेक शरीरो मे एक ही जीव हो

अथौद्धत्यपरिहारं कथयति —

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचन्दमुणिणा भणियं जं ॥ ५८ ॥

द्रव्यसंग्रह इम मुनिनाथाः दोषसंचयच्युताः श्रुतपूर्णाः ।
शोधयन्तु तनुश्रुतधरेण नेमिचन्द्रमुनिना भणितं यत् ॥ ५८ ॥

व्याख्या—'सोधयंतु' शुद्धं कुर्वन्तु । के कर्तारः ? 'मुणिणाहा' मुनिनाथा मुनिप्रधाना । किं विशिष्टा ? 'दोससंचयचुदा' निर्दोषपरमात्मनो विलक्षणा ये रागादिदोषास्तथैव च निर्दोषपरमात्मादितत्त्वपरिज्ञानविषये संशयविमोहविभ्रमास्तैश्च्युता रहिता दोषसंचयच्युता । पुनरपि कथम्भूता ? 'सुदपुण्णा' वर्तमानपरमागमाभिधानद्रव्यश्रुतेन तथैव तदाधारोत्पन्ननिर्विकारस्वसम्वेदनज्ञानरूपभावश्रुतेन च पूर्णा समग्राः श्रुतपूर्णा । कं शोधयन्तु ? 'दव्वसंगहमिणं' शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मादिद्रव्याणां संग्रहो द्रव्यसंग्रहस्तं द्रव्यसंग्रहाभिधानम् ग्रन्थमिमं प्रत्यक्षीभूतम् । किं विशिष्टं ? 'भणियं जं' भणितं प्रतिपा-

---

तो, एक जीव को सुख-दुःख-जीवन-मरण आदि प्राप्त होने पर, उसी क्षण सब जीवों को सुख-दुःख-जीवन-मरण आदि प्राप्त होने चाहिये, किन्तु ऐसा देखने में नहीं आता । अथवा जो ऐसा कहते हैं कि, 'जैसे एक ही समुद्र कहीं तो खारे जल वाला है, कहीं मीठे जल वाला है, उसी प्रकार एक जीव सब देहों में विद्यमान है' सो कहना भी घटित नहीं होता । प्रश्न—क्यों नहीं घटित होता ? उत्तर—समुद्र में जलराशि की अपेक्षा से एकता है, जल-पुद्गलों (कणों) की अपेक्षा से एकता नहीं है । यदि जल-पुद्गलों की अपेक्षा से एकता होती (एक अखंड द्रव्य होता) तो समुद्र में से ग्रहण करने पर शेष जल भी उसके साथ ही क्यों न आजाता । इस कारण यह सिद्ध हुआ कि सोलह-वानी के सुवर्ण की राशि के समान अनंतज्ञान आदि लक्षण की अपेक्षा जीव राशि में एकता है और एक जीव की (समस्त जीव-राशि में एक ही जीव है, इस) अपेक्षा से जीवराशि में एकता नहीं है ।

अब 'अध्यात्म' शब्द का अर्थ कहते हैं । मिथ्यात्व-राग आदि समस्त विकल्प समूह के त्याग द्वारा निज-शुद्ध-आत्मा में जो अनुष्ठान (प्रवृत्ति का करना) उसको 'अध्यात्म' कहते हैं । इस प्रकार ध्यान की सामग्री के व्याख्यान के उपसंहार रूप से यह गाथा समाप्त हुई ॥ ५७ ॥

अब ग्रन्थकार अपने अभिमान के परिहार के लिये छन्द कहते हैं —

गाथार्थ :—अल्पज्ञान के धारक मुझ नेमिचन्द्र मुनि ने जो यह द्रव्यसंग्रह कहा है, दोषों से रहित और ज्ञान से पूर्ण ऐसे आचार्य इसका शोधन करें ।

दितो यो ग्रन्थ: । केन कर्तृभूतेन ? 'णेमिचन्दमुणिणा' श्री नेमिचन्द्रमुनिना श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवाभिधानेन मुनिना सम्यग्दर्शनादिनिश्चयव्यवहाररूपपञ्चाचारोपेताचार्येण । कथम्भूतेन ? 'तणुसुत्तधरेण' तनुश्रुतधरेण तनुश्रुत स्तोकं श्रुतं तद्धरतीति तनुश्रुतधरस्तेन । इति क्रियाकारकसम्बन्ध: । एवं ध्यानोपसंहारगाथात्रयेण, औद्धत्यपरिहार्थं प्राकृतवृत्तेन च द्वितीयान्तराधिकारे तृतीयं स्थलं गतम् । ५८ । इत्यन्तराधिकारद्वयेन विंशतिगाथाभिर्मोक्षमार्गप्रतिपादकनामा तृतीयोऽधिकार: समाप्त: ।

अत्र ग्रन्थे 'विवक्षितस्य सन्धिर्भवति' इति वचनात्पदानां सन्धिनियमो नास्ति । वाक्यानि च स्तोकस्तोकानि कृतानि सुखबोधनार्थम् । तथैव लिङ्गवचनक्रियाकारकसम्बन्धसमासविशेषणवाक्यसमाप्त्यादिदूषणं तथा च शुद्धात्मादिप्रतिपादनविषये विस्मृतिदूषणं च विद्वद्भिर्न ग्राह्यमिति ।

वृत्त्यर्थ :—'सोधयतु' शुद्ध करें । कौन शुद्ध करे ? 'मुणिणाहा' मुनिनाथ, मुनियों में प्रधान अर्थात् आचार्य । कैसे है वे आचार्य ? 'दोससचयचुदा' निर्दोप-परमात्मा से विलक्षण जो राग आदि दोष तथा निर्दोप-परमात्मादि तत्त्वो के जानने मे संशय-विमोह-विभ्रमरूप दोष, इन दोषो से रहित होने से, दोपो से रहित है । फिर कैसे है ? 'सुदपुण्णा' वर्तमान परमागम नामक द्रव्यश्रुत से तथा उस परमागम के आधार से उत्पन्न निर्विकार-स्व -अनुभव रूप भावश्रुत से परिपूर्ण होने से श्रुत पूर्ण है । किसको शुद्ध करे ? 'दव्वसगहमिणं' शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभाव परमात्मा आदि द्रव्यो के सग्रह रूप जो द्रव्यसंग्रह, इस प्रत्यक्षीभूत 'द्रव्यसग्रह' नामक ग्रन्थ को । कैसे द्रव्यसग्रह को ? 'भणिय ज' जिस ग्रन्थ को कहा है । किसने कहा है ? 'णेमिचन्दमुणिणा' सम्यग्दर्शन आदि निश्चय-व्यवहार--रूप पंच-आचार सहित आचार्य 'श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव' नामक मुनि ने । कैसे नेमिचन्द्र आचार्य ने ? 'तणुसुत्तधरेण' अल्पश्रुतज्ञानी ने । जो स्तोक श्रुत को धारण करे वह अल्प—श्रुत-ज्ञानी है । इस प्रकार क्रिया और कारको का सम्बन्ध है । इस प्रकार ध्यान के उपसहार रूप तीन गाथाओ से तथा ज्ञान के अभिमान के परिहार के लिये एक प्राकृत छन्द से द्वितीय अन्तराधिकार मे तृतीय स्थल समाप्त हुआ ।। ५८ ।।

ऐसे दो अन्तराधिकारों द्वारा बीस गाथाओ से मोक्षमार्ग-प्रतिपादक तृतीयाधिकार समाप्त हुआ ।

इस ग्रन्थ मे 'विवक्षित विषय की सधि होती है' इस वचन-अनुसार पदो की संधि का नियम नही है । (कही पर सधि की है और कही पर नही) । सरलता से बोध कराने के लिये वाक्य छोटे-छोटे बनाये गये है । लिग, वचन, क्रिया, कारक, सम्बध, समास, विशेषण और वाक्य-समाप्ति आदि दूषण एव शुद्ध-आत्मा आदि तत्त्वों के कथन मे विस्मरण (भूल) आदि दूषण इस ग्रन्थ मे हों, उन्हे विद्वान् पुरुष ग्रहण न करे ।

इस तरह 'जीवमजीव दव्वं' इत्यादि २७ गाथाओ का 'षट्द्रव्यपंचास्तिकायप्रतिपादकनामा' प्रथम अधिकार है । तदनन्तर 'आसव बधण' इत्यादि ११ गाथाओ का 'सप्ततत्त्वनवपदार्थप्रतिपादकनामा'

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'जीवमजीव दव्व' इत्यादिसप्तविंशतिगाथाभि षट्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकनामा प्रथमोधिकारः। तदनन्तर 'आसव बन्धण' इत्येकादशगाथाभिः सप्ततत्त्वनवपदार्थप्रतिपादकनामा द्वितोयोऽधिकार। तत पर 'सम्मदसण' इत्यादिविंशतिगाथाभिर्मोक्षमार्गप्रतिपादकनामा तृतीयोऽधिकार ॥

इत्यधिकारत्रयेनाष्टाधिकपञ्चाशत्सूत्रै श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवैर्विरचितस्य द्रव्यसंग्रहाभिधानग्रन्थस्य सम्बन्धिनी श्रीब्रह्मदेवकृतवृत्ति समाप्ता।

दूसरा अधिकार है। उसके पश्चात् 'सम्मद्‌सण' आदि बीस गाथाओ का 'मोक्षमार्गप्रतिपादकनामा' तीसरा अधिकार है।

इस प्रकार श्रीनेमिचन्द्राचार्य सिद्धान्तिदेव विरचित तीन अधिकारो की
५८ गाथाओ वाले द्रव्यसग्रह ग्रंथ की श्रीब्रह्मदेवकृत संस्कृत-वृत्ति
तथा उसका हिन्दी अनुवाद समाप्त हुआ।

[लघुद्रव्यसंग्रहः]

छद्दव्व पंच अत्थी सत्त वि तच्चाणि णव पयत्था य ।
भंगुप्पाय-धुवत्ता णिद्दिट्ठा जेण सो जिणो जयउ ॥ १ ॥

अर्थ—'जेण' जिनके द्वारा 'छद्दव्व' छ द्रव्य, 'पच अत्थी' पाच अस्तिकाय, 'सत्त वि तच्चाणि' सात तत्त्व, 'णव पयत्था य' नव पदार्थ और 'भगुप्पाय—धुवत्ता' व्यय--उत्पाद—ध्रौव्य, 'णिद्दिट्ठा' निर्देश किये गये है, 'सो जिणो' वे श्री जिनेन्द्रदेव 'जयउ' जयवन्त रहो ॥ १ ॥

जीवो पुग्गल धम्माऽधम्मागासो तहेव कालो य ।
दव्वाणि कालरहिया पदेस वाहुल्लदो*अत्थिकाया य ॥ २ ॥

अर्थ—'जीवो पुग्गल धम्माऽधम्मागासो तहेव कालो य दव्वाणि' जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—द्रव्य है, 'कालरहिया पदेश बाहुल्लदो अत्थिकाया य' काल को छोड कर शेष उक्त पाच द्रव्य, वहुप्रदेशी होने के कारण, अस्तिकाय है ॥ २ ॥

जीवाजीवासवबंध संवरो णिज्जरा तहा मोक्खो ।
तच्चाणि सत्त एदे सपुण्ण-पावा पयत्था य ॥ ३ ॥

अर्थ—'जीवाजीवासवबन्ध सवरो णिज्जरा तहा मोक्खो तच्चाणि सत्त' जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष—सात तत्त्व है; 'एदे सपुण्ण—पावा पयत्था य' ये (उक्त सात तत्त्व) पुण्य व पाप सहित नव पदार्थ है ॥ ३ ॥

१जीवो होइ अमुत्तो सदेहमित्तो सचेयणा कत्ता ।
भोत्ता सो पुण दुविहो सिद्धो ससारिओ णाणा ॥ ४ ॥

अर्थ—'जीवो होइ अमुत्तो सदेहमित्तो सचेयणा कत्ता भोत्ता' जीव (द्रव्य) अमूर्तिक, स्वदेह—प्रमाण, चेतना सहित, कर्ता और भोक्ता है, 'सो पुण दुविहो' वह (जीव) दो प्रकार का है, 'सिद्धो ससारिओ' सिद्ध और ससारी, 'णाणा' (ससारी जीव) नाना प्रकार के है । ४ ।

१—कुछ अन्तर से बृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा २ से मिलती है । *'अ(ऽ)त्थिकाया' इत्यपि पाठः ।

१अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेयरणगुणमसद्दं ।
जाण अलिगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठ—संट्ठाणं ॥ ५ ॥

अर्थ—'जीव' जोव को 'अरसमरूवमगध अव्वत्त चेयणागुणमसद्दं अलिगग्गहण अणिद्दिट्ठ-संट्ठाणं' रस-रहित, रूप-रहित, गध-रहित, अव्यक्त (स्पर्श—रहित), शब्द—रहित, अलिग-ग्रहण (लिंग द्वारा ग्रहण मे नही आने वाला), अनिर्दिष्ट संस्थान वाला (जिसका कोई सस्थान निर्दिष्ट नही है) और चेतन-गुण-वाला 'जाण' जानो ॥ ५ ॥

वण्ण-रस-गंध-फासा विज्जते जस्स जिणवरुद्दिट्ठा ।
मुत्तो पुग्गलकाओ पुढवी पहुदी हु सो सोढा ॥ ६ ॥

अर्थ—'जस्स' जिसके 'वण्ण-रस-गध-फासा' वर्ण, रस, गन्ध, तथा स्पर्श 'विज्जते' विद्यमान है, 'सो मुत्तो पुग्गलकाओ' वह मूर्तिक पुद्‌गल—काय 'पुढवी पहुदी हु सोढा' पृथ्वी प्रभृति (आदि) छ. प्रकार का 'जिणवरुद्दिट्ठा' श्रीजिनेन्द्रदेव द्वारा कहा गया है । ६ ।

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसय कम्म परमाणू ।
छव्विहभेय भणियं पुग्गलदव्व जिणिदेहि ॥ ७ ॥

अर्थ—'पुढवी जलं च छाया चउरिदियविसय कम्म परमाणू' १—पृथ्वी, २—जल, ३—छाया, ४—(नेत्रेन्द्रिय के अतिरिक्त शेप) चार इन्द्रियो के विपय (वायु शब्द आदि) ५—कर्मवर्गणा, ६—परमाणु, 'छव्विहभेय भणिय पुग्गलदव्वं जिणिदेहि' श्री जिनेन्द्रदेव ने पुद्‌गल द्रव्य को (ऐसे) छ प्रकार का कहा है । ७ ।

२गईपरिणयाण३ धम्मो पुग्गलजीवाण गमण—सहयारी ।
तोय जह मच्छाण अच्छता णेव सो णेई ॥ ८ ॥

अर्थ—'गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी' गमन से परिणत पुद्‌गल और जीवो को गमन मे सहकारी धर्म—द्रव्य है, 'तोय जह मच्छाण' जैसे मछलियो को (गमन मे) जल सहकारी है, 'अच्छता णेव सो णेई' (किन्तु) गमन न करते हुए (ठहरे हुये पुद्‌गल व जीवो को) वह (धर्म—द्रव्य) गमन नही कराता है ॥ ८ ॥

४ठाणजुयाण अधम्मो५ पुग्गलजीवाण ठाण—सहयारी ।
छाया जह पहियाण गच्छाता णेव सो धरई ॥ ९ ॥

अर्थ—'ठाणजुयाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाण—सहयारी' ठहरे हुये पुद्‌गल और जीवो को ठहरने मे सहकारी अधर्म—द्रव्य है, 'छाया जह पहियाण' जैसे छाया पन्थियो को ठहरने मे सहकारी है, 'गच्छता णेव सो धरई' गमन करते हुये (जीव व पुद्‌गलो को) वह (अधर्म-द्रव्य) नही ठहराता है ॥ ९ ॥

१ मा गा ४९, २ वृ द्र स गा १७, ३ 'परियाण' अपि पाठ, ४वृ.द्र.गा. १८, ५ 'अहम्मो' अपि पाठ ।

१अवगासदाणजोग्गं जीवदीणं वियाण आयासं ।
जेण्हं लोगागासं २अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥ १० ॥

अर्थ—'अवगासदाणजोग्ग जीवादीण वियाण आयासं जेण्हं' जो जीव आदि द्रव्यों को अवकाश देने योग्य है, उसको श्री जिनेन्द्रदेव द्वारा कहा हुआ आकाश द्रव्य जानो 'लोगागास अल्लोगागासमिदि दुविहं' लोकाकाश और अलोकाकाश (इन भेदो से आकाश) दो प्रकार का है ॥ १० ॥

३दव्वपरियट्टजादो जो सो कालो हवेइ ववहारो ।
लोगागासपएसो एक्केक्काणु य परमट्ठो ॥ ११ ॥

अर्थ—'दव्वपरियट्टजादो जो सो कालो हवेइ ववहारो' जो द्रव्यो के परिवर्तन से जायमान है; वह व्यवहार-काल है, 'लोगागासपएसो एक्केक्काणू य परमट्ठो' लोकाकाश मे प्रदेश रूप से स्थित एक-एक कालाणु परमार्थ (निश्चय) काल है ॥ ११ ॥

४लोयायासपदेसे एक्केक्के५ जे ट्ठिया हु एक्केक्का ।
रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥ १२ ॥

अर्थ —'लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का रयणाणं रासीमिव' जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर, रत्नों के ढेर के समान, (परस्पर भिन्न २ होकर) एक-एक स्थित है, 'ते कालाणू असंखदव्वाणि' वे कालाणू असंख्यात द्रव्य है ॥ १२ ॥

६संखातीदा जीवे धम्माऽधम्मे अणंत आयासे ।
संखादासंखादा मुत्ति पदेसाउ संति णो काले ॥ १३ ॥

अर्थ—'संखातीदा जीवे धम्माऽधम्मे' एक जीव मे, धर्म (द्रव्य) में तथा अधर्म (द्रव्य) में असंख्यात (प्रदेश) है, 'अणन्त आयासे' आकाश में अनन्त (प्रदेश) है, 'संखादासखादा मुत्ति पदेसाउ संति पुद्गल मे संख्यात, असंख्यात व (अनंत) प्रदेश है, 'णो काले' काल मे (प्रदेश) नही है (अर्थात् कालाणु एक प्रदेशी है, उसमे शक्ति या व्यक्ति की अपेक्षा से बहु प्रदेशीपना नही है) ॥ १३ ॥

७जावदियं आयासं अविभागीपुग्गलाणुवट्टद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं । १४ ।

अर्थ—'जावदिय आयासं अविभागीपुग्गलाणुवट्टद्धं तं खु पदेस जाणे' अविभागी पुद्गलाणु से जितना आकाश रोका जाता है, उसको प्रदेश जानो; 'सव्वाणुट्ठाणदाणरिह' (वह प्रदेश) सब (पुद्गल) परमाणुओं को स्थान देने मे समर्थ है ॥ १४ ॥

१–वृ.द्र.सं. गाथा १९ । २–'अलोगागास' इत्यपि पाठः । ३–वृ.द्र.सं.गा. २१ कुछ अतर से । ४–वृ.द्र.सं. गा. २२ । ५–'एक्कके' इति पाठान्तरः । ६–वृ.द्र.स.गाथा २५ का रूपान्तर । ७–वृ.द्र.स.गा. २७ ।

जीवो णाणी पुग्गल–धम्माऽधम्मायासा तहेव कालो य ।
अज्जीवा जिणभणिओ ण हु मण्णइ जो हु सो मिच्छो ॥ १५ ॥

अर्थ—'जीवो णाणी' जीव ज्ञानी (ज्ञानवाला) है, पुग्गल-धम्माऽधम्मायासा तहेव कालो य अज्जीवा' पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल—अजीव है, जिणभणिओ' ऐसा श्री जिनेन्द्रदेव ने वर्णन किया है, 'ण हु मण्णइ जो हु सो मिच्छो' जो ऐसा नही मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है ॥ १५ ॥

मिच्छत्त हिसाई कसाय–जोगा य आसवो बधो ।
सकसाई जं जीवो परिगिण्हइ पोग्गल विविहं ॥ १६ ॥

अर्थ—'मिच्छत्त हिसाई कसाय–जोगा य आसवो' मिथ्यात्व, हिसा आदि (अव्रत), कषाय और योगो से आस्रव होता है, 'बधो सकसाई जं जीवो परिगिण्हइ पोग्गल विविहं' कषाय सहित जीव नाना प्रकार के पुद्गल को जो ग्रहण करता है, वह बध है ॥ १६ ॥

मिच्छत्ताईचाओ संवर जिण भणइ णिज्जरादेसे ।
कम्माण खओ सो पुण अहिलसिओ अणहिलसिओ य ॥ १७ ॥

अर्थ—'मिच्छत्ताईचाओ सवर जिण भणइ' श्री जिनेन्द्रदेव ने मिथ्यात्वादि के त्याग को सवर कहा है, 'णिज्जरादेसे कम्माण खओ' कर्मो का एकदेश क्षय निर्जरा है, 'सो पुण अहिलसिओ अणहिलसिओ य' वहुरि वह (निर्जरा) अभिलाषा–सहित (सकाम, अविपाक) और अभिलाषा–रहित (अकाम, सविपाक) ऐसे दो प्रकार की है ॥ १७ ॥

कम्म बधण–वद्धस्स सब्भूदस्सतरप्पणो ।
सव्वकम्म–विणिम्मुक्को मोक्खो होइ जिणेडिदो ॥ १८ ॥

अर्थ—'कम्म बधण–वद्धस्स सब्भूदस्सतरप्पणो' कर्मो के बधन से बद्ध सद्भूत (प्रशस्त) अन्तरात्मा का 'सव्वकम्म–विणिम्मुक्को' जो सर्व कर्मो से पूर्णरूपेण मुक्त होना (छूटना) है 'जिणेडिदो मोक्खो होई' वह मोक्ष है, ऐसा श्री जिनेन्द्रदेव ने वर्णन किया है । १८ ।

सादाऽऽउ–णामगोदाण पयडीओ सुहा हवे ।
पुण्ण तित्थयरादी अण्ण पाव तु आगमे ॥ १९ ॥

अर्थ—'सादाऽऽउ–णामगोदाण पयडीओ सहा हवे पुण्ण तित्थयरादी' साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम तथा शुभ गोत्र एव तीर्थङ्कर आदि प्रकृतिया पुण्य प्रकृतिया है, 'अण्ण पाव तु' अन्य (शेष प्रकृतिया) पाप है, 'आगमे' ऐसा परमागम मे कहा है ॥ १९ ॥

णासइ णर–पज्जाओ उप्पज्जइ देवपज्जओ तत्थ ।
जीवो स एव सव्वस्सभंगुप्पाया धुवा एवं ॥ २० ॥

अर्थ—'णासइ णर-पज्जाओ' नर (मनुष्य) पर्याय नष्ट होती है, 'उप्पज्जइ देवपज्जओ' देव पर्याय उत्पन्न होती है, 'तत्थ जीवो स एव' तथा जीव वह का वह ही रहता है, 'सव्वस्स भगुप्पाया धुवा एव' इस ही प्रकार सर्व द्रव्यो के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है ।। २० ।।

उप्पादप्पद्धंसा वत्थूण होंति पज्जय-णाएण (णयण) ।
दव्वट्ठिएण णिच्चा बोधव्वा सव्वजिणवुत्ता ।। २१ ।।

अर्थ—'उप्पादप्पद्धंसा वत्थूणं होंति पज्जय-णाएण' वस्तु मे उत्पाद तथा व्यय पर्याय-नय से होता है, 'दव्वट्ठिएण णिच्चा बोधव्वा' द्रव्य-दृष्टि से (वस्तु) नित्य (ध्रौव्य) जाननी चाहिये, 'सव्वजिणवुत्ता' श्रीसर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव द्वारा ऐसा कहा गया है ।। २१ ।।

एवं अहिगयसुत्तो सट्ठाणजुदो मणो णिरुंभित्ता ।
छंडउ राय रोसं जइ इच्छइ कम्मणो णास (णास) ।। २२ ।।

अर्थ—'जइ इच्छइ कम्मणो णास' यदि कर्मो का नाश करना चाहते हो तो 'एवं अहिगयसुत्तो सट्ठाणजुदो मणो णिरुभित्ता' इस प्रकार सूत्र से अभिगत होकर (परमागम के ज्ञाता होकर), काय को निश्चल करके और मन को स्थिर करके 'छंडउ राय रोस' राग तथा द्वेप को छोडो ।। २२ ।।

विसएसु पवट्टंत चित्त धारेत्तु अप्पणो अप्पा ।
झायइ अप्पाणेणं जो सो पावेइ खलु सेयं ।। २३ ।।

अर्थ—'जो अप्पा' जो आत्मा 'विसएसु पवट्टंत चित्त धारेत्तु' विपयों मे लगे हुए मन को रोक कर, 'अप्पणो झायइ अप्पाणेण' अपनी आत्मा को अपने द्वारा ध्याता है, 'सो पावेइ खलु सेय' वह (आत्मा) वास्तव मे कल्याण (सुख) को पाता है ।। २३ ।।

सम्मं जीवादीया णच्चा सम्मं सुकित्तिदा जेहिं ।
मोहगयकेसरीणं णमो णमो ठाण साहूणं ।। २४ ।।

अर्थ—'सम्मं जीवादीयाणच्चा' जीवादि को सम्यक् प्रकार जानकर 'जेहि सम्म सुकित्तिदा' जिन्होने उन जीवादि का भले प्रकार वर्णन किया है, 'मोहगयकेसरीण णमो णमो ठाण साहूणं' जो मोहरूपी गज (हस्ती) के लिये केसरी (सिह) के समान है, उन साधुओं को (हमारा) नमस्कार होऊ नमस्कार होऊ । २४ ।

सोमच्छलेण रइया पयत्थ-लक्खणकराउ गाहाओ ।
भव्वुवयारणिमित्तं गणिणा सिरिणेमिचंदेण ।। २५ ।।

अर्थ—'सोमच्छलेण' श्री सोम (श्रेष्ठी) के निमित्त से 'भव्वुवयारणिमित्त' भव्य जीवो के उपकार के लिये 'सिरिणेमिचदेण गणिणा' श्री नेमिचन्द्र आचार्य द्वारा 'पयत्थलक्खणकाउ गाहाओ' पदार्थों का लक्षण कहनेवाली गाथाये 'रइया' रची गई है ।। २५ ।।

वृहद्द्रव्यसंग्रह-गाथा:

गाथा-सख्या	गाथा	पृष्ठ संख्या
१	जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं । देविदविदवंद वंदे त सव्वदा सिरसा ।।	४
२	जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो । भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ।।	७
३	तिक्काले चदुपाणा इन्दियबलमाउआणपाणो य । ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स ।।	९
४	उवओगो दुवियप्पो दसणणाण च दंसणं चदुधा । चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवल णेयं ।।	११
५	णाण अट्ठवियप्पं मदिसुदिओही अणाणणाणाणि । मणपज्जयकेवलमवि पच्चक्ख-परोक्खभेयं च ।।	१३
६	अट्ठ चदु णाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं । ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसण णाणं ।।	१६
७	वण्ण रस पंच गधा दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे । णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति वंधादो ।।	१७
८	पुग्गलकम्मादीण कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो । चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ।।	१८
९	ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि । आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ।।	२०
१०	अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा । असमुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ।।	२१
११	पुढविजलतेयवाऊ वण्णप्फदि विविहथावरेइंदी । विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होति सखादी ।।	२४

गाथा-संख्या	गाथा	पृष्ठ संख्या
१२	समणा अमणा णेया पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे । बादर सुहमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥	२६
१३	मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया । विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥	२८
१४	णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा । लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहि संजुत्ता ॥	३६
१५	अज्जीवो पुण णेओ पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं । कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु (हु) ॥	४३
१६	सद्दो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेद-तमछाया । उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥	४४
१७	गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी । तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई ॥	४७
१८	ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी । छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥	४८
१९	अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं । जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥	४८
२०	धम्माऽधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये । आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्ति (तो) ॥	५०
२१	दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो । परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥	५१
२२	लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का । रयणाणं रासी इव ते कालाणु असंखदव्वाणि ॥	५४
२३	एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं । उत्तं कालविजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥	५८

गाथा–सख्या	गाथा	पृष्ठ संख्या
२४	सति जदो तेणेदे अत्थित्ति भणंति जिणवरा जह्मा । काया इव वहुदेसा तह्मा काया य अत्थिकाया य ॥	५८
२५	होंति असखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे । मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥	६०
२६	एयपदेसो वि अणू णाणाखधप्पदेसदो होदि । वहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ।	६२
२७	जावदियं आयासं अविभागीपुग्गलाणुउट्टद्धं । त खु पदेस जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिह ॥	६३
२८	आसव वंधण सवर णिज्जर मोक्खो सपुण्णपावा जे । जीवाजीवविसेसा ते वि समासेण पभणामो ॥	७३
२९	आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ । भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥	७४
३०	मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओऽथ विण्णेया । पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥	७५
३१	णाणावरणादीणं जोग्गं ज पुग्गल समासवदि । दव्वासवो स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो ॥	७७
३२	वज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबधो सो । कम्मादपदेसाण अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥	७८
३३	पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदादु चदुविधो वधो । जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥	७९
३४	चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू । सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो ॥	८१
३५	वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसहजओ य । चारित्त वहुभेय णायव्वा भावसवरविसेसा ॥	८६

गाथा–संख्या	गाथा	पृष्ठ संख्या
३६	जह कालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण । भावेण सडदि णेया तस्सडणं णिज्जरा दुविहा ॥	१३१
३७	सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो । णेयो स भावमुक्खो दव्वविक्खो य कम्मपुहभावो ॥	१३४
३८	सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा । सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥	१३७
३९	सम्मद्दंसणणाणं चरणं मुक्खस्स कारणं जाणे । ववहार णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥	१४१
४०	रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियह्मि । तह्मा तत्तियमइउ होदि हु मुक्खस्स कारणं आदा ॥	१४२
४१	जीवादिसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु । दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि जह्मि ॥	१४३
४२	संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स । गहणं सम्मण्णाणं सायारमणेयभेयं तु ॥	१५७
४३	जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं । अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णए समए ॥	१६२
४४	दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं ण दोण्णि उवउग्गा । जुगवं जह्मा केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि ॥	१६२
४५	असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं । वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणयादु जिणभणियम् ॥	१६८
४६	बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं । णाणिस्स जं जिणुत्तं परम सम्मचारित्तं ॥	१७०
४७	दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा । तह्मा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह ॥	१७२

गाथा–सख्या	गाथा	पृष्ठ सख्या
४८	मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठअट्ठेसु ।	
	थिरमिच्छहि जइ चित्त विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥	१७३
४९	पणतीससोलछप्पणचउदुगमेगं च जवह ज्झाएह ।	
	परमेट्ठिवाचयाण अण्ण च गुरूवएसेण ॥	१७८
५०	णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ ।	
	सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचितिज्जो ॥	१८१
५१	णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा ।	
	पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥	१८६
५२	दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे ।	
	अप्प परं च जु जइ सो आयरिओ मुणी झेओ ।	१८८
५३	जो रयणत्तयजुत्तो णिच्च धम्मोवदेसणे णिरदो ।	
	सो उवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ।	१८९
५४	दसणणाणसमग्ग मग्ग मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।	
	साधयदि णिच्चसुद्ध साहू स मुणी णमो तस्स ॥	१९१
५५	ज किंचिवि चितंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहु ।	
	लद्धूण य एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छय ज्झाणं ॥	१९२
५६	मा चिट्ठह मा जंपह मा चितह कि विजेण होइ थिरो ।	
	अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव पर हवे ज्झाण ॥	१९४
५७	तवसुदवदव चेदा ज्झाणरहधुरधरो हवे जम्हा ।	
	तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह ॥	१९७
५८	दव्वसंगहमिण मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ।	
	सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचन्दमुणिणा भणिय्र ज ॥	२०६

❀:)–(.❀

अकारादिक्रमेण वृहद्द्रव्यसंग्रहस्य गाथा सूची

गाथा-आदिपद	गा० सं०	पृ० स०	गाथा-आदिपद	गा० स०	पृ० सं०
अज्जीबो पुण णेओ	१५	४३	दव्वसगहिमण मुणिणाहा	५८	२०६
अट्ठ चदु णाण दसण	६	१६	दुविह पि मोक्खहेउं	४७	१७२
अणुगुरुदेहपमाणो	१०	२१	दंसणणाणपहाणे	५२	१८८
अवगासदाणजोग्गं	१९	४८	दसणणाणसमग्ग	५४	१९१
असुहादो विणिवित्ती	४५	१६८	दसणपुव्व णाण	४४	१६२
आसवदि जेण कम्मं	२९	७४	धम्माधम्मा कलो	२०	५०
आसवबंधणसवर	२८	७३	पणतीससोलछप्पण	४९	१७८
उवओगो दुवियप्पो	४	११	पयडिट्ठिदिअणुभाग	३३	७९
एयपदेसो वि अणू	२६	६२	पुग्गलकम्मादीणं	८	१८
एवं छब्भेयमिद	२३	५८	पुढविजलतेयवाऊ	११	२४
गइपरिणयाण धम्मो	१७	४७	बज्झदि कम्मं जेण दु	३२	७८
चेदणपरिणामो जो	३४	८१	बहिरब्भतरकिरिया	४६	१७०
जह कालेण तवेण य	३६	१३१	मग्गणगुणठाणेहि य	१३	२८
जीवदियं आयासं	१७	६३	मा चिट्ठह मा जपह	५६	१९[illegible]
जीवमजीवं दव्वं	१	४	मा मुज्झह मा रज्जह	४८	१७३
जीवादीसद्दहणं	४१	१४३	मिच्छत्ताविरदिपमाद	३०	५
जीवो उवओगमओ	२	७	रयणत्तय वट्टइ	४०	१४
जो रयणत्तयजुत्तो	६३	१८९	लोयायासपदेसे	२२	५४
जं किंचिवि चिंतंतो	५५	१९२	वण्ण रस पच गधा	७	१७
ज सामण्णं गहण	४३	१६२	वदसमिदीगुत्तीओ	३५	८६
ठाणजुदाणअधम्मो	१८	४८	ववहारा सुहदुक्खं	९	२०
णट्ठचदुघाइम्मो	५०	१८१	सद्दो वन्धो सुहुमो	१६	४६
णट्ठट्ठकम्मदेहो	५१	१८६	समणा अमणा णेया	१२	२६
णाणावरणादीण	३१	७७	सब्बरस कम्मणो जो	३७	१३४
णाणं अट्ठवियप्प	५	१३	सुहअसुहभावजुत्ता	३८	१३७
णिवकम्मा अट्ठगुणा	१४	३६	संति जदो तेणेदे	२४	५८
तवसुदवदवं चेदा	५७	७९७	सम्मद्दंसणणाणं	३९	१४१
तिक्काले चदुपाणा	३	९	संसयविमोहविब्भम	४२	१५७
दव्वपरिवट्टरूवो	२१	५१	होंति असंखा जीवे	२५	६०

अकारादिक्रमेण लघुद्रव्यसंग्रह-गाथा सूची

गाथा-आदिपद	गाथा सं०	पृष्ठ सं०	गाथा-आदिपद	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
अरसमरूवगंध	५	२१०	णासइ णर-पज्जाओ	२०	२१२
अवगासदाणजोग्ग	१०	२११	दव्वपरियट्टजादो	११	२११
उप्पादप्पद्धंसा	२१	२१३	पुढवी जलं च छाया	७	२१०
एवं अहिगयसुत्तो	२२	२१३	मिच्छत्तं हिंसाई	१६	२१२
कम्मस्स बंधण-बद्धस्स	१८	२१२	मिच्छत्ताईचाओ	१७	२१२
गइपरिणयाण	८	२१०	लोयायासपदेसे	१२	२११
छद्दव्व पंच	१	२०६	वण्ण रस गंध	६	२१०
जावदीयं आयासं	१४	२११	विसएसु पट्टंतं	२३	२१३
जीवमजीवं सव्वं	३	२०६	संखातीदा जीवे	१३	२११
जीवो णाणी पुग्गल	१५	२१२	सम्मा जीवादीया	२४	२१३
जीवो पुग्गल धम्मा	२	२०६	सादाउणाम	१९	२१२
जीवो होई अमुत्तो	४	२०६	सोमच्छलेण रइया	२५	२१३
ठाणजुयाण अधम्मो	९	२१०			

संकेतसूची

संकेत	ग्रन्थ नाम	संकेत	ग्रन्थ नाम	संकेत	ग्रन्थ नाम
आ० प०	आलापपद्धति	पंचा० ता०	पंचास्तिकाय-	र० श्रा०	रत्नकरण्ड श्रावकाचार
आ० परि०	आप्तपरिक्षा		तात्पर्यवृत्ति टीका	ल० सा०	लब्धिसार
आ० स्व०	आत्मस्वरूप	प० प्र०	परमात्मा प्रकाश	वसु०	वसुनन्दि श्रावकाचार
आ० सा०	आराधनासार	प्र० सा	प्रवचनसार	ष० प्र०	षट् प्राभृतसंग्रह
गो० क०	गोम्मटसार कर्मकांड	पू० उ०	पूज्यपाद उपासकाचार	ष० ख०	षट् खण्डागम
गो० जी०	गोम्मटसार जीवकांड	बा० अ०	बारस अनुप्रेक्षा	स० सा०	समयसार
ज० प०	जम्बूद्वीवपण्णत्ति	भ० आ०	भगवति आराधना	समा०	समाधिशतक
त० अ०	तत्त्व अनुशासन	भा० पा०	भाव पाहुड	स० सि०	सर्वार्थसिद्धि
त० सा०	तत्त्वसार	भा० स०	भावसंग्रह	सि० भ०	सिद्धभक्ति
ति० प०	तिल्लोय पण्णत्ति	मूला०	मूलाचार (वट्टकेर)	सु० र०	सुभाषित रत्न संदोह
नि० सा०	नियमसार	मो० पा०	मोक्षपाहुड	हि० उ०	हितोपदेश निर्णयसागर)
पं० सं०	पंचसंग्रह	य० च०	यस्तिलक चम्पू	त्रि० सा०	त्रिलोकसार
पंचा०	पंचास्तिकाय	यो० सा०	योगसार	ज्ञान०	ज्ञानार्णव

नोट :—जहां दो संख्या हों, उनमें प्रथम संख्या 'अध्याय', 'सर्ग' आदि की है, दूसरी संख्या 'गाथा श्लोक' आदि की है षट् खंडागम में प्रथम संख्या पुस्तक की है, दूसरी संख्या 'पृष्ठ' की है। जहां पर एक संख्या हो वह गाथा श्लोक की है, किन्तु संख्या से पूर्व यदि 'पृ०' हो तो वह पृष्ठ संख्या है। यदि संख्या के पश्चात् 'टी०' हो तो गाथा या टीका से प्रयोजन है।